उत्सर्गपत्र

आयुर्वेद की गौरववृद्धि के लिये जो अथक परिश्रम कर रहे है, आयुर्वेद की वर्तमान दुरवस्था को देखकर जो अन्तःकरण में असह्य यंत्रणा का अनुभव करते हैं, विशुद्ध आयुर्वेद को प्राचीव गौरव प्रदान कराने के लिये जो सदा आग्रहशील हैं, आयुर्वेद की राष्ट्रिय स्वीकृति प्राप्त करने के लिये जिनकी चेष्टाओं का अन्त नहीं है, आयुर्वेद की गठन प्रणाली को सुसम्पन्न करने के लिये जो सर्वदा प्रयत्नशील हैं, विशुद्ध आयुर्वेद के प्राचीन गौरव को लोकचक्षु के समक्ष प्रदर्शित करने के लिये जिन्होंने पर्याप्त आत्मत्याग किया है उसी सज्जनभूषण, सौजन्य सुधासागर, पण्डिताग्रगण्य, आयुर्वेद जगत के गौरव, वैद्यरत्न, **डाक्टर शिवशर्मा जी,** आयुर्वेदबृहस्पति के करकमलों मे प्रस्तुत 'रस-चिकित्सा' नामक ग्रन्थ भक्ति पुष्पाञ्जलि स्वरूप उत्सर्ग करके आत्मसन्तोष का अनुभव करता हूँ ।

विनीत,

ग्रन्थकार

भूमिका

मंगलाचरण

...जिनके वंशीरस श्रवण से विह्वल हृदय होकर पति-पुत्र-धन-जन-परित्यक्ता व्रजाङ्गनाएँ निशीथ समय में वृन्दारण्य मे गोपीजनवल्लभ मुरलीधर श्रीकृष्ण के साथ रासलीला करने का सौभाग्य प्राप्त कर चिरन्तन सुख का अनुभव करती हुई कृतकृत्य हुई थीं। भक्तवृन्द के हृदय-वृन्दावन में नित्यवासकुशल, नित्य व्रजविहारी, सर्वरस के मूलाधार, असीम कृपासिन्धु, राधावल्लभ गोपीकुलदुकूलचोर माधव कृष्ण हमारा पथ प्रदर्शित करें।

'रसचिकित्सा' नामक इस सर्वथा मौलिक ग्रन्थ को विज्ञ समाज के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मैं आज जिस आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ वह वर्णनातीत है। लेखक तो केवल एक निमित्त मात्र है। यह वासुदेव भगवान् की कृपा कटाक्ष के बिना कदापि सम्भव नहीं था। अब आरम्भ में रसशास्त्र का इतिहास दिया जाता है।

रसशास्त्र का संक्षिप्त इतिहास

प्राचीन संस्कृतविद्या अठारह भागों में विभक्त है। चार वेद, **यथा ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद;** छः वेदाङ्ग, **यथा शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्यौतिष;** चार उपवेद, **यथा आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद और अर्थशास्त्र;** चार उपाङ्ग, **यथा पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र। समग्र संस्कृतविद्या के विभिन्न स्थलों पर नाना रूप से आयुर्वेदशास्त्र का स्वरूप, उसका उद्भव, विभिन्न रूप से उसका विकास, उन्नति और अवनति की कथा नाना ऋषि, चिकित्सक और गवेषकों के द्वारा लिखित इतस्ततः बिखरी हुई है।**

ब्रह्मा

सत्ययुग के प्रथम और प्रधान चिकित्सक ब्रह्मा 'प्रथमो दैवभिषक्' के नाम से अभिहित थे। ऋषियुग में लोग ब्रह्मा को आयुर्वेद के पितामह कहा करते थे।

भारतीय आर्यगणों का विश्वास है कि स्वयंभू ब्रह्मा ही वेद के स्मर्ता हैं। वेद का कोई कर्त्ता नहीं है।

महेंजोदड़ो और हरप्पा की खुदाई कार्य के सम्पादन के बाद पुरातत्वदर्शी वैज्ञानिक और ऐतिहासिक मनीषियों ने वर्तमान पृथ्वी की अवस्था के सम्बन्ध में जो सिद्धान्त प्राप्त किए हैं उनके अनुसार ब्रह्मा का आविर्भाव काल महाभारत में वर्णित कुरुयुद्धकाल से न्यूनकल्प १५ हजार वर्ष से कम नहीं है। भारतीय ऐतिहासिक तथ्य के वैज्ञानिक कालनिर्णय के सम्बन्ध में विभ्राट के विषय में अपना मत इस प्रबन्ध के अन्य स्थान में व्यक्त करूँगा। काश्यपसंहिता के विमानस्थान में लिखा है कि स्वयंभू ब्रह्मा ने प्रजासृष्टि के पूर्व ही उनके सम्यक् परिपालन के लिए आयुर्वेदशास्त्र की सृष्टि की। सुश्रुत के सूत्रस्थान में भी लिखा है कि प्रजासृष्टि करने के पूर्व ही स्वयंभू ब्रह्मा ने सहस्र अध्याययुक्त एवं लक्ष श्लोक परिपूर्ण आयुर्वेदशास्त्र का प्रणयन किया। तत्पश्चात् प्राणियों को अल्पमेधायुक्त एवं अल्पायु देख कर लक्ष श्लोकों का शल्यशालाक्य, काय, भूतविद्या, कौमारभृत्य, अगदतन्त्र, रसायन एवं वाजीकरण ये आठ विभाग किये। चरकसंहिता में इसी मत का समर्थन है। चरक के सूत्रस्थान के प्रथम अध्याय में 'त्रिसूत्रं शाश्वतं पुण्यं बुबुधे यं पितामहः'। अर्थात् पितामह ब्रह्मा ने प्रथम ही त्रिदोषविज्ञान संवलित हेतु, लिङ्ग और औषध ज्ञानयुक्त सनातन आयुर्वेद शास्त्र का उपदेश किया। अपेक्षाकृत आधुनिक काल की सोलहवीं शताब्दी में प्रकाशित भाव-प्रकाशसंहिता ग्रन्थ से हम जान पाते हैं कि ब्रह्मा ने स्वनाम पर ही ब्रह्मसंहिता ग्रंथ की रचना की और उन्होंने विष्णु, महेश्वर, दक्षप्रजापति, भास्कर एवं अश्विनीकुमारों को आयुर्वेदशास्त्र की शिक्षा दी। तत्कृत ब्रह्मसंहिता इस समय प्राप्त नहीं है। भावमिश्र ने अपने भावप्रकाश में ब्रह्मा द्वारा निर्दिष्ट अठारह से भी अधिक ओषधियोगों की संज्ञा लिपिबद्ध की है। यथा, (१) सर्वाङ्गसुन्दर रस, (२) रतिकुलान्तकरस (३) चतुर्मुखरस (४) आमवात गजसिंहमोदक (५) विजयानन्द (६) सूतिकाग्ररस (७) नीलकंठरस (८) मृतसञ्जीवनीरस (९) बृहत् अग्निमुख चूर्ण (१०) बृहत् सारस्वत चूर्ण (११) चन्द्रप्रभागुडिका (१२) स्वायम्भुव रस (१३) माक्षिक रस (१४) दशसार चूर्ण (१५) कर्णामृत तैल (१६) सहचर (१७) ब्राह्मी तैल और (१८) ब्राह्मी रसायन।

चरकसंहिता, अष्टांगसंग्रह और भावप्रकाश प्रभृति ग्रंथों में आयुर्वेद के आदि प्रवर्त्तक चतुर्मुख ब्रह्मा रसौषधि व्यवहार के उपदेष्टा माने गये हैं।

विष्णु

भगवान् विष्णु आयुर्वेदीय चिकित्साशास्त्र में सुपण्डित माने जाते हैं। आधुनिक आयुर्वेद के ग्रंथों में विष्णुपरिकल्पित बहुविधि ओषधियों का नाम देखा जाता है। उसके मध्य, स्वल्प, बृहत् और महत् भेद से तीन प्रकार का विष्णु तैल और तीन प्रकार का नारायणतैल, सिद्धार्थतैल, श्रृङ्गाराभ्र, नित्योदयरस, आमवातेश्वर वटी और सर्वाङ्गसुन्दररस अन्यतम एवं विष्णुनिर्मित कह कर फलश्रुति में कथित है। शास्त्रों में भी 'औषधे चिन्तयेद्विष्णुम्' अर्थात् ओषधि सेवनकाल में विष्णु का स्मरण करना चाहिए ऐसा कहा है। चिकित्सक श्रेष्ठ चक्रपाणि भी अपनी संहिता में लिखते हैं:—

'विष्णुं सहस्रमूर्धानं चराचरपतिं विभुम्।
स्तवन् नामसहस्रेण ज्वरान् सर्वान् व्योहति ॥'

ज्वर में सर्व प्रकार की चिकित्सा विफल होने पर केवल विष्णु सहस्रनाम परिकीर्तन करके अनेकों क्षेत्र में ज्वर मोक्षरूप अपूर्व फल प्राप्त करता है। अतः चराचरपति विष्णु के जिस चिकित्साशास्त्र में अपूर्व ज्ञान था उसमें सन्देह का अवकाश नहीं है।

महेश्वर

तन्त्रशास्त्र में महेश्वर को ही चिकित्साशास्त्र का जनक कहा गया है। ऋग्वेद में शिव शब्द का उल्लेख नहीं रहने पर भी शिवार्थवाचक रुद्र और त्र्यम्बक शब्दों का उल्लेख पाया जाता है। यजुर्वेद में आयु, आरोग्य, धन और सम्पत्ति की वृद्धि के लिए रुद्र की आराधना बहुबार की गई है। यजुर्वेद में रुद्र को सर्व, पशुपति, नीलकंठ, शितिकंठ, शंकर प्रभृति महेश्वर वाचक शब्दों से अभिहित किया गया है। महेश्वर सब प्रकार के रोगों का नाश करने में समर्थ हैं ऐसी कथा वेद के बहुत स्थानों में वर्णित है। एवं जिस स्थान में कर्मविपाक अनुयायी रोग की चरम असाध्यता प्राप्त हुई है उसी स्थान में रोग को 'शिवेर असाध्य' कहा गया है। 'शिवेर असाध्य' यह बात हमारे देश में बहुत दिनों से प्रचलित है। शिव को सर्वश्रेष्ठ के रूप में स्वीकार न करने से 'शिवेर असाध्य' प्रवाद वाक्य की कोई सार्थकता नहीं रहेगी। श्रेष्ठ निदानकार माधव ने अपने निदान ग्रंथ में ज्वरचिकित्सा के प्रारम्भ में ही लिखा है। 'दक्षापमानसंक्रुद्धरुद्रनिश्वाससम्भवः' अर्थात् ज्वर की उत्पत्ति दक्षकर्त्तृक

अपमानित क्रुद्ध रुद्र के निश्वास से हुई है। चिकित्सा ग्रंथों में भी रुद्र के विषय में इसी प्रकार की उक्ति दिखलाई पड़ती है।

रसचिकित्सा क्षेत्र में शिवादि ही चिकित्सक हैं। सिद्ध सम्प्रदाय के मत से पारा ही शिववीर्य है। सिद्धगणों के मत से पारा में एवं शिव (ब्रह्म) में कोई अभेद नहीं है। षड्रसमय पारा ही चिकित्साक्षेत्र में एकमात्र साध्यवस्तु है। पारा के संस्कार के विषय में शिक्षालाभ कर सकने पर शिव की तुष्टि सम्पादित होती है एवं शिव की प्रसन्नता से ही सब प्रकार की रसक्रिया सिद्ध होती है। प्राचीन रासायनिक विद्वानों के मत से शिव ही सर्वश्रेष्ठ रासायनिक ज्ञानसम्पन्न चिकित्सक हैं। मद्रास सरकार के पुस्तकालय में शिवकृत निम्नलिखित ग्रंथ पाये जाते हैं:—

(१) आयुर्ग्रंथ—यह त्रेतायुग में महेश्वर द्वारा प्रणीत है। यही दाक्षिणात्य में आयुर्वेद की आदि पुस्तक है।

(२) रुद्रयामलतंत्र—यह महेश्वरप्रणीत चिकित्सा का अत्यन्त बृहत् ग्रंथ है। यह पुस्तक ६ भागों में विभक्त है। प्रथम भाग का नाम 'पारदकल्प' है। इसमें पारदसंस्कार एवं पारदसंयोग से निर्मित ओषधियों की प्रस्तुति विधि एवं प्रयोगविधि लिखित है। द्वितीय भाग का नाम 'धातुकल्प' है। इसमें विभिन्न प्रकार से धातु का शोधन, मारण, जारण और आमयिक प्रयोगविधि लिखित है। तृतीय भाग का नाम 'हरितालकल्प' है। इसमें रसचिकित्सा क्षेत्र में विचित्र फलप्रद हरिताल का शोधन, मारण, जारण, सत्वपातन एवं भस्मीकरण की विशेष विधि सहज और सरल भाव में वर्णित है। चतुर्थ भाग का नाम अभ्रकल्प है। इसमें अभ्र का शोधन, मारण, जारण, भस्मीकरण, सत्वपातन और आमयिक प्रयोग विधि भी लिखित है। पंचम भाग का नाम 'हरीतकीकल्प' है। इसमे हरीतकी का प्रकार, भेद उसका गुणागुण और आमयिक प्रयोग विधि लिखित है। छठे भाग का नाम 'धातुक्रिया' है। इसमें विभिन्न प्रकार से धातु का शोधन, मारण, जारण, भस्मीकरण और आमयिक प्रयोगविधि लिखी हुई है।

(३) कामतत्र—इस पुस्तक में यौनविज्ञान, वशीकरण और उच्चाटन के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की विधियाँ लिखी गई हैं।

(४) शैवसिद्धान्त—यह ग्रंथ इस समय प्राप्य नहीं है। चक्रपाणिदत्त ने इसी ग्रन्थ से शिवगुडिका नामक ओषधि को अपने ग्रन्थ में उद्धृत किया है।

(५) आयुर्वेद—ऋग्वेद के उपांगरूप शिवप्रणीत इस पुस्तक में रोगपरीक्षा का प्रधान एवं प्रथम उपाय नाडीविज्ञान विस्तृत भाव से वर्णित है। इसमें त्रिदोषविज्ञान का स्वरूप, दोष का संचय, प्रशम एवं स्थान संश्रयादि का विषय; रोग के निदान के सम्पर्क में असात्म्येन्द्रियार्थसंयोग, प्रज्ञापराध, परिणाम एवं काल का विषय विशद रूप से लिखित है। रसचिकित्सा का समग्र विषय यथा रस, उपरस, धातु, उपधातु, रत्न, उपरत्न, वीर्य, उपविष, क्षार, उपक्षार प्रभृति तथा नाडीज्ञानशिक्षा के प्रारम्भ में नाडी, तन्तु, शिरा, उपशिरा, धमनी स्नायु प्रभृति का पृथक्-पृथक् वैज्ञानिक विश्लेषण विशेष द्रष्टव्य विषय है। सन्वित और चेतन भेद से हृदय द्वय का वैज्ञानिक वर्णन इस ग्रंथ का वैज्ञानिकत्व एवं वैदिकत्व का प्रकृष्ट प्रमाण प्रदान करता है। किंच उसे विभिन्न प्रकार से रस, रत्न, धातु एवं क्षार घटित ओषधि के साथ वनस्पतिसंयोग से मिश्रित ओषधि प्रस्तुत करके तद्द्वारा रोगनिवारण का भी विस्तृत एवं विचित्र वर्णन इस पुस्तक में है। वेद में रोग से परित्राण के निमित्त रुद्र के निकट ओषधि एवं आशीर्वाद की प्रार्थना की गई है और रुद्र को ही सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक कहा गया है। रुद्रनिर्मित अनेकों ओषधियां आयुर्वेदीय चिकित्सा शास्त्र में प्रकीर्ण उपदेश रूप से विद्यमान है। यथा—चिन्तामणिरस, सूचिकाभरणरस, मृतसञ्जीवनीरस, चूड़ामणिरस, शार्दूलरस, वैद्यनाथवटी, बृहत् अग्निकुमाररस, लोकेश्वररस, चतुर्भुज रस, मृतभस्म प्रयोग, विश्वेश्वररस, आमवातारिवटिका, शूलराजवटी, महामृत्युञ्जय रस, वज्रक्षार, चन्द्राननरस, वलिरस, श्रीमन्मथरस, वसन्ततिलकरस, मकरध्वज, महानीलकंठरस, चूर्णराज, चन्द्रप्रभागुडिका, रसशार्दूल कामेश्वरमोदक, शिवा गुडिका, क्रव्यादरस, शंकरलौह, महाभल्लातकावलेह, रसाला, सिंहनाद गुग्गुल त्रिपुरारि, कुसुमभाप्य तैल, बृहच्छिवगुडिका, व्योषादिगुडिका, बृहत्स्वायम्भुव गुग्गुल, कुमार्या रस, मालिकेशव, बृहत् सहचर तैल, विजयागुडिका, कौलितिकावर्ता, सूतभस्म, गन्धर्क तैल पातन, वातनाशरस, तालकराजरस, स्वर्णसिन्दूर, पूर्णचन्द्ररस, भस्मेश्वररस, गीतमञ्जीरस, पुत्रप्रदरस, सर्वव्याधिहररस इत्यादि।

भास्कर

ऋग्वेद में भास्कर सूर्य एवं सविता के नाम से अभिहित हैं। भास्कर ही सब प्रकार के सुख समृद्धि एवं आरोग्य के भंडार हैं। भास्कर ब्रह्मा से आयुर्वेद सीखे थे 'कृत्वा तु पंचमं वेदं भास्कराय ददौ विभुः। स्वतंत्रसंहितां तस्मात् भास्करश्च चकार सः' अर्थात ब्रह्मा से आयुर्वेद शिक्षा प्राप्त कर भास्कर ने अपने नाम से 'भास्करसंहिता'

नामक स्वतंत्र आयुर्वेदसंहिता का प्रणयन किया। यही सूर्यकृत आदि चिकित्सा ग्रंथ है। वस्तुतः सूर्य ही पृथ्वी के आदि श्रेष्ठ चिकित्सक हैं। 'आरोग्यं भास्करादिच्छेत' अर्थात् सूर्य के निकट आरोग्य की कामना करे। यह वाक्य परम्परा से प्रचलित है। सूर्य जगत् के अन्धकार एवं सकल प्रकार के अधर्म, ग्लानि तथा सभी प्रकार के रोग के वीजाणुओं को स्वकीय तेज प्रभाव द्वारा विनष्ट करके स्थावर जंगमात्मक समग्र संसार की प्राणशक्ति का विकाश किये रहते हैं। ऋग्वेद में भी ऋषि-गण ने प्रार्थना की है कि हे सूर्य आप हमलोगों को हृद्रोग से आरोग्य करें कामला रोग दूर करें तथा तेजोदीप्त करें।

अथर्ववेद में सूर्य को चक्षु का अधिपति माना गया है। "सूर्यः चक्षुषां अधिपतिः" ज्योतिषशास्त्र के मत से जातकचक्र में सूर्य पापग्रह वा शुक्रयुक्त होने पर जातक चक्षु रोग ग्रस्त हो जाता है। सूर्य की कृपा बिना चक्षुरोग आरोग्य नहीं होता। सूर्य के धातु ताम्र चक्षुरोग में सर्वापेक्षा श्रेष्ठ ओषधि है। ताम्र के पात्र में मधुमर्दन कर अञ्जन प्रयोग करने की एवं ताम्रभस्म घृत-मिश्रित करके चक्षु में अञ्जन देने की व्यवस्था भास्करसंहिता में देखी जाती है। सूर्य ही पित्त धातु के कारक हैं। पित्त की विकृति होने पर मानवशरीर में नाना प्रकार के रोगों की उत्पत्ति हो जाती है। पित्त शब्द का अर्थ है तेज। शास्त्र में लिखा है "ऊष्मापित्तादृते नास्ति"। शरीर में गर्मी की कमी हो जाने पर अर्थात् पित्तह्रास होने पर अनेक रोग आकर उपस्थित हो जाते हैं। "रोगाः सर्वेऽपि मन्दाग्नेः" अर्थात् सब प्रकार का रोग मन्दाग्नि से उत्पन्न हो जाता है। आधुनिक काल में जो तीन रोग जनसमूह को विशेष पीड़ा देते हैं उनके मध्य हृद्रोग अन्यतम है। अन्य दो का नाम यक्ष्मा और कैंसर है। लो ब्लड प्रेसर, हाई ब्लड प्रेसर, कोरोनरि थ्रोम्बोसिस और सेरिब्राल थ्रोम्बोसिस इत्यादि आधुनिक रोग हृद्रोग का ही नामान्तर है। आहार-विहार के ही अयोग, मिथ्यायोग अतियोग के फल से पित्त विकृति होने पर भी अर्थात् किसी किसी क्षेत्र में पित्त का आधिक्य एवं किसी क्षेत्र में पित्त की अप्राप्ति उक्त सभी रोगों का अन्यतम कारण है। वस्तुतः पित्त धातु शरीर में समभाव अधिष्ठित रहने पर शरीर सम्पूर्ण भाव से स्वस्थ रहता है। अन्यथा शारीरिक स्वस्थता कम हो जाती है। हम लोग खाद्यरूप में जिसे ग्रहण करते हैं उष्मा वा सूर्य की गर्मी ही उसका पाचक है। परिपाक शक्ति ह्रास प्राप्त करने पर शरीराभ्यन्तरस्थ अन्यान्य यंत्रादि विशेष भाव से यकृत् हृद्पिण्ड आक्रान्त हो जाते हैं। वैदिक ऋषिगण अति पूर्व से ही इस रहस्य को हृदयंगम

करके सूर्यताप की समता रक्षा के प्रति आकृष्ट हुए थे इसी कारण वे त्रिसंध्या करके दीर्घायु लाभ करते थे। "ऋषयो दीर्घसंध्यात्वात् दीर्घमायुः अवाप्नुयुः"। अभी भी प्राचीन लोग रोगमुक्त दीर्घायु लाभ के लिए पृथ्वी के श्रेष्ठ चिकित्सक सविता की आराधना में नित्य नियमित रूप से उपयुक्त काल अतिवाहित करते हैं। भास्कर के द्वितीय ग्रंथ का नाम "ज्ञानभास्कर" है। यह ग्रथ जर्मनी में पाया जाता है। इसमें पूर्वजन्मकृत कर्मफल एवं पाप को रोग का कारण कहकर स्वीकार किया गया है एवं प्रायश्चित्त, जप, होम, पूजा आदि के द्वारा पापक्षय होकर दीर्घकालानुवृत्ति दुश्चिकित्स्य रोगादि आरोग्य होता है ऐसा लिखा गया है। भास्कर प्रणीत निम्नलिखित ओषधियाँ हैं–भास्कर चूर्ण, भास्कर लवण, लवणभास्कर उदर्क रस और भास्कर लवण चूर्ण इत्यादि।

दक्षप्रजापति

ब्रह्मा के शिष्यका नाम दक्षप्रजापति है। दक्षप्रजापति के नाम से प्रचलित महारास्नादि कषाय औषध है। दक्षके प्रधान शिष्य अश्विनीकुमार हैं, जिनके गुणगान से चारों वेद मुखरित है। स्थानाभाव के कारण उनका उल्लेख यहाँ न कर सका हूँ। च्यवन का वार्द्धक्यनाश, श्वेतकेतुका किलासकुष्ठनाश, ब्रह्मा का यज्ञशिरः संधान, पुष्णाकं की दन्तचिकित्सा, इन्द्र की भुजस्तम्भ चिकित्सा, चन्द्र की यक्ष्मा चिकित्सा इत्यादि अनेक प्रकार के जटिल रोगों की चिकित्सा में अश्विनीकुमारों की ख्याति समस्त देवकाल या ऋषियुग से विख्यात है। स्वर्गवैद्य अश्विनीकुमारों के प्रणीत (१) आश्विनसंहिता। (२) चिकित्सासारतंत्र। (३) भ्रमघ्न। (४) धातुरत्नमाला। (५) हरीतकीकथा और (६) नाडीनिदान या नाडीपरीक्षा ये ६ ग्रंथ आज भी उपलब्ध होते हैं। इनमें धातुरत्नमाला बीकानेर के पुस्तकागार में मिलती है। अश्विनिकुमारों के नामांकित शताधिक योग आधुनिक आयुर्वेद ग्रंथों में मिलते हैं। मैं तो अपने दैनिक चिकित्साक्षेत्र में अश्विनीकुमारों की लिखी हुई नाडीपरीक्षा के मत के अनुसार नाडीपरीक्षा करके रोग का निर्णय करता हूँ एव उनकी व्यवहृत योगावली चिकित्सा में प्रयोग करता हूँ तथा उनके प्रदर्शित नियमानुसार धातुरत्नों की भस्म आदि भी तैयार करता हूँ। अश्विनीकुमारों के व्यवहृत ओषधियों में निम्नलिखित का नाम प्रसिद्ध है—मातुलुङ्गगुडिका, गुल्मनाशकचूर्ण, हरिद्राद्यचूर्ण, लशुनाद्यघृत, सर्वज्वरहरघृत, त्रिन्दुघृत, रक्त-पित्त निवारण योग, अमृततैल, क्षीरयोग, अयोराजयोग, वर्द्धमान-पिप्पली, फलघृत, अमृतागुग्गुल, अमृताद्यघृत, अमृतप्राशावलेह, पुनर्नवागुग्गुल,

गोधूमाद्यघृत, महासुगन्धि तैल, गुडकुष्माण्ड, कूष्माण्डकरसायन, बृहत् नारियल खंड, दाडिमाद्यघृत, शतावरीघृत, हिंग्वाद्यचूर्ण, दशांगतैल, बृहत् अग्निसुखचूर्ण, चित्रकहरीतक्यावलेह, हरीतक्यावलेह, चित्रकावलेह, स्वल्पकदलीकन्दघृत, अयःपति रस, मार्त्तण्डरस, वलिसूर्योदयरस इत्यादि।

इन्द्र

देवराज इन्द्र अत्यन्त सुचिकित्सक थे। विशेषरूप से रसायनचिकित्सा में इन्द्र जैसे सुपंडित स्वर्गराज्य में दूसरा कोई नहीं हुआ। इन्द्र ने अश्विनीकुमारों से आयुर्वेद शास्त्र का अध्ययन करके भरद्वाज, भृगु, अंगिरा, अत्रि, वशिष्ठ, कश्यप, अगस्त्य, पुलस्त्य, वामदेव, असित गौतम प्रभृति, तदानीन्तन काल के ऋषियों को दीर्घ आयुप्रद आयुर्वेद शास्त्र की शिक्षा दी। इन्द्र नामांकित निम्न-लिखित ओषधियाँ आज भी व्यवहार में आती हैं। यथा—ऐंद्रिकरसायन, सर्वतोभद्र-रस, दशमूलाद्यतैल और हरीतक्यावलेह।

स्वर्ग में सम्पूर्ण अष्टांग आयुर्वेद के साथ नाडीविज्ञान तथा रसचिकित्सा सुप्रचलित थी। परन्तु यह प्रश्न हो सकता है, कि यह स्वर्गराज्य कहाँ था और यह वर्णना केवल-मात्र कवि-कल्पना है या इसमें यथार्थ भी कुछ है। पाश्चात्य पण्डितों ने तो हमारे शास्त्रों में लिखित इन ऐतिहासिक विवरणों को केवल कवि-कल्पना मात्र कहा है। परन्तु मेरे मत में कोई भी कल्पित पुरुष नहीं थे। वस्तुतः वे सब ही ऐतिहासिक व्यक्ति थे।

स्वर्गराज्य के अस्तित्व के बारे में तथा इसके स्थानसंस्थान के सम्बन्ध में अनेक मनीषियों ने बहुत गवेषणा की है। इनमें भारतभूषण बालगंगाधर तिलक, डा० भंडारकर, ऋषि वंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, उमेशचन्द्र वटव्याल, सामश्रमी, डा० भगवान दास, पंडित भागवत दत्त इत्यादि के नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनमे से अधिकांश के मत में हिमालय के दूसरी ओर मंगोलिया ही देवों का आदि स्थान है। स्वर्गराज इन्द्र का राज्य मंगोलिया में था। आयुर्वेदावतरण के नाम से वृद्ध चरक, सुश्रुत, वाग्भटादि में जो विवरण मिलते हैं, उनको पढकर हिमालय के दूसरी ओर स्वर्ग के लौकिक तथा ऐहिक अस्तित्व के बारे में किसी को कुछ भी संदेह का अवकाश नहीं मिलता है। 'पार्श्वे हिमवतः शुभे' पृथिवी का जो सर्वप्रथम और प्रधान ऋषि महासम्मेलन हुआ था, उसमें महर्षि भरद्वाज के सशरीर स्वर्ग जाने का जो प्रस्ताव स्वीकृत

हुआ, उससे यह प्रतीत होता है कि तदानीन्तन महर्षियों को इन्द्र के राजधानी के स्थानिक अस्तित्व के बारे में स्पष्ट ज्ञान था और स्वर्ग में जाने का पथ भी मालूम था। इसको कवि कल्पना कहकर छोड़ देने से भरद्वाज के द्वारा संगृहीत आयुर्वेद विज्ञान के भी उक्त ऋषियों के कल्पना प्रसूत से भिन्न और कुछ नहीं कहा जा सकता। परन्तु यथार्थ में जैसे शाश्वत आयुर्वेद-विज्ञान कवि परिकल्पना नहीं है, वैसे स्वर्ग वैद्य अश्विनीकुमारों के शिष्य इन्द्र का राज्य भी काल्पनिक नहीं है। पंडितों के मत से मंगोलिया ही इन्द्र का स्वदेश है और ऋषियों के आदेश से आयुर्वेद को लाने के लिये महर्षि भरद्वाज मंगोलिया गये थे यह भी सत्य है।

सत्ययुग या दैवकाल में स्वर्गस्थ इन्द्र के राज्य में आयुर्वेदावतरण-वर्णना के प्रसंग में सोम की कथा को छोड़ने से कदाचित् चतुर्वेद का एक बहुत बड़ा भाग अधूरा रह जाता है। सोम या सोमरस का पान वैदिक ऋषियों का एक नित्य नैमित्तिक काम था। इस सोमरस से वे अपने उपास्य देवताओं को तृप्त करते थे। सोमरस-पान करने से वे शरीर के सब रोगों से मुक्त होकर चन्द्र जैसा सुन्दर और दिव्यकान्ति विशिष्ट होते थे। इस सोमरस को वेद के कई स्थानों में चन्द्र के साथ तुलना की गयी है। वेद के वर्णन को पढ़कर ऐसा जान पड़ता है कि चन्द्र और सोम में कोई प्रभेद नहीं है। अनेक मंत्रों में चन्द्र को सोमलता के नाम से अभिहित किया गया है। वास्तव में चतुर्वेद का अनेक अंश इस सोमरस का स्वरूप, प्रस्तुतविधि और सेवन के गुणगान से मुखरित है। परन्तु वर्त्तमान समय में इस सोमलता के प्रकृत स्वरूप का किसी को ज्ञान नहीं है। यूरोपीय पंडितों ने सोमरस को पहचानने की कितनी चेष्टा की, परन्तु आज तक उनकी कोई चेष्टा सफल नहीं हुई है। वेदों में सोमरस के बारे में विवरण मिलता है कि यह एक प्रकार का लतागुल्मविशेष है। शुक्लपक्ष में प्रतिदिन इसकी एक नयी पत्ती निकलकर, पूर्णिमा के दिन इसकी एक लता पूर्णावयव प्राप्त होती है। उसके बाद कृष्ण प्रतिपदा से रोज एक-एक पत्ता गिरकर अमावस्या के दिन यह बिलकुल पत्ररहित होकर सूख जाता है। ऋषिगण और देवगण पूर्णिमा के दिन सोमसंग्रह करके पान करते थे। सोमरसपान की फलश्रुति में लिखा है कि जैसे कृष्णपक्ष का चन्द्र प्रतिदिन एक-एक कला छोटा होकर अमावास्या के दिन पूर्णतः क्षयप्राप्त होता है, वैसे सोमपान के बाद मानवशरीर स्थित दोषों का क्रमशः क्षयप्राप्त होकर अमावास्या के दिन पूरा शेष हो जाता है और उसके बाद जैसे

शुक्लपक्ष के प्रतिदिन चन्द्र की वृद्धि होती है और पूर्णिमा के दिन पूर्णचन्द्र अपूर्व सुषमामंडित होकर आकाश में शोभित होता है, वैसे ही पक्षान्त में दिव्यवर्गान्त-विशिष्ट होकर अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है। वर्त्तमान समय में अनेक पाश्चात्य तथा देशी पंडितों ने सोमरस के सम्बन्ध में गवेषणा की है उनमें कोई तो इसे शराव और कोई भांग के अलावा और कुछ नहीं समझते। हरिद्वार से वद्रीनारायण की ओर दोनों तरफ बहुत से भांग के वृक्षों को देखकर अनेक विद्वान् हिमालय को शिवजी का देश मानते हैं। शिवजी का प्रधान खाद्य भांग था अतः भांग को सोम समझना उनके लिये विचित्र नहीं है। पहले दिन कच्चा भांग शाम को भिगोकर, दूसरे दिन अच्छी तरह बूक कर दही, दूध, घी, शहद, चीनी और पका हुआ केला के साथ मिलाकर सेवन करने से शरीर की पुष्टि और मन में स्फूर्ति निश्चित ही होती है। इसलिये भांग को ही बहुत लोग सोमरस समझते हैं। हिमालय पर्वत के किसी विस्मृत स्थान में उत्पन्न शास्त्रीय असली सोम के साथ चांद का सादृश्य देखकर वैदिक ऋषि गण जिसको चांद समझकर पूजा करते थे उसका निर्णय आज तक नहीं हुआ है।

वंगदेश के जड़ी-बूटी बेचने वाले तथा हिमालय की औषध बेचने वाले एक तरह के लतागुल्म को सोमलता कह कर बेचते हैं। मैंने उसकी ओषधि में व्यवस्था करके शारीरिक पुष्टि फल पाया, परन्तु उसमें किसी तरह की मादकता का विकाश नहीं देखा। यह एक प्रकार का पतला पत्रविहीन सफेद रंग की सूक्ष्मलता विशेष है।

भारत में आयुर्वेदावतरण

भरद्वाज

जब सत्ययुग के शेष भाग में वैदिक ऋषिगणों ने देखा कि दिन प्रतिदिन आयुष्काल क्षीण होता जा रहा है। नियमित समय तक तपस्या आदि यथा नियम से लोग नहीं कर पा रहे हैं। जनसमाज में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होकर बहुत सी वाधायें उत्पन्न कर रहे हैं, तब उन्होंने धर्मार्थकाममोक्ष लाभ का एकमात्र उपाय, आरोग्य के साथ दीर्घ जीवन लाभ करने के लिये हिमालय की तराई में भारतीय ऋषिमहासम्मेलन की व्यवस्था की।

इस अखिल भारतीय ऋषिसम्मेलन में स्वीकृत प्रधान प्रस्ताव के अनुसार

ऋषि प्रतिनिधि महर्षि भरद्वाज स्वर्ग भेजे गये। उन्होंने स्वर्गराज इन्द्र के पास पहुँच कर दीर्घजीवनलाभ के मूलसूत्र त्रिसूत्रमूलीभूत सारे आयुर्वेदशास्त्र की शिक्षा प्राप्त करके भारत में आकर महर्षि लोगों को दीर्घजीवन लाभ करने का उपायस्वरूप पूरे आयुर्वेदशास्त्र की शिक्षा दी।

महर्षि भरद्वाज ने जिन ऋषियों को आयुर्वेदशास्त्र का उपदेश दिया उनमें महर्षि आत्रेय पुनर्वसु अन्यतम थे। आत्रेय पुनर्वसु को बहुत से लोग भरद्वाज समझते हैं, परन्तु यह ठीक नहीं है। चरक के श्रेष्ठ टीकाकार चक्रपाणि ने आयुर्वेददीपिका में आत्रेय पुनर्वसु और भरद्वाज के विषय में संशयरूप से अपना मत प्रतिपादन किया है। मद्रास सरकार के पुस्तकालय में भरद्वाज के नामांकित निम्न तीन पुस्तकें हैं:—(१) भारद्वाजायन, (२) भेषजकल्प और (३) भेषजकल्पद्रुम। भरद्वाज नामांकित औषधों में फलघृत और बृहत् फलघृत नाम की दो ओषधियाँ आधुनिक वैद्य समाज में प्रचलित हैं। आत्रेय पुनर्वसु ने अग्निवेश, भेल, जतुकर्ण, पराशर, क्षारपाणि तथा हारीत ऋषि को समस्त आयुर्वेदशास्त्र का उपदेश दिया था। इनमें महर्षि अग्निवेश ही सबसे बुद्धिमान् थे। इसलिये उनका लिखा 'अग्निवेशसंहिता' दूसरे पांच ऋषियों के लिखे स्वनामख्यात संहिताओं से अधिक अच्छी हुई। यह 'अग्निवेशसंहिता' ही महर्षि पतञ्जलि द्वारा त्रेतायुग के अन्त में सबसे पहिले प्रतिसंस्कृत हुई। इसके बाद कालक्रम से उसके अनेक अंश विलुप्त हो गये। महर्षि दृढ़बल ने शंकराराधना में सिद्धि लाभ करके शंकरजी के अनुग्रह से वर्तमान चरकसंहिता में चिकित्सास्थान के १७, कल्पस्थान के १२ और सिद्धिस्थान के १२ अध्याय संयुक्त करके महर्षि पतञ्जलि द्वारा प्रतिसंस्कृत विनष्टप्राय अग्निवेशसंहिता का प्रतिसंस्कार किया। महर्षि पतञ्जलि को रसशास्त्र में विशेष दक्षता थी। स्वनामधन्य महामहोपाध्याय कविराज गणनाथसेन महाशय ने स्वलिखित 'प्रत्यक्ष शारीरम्' के उपोद्घात में लिखा है:—

'न चासौ पतञ्जलिः केवल चरकसंहिताकार एव रसशास्त्रेऽपि तन्नामश्रवणात्।' तथाहि चक्रदत्तटीकायां लौहद्रावविधिव्याख्याने शिवदासः—

'पातञ्जले तु स्पर्शादिनाऽपि पाकज्ञानमुक्तम्'।
'तावल्लौहं पचेद्वैद्यो यावद्दर्व्या न पीडितम्
समुद्रं जायते व्यक्तं न निःसरति सन्धिभिः॥

लौहादिव्यवहारश्च चरकेऽपि दृश्यते । तदुक्तम्--

एष एव च लोहाना प्रयोगः सम्प्रकीर्त्तितः ।

अनेनैव विधानेन हेम्नश्च रजतस्य च ।

आयुः प्रकर्षकृत् सिद्धः प्रयोगः सर्वरोगनुत् ॥

चरके पारदव्यवहारोऽपि काचित्को दृश्यत एवं यथा—

सर्वव्याधिनिवर्हणमद्यात् कुष्ठी रस च निगृहीतम् ।

निगृहीतो रसश्च मकरध्वजाख्य' प्रयोग' स्यादिति तर्कयन्त्यनेके ॥'

महामहोपाध्याय गणनाथसेन की अकाट्य उक्तियों से यह प्रमाणित होता है कि चरक प्रतिसंस्कर्त्ताओं की रसशास्त्र में बहुत दक्षता थी। प्रातःस्मरणीय महामहोपाध्याय विजयरत्न सेन महाशय भी चरकसंहिता के श्वासरोगाधिकार में लिखा मुक्ताद्यचूर्ण अधिकतर व्यवहार करते थे और चरक की रसौषधि के अस्तित्व पर विश्वास करते थे। अनेक प्रकार के लुप्तप्राय तथा जीर्णशीर्ण रसग्रंथों के संशोधक श्रीयादवजी त्रिकमजी आचार्य को चरक और सुश्रुत की रसौषधि के बारे में पूर्ण ज्ञान था। दोनों संहिताओं के अनेक स्थानों में उन्होंने विभिन्न प्रकार की रसौषधि की वस्तुओं का उल्लेख किया है। यथा—अञ्जन, तूतिया, शिलाजतु, लौह, हरिताल, मंडूर, क्षुरवक लौह, सब प्रकार के लवण, ताम्र, क्षारमृत्तिका, सोना, विभिन्न प्रकार के मणि, सीसा, सुवर्णगैरिक, कासीस, कांस्य, गन्धक, सुहागे का लावा, तीक्ष्ण लौह, वंग, स्वर्णमाक्षिक, मनःशिला, पारा, प्रवाल, वज्र, वराटक, वैदूर्य, शंख, सीसा, सौराष्ट्री, सूर्यकान्त, स्फटिक इत्यादि।

एक बार प्रश्न यह उठा था कि आत्रेय सम्प्रदाय के कायचिकित्सकों का अग्निवेश, जतुकर्ण, भेल, पराशर, हारीत, क्षारपाणि, चरक, सुश्रुत तथा वाग्भट प्रणीत लब्ध कायचिकित्सा ग्रंथों में रसचिकित्सा की बड़ी-बड़ी ओषधियों का नाम क्यों नहीं मिलता। इसका अनुसधान करके हम लोगों को निम्नलिखित कारणों का सन्धान मिला है।

विशेषज्ञ चिकित्सकों का आविर्भाव:—पहले बताया जा चुका है कि सत्ययुग के अन्त में और त्रेतायुग के प्रारम्भ मे ऋषियों के प्रतिनिधि स्वरूप महर्षि भरद्वाज देवराज इन्द्र के पास जाकर सारे आयुर्वेद विज्ञान की शिक्षा पाकर मर्त्यलोक में आए और उन्होंने ऋषियों को उसकी शिक्षा दी। उनके शिष्य-प्रशिष्य लोग कई दलों में विभक्त हो गए। आत्रेय, पुनर्वसु, अग्निवेश, भेल, जतुकर्ण, पराशर, क्षारपाणि और हारीत आदि ऋषि लोग कायचिकित्सा के पक्ष में हुये, इसलिये उनको आत्रेय सम्प्रदाय के कायचिकित्सकों के नाम से अभिहित किया जाता

था। कायचिकित्सकों में सब वनौषधि प्रयोग के पक्ष में नहीं थे। जो शिष्य रसौषधि प्रयोग के पक्ष में थे उनके सम्प्रदाय को रससिद्ध सम्प्रदाय या रसवैद्य या पाषाणवैद्य या सिद्धवैद्य सम्प्रदाय के नाम से अभिहित किया जाता था। ब्रह्मा ही इस शास्त्र के आदि ज्ञाता, शिवजी प्रधान उपदेष्टा और भरद्वाज प्रधान द्रष्टा हैं। सत्ययुग में महर्षि पतञ्जलि इसके प्रधान उपदेष्टा थे। उसके बाद त्रेतायुग में लंकेश्वर रावण तथा अयोध्याधिपति रामचन्द्र विशिष्ट रसायनशास्त्र जानने वाले थे। रसरत्नसमुच्चयकार के मत से द्वापर युग में २७ रससिद्ध चिकित्सक थे। कलिकाल के बौद्धयुग में रसचिकित्सा का स्वर्णयुग था। इस युग में रसचिकित्सा के प्रधान चिकित्सक नागार्जुन थे। परन्तु नागार्जुन के अतिरिक्त और १७ रससिद्धों के नाम रसरत्नसमुच्चय में लिखे गये हैं यथा—(१) रसंकुश (२) भैरव (३) नन्दी (४) स्वच्छन्दभैरव (५) मन्थानभैरव (६) काक-चंडीश्वर (७) वासदेव (८) ऋष्यश्रृंग (९) रसेन्द्रतिलक (१०) योगी (११) 'क्रियातंत्रसमुच्चयी' (१२) भालुकि (१३) मैथिल (१४) महादेव (१५) नरेन्द्र (१६) वासुदेव और (१७) हरीश्वर।

ये सब बौद्धयुग में विभिन्न रसग्रंथों के संकलयिता थे। ऊपर बताये हुये सिद्ध वैद्य लोग सारे आयुर्वेदशास्त्र में दक्ष होकर भी चिकित्साक्षेत्र में रसौषधि ही व्यवहार करते थे और कालक्रम से सिद्ध लोगों का एक स्वतंत्र सम्प्रदाय ही सगठित हो गया था।

धन्वन्तरि सम्प्रदाय

भरद्वाज के शिष्यों में जो शल्य-चिकित्सा के पक्षपाती हुये उनको धन्वन्तरि सम्प्रदाय कहा जाता है। धन्वन्तरि सम्प्रदाय के आदि ज्ञाता-भरद्वाज, प्रधान उपदेष्टा-धन्वन्तरि, श्रेष्ठ शिष्य सुश्रुत और प्रतिसंस्कर्त्ता नागार्जुन थे। किसी-किसी ऐतिहासिक के मत से भरद्वाज की तरह धन्वन्तरि भी स्वर्ग गये थे और इन्द्र के पास शल्यतंत्र की शिक्षा पाकर मर्त्यलोक में काशीराज दिवोदास के रूप से अपने शिष्य सुश्रुत के द्वारा उसका प्रचार किया था।

धन्वन्तरि सम्प्रदाय का प्रधान ग्रंथ सुश्रुतसहिता है। सूत्रमूलक यह शल्यतंत्र आकार में छोटा होने पर भी, शल्यतांत्रिकता के सम्बन्ध में विशिष्ट ज्ञानलाभ करने के लिये आधुनिक काल में आवश्यक है।

रासायनिक की दृष्टि में सुश्रुत का कृतित्व काल नहीं है। सुश्रुत की मृदु, मध्यम और तीक्ष्ण क्षार बनाने की विधि आधुनिक वैज्ञानिकों के लिये भी विस्मयोत्पा-

दक है। सुश्रुत की अयस्कृति विधि रसायनशास्त्र के इतिहास का एक विशेष स्मरणीय आविष्कार है और पाण्डु, कामला, प्रमेह, मधुमेह, हृदयरोग इत्यादि अनेक दुःसाध्य रोगों की चिकित्सा की एक अपूर्व आश्चर्यजनक फलप्रद औषध बनाने का प्रधान उपादान कारण है।

आत्रेय सम्प्रदाय

चिकित्सकों के सम्प्रदाय के अनुसार अनेकों विभिन्न भागों में सम्प्रसारित करना उस सम्प्रदाय की उन्नति का द्योतक है। दूसरी गोष्ठी के प्रभाव से अपनी गोष्ठी का संरक्षण, परिवर्द्धन और परिपालन के लिये उसके ऊपर विधिनिषेध का आरोप करना गोष्ठीपतियों का स्वाभाविक धर्म है। इसके फलस्वरूप जैसे एक ओर साम्प्रदायिक गोष्ठी दीर्घजीवी होती है, दूसरी ओर नाना प्रकार के संकीर्णता और क्षुद्रता के दुष्ट कीट धीरे धीरे उसकी जीवनीयशक्ति को क्षीण से क्षीणतर कर देते हैं। हुआ भी ऐसा ही था। धीरे धीरे कायचिकित्सक अनेक प्रकार के संशय तथा क्षुद्रता के जाल में अपने सम्प्रदाय को बाँधने का प्रयत्न करने लगे। इस बन्धनोद्यम का प्रधान अनुशासन आत्रेय सम्प्रदाय के कायचिकित्सकों का प्रधान उपजीव्य ग्रंथ चरकसंहिता का निम्नलिखित श्लोक है :—

रोपजैर्विनिवर्त्तन्ते विकारा साध्यसम्मताः।
साधन नत्वसाध्याना व्याधीनामुपदिश्यते॥

चरक केवल तथाकथित साध्यरोगों की चिकित्सा के विषय में ही उपदेश देते हैं। असाध्य रोगों की चिकित्सा के विषय में वे किसी प्रकार का उपदेश नहीं देते और इसी कारण ही उन्होंने प्रायः आधे रोगों की चिकित्सा की व्यवस्था की जिम्मेदारी से अपने को मुक्त कर लिया है।

द्वितीय अनुशासन में चरक लिखते हैं:—

स्वार्थविद्यायशोहानिमुपक्रोशमसंग्रहम्।
प्राप्नुयान्नियत वैद्यो योऽसाध्य समुपाचरेत्॥

जो वैद्य असाध्य व्याधि की चिकित्सा में प्रवृत्त होते हैं, उनके स्वार्थ, विद्या और यश की हानि होती है। उनके रोगी संग्रह नहीं होते।

धन्वन्तरीय लोगों के प्रधान उपजीव्य सुश्रुत में भी एक अनुरूप अनुशासन देखा जाता है।

'असिद्धिमाप्नुयाल्लोके प्रतिकुर्वन् गतायुषम्'

असाध्य मुमूर्षु व्यक्ति की चिकित्सा कराने से चिकित्सक की अपकीर्ति होती है।

इसलिये आत्रेय तथा धन्वन्तरि सम्प्रदाय के चिकित्सक लोगों ने तथाकथित साध्यरोग को भी असाध्य समझकर, उन रोगों की चिकित्सा की चेष्टा को भी निन्दनीय बताकर माधव तथा हेमाद्रिपर्यायभुक्त आधे से अधिक संख्यक रोगों की चिकित्सा के बारे में कोई विशेष विधि का उल्लेख नहीं किया है और अपने सम्प्रदाय के चिकित्सकों में यदि कोई वैसा करे तो वह अपने सम्प्रदायभुक्त व्यक्तियों में निन्दनीय होता था। इसी के फलस्वरूप आत्रेय तथा धन्वन्तरि सम्प्रदाय के चिकित्सकों के प्रधान ग्रंथ वृद्धत्रयी, बृहत्त्रयी, वृद्धचरक, वृद्ध सुश्रुत या वृद्ध वाग्भट की रसचिकित्सा में प्रधान ओषधियों का किसी प्रकार का उल्लेख नहीं देखा जाता है। यही धारा दीर्घकाल तक थी और इसका प्रभाव इतनी दूर तक फैला हुआ था कि कायचिकित्सा तन्त्र के शेष ऋषि मुर्शिदाबाद के प्रातःस्मरणीय गंगाधरतुल्य गंगाधर तक भी अपने सम्प्रदायभुक्त किसी को भी रसेन्द्रसारसंग्रह और भैषज्यरत्नावली में लिखी हुई किसी प्रकार की गोली बनाते देखकर उसको गोलीवाला कहकर उसकी हँसी उड़ाते थे। यहाँ तक कि इस विषय में आयुर्वेद महामहोपाध्याय चक्रपाणि के ऊपर भी किसी ने कटाक्ष किया है। इसके अतिरिक्त उस समय के कायचिकित्सक सम्प्रदाय में प्रचलित ग्रंथों के आर्षत्व तथा अनार्षत्व को लेकर विशेष समालोचना हुआ करती थी। अपेक्षाकृत अर्वाचीन किसी नवीन ग्रंथकार को कुछ प्रकाश करके उसे चिकित्सकगोष्ठी के अन्दर सर्ववादी सम्मत तथा सर्वजनमान्य कराने में विशेष कष्ट होता था। अष्टांगहृदय की भाँति सुभाषित ग्रंथ लिखने पर भी महामति वाग्भट ने पुस्तक की जनप्रियता के बारे में सन्देहयुक्त होकर लिखा है "ऋपिप्रणीते प्रीतिश्चेन्मुक्त्वा चरकसुश्रुतौ। भेलाद्याः किं न पठ्यन्ते तस्मात् ग्राह्यं सुभाषितम्।" अर्थात् ऋषि का लिखा हुआ होने से ही यदि कोई पुस्तक पढ़ने लायक हो तो फिर क्यों लोग चरक, सुश्रुत छोड़कर भेल, जतुकर्ण, पराशर मुनियों की लिखी हुई पुस्तकें क्यों नहीं पढते। उसका कारण उक्त मुनियों का लिखा हुआ सुभाषित नहीं है। परन्तु वाग्भट के समय अर्थात् बौद्धयुग में प्राप्त चरक तथा सुश्रुतसंहिता के सम्पूर्ण रूप से आर्ष न होने पर भी सुभाषित होने से लोग उनका आदर करते हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि कायचिकित्सालयों के बेड़ाजाल अत्यन्त कठोर और लौहमय थे। इसके अतिरिक्त कायचिकित्सक सम्प्रदाय के पंडित लोग सृष्टितत्त्व तथा जीवविज्ञान के मूलभूत अनुसन्धान के लिये सांख्य के २५ तत्त्व तथा वैशेषिक दर्शन के परमाणुवाद के ऊपर निर्भरशील थे।

आयुर्वेदीय सिद्धान्तों का विचार करते समय, विशेषकर रोगों के साध्यासाध्य निर्णय, द्रव्यों के गुण निर्णय तथा प्रयोग-विधि का विचार करते समय वे तर्कशास्त्र की भी सहायता लेते थे तथा अपने सम्प्रदाय के ऊपर किसी प्रकार का आक्रमण करने पर तर्कशास्त्र के तीव्र कुठाराघात से आततायी को बड़ी आसानी से धराशायी कर देते थे। इस तरह अनेक प्रकार के विधिनिषेध लगाकर आत्रेय सम्प्रदाय के चिकित्सक लोग त्रेतायुग से लेकर कायचिकित्सकों को बौद्धयुग के मध्यकाल तक रससिद्धसम्प्रदाय के प्रभाव से मुक्त रखने में समर्थ हुये थे।

पूर्वप्रदत्त विवरण से पाठक अवगत हो गये हैं कि महर्षि भरद्वाज के समय से कायचिकित्सा सम्प्रदाय के चिकित्सक लोग वनौषधि के ऊपर अधिक निर्भरशील थे। परन्तु रसौषधि के सम्बन्ध में उनको कोई धारणा ही नहीं थी ऐसा कहना और वर्त्तमानसमय के शल्यतांत्रिक लोगों को कायचिकित्सा के सम्बन्ध में कोई ज्ञान ही नहीं है ऐसा कहना सर्वथा हास्यास्पद है और इससे अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता है।

(१) अल्पायास में वनौषधिसंग्रह की सुविधा। (२) उनके प्रस्तुत प्रयोगों की अपेक्षाकृत सहज साध्यता। (३) अपेक्षाकृत निर्भयता से वनौषधियों के प्रयोग की सुविधा। (४) वनौषधि के बारे में लौकिकविरुद्ध प्रभाव का अभाव। (५) रसौषधि के सम्बन्ध में संघबद्ध विरुद्ध प्रचार यथा-(क) पारा तथा हरिताल के भस्म बनाने वाले का वंश नहीं रहता है। (ख) उनकी भस्म बनाने से कुष्ठव्याधि होने की आशंका सतत बनी रहती है। (ग) किसी प्रकार विना शोधित तथा विना मर्दित अवस्था में रसौषधि के प्रयोग की असुविधा है परन्तु जो रसौषधि धातुद्रव्य विना मर्दित अवस्था में प्रयोग की जा सकती हैं, उनका प्रयोग चरक तथा सुश्रुत संहिता में देखा जाता है। यथा—प्रमेहरोगाधिकार में सुश्रुत का 'नवायसचूर्ण'। विभिन्न प्रकार के अयस्कृति तथा चरक के मुक्ताद्यचूर्ण, रसांजनयोग इत्यादि। (६) सबसे ऊपर वनौषधि की स्वल्पमूल्यता उसकी अधिक जनप्रियता का सबसे बड़ा कारण रहा है।

रससिद्ध सम्प्रदाय

पूर्व वर्णित विवरण से यह ज्ञात होता है कि आदर्श की विभिन्नता तथा रसविद्या की उत्पत्ति, प्रसार तथा प्रयोगविधि के बारे में भ्रान्त धारणा ने ही आत्रेय तथा रसवैद्य सम्प्रदाय के अन्दर विरोध की सृष्टि की थी और वही विरोध त्रेतायुग के मध्य समय से आज तक चला आ रहा है। बहुतों की यह

धारणा है कि रसविद्या दाक्षिणात्य में पैदा होकर वहाँ से भारतवर्ष के विभिन्न स्थानों में प्रसारित हुई थी। उनके मत से लंकेश्वर रावण ने पहले महादेवजी से रसशास्त्र की शिक्षा पाकर अपने राज्य में उसका खूब प्रचार किया। रावण के वकयन्त्र में अर्कविधि और उसका किया हुआ ऊर्ध्वपातन, तिर्यक्पातन, दोलायन्त्र, गर्भयन्त्र विधि, नाना प्रकार के शराब बनाना, रसायनशास्त्र के अत्यन्त गौरव की वस्तु है। रावण नामाङ्कित अर्कप्रकाश, रत्नदर्पण, नाडीविज्ञान, नाडीप्रकाश, नाडीतन्त्र, रसहृदयचक्र इत्यादि ग्रंथों में रावण के आयुर्वेदशास्त्र में विशेषकर रासायनिक ओषधियों के निर्माण से विशेष कृतित्व का परिचय मिलता है। शास्त्रों में लिखा है कि शुक्राचार्य महाराज ने रावण के लिये 'मृतसञ्जीवनी' को प्रस्तुत किया था। आधुनिक समय में विभिन्न प्रकार के मृतसंजीवनी सुरा के व्यवहार सब श्रेणी के चिकित्सकों में प्रचलित हैं। रावण का बतायी हुई मद्य बनाने की प्रणाली विचित्र और अपूर्व रणोत्साहप्रद, बलपुष्टि एवं तुष्टिकारक तथा विशेषरूप से उत्साहवर्द्धक है। रावण-प्रदर्शित प्रणाली के अनुसार मद्य बनाने से भारत के बाजारों में विदेशी शराब की आमदनी बन्द हो जा सकती है। किं च अन्यान्य प्रकार के रोगों की चिकित्सा में भी रावण के लिखे हुए अर्कप्रकाश के नियमानुसार यदि अर्क बना कर चिकित्सा की जाय तो गरीब भारतवासी होमियोपैथी से भी कम दाम में औषध पा सकते हैं। रावण का बनाया हुआ अर्कप्रकाश दुष्प्राप्य नहीं है। परन्तु शायद ही कोई वैद्य अर्कप्रकाश के मत से चिकित्सा किया करते हैं। केवल मात्र मृतसंजीवनी सुरा नाम की असम्यक् रूप से बनायी हुई औषध सूतिका, सन्निपातज्वर, विसूचिका, रक्तहीनता, रक्तस्राव, रक्तक्षय, उदरामय, दुर्बलता इत्यादि रोगों में आजकल के वैद्य लोग व्यवहार किया करते हैं। बाजारों में मिलने वाली मृतसंजीवनी सुरा में केवल ४० फीसदी सुरासार भाग रहता है। अतः इस तरह की मृतसञ्जीवनी अनेक बोतलें व्यवहार करके भी रोगी को विशेष लाभ नहीं होता है। रसायन में लिखी इस एक औषध को लंकेश्वर रावण के बताये हुये नियमों से बना कर बेचने से खाद्यहीनता से विभिन्न प्रकार के दुःसाध्य रोगों से आक्रान्त भारतवासी रोगों से छुटकारा पा सकते हैं। कलिकाल में हीनवीर्य, क्षीणदेह तथा दुर्बल मस्तिष्क वाले लोगों के लिये शास्त्रों में वर्णित सुरा के अधिक प्रचार की आवश्यकता है। ब्रिटिश राजत्वकाल में रसायनशास्त्र के अनुसार बनायी हुई सुरा बिकने से आइरिश, स्काच तथा फ्रेञ्च की मशहूर शराबों का अधिक प्रचार

बंद हो जाता और सरकारी खजाने का दुरुपयोग न होता अतः राजनीतिक कारण इसके प्रतिबन्ध के रूप में आ खड़ा हुआ। परन्तु वर्तमान स्वतन्त्र भारत में आयुर्विज्ञान के अनुमोदित आसव, अरिष्ट, सुरा, अर्क तथा मोदकनिर्माण के ऊपर ब्रिटिश के लगाये हुये विधिनिषेधों को उठा देना ही उचित होगा।

रसायनशास्त्र का क्रमविकास

अर्कप्रकाश के बताये हुये ऊपर के विवरण से यह ज्ञात होता है कि रसायनशास्त्र तथा पदार्थविज्ञान दोनों शास्त्रों मे विचक्षण रावण को, वनौषधि सम्भूत भेषज द्रव्यों की आणविक शक्ति का विचित्र प्रभाव सबसे पहले ज्ञात हुआ था। ऋग्वेद पढ़ने से हमको मालूम होता है कि ऋषि लोग बहुत पहले भेषजवृक्ष के मूल को रोग निवारण; देहपुष्टि तथा ग्रहदोष निवारण करने के लिये शरीर के विभिन्न अगों में धारण करते थे। जैसे किसी को अश्मरी होने से उसके दाहिने हाथ में कुशमूल तथा वरुणवृक्ष का मूल बांध दिया जाता था। उसके कुछ दिन बाद देखा गया कि ऋषि लोग शुक्राश्मरी रोग से पीड़ित रोगी को कुशमूल तथा वरुणमूल मिला कर उसका कषाय पीने के लिये प्रयोग कराते थे। इससे रोगी की अश्मरी गल कर बाहर निकल जाती थी। उसके भी कुछ दिन बाद उपर्युक्त ओषधियों को पानी मे उबाल कर, उसका क्वाथ रोगी के सेवन के लिये प्रयुक्त होने लगा और उससे अपेक्षाकृत कम समय में अश्मरी गलने लगी। इसलिये देखा जाता है कि ऋषि लोग शीतकषाय निर्माण रूप रसायनशास्त्र के प्रथम सोपान से क्वाथ निर्माण रूप द्वितीय सोपान में उत्तीर्ण हुये हैं। कुछ दिन पश्चात् यह भी देखा गया कि कुशमूल की रसक्रिया (Concentrated form of the liquid extract of the decoction of the kusagrass) सब प्रकार के मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरी तथा वृक्कशोथ में व्यवहार किया जा रहा है और सर्वप्रकार के मार्गावरोध में आधुनिक काल में भी इसका बहुधा प्रयोग हुआ करता है। पुलस्त्य पौत्र रावण ने अश्मरी रोगाधिकार में कुश तथा वरुण की अर्क प्रयोगविधि को लिपिबद्ध करके आधुनिक युग के आविर्भाव के हजारों वर्ष पहले से रसायनशास्त्र की अग्रगति कुशमूल के शीतकषाय से अनेक अंशों से वृद्धि पाकर वर्त्तमान समय के रासायनिकों का विस्मयोत्पादन किया है। त्रेतायुग के भेषजद्रव्य के स्वरस से, शीतकषाय और क्वाथ से, अवलेह और आसव तथा अरिष्ट से अर्क में आये हुए रसायन विज्ञान की शेष परिणति है। इस तरह धातु, उपधातु, रस-उपरस, रत्न-उपरत्न इत्यादि का मनुष्य के विभिन्न

अङ्ग प्रत्यङ्ग में वाह्य व्यवहार से आरम्भ करके शरीर के भीतर के रोगों में उनकी प्रयोगविधि इत्यादि, प्रत्यक्षदर्शन क्रमिक प्रयोग और अभिज्ञता के फल से ही उत्पन्न हुआ है। पहले लोह आयुप्रदाता, वलवीर्यकर्ता, धारक, पुष्टिकारक माना जाता था और ग्रहदोष निवारक धातु के रूप से मनुष्य के विभिन्न अङ्गों में धारण करने के काम आता था उसके वाद कालक्रम से लोहे की पिष्ट या चूर्ण या 'अयस्कृति' को आभ्यन्तरिक आमयिक प्रयोग की व्यवस्था हुई। उसके वाद लोहे की शतपुटित, सहस्रपुटित, आणविक सूक्ष्म प्रयोगविधि गवेषणाकारी ऋषि की बुद्धि के पास पकड़ी गयी और उसके फलस्वरूप सेवन के वाद कोष्ठवद्धता अनुत्पादनकारी सोने से भी अधिक गुणशाली लौहभस्म की उत्पत्ति हुई। इस तरह अनुसंधान तथा गवेषणा के फलस्वरूप रसायन विज्ञान की क्रमोन्नति हुई थी।

त्रेतायुग में अयोध्यापति रामचन्द्र जी ने चौदह साल के लिये वन जाते हुए, अयोध्या से निकलकर दक्षिण-भारत के विभिन्न स्थानों में भ्रमण करते समय विभिन्न ऋषियों के साथ मिलकर आयुर्विद्या ग्रहण की। दण्डकारण्य में रहते समय ऋषि लोग भगवान रामचन्द्र जी के अच्छे व्यवहार पर सन्तुष्ट होकर उनको 'दण्डकनाथ' कहते थे। दण्डकारण्य के आश्रम में अवस्थित कलानाथ तथा लक्ष्मीश्वर नाम के दो रसायन-शास्त्र तथा धातुविद्या-विशारद-सिद्ध योगियों से भी रामचन्द्र जी ने रस-शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया था। दाक्षिणात्य में मिलने वाली श्रीरामचन्द्र जी रचित 'रामराजीय' नाम की पुस्तक में हमें धातुविद्या तथा रसायन-शास्त्र के प्रधान तथ्यों का सन्धान मिलता है। 'रामराजीय' पुस्तक से यह पता लगता है कि तत्कालीन दण्डकारण्य में अनेक रससिद्ध योगियों के आवास थे और श्रीरामचन्द्र जी को धातुविद्या तथा धातुवाद (Alchemy) या धातुनिर्माणविद्या में प्रचुर ज्ञान था और उन्होंने कलानाथ तथा लक्ष्मीश्वर के पास यथाक्रम से धातुवाद और रसशास्त्र विषयों का ज्ञान प्राप्त किया था। 'रामराजीय' पुस्तक में यह लिखा है कि श्रीरामचन्द्र जी ने 'निजकृतसुवर्ण-रचितपत्नीविग्रहः' अर्थात स्वयं सोना वनाकर उससे अपनी पत्नी का विग्रह वनाया। वाल्मीकिरामायण में भी इस मत का समर्थन पाया जाता है। आयुर्वेदीय तथ्यों के श्रेष्ठ सग्रहकार महामति भावमिश्र के भावप्रकाश तथा रसससुच्चय में 'रामराजीय' पुस्तक का उल्लेख अनेक स्थानों में पाया जाता है।

'लोऽनुभूतो योगीन्द्र: क्रमोऽयं लौहमारणे।
कथ्यते रामराजेन कौतूहलधियाऽधुना ॥' (भावमिश्र)

श्रीरामचन्द्र जी ने 'रसेन्द्रचिन्तामणि' नामक एक रसग्रंथ का निर्माण किया था। किन्तु श्रीप्रफुल्लचन्द्र राय ने अपने रसायनशास्त्र के इतिहास में ढुण्ढुकनाथ नामक एक अर्वाचीन बौद्ध भिक्षुक को 'रसेन्द्रचिन्तामणि' ग्रन्थ का निर्माता माना है। परन्तु उन्होंने यह स्वीकार किया है कि 'रसेन्द्रचिन्तामणि' की दो तरह की हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ हैं। उनमें एक में वक्तव्य विषय केवल गद्यात्मक और दूसरे में गद्य-पद्य उभयात्मक है। जो ग्रन्थ पद्य में है वह अपेक्षाकृत प्राचीन है और मूल संस्कृत में रामायण की तरह लिखा हुआ है। इसमें ग्रन्थकारने हिन्दू देव-देवियों को अनेक बार प्रणाम किया है। उसे देख कर यह प्रतीति नहीं होती कि वे बौद्ध थे। 'रसजलनिधि' के निर्माता स्वनामधन्य भूदेवमुखोपाध्याय ने, प्रफुल्लचन्द्र राय की 'हिन्दू सभ्यता का पुरावृत्त' नामक पुस्तक में ढुण्ढुकनाथ शब्द को दण्डकनाथ शब्द का ही अपभ्रंश माना है।

श्री रामचन्द्र जी ने दण्डकारण्य तथा दक्षिण-भारत के निवासी योगियों से रसविद्या की शिक्षा पाई इसलिये वर्त्तमान काल के बहुत से पण्डितों की धारणा है कि रसचिकित्सा दक्षिण भारत की ही वस्तु है और दक्षिण भारत से ही वह भारत के अन्यान्य स्थानों मे फैली है। परन्तु यह धारणा ठीक नहीं है। दक्षिण भारत में भी विभिन्न सम्प्रदाय के चिकित्सक लोग विभिन्न रूप से चिकित्सा करते हैं। वहाँ इस समय भी कुछ ऐसे चिकित्सक हैं जो केवल पंचकर्मों से ही सब रोगों की चिकित्सा करते है।

सत्ययुग के प्रधान चिकित्सक महर्षि भरद्वाज, पुनर्वसु और उनके छः शिष्य तथा धन्वन्तरि थे। त्रेतायुग के प्रधान चिकित्सक उत्तर भारत में वृद्ध चरक, दक्षिण भारत मे सुषेण तथा लङ्केश, मध्य भारत मे ऋष्यश्रृंग, अदित, चन्द्रसेन, मत्त, माण्डव्य आदि रासायनिक विद्वान् द्वापर युगमें भी वर्त्तमान थे। चन्द्रसेन दिल्ली के प्रसिद्ध लौहस्तम्भ बनाने वाले चन्द्रवंशी थे। आपने ही सबसे पहले मकरध्वज बनाया। आप ही प्रसिद्ध रसग्रंथ 'रसचन्द्रोदय' के लेखक है। आपके नामांकित रसचन्द्रोदय तथा चन्द्रोदयमकरध्वज रसचिकित्सा की प्रसिद्ध औषधे हैं। द्वापर युग में नकुल, सहदेव तथा भीमसेन चिकित्सा शास्त्र के भी विशेष ज्ञाता माने जाते थे। त्रेता तथा द्वापर दोनों युगों में मय नामक दानव एक रासायनिक विशेषज्ञ तथा स्थपतिविद्या-विशारद था।

उसके बाद कलियुग के प्रारम्भ में चरकसंहिता का परिपूरक दृढबल का परिचय मिलता है। इस युग के सिद्ध रसतांत्रिकों में निम्न लिखित मनीषी प्रसिद्ध हैं—(१) मत्त, (२) माण्डव्य, (३) भास्कर, (४) सूरसेन, (५) रत्नकोप,

(६) शम्भू, (७) सात्त्विक, (८) गोमुख, (९) नरवाहन, (१०) इन्द्रद (११) कास्वली, (१२) व्याडि।

कलियुग के अन्तर्गत बौद्धयुग के सिद्ध रसतांत्रिकों में निम्न लिखित सिद्ध लोग प्रधान थे—

(१) नागार्जुन, (२) सुरानन्द, (३) नागबोधि, (४) यशोधन, (५) नित्यनाथ, (६) गोविन्द, (७) अनन्तदेव, (८) वाग्भट आदि।

बौद्धयुग रसशास्त्र का स्वर्ण युग कहा जाता है। इस युग में रसविद्या परिपूर्ण हुई और उसके निम्न लिखित विभागों की सृष्टि हुई थी।
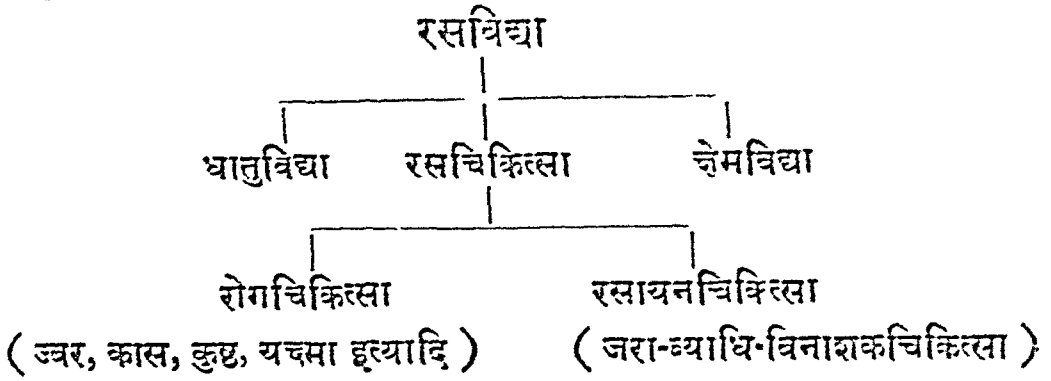
रसविद्या-त्रिधा प्रोक्ता धातुवादचिकित्सितम्।
दुर्लभा क्षेमविद्या च सर्वविद्यासु ना वराः ॥
चिकित्सा द्वितया ज्ञेया व्याधीना जरसस्तथा।
जराव्याधिविनाशिनी चिकित्सा हि रसायनम् ॥

रसचिकित्सकों के मत से चिकित्सा तीन प्रकार की थी—

१. दैवी—रसचिकित्सा, २. आसुरी—शस्त्र चिकित्सा और ३. मानुषी—वनस्पतिचिकित्सा।

कलिंग विजय के बाद भगवान् बुद्ध के प्रभाव से प्रभावान्वित होकर चण्डाशोक ने धर्माशोक से परिणत होकर सारे भारत में फैले हुए अपने राज्य में रक्तपात मना कर दिया। इसके फलस्वरूप रसतांत्रिकों को शल्यचिकित्सा छोड़कर केवल रसौषधि की सहायता से सब तरह के रोगियों को निरामय करना सम्भव करने के लिये रसौषधि के विषय में, विशेषकर पारा, गन्धक, हिंगुल, हरिताल तथा मनःशिला इत्यादि रस-उपरसों का बहुल प्रयोग करके रसचिकित्सा में युगान्तर लाना पड़ा था।

प्रसंगवश अकारादि क्रम से उन ग्रंथकारों के नाम तथा उनके ग्रंथों के नाम संक्षिप्त रूप में नीचे दिये जाते हैं:—

रस ग्रन्थों की तालिका

ग्रंथकार	रसग्रंथ
आनन्द अनुभव	रसदीपिका
कंकाली	रसकंकाली
कपाली	रसराजमहोदधि
काशीराम	रसकल्पलता
केशवदेव	योगरत्नाकर सिद्ध तंत्र
गंगाधर	रससार संग्रह
गुरुदत्त (सिद्ध)	रसरत्नावली
गोविन्द	रसगोविन्द
गोविन्दाचार्य	रसहृदय
गोपालदास	योगामृत
गोरक्ष	गोरक्षासंहिता
चक्रपाणि	रसरत्नाकर
चन्द्रराज कवि	रसरत्नावली
चन्द्रसेन	रसचन्द्रोदय
चर्पटि	चर्पटिसिद्धान्त
चामुण्ड	रससंकेतकलिका
जयदेव	रसामृत
जारिल	तंत्रराज
त्रिमलभट्ट	रसदर्पण
दत्तात्रेय	दिव्यरसेन्द्रसार दत्तात्रेयतंत्र
देवाचार्य	रसरत्नाकर
धनपति	दिव्यरसेन्द्रसार
नरवाहन	रसानन्द कौतुक
नागार्जुन	नागार्जुनीय
नित्यनाथ	रसरत्नमाला
नीलाम्बर	रसचन्द्रिका
परशुराम	रसराज शिरोमणि
प्रतापरुद्रदेव	कौतुकचिन्तामणि
बलभद्र	नवरत्नधातुविवाह

ग्रंथकार	रसग्रंथ
भोजदेव	रसराज मृगांक
भोजराज	रसराजमार्तण्ड
भैरव	रसेन्द्रभैरव
मल्लारि	रसकौतुक
माधव	आयुर्वेदरसशास्त्र
माण्डव	रसवारिधि
यशोधर	रसप्रकाशसुधाकर
योगसिद्ध	योगमाला
रसांकुश	महारसांकुश
रसेन्द्रतिलक	योगी रस सार तालिका
रसेन्द्र	रसेन्द्रभाण्डार
राजकृष्ण भट्ट	रसेन्द्रकल्पद्रुम
राजराजि	रसरत्नप्रदीप
रामसेन	रससारामृत
रामेश्वर भट्ट	रसराजलक्ष्मी
वररुचि	योगासन
वन्दी मिश्र	योगसुधानिधि
वासुदेव	रससर्वेश्वर
वैद्यराज	रसकषायवैद्यक
व्रजराज शुक्ल	रसराजसुधानिधि
शंकर जी	रसराजशंकर
शिवनंदन गोस्वामी	रसविद्यारत्न
शूरसेन	रसेन्द्रशूरप्र०
सिद्धकालिनाथ	रसदीप
सिद्धभास्कर	रसेन्द्रभास्कर
सूर्याकवि	रसभैषज्यावली
हरहरि	रसयोगमुक्तावली
हरिहर	रसाधिकार रसविश्वदर्पण रससंजीवनी

नागार्जुन

बौद्ध युग के श्रेष्ठ रसतांत्रिक नागार्जुन के बारे में इतनी कहानियाँ बौद्ध ग्रंथावलियों में लिखी गयी हैं कि इस छोटी सी भूमिका में उनका उल्लेख असंभव है। नागार्जुन के असंख्य शिष्यों ने सारे भारत के अलावा लंका तथा प्रशान्त महासागर के विस्तृत द्वीपों में तथा विश्व के अन्यान्य स्थानों में भी रसायन-शास्त्र का प्रभाव विस्तृत किया था। इन रसाचार्यों से ग्रीस, रोम, फारस, अरब, ईरान, अफगानिस्तान, मिश्र, चीन, ब्रह्मा आदि देश के लोग रसायन-शास्त्र के विवरण से पूर्ण अवगत हुए थे।

बौद्धयुग में नये-नये रसग्रन्थों के अतिरिक्त वर्तमान चरक, सुश्रुत और संहितादि के नये संस्करण लिखे गये और नाड़ी-विज्ञान की विशेष चर्चा की गई तथा इस विषय में भी अनेक नये ग्रंथ लिखे गये। नालन्दा, तक्षशिला सारनाथ, विक्रमशिला आदि स्थानों में विश्वविद्यालय स्थापित हुए। बौद्ध-धर्म ससार के पाँचवें भाग में फैला हुआ था और बौद्ध-ज्ञान-विज्ञान के जयगान से सारा जगत् मुखरित हो उठा था।

इसके बाद फिर एक ऐसा युग प्रारम्भ हुआ जिसमें बौद्धधर्मावलम्बी लोग भगवान् तथागत के निर्वाण के बाद उनके उपदेशों को भूलकर केवल उनके शरीर के पुजारी होकर अनेक धाराओं में विभक्त होकर छिन्न-भिन्न हो गये।

इसी समय रसेश्वर दर्शन में विशेषरूप से लब्धप्रतिष्ठ ब्राह्मण लोग पाराभस्म, हरितालभस्म, सिद्ध मकरध्वज तथा स्वर्णभस्म की सहायता से बौद्ध रोगियों के दुरारोग्य रोगों को दूर कर और उसके साथ काली जी की आराधना का प्रचार तथा बौद्ध जनसाधारण के अन्दर अद्वैतवाद तथा द्वैतवाद का प्रचार करने लगे। ये सब योगी ब्राह्मण लोग रससिद्ध थे अर्थात् पारा के अठारह संस्कार, हरितालभस्म, स्वर्णकरण, रसेन्द्रवेधन, स्वर्णनिर्माणविधि, लोहा, अभ्रक, सोना, चाँदी, ताम्बा, राँगा, जस्ता, पीतल, कांसा आदि धातु–उपधातु समूह की आणविक प्रयोगविधि विशेषरूप से जानते थे। उस समय के सिद्ध लोग सोना बनाने का ढंग, पारा का धातु भोजन और धातु भोजन करके भी पारद का वजन न बढना, सोना, चाँदी, लोहा, रांगा, जस्ता, पीतल, कांसा, सात्विक विमल तथा चपलादि का हंस की तरह पानी में तैराना, अग्नि संयोग के बिना ही धातुओं का भस्मीकरण इत्यादि चामत्कारिक प्रयोग भी जानते थे।

थोड़े दिन पहले काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय के वैद्यरत्न प्रताप सिंह और सेठ युगलकिशोर बिड़ला के तत्वावधान में एक सिद्ध योगी श्री पं० कृष्णपाल जी वैद्य की स्वर्ण निर्माण विधि काशी के बहुत से लोगों ने देखी है। रसेन्द्र वेधज्ञ स्वर्ण निर्माण विधि रासायनिक लोगों का एक अपूर्व आविष्कार है। परन्तु शिष्य के भाव से और गोपनीयता के लिए यह विद्या विलुप्त सी हो गयी है।

रससिद्ध सम्प्रदाय और आत्रेय सम्प्रदाय में विवाद का हेतु

रससिद्ध सम्प्रदाय की बनाई हुई सिद्ध योगावली का शीघ्र फल मिलना काय सम्प्रदायवादी वैद्यों को मर्मपीड़ादायक हुआ था। रसवैद्यों ने सबसे पहले पीछे बताये हुए आत्रेय सम्प्रदायवादी वैद्यों के विरुद्ध घोषणा की।

'न रोगाणां न दोषाणां न दूष्याणां परीक्षणम्।
न देशस्य न कालस्य कार्यं रसचिकित्सिते॥'

अर्थात् रससिद्धों के मत से चिकित्सक को रोगी का देश, काल, पात्र, दोष, दूष्य आदि किसी का विचार नहीं करना पड़ता है सिद्ध लोग वस्तुओं के अन्तर्निहित सूक्ष्म शक्तिप्रभाव के ऊपर इतने विश्वासशील थे कि आत्रेयसम्प्रदाय से परित्यक्त तथा कथित असाध्य रोगों को रस वस्तुओं का बहुत-थोड़ा भस्म देकर आरोग्य करके आश्चर्यान्वित कर देते थे। असाध्य रोगों पर रसौषधि की प्रशंसा करते हुए व्यवस्था की गई है—'असाध्येष्वपि दातव्य: रसोऽतिश्रेष्ठ उच्यते' इसलिए रसौषधि वनौषधि से अधिक फलप्रद है।

रसौषधि की विशेषता

(१) रसौषधि थोड़ी मात्रा में प्रयोग करने पर भी शीघ्र फलप्रद होती है।
(२) इसके सेवन से मन्दाग्नि की सम्भावना नहीं होती।
(३) यह थोड़ी सी जगह में अधिक परिमाण में रखी जा सकती है।
(४) इसके अपचय की सम्भावना बहुत कम रहती है।
(५) यह जितनी पुरानी होती है उतनी ही कार्यकारी होती है।
(६) एक बार बनाने से बहुत दिनों तक फिर बनाना नहीं पड़ता।
(७) यह एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से लाई जा सकती है।
(८) यह मुमूर्षुओं को प्राण देने वाली है।
(९) इसके सेवन में अनुपान का विशेष झंझट नहीं होता।

रसचिकित्सा का प्रभाव

सिद्ध लोग अपने चिकित्सा के प्रभाव और मूर्तिपूजा की सहायता से भारतीय बौद्धों को फिर से हिन्दूधर्म में दीक्षित करने को समर्थ हुए। बौद्ध युग में प्रायः सभी हिन्दू बौद्ध धर्म को ग्रहण करने पर बाध्य हुए थे। यद्यपि दोनों धर्म की आदर्शगत विभिन्नता अकिंचित् कर है, क्योंकि सनातनी भी दशावतार में बुद्ध का एक अवतार मानते हैं, फिर भी बौद्ध धर्म का अवनति के युग में हिन्दू तथा बौद्धों के अन्दर विद्वेष की आग धीमी-धीमी जल रही थी। किसी हिन्दू संन्यासी अथवा योगी को बौद्ध गाँव में जाने का अधिकार नहीं था। परन्तु हिन्दू ब्राह्मण लोग रसशास्त्र, दर्शन, ज्योतिष में बड़े ही सुपण्डित थे। उनके कंधे पर रखे हुए थैलों से अनेक प्रकार की भस्में तैयार रहती थीं। उन्हें आवश्यकतानुसार उसी समय तांत्रिक प्रक्रिया से भस्मादि तैयार करने की शक्ति थी। बौद्धप्रभाव के पतन काल में दर्शन शास्त्र में वे पण्डित लोग बौद्ध गाँवों के शेष प्रान्त में वर्जित स्थानों में पेड़ों के नीचे बैठकर धूनी जलाते थे और गाँव के रहने वालों की दृष्टि आकर्षित करते थे। सब देशों में सब समय साधु संन्यासियों पर सब श्रेणी के लोगों की आन्तरिक श्रद्धा देखी जाती है। इसलिए बौद्ध स्त्रियाँ अपनी मनःकामनाओं की सिद्धि के लिए गाँवों के उन एकान्त में अवस्थित उन हिन्दू ब्राह्मण, सिद्ध, योगियों के पास जाकर अपने स्वामी, पुत्रादि के जटिल रोगों के नाश के लिए दवा आशीर्वाद तथा विभूति के लिये प्रार्थना करती थीं। साधारणतः श्वास, कास, यक्ष्मा, बाधक, प्रदर, वन्ध्यात्व भेद, व्यभिचारी स्वामी को ठीक रास्ते पर लाना इत्यादि कार्य-सिद्धि के लिए बौद्ध स्त्रियाँ उनके पास आती थीं। हिन्दू योगी लोग अपनी धूनी से थोड़ी सी भस्म उसे उठा कर दे देते थे और कहते थे 'इसे ले जाकर गाय के घृत से मिला कर खिलाना उससे श्वास रोग अच्छा हो जायगा। अच्छा हो जाने पर तुम काली, दुर्गा, गणेश, महादेव आदि की पूजा के लिए ।=)। रख देना।'

इस तरह रससिद्ध ब्राह्मण योगीगण विभिन्न दलों में विभक्त होकर सारे भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न स्थानों में आकर धूनी का भस्मस्वरूप रसौषधि का अपूर्व फल दिखाकर कृतज्ञ बौद्ध स्त्रियों के स्थानविशेष में कालीपूजा, शिवपूजा, रंगनाथपूजा, रामसीतापूजा, महादेवपूजा, हनुमान तथा गणेशपूजा, श्रीकृष्णपूजा के उपलक्ष्य में मेला, प्रदर्शनी, कीर्तन इत्यादि का अनुष्ठान करने के लिए भिक्षा और दक्षिणा माँगते थे और बौद्ध स्त्रियाँ अपने अभिभावकों से अनुरोध करके हिन्दू ब्राह्मण योगियों को बौद्धाधिष्ठित स्थानों में उपर्युक्त देव-देवियों की मूर्ति बनवाने की अनुमति

दिलाती थीं। इस प्रकार बौद्धों के विरोधी होते हुए भी वे हिन्दू और सनातन धर्म को सम्मानित करने तथा उसकी प्रतिरक्षा करने की अथक चेष्टा करते थे। कालीपूजा के माध्यम से अद्वैतवाद द्वैतवाद, सतकार्यवाद तथा विवर्तवाद, शिवलिंग के माध्यम से आरम्भवाद, अद्वैतवाद, परमाणुवाद, राधा-कृष्ण की मूर्ति की सहायता से द्वैताद्वैतवाद, अचिन्त भेदाभेदवाद इत्यादि को यथार्थ रूप मिला। हिन्दू धर्म के लोगों को दर्शन, ज्ञान-हीन निरक्षर जनता को और उसके साथ शून्यवाद में आस्था सम्पन्न शिक्षित बौद्धों को सम्भालकर उनके अन्तःकरण के अन्तःस्थानों में छिपे हुए सनातन हिन्दू धर्म को किसी तरह जगाकर बौद्ध भारत को फिर से उन लोगों ने हिन्दू भारत में परिणत कर दिया।

बौद्धयुग के अवसान के बाद भारत में सनातन वैदिकधर्म के पुनर-भ्युत्थान के समय आयुर्वेद के इतिहास में एक अन्धकार का युग उपस्थित हुआ। इस समय चिकित्सा विषय में और कोई मौलिक या आकर ग्रंथ नहीं लिखा गया था। इस युग को संग्रहकार और टीकाकार का युग कहा जाता है। इस युग का प्रधान ग्रथ लघुत्रयी अर्थात् माधवनिदान, भावप्रकाश तथा शार्ङ्गधर और प्रसिद्ध टीकाकार हरिचन्द्र, चक्रपाणि, डल्हण, अरुणदत्त और इन्दु हैं। उसके बाद वंगसेन, तीसटाचार्य, वाचस्पति, चन्द्रट, रविगुप्त, वृन्दकुण्ड, श्रीकण्ठदेव, विजयरक्षित, शिवदास, गयदास, गगाधर, गवीसेन आदि अनेक महापंडित टीकाकार और संग्रहकारों का आविर्भाव मुसलमानी राजत्व के शेष भाग तक होता रहा।

रस विद्या और उसका काल

प्राचीन भारत तत्त्वविद् पण्डितों के स्वार्थ बुद्धि प्रणोदित परामर्श के अनुसार प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय में शिक्षित पण्डितों के मत से अथर्ववेद और कौशिकसूत्र रसायन शास्त्र आदि की पुस्तकें हैं और उनका काल १००० ई० पू० से अधिक कभी नहीं हो सकता। उनके मत से चरक का काल ई० पू० तृतीय शताब्दी, सुश्रुत का ई० पू० चतुर्थ शताब्दी, वाग्भट का ई० पू० तृतीय शताब्दी, दृढबल का ई० पू० प्रथम शताब्दी, नागार्जुन का ई० पू० द्वितीय शताब्दी, वृन्द का नवीं शताब्दी और चक्रपाणि का ११वीं शताब्दी है। इनके मत से दो नागार्जुन थे। एक सुश्रुतसंहिता का प्रतिसंस्कर्त्ता नागार्जुन और दूसरा रससिद्ध नागार्जुन। इनका काल सप्तम शताब्दी माना गया है। गोविन्द भागवत कृत रसहृदय का काल एकादश सदी, सोमदेव की लिखी 'रसेन्द्रचूडामणि' का काल द्वादश शताब्दी,

शम्भूकृत रसार्णव का काल द्वादश सदी और वाग्भट का रसरत्नसमुच्चय, यशोधरा का रसप्रकाशसुधाकर, गोविन्दाचार्य का रससार चतुर्दश सदी एवं विष्णुदेव की रसराजलक्ष्मी, नित्यनाथ का रसरत्नाकर, डुण्डुकनाथ का रसेन्द्रसारसंग्रह और देवदत्त का धातुरत्नमाला तथा अर्कप्रकाश का काल सोलहवीं सदी माना गया है।

नव्य रासायनिक के मत से भारतीय वैदिक लोगों को धातु प्रस्तुत प्रक्रिया का ज्ञान था। वे शराब बनाना तथा दूध का Lactic fermentation अर्थात् दूध से दही बनाना जानते थे। Carbonate of Potash यवक्षार Carbonate of Soda सर्जिक्षार, मृदु-मध्य तीक्ष्ण भेद में तीन प्रकार का क्षार आयुर्वेदीय युग में आविष्कृत हुआ था। अनेकों प्रकार के रस, उपरस, धातु और उपधातु की मौलिक ओषधि आविष्कृत हुई थी। यथा—कज्जली (Black sulphide of merrcury) रस कर्पूर (Calomel) रससिन्दूर (Red sulphide of merrcury) पुटित लोहा (Ferric oxide) मारित ताम्र (Sulphide of copper) मारित यशद (Oxide of zinc) मारित सीसक (Oxide of lead) हरिताल भस्म (Arsenate of potash) त्रिड् शंखद्राव (Nitro hydrochloric acid) और गन्धक द्रव्य (Sulphuric acid) आदि अजैव अम्ल और जैव अम्ल के अन्दर धान्याम्ल (Vinegar) बनाना जानते थे।

शुद्ध आयुर्वेद का स्वरूप

कायचिकित्सासम्प्रदायवादी चिकित्सक लोगों ने प्राचीन काल से चिकित्सकों को पहले रोगी की विशेष रूप से परीक्षा करने का उपदेश दिया है। इस परीक्षा के विभिन्न उपाय स्वरूप उन्होंने दर्शन स्पर्शन और परिप्रश्न की व्यवस्था दी है। चिकित्सक को सबसे पहले रोगी की नाड़ी, नेत्र, दाँत, जीभ, मल, मूत्र और निष्ठीवन की परीक्षा करके रोगनिर्णय काल में रोग का पूर्वरूप, निदान, सम्प्राप्ति और उपशय के बारे में सिद्धान्त स्थिर करना चाहिए। उसके बाद रोग किस दोष से हुआ है यह निर्णय करते समय दोष का बल, प्रकोप, प्रसर और स्थानसंश्रय के बारे में ठीक सिद्धान्त करके रोग साध्य या असाध्य है इसका निर्णय करे। फिर यदि वह साध्य हो तो रोग के स्वाधिकार युक्त दोष के अनुसार चिकित्सा करे। चिकित्सा करते समय दोष के स्वरूप पर विशेष ध्यान दे यदि दोष आमावस्था में हो तो कायचिकित्सकों के मत से दवा देना उचित नहीं है। क्योंकि आमावस्था में ओषधि प्रयोग करने से वह रोग बढ़ने का कारण होता है। इसलिए किसी रोगी को ज्वर होने से चिकित्सक अधिकतर क्षेत्रों में सप्ताह भर लंघन की व्यवस्था देते हैं। सप्ताह भर लंघन देने से रोगी की आमावस्था उपशम होने पर रोगी के लिए

शोधन चिकित्सा की व्यवस्था करे। विशुद्धायुर्वेद से लोग शोधन का अर्थ वमन, विरेचन, स्नेहन, निरूह, अनुवासनबस्ति, नस्य आदि कर्मों को समझते हैं। चेत्र के आधे भी इन कर्मों से रोगी का शरीर शुद्ध करके उसके लिए संशमन चिकित्सा-विधि के अनुसार कषाय, क्वाथ, अवलेह, चूर्ण, गुटिका, आसव, अरिष्ट, घृत और तेल द्वारा मोदकों की व्यवस्था करनी चाहिए। इन विधियों के अनुसार रोगी को बल मिलने पर आयुर्वेदीय स्वस्थवृत्त के विधान के अनुसार स्वास्थ्य रक्षा के नियमों को मानने का निर्देश दिया जाता था जिससे प्राणी बहुत दिनों तक निरामय रहते थे अतः देशवासियों को बद्धमूल धारणा हो गई थी कि कविराजी चिकित्सा से रोग एक वार अच्छा होने पर फिर प्रादुर्भूत नहीं होता। शुद्धायुर्वेद-चिकित्सा-पद्धति के वारे में निम्नलिखित नियमों को लोग अच्छी तरह मानते हैं:—

(१) जो औषध एक रोग को आरोग्य करने के लिए दूसरे रोग की सृष्टि करती है वह आयुर्वेद के मत से औषधपदवाच्य नहीं है।

(२) रोगोत्पादक दोष का मूलोच्छेद न होने से पेड़ की तरह उसका पुनरुद्भव सुनिश्चित है।

(३) रोगनाश होने के लिए रोगी की पादचतुष्टय स्थिति—रोगी, चिकित्सक, ओषधि और परिचारक होना जरूरी है।

(४) युक्तिबहिर्भूत ओषधि और अपथ्य सर्वथा परित्याज्य है।

(५) रोग का प्रधान कारण प्रज्ञापराध (विवेकविरुद्ध), परिणाम-काल-शक्तिविरुद्ध इन्द्रियार्थ-संयोग है।

(६) रोग साधारणतः दो तरह का होता है—शारीरिक और मानसिक। शारीरिक रोग वायु, पित्त, कफ और रक्त के विकार से उत्पन्न होता है। मानसिक रोग सत्त्व, रज और तमोगुण के विकार से उत्पन्न होता है।

(७) ओषधि-प्रयोग—दैव-व्यपाश्रय और युक्ति व्यपाश्रय के द्वारा शारीरिक रोग तथा विज्ञान, धैर्य, स्मृति और समाधि के द्वारा मानसिक रोग आरोग्य होता है।

(८) उत्कट पाप के फलस्वरूप उत्कट असाध्य रोग की उत्पत्ति होती है और भोग तथा प्रायश्चित्त के द्वारा उसका विनाश होता है।

(९) शुद्धायुर्वेदभोगी भेषज-निर्माण-विज्ञान, भेषज-द्रव्य-परिचय और वस्तुओं के रस, गुण, वीर्य, विपाक और प्रभाव-भेद से उनके विशेष विज्ञान के ऊपर निर्भर रहता है।

(१०) शुद्धायुर्वेदसेवी लोग शरीर-रचना-विज्ञान, शरीर-क्रिया-विज्ञान, शरीर-विकृतिविज्ञान, शस्त्रप्रचार के समग्र पूर्वकर्म, प्रधान कर्म और पश्चात्-कर्म-विषयक

विज्ञान और शरीर के अन्दर के शिरा, धमनी, स्नायु, मर्म इत्यादि यंत्रों के विशिष्ट परिचय से पूर्ण मात्रा में अवगत होते हैं और आवश्यक होने पर स्वस्थ कर्म करने में द्विधा नहीं करते हैं।

(११) रोगपरीक्षा के लिए वे विशेष रूप से नाड़ीविज्ञान की सहायता लेते हैं और रक्त, मूत्र, आँख, मल इत्यादि की परीक्षा किया करते हैं।

(१२) शुद्धायुर्वेदसेवी लोग रोग बीजाणु के अस्तित्व के बारे में विश्वासशील हैं परन्तु बीजाणु ही रोग का सर्ववादीसम्मत एकमात्र कारण है यह विश्वास नहीं करते। शुद्धायुर्वेदसेवियों को बीजाणु तत्त्व से क्षेत्रतत्त्व में अधिक विश्वास है।

अमिताचार जनित उर्वर क्षेत्र में ही रोग का बीज अंकुरित होता है। स्वस्थ शरीरयुक्त ऊसर क्षेत्र में रोग का बीज अंकुरित नहीं होता है। प्रत्येक रोग शरीर के अन्दर स्थित क्रियाविशेष की विकृति चाहते हैं। इससे विकृत शरीर में मार्गावरोध होकर विभिन्न प्रकार के कृमि और बीजाणु पैदा होते हैं परन्तु वे ही सब क्षेत्रों में प्रत्यक्ष रूप से एक मात्र रोग नहीं हो सकते। क्योंकि बहुधा यह देखा जाता है कि अनेक जगहों में रोग रहता है किन्तु बीजाणु नहीं रहते अतः शुद्धायुर्वेद-सेवी लोग रोगनिर्णय करते समय बीजाणु की खोज में लिप्त नहीं रहते हैं।

(१३) शुद्धायुर्वेदसेवियों का औषधनिर्वाचन-विज्ञान सुचिन्तित परिभाषा-विज्ञान पर प्रतिष्ठित है। इसकी परिभाषा पूर्ण रूप से वैज्ञानिक है। आधुनिक रासायनिक विज्ञान के जन्म के हजारों वर्ष पहले भारतीय चिकित्सकों ने रसायन शास्त्र के आदि सम्मिश्रण—शीत कषाय, क्काथ, आसव, अरिष्ट, चूर्ण, अवलेह, प्राश, मोदक, पिष्टि, कज्जली, भस्म, सत्त्व, क्षार, द्रावक इत्यादि अनेक प्रकार के विषयों में जानकारी की।

(१४) शुद्धायुर्वेद के मत से शल्यविद्याविहीन चिकित्सक को आयुर्वेद-व्यवसाय करने का अधिकार नहीं है। राजा के प्रमाद से ही वे ऐसे काम करने के अधिकारी होते हैं और सर्वथा राजा के द्वारा मृत्युदण्ड पाने के पात्र होते हैं।

(१५) शुद्धायुर्वेदसेवी कभी भी अज्ञात गुण औषध (जिस औषध के उपादान, कारण और गुण के बारे में उन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान न हो) का व्यवहार करने के पक्ष में मत नहीं देते हैं।

(१६) उनके मत से यदि रोगी ऐसे ही नहीं मर सकता है तो उसे साँप का जहर या ताम्बे का क्काथ पीकर मर जाना चाहिये किन्तु मूर्ख वैद्य की अज्ञात-गुण, अन्तःसार-शून्य, बाह्य रूप से मधुर पर परिणाम में विषवद् ओषधि का कभी भी व्यवहार न करना चाहिये।

(१७) शुद्धायुर्वेदसेवी कूपमण्डूकता दोष-वर्जित हैं। एक शास्त्र की उपलब्धि के लिए वे दूसरे शास्त्रों के सिद्धान्तों के सामने पराङ्मुख नहीं हैं।

(१८) शुद्धायुर्वेदसेवी ज्ञानार्जन के विभिन्न स्थानों में विभिन्न ज्ञानी व्यक्तियों के द्वारा प्रकाशित उदाहरणों में तभी आस्था रखते हैं जब वे दूसरे की आविष्कृत वस्तुओं को आयुर्वेद के त्रिसूत्र के तुलादण्ड में परीक्षा कर लेते हैं। यदि आयुर्वेद के मानदण्ड में वह ग्राह्य विवेचित हो तब विशुद्ध आयुर्वेदिक ओषधियों (चोपचीनी, रेहवन्दचीनी, अफीम, तम्बाकू आदि) के ग्रहण करने में कोई आपत्ति नहीं करते।

(१९) शुद्धायुर्वेदसेवियों के मस्तक सर्वदा उन्नत हैं क्योंकि उनका चिकित्सा-ज्ञान चक्रपाणि और डल्हण की टीका से समन्वित सम्पूर्ण चरक-सुश्रुत-संहिता के पाठ के ऊपर प्रतिष्ठित है इसलिए उनकी चिकित्सा स्वयं सम्पूर्ण है।

(२०) शुद्धायुर्वेदसेवी के मत से सारे पृथ्वी के लोग बुद्धिमान व्यक्ति के ही उपासक हैं, बुद्धिरहित के नहीं।

(२१) शुद्धायुर्वेदसेवी आज जिसे प्रमाणित कहकर स्वीकार करते, उसे कल निरर्थक कहकर अस्वीकार नहीं करते हैं। वे पाश्चात्य चिकित्सक और ओषधि-विक्रेता वणिकों के बहुधा विचित्र विज्ञापनों के अनेक आडम्बर से प्रचारित और मनुष्य-देह में अपरीक्षित एवं चूहा, खरगोश के शरीर में परीक्षित ओषधियों का विश्वात्मा के विचित्र अधिष्ठान मानव-शरीर में प्रयोग करने के चिर-विरोधी हैं।

(२२) एलोपैथिक ओषधियों को एकाएक आयुर्वेदीय ओषधियों के साथ मिलाकर प्रयोग करने में शुद्धायुर्वेदसेवी को घोर आपत्ति है क्योंकि उपर्युक्त मिश्रण का प्रयोगफल आयुर्वेद के मत से परीक्षित नहीं है।

(२३) शुद्धायुर्वेद सेवी 'सुश्रुते शारीरः श्रेष्ठः' इस नीति में विश्वासशील हैं। 'सुश्रुते शारीरो नष्टम्' अर्थात् भारतवासी की शिक्षा के लिए यूरोपीय शल्य तंत्र अवश्य ही पाठ्य है यह विश्वास नहीं करते हैं। शुद्धायुर्वेद के छात्रों के लिए डल्हण, हाराणचन्द्र और ज्योतिश्चन्द्र सरस्वती के टीकायुक्त सुश्रुत संहिता पाठ ही परम उपादेय और पर्याप्त हैं। स्वल्पमेधायुक्त और विशिष्ट आयुर्वेदीय छात्र यदि त्रिदोष विज्ञान भक्षण के बाद ग्रे और हेली बार्टन समझने की कोशिश करें तो अवश्य ही उनको बदहजमी की बीमारी हो जायगी। शुद्धायुर्वेदसेवी कुशाग्रबुद्धि महामहोपाध्याय विजयरत्न सेन का कहा हुआ है 'कृशतापि हिता देहे स्थूलता न तु शोथतः' अर्थात् रोगशून्य दुबला-पतला होना अच्छा है लेकिन शोथयुक्त होकर बड़े शरीर वाला होना वाञ्छनीय नहीं है। इस नीतिवाक्य में मैं विश्वासशील हूँ।

(२४) शुद्धायुर्वेदसेवी अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए सनातन आयुर्वेद शास्त्र के दोषों को प्रकाशित करने में सहमत नहीं हैं।

(२५) पिछले सौ वर्षों की उपेक्षा से शुद्धायुर्वेद के ऊपर जो मिथ्या का स्तम्भ स्थापित हुआ है, शुद्धायुर्वेदसेवी उसको शीघ्र उखाड़ने का दावा रखते हैं।

(२६) शुद्धायुर्वेद के सर्वश्रेष्ठ पुजारी आयुर्वेद-महामहोपाध्याय चक्रपाणिदत्त ने पारा, गन्धक, लोहा, ताम्र, अभ्रक आदि रसौषधियों को पूर्ण मात्रा में प्रयोग करके शुद्धायुर्वेद के गौरव को पूर्ण रूप से बढ़ाया है। रस चिकित्सा शुद्धायुर्वेद का सबसे बड़ा और सबसे आवश्यक अंग है।

आयुर्वेद के ऊपर राजकीय कोपानल

विधाता के विचित्र विधान से महाराज धर्मशोक के समय से आयुर्वेद के ऊपर राजकीय कोपानल पड़ा है। धर्मशोक की आज्ञा से भारतीय आतुरालयों से शल्यतंत्र विभागों को उठा दिया गया था। क्योंकि धर्मशोक ने अपने राज्य में सर्व प्रकार के रक्तपात, यहाँ तक कि आरोग्य भी लाभार्थ-रोगी के शरीर पर अस्त्रोपचार बन्द कर दिया था। तत्पश्चात् हिन्दू राजत्व के अवसान के बाद ७०० वर्ष तक मुसलमानों के राजत्वकाल में तो आयुर्वेद मातृका को किसी प्रकार राजकीय आनुकूल्य नहीं मिला। केवल अपने अन्तर्निहित सत्य और शक्ति के जोर से आयुर्वेद जीवित रहा।

अंगरेजी शासनकाल से पाश्चात्य भारत-तत्वविदों ने भारत में पाश्चात्य चिकित्सा को स्थापित करने के लिए सर विलियम जौन्स आदि प्रमुख व्यक्तियों को नियुक्त किया जिन्होंने कहना शुरू किया कि भारतीय चिकित्सा-शास्त्र की कोई मौलिकता नहीं है। यहाँ तक कि कुछ दिन पहले वंगीय शिक्षा विभाग के भूतपूर्व डाइरेक्टर एच० ई० स्टेपलटन ने अपने लिखे पुस्तक 'पारस और इरान के रसायन शास्त्र' में भारतीय रसायन शास्त्र को पारस से अधमर्ण कहा है।' परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि सर प्रफुल्ल चन्द्र के पहली बार इङ्गलैड जाने से पहले तक यूरोपियों को यह भी ज्ञात न था कि पारा और गन्धक एक साथ मिलकर कज्जली में परिणत होते हैं। उस समय तक गन्धक और हरिताल के बारे में व्यवहार-पद्धति ज्ञात न थी।

रसचिकित्सा

अब तक रसचिकित्सा के सुदीर्घ इतिहास की आलोचना करके हमने देखा कि इन्द्र के राजत्व काल में रसचिकित्सा पूर्णाङ्ग रूप से विद्यमान थी। सत्ययुग

के शेष भाग में महर्षि भरद्वाज ने उसको मर्त्यलोक में लाकर आर्यावर्त में उसका अधिक प्रचार किया। त्रेतायुग में रामचन्द्र, भैरव और रावण के द्वारा दक्षिण भारत में इस शास्त्र का अधिक प्रचार हुआ। तत्पश्चात् द्वापर युग में महर्षि पतञ्जलि, मत्त, माण्डव्य, व्याड़ि, भीमसेन, नकुल, सहदेव, मयदानव, शिशुपाल, जरासन्ध आदि राजाओं के द्वारा पश्चिम भारत में इसका प्रचार हुआ। इसके बाद कलियुग में भगवान् बुद्ध के प्रादुर्भाव के समय इस शास्त्र का अधिक प्रचार हुआ। बौद्धधर्म की अवनति के बाद सनातन हिन्दू धर्म के फिर से प्रतिष्ठित होने पर वैद्य समाज में इस शास्त्र का अधिकतर प्रचार हुआ। इसके बाद हिन्दू राजत्व के अवसान होने पर मुसलमान राजत्वकाल में इसकी अधिक अवनति देखी गयी। मुसलमान राजत्व के शेष होने पर अंग्रेजी शासन काल में इस शास्त्र के लुप्तप्राय ग्रंथों को फिर से प्रकाशित करने की चेष्टा होने लगी। बम्बई के स्वर्गीय आचार्य यादवजी त्रिविक्रमजी ने इस विषय में हाथ बढ़ाया। उन्होंने लुप्तप्राय १७ रस चिकित्सा ग्रंथों को संशोधन करके छपवाया और वे सारे भारतवासियों के श्रद्धाभाजन हो गये। इस विषय में बंबई के प्रसिद्ध रस चिकित्सक तथा 'रसयोगसागर' नामक ग्रंथ निर्माता वैद्य श्री हरिप्रपन्न शास्त्रीजी का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है। गाण्डल की प्रसिद्ध रसशाला औषधाश्रम के प्रतिष्ठाता और मेरे बड़े भाई के समान स्नेहशील, सौराष्ट्र गौरव, वैद्य कुलपति राजवैद्य श्री जीवराम कालिदास शास्त्री रसाचार्य का नाम भी विशेष रूप से उल्लेख योग्य है। रस ग्रंथों के संग्रहकारों मे आप अन्यतम हैं। आपने अनेक अप्रकाशित रस ग्रन्थों को प्रकाशित करके भारतवासियों की कृतज्ञता प्राप्त की है। पंजाब के प्रसिद्ध वैद्य श्री हरिशरणानन्द शास्त्री ने 'कूपीपक्व रस निर्माण विज्ञान' और 'भस्म विज्ञान' नामक अत्यन्त उपादेय रस ग्रंथों को लिखकर रस चिकित्सा के बहुल प्रचार में सहायता की है।

रसचिकित्साकाश के दूसरे उज्ज्वल नक्षत्र, काशी के प्रवासी राजस्थान-गौरव भिषङ्मणि वैद्यरत्न कविराज प्रताप सिंहजी का 'प्रताप भारतीय' रसशास्त्र का महत्वपूर्ण मौलिक ग्रन्थ है। चिकित्सा जगत के दूसरे प्रसिद्ध लेखक ८० साल से अधिक वयोवृद्ध नागपुर निवासी आयुर्वेद-बृहस्पति श्री गोवर्धन शर्मा छांगाणीजी का नाम अधिकाधिक उल्लेख योग्य है। छांगाणीजी का और उनके योग्य शिष्य। वैद्यराज गुलराज शर्मा की मिलित चेष्टा से प्रकाशित माधव के लिखे सटीक और सानुवाद रस ग्रंथ 'आयुर्वेद प्रकाश' के प्रकाश ने सब पापों को नाश करने वाले सूर्य प्रकाश की भाँति आयुर्वेद जगत् के अंधकार को दूर करने में सहायता की है इस प्रकार अच्छे कामों के लिये गुरु और शिष्य दोनों सारे आयुर्वेद जगत के विशेष

रूप से धन्यवादार्ह हैं। रस चिकित्सा जगत की एक और युगान्तरकारी पुस्तक रसजलनिधि है। वैद्य कुलपति रसाचार्य कविराज भूदेव मुखोपाध्याय एम० ए० सांख्य, वेदान्ततीर्थ विरचित अंग्रेजी और संस्कृत भाषा में लिखित यह रसग्रन्थ बेजोड़ है। डा० वामन गणेश देसाई का लिखा 'भारतीय रसशास्त्र', श्री कृष्णानन्द स्वामी का 'रस तंत्रसार', श्री सोमदेव शास्त्री का 'आयुर्वेद प्रकाश', वाणेश्वर भट्टाचार्य का 'रसरत्नप्रदीप', श्री रामप्रसाद का 'रसेन्द्र पुराण', अम्बिकादत्त शास्त्री का 'रसरत्नसमुच्चय' और 'रसेन्द्रसारसंग्रह', श्यामसुन्दराचार्य का 'रसायनसार' तथा निरंजन गुप्त का 'पारदसंहिता' ये वर्तमान समय के उत्कृष्ट रस ग्रन्थ हैं।

काशीपुरी के लब्धप्रतिष्ठ प्रकाशक श्रेष्ठिवर्य बाबू श्री जयकृष्ण दास जी गुप्त महोदयने अपनी प्रकाशनसंस्था चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला से आयुर्वेद के अनेकानेक प्रचीन तथा अर्वाचीन प्रामाणिक ग्रंथरत्न प्रकाशित करके आयुर्वेद जगत का जो परमोपकार किया है उनके इस यशस्वी पुण्य कार्य को भी भुलाया नहीं जा सकता। उनके द्वारा प्रकाशित रसग्रंथों में रसायनखण्ड, रसाध्याय, रसार्णव, रसरत्नसमुच्चय, रसेन्द्रसारसंग्रह, रसादिपरिज्ञान आदि ग्रंथों का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

मिश्र आयुर्वेद की उत्पत्ति

मुस्लिम राजत्व के अन्त तक विद्वान् लोग त्रिधारा में अर्थात् आत्रेयसम्प्रदाय, धन्वन्तरिसम्प्रदाय एवं रससिद्धसम्प्रदाय में विभक्त होकर शुद्धायुर्वेद-मातृका की पवित्रता को किसी प्रकार जीवित रख चुके थे किन्तु अंग्रेजी शासनकाल में आयुर्वेद के आकाश में धूमकेतु की भाँति आकर लार्ड मेकाले ने तत्कालीन इन्दोलॉजिस्ट या भारततत्त्वविशारदों के परामर्श से संस्कृत कालेजों में आयुर्वेद का पठन-पाठन एकदम बन्द कराकर १८३५ ई० में सर्वत्र मेडिकल कॉलेजों को प्रतिष्ठित कर दिया। लार्ड मेकाले के इस कुठाराघात से भारत में आयुर्वेद का नाममात्र ही रह गया था। परन्तु उस समय भी विद्वान् लोगों ने साहस और धैर्य नहीं खोया। उन्होंने गुरुपरम्परा से गुरु के घर में ही आयुर्वेद के पठन-पाठन का उपक्रम चला कर भारतीय सनातन धारा को फिर से प्रवर्तित कर दिया। इसके फलस्वरूप आयुर्वेद की सूखी सरिता में फिर से बाढ़ आ गई और इस बाढ़ में आत्रेय सम्प्रदाय के शेष ऋषि गंगाधर के तुल्य गंगाधर आविर्भूत होकर सारे भारतवर्ष में विशुद्धायुर्वेद की पुनः प्रतिष्ठा करने लगे। उनके प्रसिद्ध शिष्य और प्रशिष्य, यथा महामहोपाध्याय द्वारकानाथ हाराणचन्द्र चक्रवर्ती, गंगाप्रसाद

विजय रत्न, राजेन्द्रनाथ, परेशनाथ, उमाचरण विश्वनाथ, श्यामादास, कैलाश, पञ्चानन इत्यादि धुरन्धर वैद्य लोग उदीयमान एलोपैथिक चिकित्सकों के प्रतिद्वन्द्वी रूप में भारत के विभिन्न स्थानों में आयुर्वेदीय चिकित्साशास्त्र का प्रचार और प्रसार करने लगे। इसी समय आयुर्वेद जगत में पुनः एक भयानक दुर्योग उपस्थित हो गया। बंगीय वैद्यों ने एलोपैथिक मेडिकल कॉलेज के अनुकरण में आयुर्वेद को आधुनिक करने के अभिप्राय से एलोपैथिक और आयुर्वेदीय पाठ्यतालिका में ६५ प्रतिशत एलोपैथी और ३५ प्रतिशत आयुर्वेदीय विषय निविष्ट करके आयुर्वेदीय मेडिकल कालेज स्थापित कर दिया। नवीनता के लिए शुरू में तो इन कालेजों में बहुत से विद्यार्थी भर्त्ती अवश्य हुए। परन्तु २५ वर्ष बीतने पर यह देखा गया कि इसमें से एक भी द्वारिकानाथ, श्यामदास या विजयरत्न नहीं निकले वरन् जो निकले वे आयुर्वेदशास्त्र की शिक्षा के लिए जाकर आयुर्वेद कालेज में पढ़ने लगे और एलोपैथिक चिकित्सा में अधिकतर विश्वासी होकर न घर के रहे न घाट के और निराश वापस आकर चिकित्सा क्षेत्र में आयुर्वेदीय ओषधियों पर सम्पूर्ण रूप से निर्भर नहीं रह सके। कार्य क्षेत्र में विना समझे-बूझे अधिकांश क्षेत्रों में अधिकतर एलोपैथिक ओपधियों की ही सहायता लेने लगे। जहाँ कि धैर्यपूर्वक आयुर्वेदीय ओषधि प्रयोग करने पर अपुनर्भव रूप से आरोग्य लाभ कर सकते थे, उन क्षेत्रों में शीघ्र आरोग्य लाभ के लिए एलोपैथिक ओषधि के साथ आयुर्वेदीय ओषधि का प्रयोग करके दोनों शास्त्रों में कहे हुए फललाभ से वञ्चित रहने लगे। अब पुनः उनमें योग्य आयुर्वेदज्ञोंका निर्माण होने लगा है यह सन्तोष की बात है।

आयुर्वेदिक चिकित्सा की वर्तमान अवस्था

पहले बताया जा चुका है कि आयुर्वेदीय चिकित्सा विज्ञान के तीन सम्प्रदायों में विशेष सद्भाव नहीं था। विशेषकर आत्रेय सम्प्रदाय के साथ रससिद्ध सम्प्रदाय का मनमुटाव था। इसीलिये आत्रेय सम्प्रदायमुक्त वैद्यों ने रसौषधियों का अपने कायचिकित्सा ग्रन्थों में उल्लेख नहीं किया है। परन्तु रसचिकित्सकों ने अपने ग्रन्थों में आत्रेय पुनर्वसु की कही हुई प्रत्यक्ष फलप्रद योगावलियों को सन्निविष्ट किया था। वैद्य युग के बाद जो रसग्रंथ लिखे गये उनमें मिश्रित रसौषधि की संख्या अधिक देखी जाती है। रसराज महोदधि, रसरत्नाकर, रसेन्द्रचिन्तामणि, रसरत्नसमुच्चय, रसेन्द्रसारसंग्रह इत्यादि ग्रंथों में आत्रेयसम्प्रदाय के कहे हुए बहुत सी मुष्टियोग ओषधियाँ लिखी हुई हैं। आपस की गुणग्राहिता के फल से ही बौद्ध-

युग के बाद हिन्दू धर्म फिर से प्रतिष्ठित हुआ। महामहोपाध्याय चक्रपाणिदत्त ने अजीर्ण, अम्लपित्त, ग्रहणी इत्यादि रोगों की चिकित्सा में रसपर्पटी, ताम्रप्रयोग, अभ्रप्रयोग, क्षुधावटी और लोहे को प्रयोगविधियों को अपनी चक्रदत्तसंहिता में निबद्ध कर दोनों सम्प्रदायों में जो विवाद बहुत दिनों से चला आ रहा था उसका अन्त कर दिया।

चक्रपाणिदत्त के पश्चात् बंगाल में रसवैद्यों के विरुद्ध एक दल खड़ा हुआ था, परन्तु बड़े ही आनन्द का विषय है कि वर्तमान समय में इस विवाद का चिह्न मात्र अब नहीं है। एक दूसरे के विरुद्ध कुछ भ्रान्त धारणाओं से ही इस विवाद की सृष्टि हुई थी और इसीलिये सोलहवीं सदी में महात्मा गोपालकृष्ण भट्टाचार्य के रसेन्द्रसारसंग्रह के बाद से बीसवीं सदी के शुरू तक और किसी ग्रंथकार ने रसग्रंथ की रचना नहीं की। बीसवीं सदी के शुरू में फिर से भरद्वाजवंशोद्भव रसाचार्य भूदेव मुखोपाध्याय ने 'रसजलनिधि' नामक महाग्रंथ प्रकाशित करके बंगालमें रसविद्या का खूब प्रचार किया और वर्तमान समय में उनके शिष्योपशिष्य लोग भारत के विभिन्न स्थानों में कर रहे हैं।

दक्षिण भारत में रसविद्या

अगस्त्य मुनि ने महर्षि भरद्वाज से आयुर्वेद की शिक्षा-पाकर दक्षिण भारत में मुख्यतः रसविद्या का ही सृजन किया था। फलतः अभी भी दक्षिण भारत के वैद्य अपने सम्प्रदाय के नाम से रसविद्या का खूब प्रचार करते हैं। दक्षिण भारत में आयुर्विद्या की निम्नाङ्कित जनश्रुति प्रचलित है:—
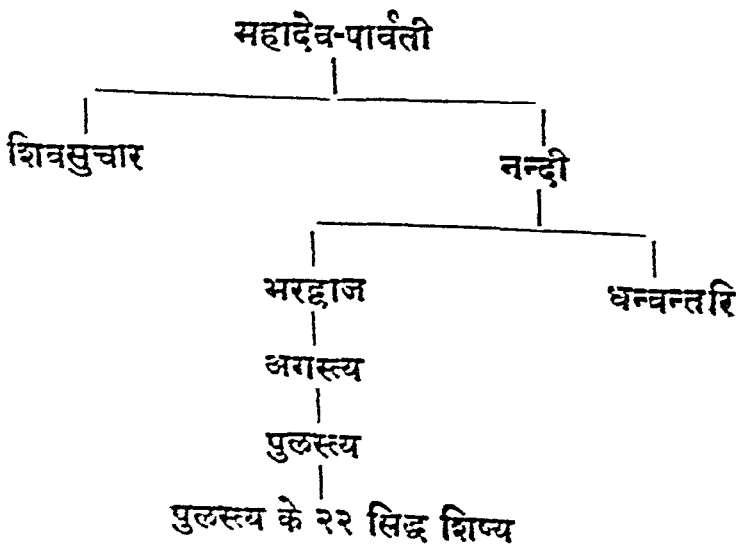
सिंहल में आयुर्वेद

उपर्युक्त २२ सिद्धों में मन्थान भैरव एक हैं। इनका लिखा 'आनन्दकन्द' इस सम्प्रदाय का प्रधान रसग्रन्थ है। मन्थानभैरव लंकेश्वर रावण के राजवैद्य थे। रससिद्धों ने हिन्दूधर्म के विस्तार के लिए समस्त भारत और भारत के बाहर भी परिभ्रमण किया था। पाली भाषा में लिखा हुआ 'भैषज्यमंजूषा' नामक ग्रन्थ सिंहल का आयुर्वेद ग्रन्थ है।

केरल में आयुर्वेद

अष्टवैद्य सम्प्रदाय से प्रचारित और इन्दु टीका संवलित वाग्भट्ट प्रणीत 'अष्टांगहृदय' अत्यन्त जनप्रिय ग्रन्थ है। नाकूद्री या नाम्बूद्री ब्राह्मण सम्प्रदाय इस संस्थान के प्रभावशाली वैद्य भदन्त नागार्जुन प्रणीत 'रसवैशेषिक,सूत्र' केरल का उत्तम ग्रंथ है। नीलमेघ वैद्यप्रणीत 'तंत्रयुक्तिविचार' एक उत्कृष्ट केरलीय वैद्यग्रंथ है। त्रिवाद में रसोपनिषद् नामका एक उत्कृष्ट रसग्रन्थ हाल ही में प्रकाशित हुआ है। महाकवि कालिदास प्रणीत वैद्यमनोरमा को केरलीय वैद्यग्रन्थ स्वीकार किया जाता है। वैद्य यादवजी त्रिविक्रमजी आचार्यने इसका एक सुन्दर प्रकाशन किया है। इसके अतिरिक्त 'धाराकल्प', 'हरिमेखला', 'महेन्द्रयोग', 'आरोग्यकल्पद्रुम', 'सर्वरोग-चिकित्सा', 'चिकित्सानुकूल' इत्यादि ग्रन्थ केरलीय वैद्यों को अत्यन्त प्रिय हैं।

कर्नाटक में आयुर्वेद

जैनाचार्य का लिखा पूज्यपादीय, मंगलराज जैन का लिखा खगेन्द्रदर्शन, अभिनवचन्द्रिका तथा अश्ववैद्य, देवेन्द्र का लिखा वामग्रहचिकित्सा, वीरभद्र का लिखा हस्त्यायुर्वेद, वाग्भट का लिखा अष्टांगसंग्रह, अष्टांग हृदय तथा चिन्तामणि नामक ग्रंथ कर्णाटकीय वैद्यों के प्रधान उपजीव्य हैं। उक्त ग्रंथ कन्नड़ भाषा में लिखित हैं।

आन्ध्र प्रदेश में आयुर्वेद

वल्लमेत्र प्रणीत चिन्तामणि, वसवप्रणीत वसवराजीय, मंगलगिरि प्रणीत रसप्रदीप तथा शिवरत्नाकर, श्रीनाथ पंडित प्रणीत पराशरसंहिता, भट्टमल्ल प्रणीत बृहद्‌योग-तरंगिणी, श्रीकंठ पंडित प्रणीत योगरत्नावली, श्रीकंठनिदान तथा भेषजसर्वस्व और इसके अतिरिक्त सन्निपातचन्द्रिका, योगशतक, धन्वन्तरिसारनिधि, राजमृगांक, प्रश्नोत्तरनवरत्नमाला, गद्यसञ्जीवनी, उमामहेश्वरसंवाद, नाड़ीज्ञाननिर्णय, षड्-विधनाड़ीतंत्र, नाड़ीनक्षत्रमालिका, अभिधानरत्नमाला, आयुर्वेदमहौषधि, पदार्थ-

चन्द्रिका इत्यादि ग्रंथ भी भारतीय आयुर्वेद विज्ञान के वृद्धि कल्प में दक्षिण भारत की देन हैं। दक्षिण भारत में आयुर्वेद के प्रचार और शिक्षा के विस्तार के लिए डा० गोपालचन्द्र, डा० लक्ष्मीपति, नटराज शास्त्री, श्रीनिवास शास्त्री, वाई पार्थ-नारायण आदि वैद्यों की चेष्टा चिरस्मरणीय है।

उपसंहार

इस पुस्तक की पाण्डुलिपि बनाने में अयोध्या प्रसाद शर्मा, श्री देवकुमार चक्रवर्ती, श्री सरोवर ठाकुर तथा श्री महादेव राय इत्यादि व्यक्तियों ने यथेष्ट परिश्रम किया है तदर्थ मैं उनको आन्तरिक आशीर्वाद देता हूँ। काशी के सुप्रसिद्ध असंख्य ग्रंथों के प्रकाशक, संस्कृत विद्या के प्रसार तथा प्रचार के लिए भगीरथ-प्रयत्नशील, सद्धर्मनिष्ठ चौखम्बा संस्कृत सीरिज तथा चौखम्बा विद्याभवन के स्वत्वाधिकारी श्रेष्ठिवर्य बाबू श्री जयकृष्णदास जी गुप्त महोदय ने इस पुस्तक को प्रकाशित कर मुझे चिरकृतज्ञता पाश में आबद्ध कर लिया है। मैं उन्हें अतःकरण से धन्यवाद देता हूँ।

उदार पाठकों से नम्र निवेदन है कि पुस्तक में भाषा आदि की जो अशुद्धियाँ रह गई हों उसके लिए क्षमा कर मुझे अनुगृहीत करेंगे।

'गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

पूर्वाचार्यों तथा पण्डितों का सेवक
श्री प्रभाकर चट्टोपाध्याय

विषय सूची

प्रथम खण्ड

द्वितीय खण्ड

यक्ष्मा चिकित्सा—वायु प्रधान यक्ष्मा में राजमृगाङ्करस। शङ्खेश्वर रस। मृगाङ्क पोटली रस, पञ्चामृत पोटली रस, पञ्चामृत रस, लोकेश्वर रस। पित्त प्रधान यक्ष्मा में वैद्यनाथ रस, राजावर्त रस, क्षय केशरी, रजतादि लौह, वृहत् काञ्चनाभ्र रस। कफप्रधान यक्ष्मा में—महामृगाङ्क रस, कनक सुन्दर रस, अग्नि-रस, सर्वाङ्ग सुन्दर रस, वज्रपर्पटी, पञ्चामृत पर्पटी। व्यवाय शोष में—वसन्त कुसुमाकर। शोकज शोष में—मकरध्वज रस, व्यायाम शोष में—रत्न गर्भ पोटली रस, वृहत् काञ्चनाभ्र, महामृगाङ्क रस, सर्वाङ्ग सुन्दर रस। जराशोष में—कमला विलास रस, अध्वशोष जनित शोष में—मृगांक रस, व्रणशोष में—वसन्त कुसुमाकर, हरिताल भस्म, पारदभस्म, उरःक्षत में—रजतादि लौह, शिलजातु आदि लौह, राज-मृगाङ्क, काञ्चनाभ्र रस। यक्ष्मारोग में उपसर्ग चिकित्सा—स्वरभङ्ग में त्र्यम्बकाभ्र, शूलवेदना में शूलराज लौह, त्रिनेत्र रस, स्कन्ध और पार्श्वद्वय सङ्कोच में मकरध्वज रस, वृहत् काञ्चनाभ्र। ज्वर में वज्र पर्पटी, हरिताल भस्म, महामृगाङ्क, राजमृगाङ्क, वसन्तकुसुमाकर, श्रीजयमङ्गल रस, त्रैलोक्य चिन्तामणि, विषमज्वरान्तक लौह, रत्नगर्भ पोट्टली। दाह में—सर्वाङ्गसुन्दर रस, महोदधि रस, कुमुदेश्वर, ताम्रभस्म, अतिसार में विजय पर्पटी, रक्तनिर्गम में शोधित हिङ्गुल, हरिताल भस्म, रक्त-पित्तान्तक रस। शिरःपरिपूर्णता में स्वर्ण घटित महालक्ष्मी विलास, अरुचि में—सुलोचनाभ्र, कास मे वृहच्चन्द्रोदय रस, वसन्ततिलक रस। उत्कासिका में वृहद् रसेन्द्र गुडिका, वृहत् शृङ्गाराभ्र। यक्ष्मा चिकित्सा के अनुपान। २४३–२५९

कासरोग चिकित्सा—वातज कास में भूताङ्कुश रस, पित्तजकास मे स्वय-मग्नि रस, कफज कास में वृहत शृङ्गाराभ्र, क्षतज कास मे रसेन्द्रगुटिका। क्षयज कास में—सार्वभौम रस, लक्ष्मी विलास रस। जराकास में वृहत् शृङ्गराभ्र, वृहत् चन्द्रामृत, वृहत् रसेन्द्र गुडिका, कमला विलास रस। त्रिदोषज कास में कास संहार भैरव, नित्योदय रस। कास चिकित्सा में अनुपान, कासान्तक धूम। २६०–२६२

श्वास चिकित्सा—महाश्वास में पिप्पल्याद्य लौह, ऊर्ध्वश्वास मे सूर्यावर्त रस, छिन्नश्वास में श्वास कास चिन्तामणि। तमक श्वास में लौह पर्पटी रस, प्रतमक श्वास में ताम्र पर्पटी। क्षुद्रश्वास में श्वास कुठार रस। श्वास चिकित्सा के अनुपान। २६३–२६४

तृतीय खण्ड

॥ श्रीः ॥

रसचिकित्सा

[प्रथम खण्ड]

ग्रन्थारम्भप्रयोजन

जगद्गुरु श्री हरि के चरणों में प्रणिपात करके चिकित्सकों के उपकार के लिये अनेक रस-ग्रन्थों से जानने योग्य विषयों का संग्रह कर केवल परीक्षित, प्रत्यक्ष फल देनेवाली और सहज साध्य औषध एवं उनके बनाने की रीति लिखता हूँ तथा आशा करता हूँ कि समस्त विश्व के मनुष्य इसे पढ़कर लाभ उठायेंगे।

पारद

जिस पारे का भीतरी भाग अधिक नीला और बाहरी भाग दोपहर के सूर्य की तरह उज्ज्वल रंग का हो, औषध-कार्य के लिये वही उत्तम है। और जो धूम्र, पाण्डुर या विचित्र वर्ण वाला हो वह रसकार्य के योग्य नही है।

नाग, वङ्ग, मल, अग्नि, चञ्चलता, विष, गिरि और असह्याग्नि ये पारे के स्वाभाविक दोष है। पारा शोधन किये बिना सेवन करने से नाग दोष से फुंसी फोड़े, वङ्ग दोष से कुष्ठ, मल और गिरि दोष से जड़ता, अग्निदोष से दाह, चञ्चलता दोष से वीर्यनाश, विषदोष से मृत्यु, असह्याग्नि दोष से फोड़े का रोग होता है।

पर्पटी, पाटली, भेदी, द्रावी, मलकारी, अन्धकारी और ध्वांक्षी—ये सात पारद की केंचुली रूप दोष हैं। अशुद्ध पारा सेवन करने पर पर्पटी दोष से चर्म में कड़ा-पन, पाटलीदोष से चर्मविदारण (शरीर का फट जाना), भेदी दोष से नाड़ी व्रण,

द्रावी दोष से गलत् कुष्ट, मलकारी दोप से त्रिदोष वृद्धि, अन्धकारी दोप से दृष्टि-हीनता, ध्वांक्षी दोष से चमडे का काला पड़ जाना, ये दोष उत्पन्न होते हैं। अतएव चिकित्सकमात्र को चाहिये कि वे पारे को शुद्ध कर व्यवहार करें।

दोषरहित, शुद्ध पारा मृत्यु, जरानाशक और साक्षात् अमृततुल्य है। अल्पमात्र प्रयोग से ही अधिक फल मिलता है। सेवन में कभी अरुचि नहीं हो सकतीं और शीघ्र निरोगता करने के कारण पारा अन्यान्य ओषधियों से श्रेष्ठ है। चरक आदि चिकित्सातत्त्वज्ञ महर्षियों ने साध्य रोगों की ही ओषधियाँ लिखी हैं। किन्तु पारा साध्य-असाध्य सभी रोगो में प्रयोग किया जा सकता है। मृत पारा असमय में वाल सफेद हो जाने, वदन में झुर्रियां पड़ जाने आदि रोगों का नाशक है, मूर्च्छित पारा व्याधिनाशक है, रीति के अनुसार वद्ध पारद से खेचरता (आकाश में विचरना) प्राप्त होती है। पारे से हितकर पदार्थ दूसरा नही है।

पारद भेद—क्षेत्र भेद से पारा चार प्रकार का है। श्वेत, लाल, पीला और काला। श्वेत रंग का पारा रोगनाशक, लाल रंग का पारा रसायन में, पीले रंग का पारा धातुभस्मीकरण में, काले रंग का पारा खेचरत्व देने में प्रशस्त है। इनके सिवाय हिङ्गुल से ऊर्ध्वपातन यंत्र की सहायता से निकाला हुआ पारा अति विशुद्ध और सव कार्यों में सदा व्यवहार करने योग्य होता है।

पारे के अठारह संस्कार

(१) शोधन, (२) स्वेदन, (३) मर्दन, (४) उद्धृति, (५) पातन, (६) रोधन, (७) नियामन, (८) दीपन, (९) अनुवासन, (१०) ग्रासन, (११) मूर्च्छन, (१२) सञ्चारण (१३) गर्भद्रुति (१४) जारण, (१५) मारण, (१६) भस्मीकरण, (१७) रञ्जन, (१८) वेधन ये पारे के संस्कार हैं। प्रथम आठ संस्कारों द्वारा शुद्ध किये हुये पारे में औषध रूप से व्यवहार करने पर उत्कृष्ट फल पाया जाता है। किन्तु साधारणतः केवल शुद्ध पारा ही काम में लाया जाता है, ऐसा करना उचित नही है। क्योंकि केवल शोधन द्वारा पारे के नाग-वङ्गादि दोप और केचुली दोष दूर नहीं होते। परन्तु हिङ्गुल से निकाला हुआ पारा शोधनादि आठ कर्म वर्जित होने पर भी सव काम में व्यवहार किया जा सकता है।

शुभ नक्षत्र तथा शुभ मुहूर्त्त मे एक सौ, पचास, पच्चीस, दश, पाँच अथवा एक पल पारा शोधन के लिये लेवे, उत्तम संस्कार के लिये एक पल से कम पारा नहीं लेना चाहिये।

(१) पारा-शोधन-विधि। (प्रथम संस्कार) रसमारक द्रव्यों के सोलहवाँ भाग (पारे का सोलहवाँ भाग) चूर्ण द्वारा पारे को मर्दन करें। प्रतिदिन प्रत्येक वस्तु द्वारा सात बार मर्दन करे।

१. घृतकुमारी रस, चित्रक का क्वाथ और काकमाची का रस पृथक् २ इन के साथ एक एक दिन मर्दन करने पर पारा निर्दोष होता है।

२. लहसुन का रस, पान का रस और त्रिफला का क्वाथ इनमे मर्दन करे। प्रत्येक रस में मर्दन करने के बाद उसे धो डाले। इससे पारे के सब दोष नष्ट होते हैं।

३. घृतकुमारी, चीता, लाल सरसों, बृहती (भटकटेरी) और त्रिफला के क्वाथ में पारा तीन दिन मर्दित होने से सब दोषो से रहित होता है।

हिङ्गुल से पारा निकालने की विधि—नीबू के रस में हिङ्गुल को एक दिन घोट कर डमरू यंत्र से पारा निकाले। आजकल कविराज (वैद्य) जिस प्रचलित प्रणाली से ऊर्ध्वपातन द्वारा पारा निकालते हैं उसमें बड़ा श्रम करना पड़ता है। हमने बहुत अन्वेषण करके निर्दोष भाव से हिङ्गुल से पारा तैयार करने की जो प्रणाली निकाली है, वह बड़ी सहज है और इसमें थोड़ा समय लगता है। हिङ्गुल को बारह घण्टे नीबू के रस में घोंट कर धूप में सुखा कर पीस ले। फिर उस पीसे हुए हिङ्गुल के साथ उसकी तौल के बराबर पत्थर का चूना (कलई) पीस कर मिला देवे। फिर दोनों के मिले हुए चूर्ण को एक हांड़ी में रख कर उसके ऊपर बड़ी हांड़ी रख दें (हांड़ी के मुख घिस कर ठीक कर ले जिससे अच्छी तरह मिल जा सके)। हाँड़ी के पिछले भाग मे एक बड़ा छेद रहे, वह छेद सकोरे के मुख पर बैठे। हांड़ी के ऊपर दूसरी हांड़ी ठीक ठीक बैठा दे (मुंह से मुंह ठीक मिला दे)। उक्त तीन वा दो पात्रो के मिलान को मिट्टी और गोबर से (अथवा मुलतानी मिट्टी में रूई मिलाकर खूब पीस कर अच्छी तरह बन्द कर दे जिससे धुआँ न निकलने पाये)। इसके बाद उस यंत्र को प्रबल अग्निवाले पत्थर के कोयलों वाले चूल्हे पर चढ़ा दे। प्रबल अग्नि की गर्मी से हिंगुल सकोरे से उठकर

भस्माकार में ऊपर की हांड़ी की दीवार में लग जायगा। जब अग्नि शान्त होकर यंत्र शीतल हो जाय तब दोनों पात्रों को खोल कर हॉड़ी के तले पर से भस्म छुड़ा कर साफ कपड़े में छान ले तो सर्वदोषरहित मध्याह्न के सूर्य के समान चमकनेवाला पारा निकल आयगा।

(२) पारे के स्वेदन की विधि—(२ य संस्कार) त्रिकटु, सेंधानमक, त्रिफला, चीते का क्वाथ, कांजी (सड़ाया हुआ भात) मे डाल कर दोलायंत्र मे एक दिन पकाये तो पारे का स्वेदन-कार्य पूरा होता है।

(३) पारदमर्दनविधि—(३ य संस्कार) बेर, ईंट का चूर्ण, काला जीरा, भेड़ के बालो की भस्म, गुड़, सेधानमक और कांजी इनको मिलाकर पारे का सोलहवॉ भाग परिमाण लेकर उसके द्वारा उक्त पारे को तीन दिन मर्दन करने से पारे का मर्दन होता है।

(४) पारे की उद्धृति—(४ र्थ संस्कार) पारे से चौथाई हलदी का चूर्ण और घृतकुमारी के रस में पारे को मर्दन कर पातनयंत्र से ऊर्ध्वपातन करने से उद्धृति क्रिया नामक पारे का चौथा संस्कार होता है।

(५) पारद का पातन (५ वां संस्कार)—पातन तीन प्रकार का है, १. ऊर्ध्वपातन, २. अधःपातन और ३. तिर्यक्पातन। विशुद्धभाव से पातनक्रिया करने के लिये इन तीन प्रकार की क्रियाओ को करना चाहिये—

१. **ऊर्ध्वपातन**—पारे को शुद्ध किये हुए तांबे के साथ माड़कर तीन वार ऊर्ध्वपातन करने से पारे का ऊर्ध्वपातन पूरा होता है।

२. **अधःपातन**—पारे को त्रिफला, सेंधानमक, चीता और घृतकुमारी के रस में मर्दन कर भूधरयंत्र से अध.पातित करे तो पारे की अधःपातनक्रिया पूरी होती है।

३. **तिर्यक्पातन**—कांजी के साथ शोधित अभ्रक और पारा एकत्र माड़ कर एक ताल में पका कर तिर्यक्पातन यन्त्र में गिराने से पारे की तिर्यक्पातन क्रिया पूर्ण होती है।

(६) पारे का रोधन (निरोध) (६ ठा संस्कार)—खिले हुए कमल में बांध कर रखने से पारे की निरोधक्रिया सम्पादित होती है। स्वेदन आदि के कारण हीनशक्ति पारा निरोधक्रिया द्वारा उत्तम वीर्य को प्राप्त होता है।

(७) पारे का नियामन (७ वां संस्कार)—निरोधक्रिया के बाद

पारे की चञ्चलता दूर करने के लिये नियामनक्रिया करनी चाहिये। कांकरोल, सर्पाक्षी (श्वेता पराजिता) कमल और भृङ्गराज द्वारा कांजी के साथ तीन दिन भिगोने से पारे का नियामन होता है। इसके द्वारा पारा ग्रासार्थी होता है।

(८) पारे का दीपन (८ वां संस्कार)—जवाखार, सज्जीखार, सैन्धव, सीसा, सहजना, राई सरसों, अम्लवेतस, मिर्च और कांजी—इन द्रव्यों के साथ पारा मर्दन करके नेपाल देश के ताम्रपात्र में सुखाये। इसके वाद फिर कांजी द्वारा दोलायंत्र में भिगोने से पारे की दीपनक्रिया पूरी होती है।

(९) पारे का अनुवासन (९ म संस्कार)—पत्थर के बर्तन में नीबू का रस रखकर उसमें पारा डाल कर एक दिन धूप में रख देने से पारे की अनुवासनक्रिया पूरी होती है।

(१०) पारे का ग्रासन धातुभोजन (१० म संस्कार)—एक वाज (सिज) वृक्ष की शाखा में आठ अङ्गुल प्रमाण गर्त करके उसमे पारा भर कर मिट्टी से लेप दे और तीन दिन सूखे गोबर की अग्नि में पाक करने से पारे में गन्धक, स्वर्ण आदि धातु ग्रासनशक्ति उत्पन्न हो जाती है।

(११) पारे का मूर्च्छन (११ वां संस्कार)—

१. **मूर्च्छन-विधि**—एक भाग पारा और एक भाग गन्धक एकत्र घोंट कर कज्जली करने से पारे की मूर्च्छन क्रिया सम्पन्न होती है। इस तरह मूर्च्छित पारे के द्वारा अनुपान भेद से सब तरह के रोग दूर होते है।

२. **रससिन्दूर**—एक भाग पारा, तीन भाग गन्धक और पारे का आठवां भाग सीसा की भस्म एकत्र कज्जली करके वालुकायंत्र से पाक करने पर जो रस-सिन्दूर तैयार होता है, वह अनुपानभेद से सर्वरोगनाशक और जरा-मृत्युनाशक है।

३. **श्वेतरस अथवा कर्पूररस**—एक भाग पारा, एक भाग सुहागा, एक भाग शहद, एक भाग लाख, एक भाग गोंगची इनको भृङ्गराज के रस में घोंट कर वालुकायंत्र पर पाक करने से कपूर के सदृश जो पाया जाय उसका नाम कर्पूर रस है। यह भी अनुपानभेद से सर्वरोगनाशक है।

४. **सिन्दूर रस**—पारा एक भाग, गन्धक आधा भाग वालुकायंत्र में पकाने पर वोतल के कण्ठ में जो सिन्दूर समान रस मिलता है उसका नाम सिन्दूर रस है। यह अनुपान भेद से सर्व रोगनाशक है।

५. **पीतरस**—पारा और गन्धक समभाग लेकर हाथीशुण्डी वा भुंइ आमला के रस में सात दिन घोंटकर मूषावद्ध (घरिया में बन्द) कर एक दिन वालुका यंत्र में पाक करने से पीले रंग का जो रस तैयार होता है उसे पीतरस कहते है। यह पान के रस के साथ एक रत्ती प्रमाण सेवन करने से सर्वरोगनाशक होता है।

६. **कृष्णरस**—लोहे अथवा ताँवे के पात्र में एक पल शुद्ध गन्धक रख कर मृदु अग्नि से पाक करे। गन्धक पिघलने पर उसमें तीन पल पारा डाल कर लोहे की कलछी से वार बार चलाये और कुछ देर वाद गोवर के ऊपर रखे हुए केले के पत्ते पर उसे ढाल कर दूसरे केले के पत्ते से लपेटी हुई गोवर की पोटली से ढक दे (दवा दे), इस तरह कृष्णरस तैयार होगा। यह सबरोगो में प्रयोग करने योग्य है।

श्वेतरस, पीतरस, सिन्दूररस वा रससिन्दूर और कृष्णरस ये चार प्रकार के रस यथाक्रम से उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं।

७. **रसताल**—शुद्ध पारा, गन्धक, हरताल और लाल दारमूज (एक प्रकार का विष) ये चार वस्तुएँ समान भाग ले एकत्र मर्दन कर वालुका यंत्र में चार प्रहर पाक करने से जो रस उत्पन्न होता है उसका नाम रसताल है। यह ज्वरघ्न, अग्निदीपक, वीर्यस्तम्भक, कुष्ठ और वातरक्तनाशक, वलकारक, मेधाजनक और रसायन है। एक यव (जौ) मात्रा में इसका व्यवहार करना चाहिये।

८. **स्वर्णसिन्दूर**—स्वर्णभस्म १ पल, पारद ८ पल, गन्धक १६ पल एकत्र घृतकुमारीरस में घोट कर धूप में सुखाये, फिर उस सूखे चूर्ण को बोतल में भर कर वालुकायंत्र से तीन दिन पाक करे, बोतल ठण्डी होने पर लाल रंग का रस संग्रह कर ले। यह एक जौ की मात्रा में पान के रस के साथ प्रयोग करे। अनुपान भेद से यह सर्वरोगनाशक अवश्य है परन्तु विशेषतः ज्वर, अरुचि और मन्दाग्निनाशक है।

(१२) पारे का सञ्चारण (१२ वाँ संस्कार)—पारा, स्वर्णभस्म और लौहभस्म प्रत्येक को समभाग से पुरानी काँजी द्वारा मर्दन करने से पारे की सञ्चारणक्रिया पूरी होती है।

(१३) पारे की गर्भद्रुति (१३ वां संस्कार)—समभाग अभ्रसत्त्व और माक्षिकसत्त्व एकत्र मिलाकर दो भाग पारे के ऊपर डालने से पारे की गर्भ-द्रुतिक्रिया सम्पन्न होती है।

(१४) पारे का जारण (१४ वां संस्कार)—एक चौथाई ताम्रभस्म द्वारा एक भाग पारा मर्दन कर एक गोलक तैयार करे फिर डमरुयंत्र से नीबू का रस भर कर ऊर्ध्वपातन करे। फिर रक्तगणों द्वारा मर्दन करने से पारे का जारण होता है।

(१५) पारे का मारण (१५ वां संस्कार)—ढाक के बीज, चन्दन और नीबू के रस में मर्दन कर भूधरयन्त्र अथवा बालुकायंत्र से पारे को पाक करने से उसकी मारणक्रिया पूरी होती है।

(१६) पारे का भस्मीकरण (१६ वां संस्कार)—(क) अपामार्ग तैल के द्वारा मर्दन कर पुटपाक करने से पारा भस्म होता है।

(ख) अथवा पुहकरमूल और कॉटानट की जड़ द्वारा पुटपाक करने पर भी पारा भस्मीभूत होता है।

मारण के विना भस्मीकरण विधि—(क) अपामार्ग के बीज और कमल के कल्क (पानी में पिसा हुआ समग्र कमल पुष्प) के साथ पारे को मूषावद्ध कर पुटपाक करने से मारण के विना भी पारा भस्म हो जाता है।

(ख) अथवा पारा और अभ्र समभाग बड़ के दूध या लासा में तीन पहर मर्दन कर कोष्ठिकायन्त्र से पुटपाक करने पर पारा भस्मीभूत होता है।

भस्मीभूत पारे का लक्षण—भस्मीभूत पारे में चमक नहीं रहती। यह स्थिर, लघु, श्वेतवर्ण, अन्य धातुमारण में समर्थ और ऊर्ध्वपातन के अयोग्य होता है।

(१७) पारे का रञ्जन (१७ वां संस्कार)—गन्धक मिला कर जारित सीसे को फिर ताम्र द्वारा जारण करना चाहिये। इस तरह जारित तीन भाग ताम्र द्वारा मारित होने पर पारे का रंग लाख के सदृश हो जाता है।

(१८) पारे का वेधन (१८ वां संस्कार)—पारे का वेधनकार्य करने के लिये सब से प्रथम पारे का रञ्जन, फिर जारण और उसके वाद फिर रञ्जन और जारण करना चाहिये। इस तरह सात वार रञ्जन और जारणक्रिया करने से पारे का वेधन समाप्त होता है।

इस तरह पारा अन्य सब धातुओं को स्वर्ण में परिणत कर सकता है। किन्तु चिकित्साक्षेत्र मे पारे को रञ्जन और वेधन करने की आवश्यकता नहीं होती। केवल भस्मीभूत पारा ही औषध के लिये व्यवहार किया जाता है।

पारद भस्म के अनुपान

श्वास, कास और शूल में—पीपल, मरिच, सोंठ, भार्गी और मधु।

रक्तदुष्टि में—हल्दी और चीनी अथवा मधु।

पाण्डु और कामलारोग में—त्रिकटु, त्रिफला और अडूसे के क्वाथ वा मुलहटी।

मूत्रकृच्छ्र में—शिलाजीत, इलायची और मिश्री अथवा गोखरू का रस और दूध।

धातुदौर्वल्य में—लौंग और पान का रस।

ज्वर में—(चाहे किसी प्रकार का हो) कालानमक, लौंग, चिरायता और हर्रा अथवा नीबू का रस।

कोष्ठबद्धता में—काला नमक और त्रिफला।

वमन में—भङ्ग और अजवाइन अथवा मधु, लाजा, चीनी और मूंग का यूष।

सब प्रकार के उदररोग में—कालानमक, हल्दी, भङ्ग और अजवाइन।

क्रिमिरोग में—हल्दी या अनारस के पत्तों का रस।

अतिसार में—अफीम, लौंग, हिङ्गुल एवं भङ्ग।

मन्दाग्नि में—कालानमक और अजवाइन।

सब तरह के पित्त विकार में—आँवला और चीनी।

सब तरह के वायु विकार में—पीपल।

सब तरह के कफ विकार में—आदी का रस।

त्रिदोषज ज्वर में—दशमूल पाचन और पीपल का चूर्ण।

रक्तपित्त में—हर्रे का चूर्ण और मधु अथवा पीपलचूर्ण और अडूसे का क्वाथ।

क्षयकास में—घृत और वकरी के दूध में पकाया हुआ पीपल का चूर्ण अथवा त्रिफला, गन्धक, त्रिकटु और पुराना गुड़।

हिचकी में—काला नमक, विजौरे का रस और मधु।

बवासीर में—जमींकन्द का भुर्ता, तैल और सेंधानमक।

विसूचिका में—हींग और पीपल।

प्रमेह और शुक्र की तरलता में—सतावर अथवा सेमर की जड़ का चूर्ण।

प्लीहा और गुल्म में—न्यग्रोधादि[1] या असनादि[2] के क्वाथ में मिली हुई हर्रा, लहसुन और गोमूत्र।

पित्तशूल में—कुलथी का यूष और शङ्ख की भस्म।

आमशूल में—तिल का क्वाथ और त्रिकटु।

शोथ और पाण्डु रोग में—त्रिफला का क्वाथ।

कुष्ठ में—पञ्चनिम्ब (नीम का पञ्चाङ्ग समभाग, छाल, पत्ते, फल, फूल, जड़) के क्वाथ के साथ।

श्वेत कुष्ठ में—जारित अभ्र और त्रिफला।

वातरक्त में—गिलोय हर्रा और गुड़।

गृध्रसी में—सोंठ का चूर्ण और एरण्डमूल सहित गरम किया हुआ दुग्ध।

मेदरोग में—मधु और जल।

कार्श्य रोग में—चीनी।

उन्माद और अपस्मार (मृगी) में—घृत, हींग, कालानमक, त्रिकटु और गोमूत्र।

दुष्टव्रण में—त्रिफला, परवल का जड़, त्रिकटु, गुग्गुल, गिलोय और विडङ्ग।

गलगण्ड में—मूली का रस, त्रिफला, परवल की जड़, त्रिकटु, गुग्गुल, गिलोय और विडङ्ग का लेप।

---

१. न्यग्रोधादिगण—**न्यग्रोध-पिप्पल-सदाफल-रोध्रयुग्म-जम्बूद्वयार्जुन-कपीतन सोमवल्क-प्लक्षाम्र-वञ्जुल-पियाल-पलाशनन्दि-कोली-कदम्बं-विरला-मधुक-मधूकम् ॥ (वैद्यकशब्दसिन्धु पृष्ठ ६२४)**

२. असनादिगण—**असन-तिनिश-भूर्ज-श्वेत-वाह-प्रकीर्य-खदिर-कदरभण्डी-शिंशपामेषश्रृङ्गी-चन्दनत्रय-ताल-पलाश-जोङ्ग-शाल-क्रमुक-धव-कुलिङ्ग-छागकर्णाश्वकर्णात्मको गणः । (वै० श० सि० पृष्ठ ९२)**

मसूरिका—नारियल का जल।

विषदोष में—तेल, कपास के पत्ते और अनन्तमूल का क्काथ। अथवा चावल का धोया जल, तण्डुलीयक (चौलाई) का रस अथवा कपूर, दधि और गोमय (गाय के गोवर) का रस।

रसायन में—त्रिफला चूर्ण और स्वर्णभस्म।

वाजीकरण में—त्रिफला चूर्ण, स्वर्णभस्म और लौहभस्म अथवा घृत, मधु, सतावर का रस और दूध अथवा जारित स्वर्णमाक्षिक और मधु अथवा अभ्रभस्म और वकफूल (शिवलिङ्गी के फूल) का रस और कच्चे केले का रस।

रससेवनविधि

पारद (भस्म) भक्षण करने से पूर्व एकदिन प्रातः जुलाव लें और उपवास कर रहें। रात को थोड़ा आहार किया जा सकता है। विरेचनजनित दुर्वलता दूर हो जाने पर पारद सेवन करें। मात्रा-पूर्ण वयस्क के लिये एक रत्ती।

पारदसेवन के समय कोष्ठवद्धता हो तो शयन के पूर्व पीपल और गिलोय का क्काथ सेवन करना चाहिये। पारदभस्म पान के रस के साथ सेवन करने से कोष्ठवद्धता नाश करती है।

रससेवन में पथ्यापथ्य

पथ्य— मूंग का यूप, सेंधा नमक, पीपल मोथा, पञ्चमूल, गेहूं, साठी चावल, गोदुग्ध, स्नान, मनोरमा स्त्री से सम्भाषण, घृत जौ, आदी, जीरा इत्यादि पारदसेवी के लिये पथ्य हैं।

अपथ्य—कूष्माण्ड, ककड़ी, तरवूज, करेला, फूलशाक, काकरोल, कलमी, काकमाची (मकोय) ये आठ पारदसेवी के लिये अपथ्य हैं। तेलमर्दन, काँजीभक्षण, मद्य, दधि, खटाई, लहसन, प्याज, मूली, कुलथी, वैंगन, रात मे जागरण, दिन में सोना, कटु, तिक्त, लवण अधिक मीठा, अधिक वायु सेवन, शैत्यक्रिया, धूप में वैठना, शोक, ताप, चिन्ता, साहस और वीरताप्रदर्शन तथा जो वस्तुएं पारे एवं धातुओ के मारण में सहायता करती हैं उनका त्याग करें। कपूर, दारुचीनी, वड़ी इलायची, तेजपत्ता, नागकेसर, त्रिकटु और जायफल भी अपथ्य हैं। अजीर्ण में भोजन और क्षुधा का वेग नहीं रोकना चाहिये।

अशोधित पारद सेवन से उत्पन्न विकारनिवारण का उपाय ।

अशुद्ध पारद सेवन से हृदय में ज्वाला (जलन) हो तो पीसे हुए जीरे के साथ शिङ्गी, कई, जियल माछ का रस, साठी चावल और दूध सेवन करें। वायुवृद्धि होने पर नारायण तेल की मालिश करें। मन की चञ्चलता हो तो शीतल जल देवें। अत्यधिक तृष्णा में डाभ (कच्चे नारियल) का जल, मूंग का यूष और चीनी का शरबत सेवन करें।

सीसा और वङ्ग मिश्रित पारा भक्षण करने से असुस्थता हो तो गोमूत्र और सेंधानमक सेवन करना उचित है।

अशुद्ध पारद सेवन से शूल, नाभिशूल, तन्द्रा, ज्वर, अरुचि, आलस्य, कोष्ठवद्धता, दाह, शोथ आदि रोग उत्पन्न होते है। उक्त रोगों द्वारा आक्रान्त होने पर सौवर्चल लवण और गोमूत्र तीन दिन भक्षण करे।

अधिक खट्टा, कटु द्रव्य सेवन से पारद की क्रिया नष्ट होती है। वर्तमान समय में अनेक कविराज मकरध्वज या रससिन्दूर के साथ कुनैन मिलाकर देने की व्यवस्था करते है। यह अति गर्हित कार्य है। क्योंकि कुनैन अत्यन्त तिक्त वस्तु है, इसके साथ पारद सेवन करने से पारे का गुण नष्ट होता है और शरीर में विषक्रिया उत्पन्न होती है।

पारदसेवी को कभी भूख सहना या उपवास करना उचित नही है।

अशोधित पारा सेवन से उत्पन्न सब रोग शोधित गन्धक सेवन से नष्ट होते है।

अशोधित रसकपूर के सेवन से उत्पन्न असुस्थता मे मिश्री, धनिये का भिगोया हुआ जल सेवन करे।

अशोधित पारे से बने हुए रससिन्दूर के सेवन से भी पारे की तरह विष क्रिया होती है। इस दशा में सात दिन गोल मरिच और गाय का घी सेवन करे।

पारे के गुण—शोधित और भस्मीकृत पारा जरा-मृत्युनाशक है। यह श्रेष्ठ रसायन, वल, वुद्धि, कान्ति और मेधावर्द्धक है। यह सर्वश्रेष्ठ महौषध है।

गन्धक

गन्धक वर्णभेद से चार प्रकार का है, यथा, लाल, पीला, सफेद और काला। स्वर्णसंस्कार विषय मे लालवर्ण, रसायनकार्य मे पीतवर्ण और रंग-

विलेपनकार्य में श्वेतवर्ण गन्धक प्रशस्त है। कृष्णवर्ण गन्धक स्वर्णसंस्कारादि सव कार्यों में प्रशस्त है। यह अत्यन्त दुष्प्राप्य है। पीले रंग वाले गन्धक को आंवलासार कहते हैं। इसका दूसरा नाम शुकपिच्छ है। रसक्रिया और रसायन कार्य में यही गन्धक श्रेष्ठ है। लाल रंग का गन्धक लोहमारण कार्य में व्यवहृत होता है। उसका दूसरा नाम शुकचञ्चु है।

गन्धक अत्यन्त रसायन, मधुररस, पाक में कटु, उष्णवीर्य, कण्डू, कुष्ठ, विसर्प और दद्रुनाशक, अग्निदीप्तिकर, पाचक, आमदोषनाशक, शोषक, विषनाशक, पारद का वीर्यबर्द्धक, क्रिमिनाशक और स्वर्ण से भी अधिक गुणवाला है।

गन्धक की शोधनविधि

गन्धक में शिलाचूर्ण और विष ये दो दोष रहते है। इस कारण औषधार्थ उसे उत्तमरूप से शोधन करना उचित है।

(१) गन्धक का चूर्ण गाय के घी के साथ अग्निताप से पिघला कर घृताक्त वस्त्र द्वारा छान ले और एक घड़ी भर गाय के दूध में भिगोकर जल से धो डाले। इस तरह शोधित गन्धक का शिला चूर्ण दोष बस्त्र द्वारा दूर होता है। विषभाग भाप की तरह घृत में मिला रहता है। और विशुद्ध गन्धक भाग पिण्डाकार में परिणत होता है। शोधित गन्धक सेवित होने पर अपथ्य करने से भी कुछ हानि नही होती। किन्तु अशोधित गन्धक सेवन करने से अपथ्य सेवन द्वारा यह हलाहल (विष) की तरह प्राणनाश करता है।

(२) गन्धक पीसकर तीन दिन भृङ्गराज के रस में भावना दें फिर उसे सुखा कर चूर्ण करे फिर एक कलछी पर थोड़ा घी डालकर अग्नि पर रखे, अग्नि से तपे हुए उस कलछी पर गन्धक का चूर्ण छोड़ दे। गन्धक पिघलने पर घृताक्त वस्त्र द्वारा भृङ्गराज रस से भरे हुए वर्तन का मुख वन्द कर उसमें पिघला हुआ गन्धक छोड़ दें। इस तरह गन्धक के वर्तन में जम जाने पर घड़ी भर उसी रस में अग्निताप से पका लें। इस तरह शोधित गन्धक अत्यन्त शक्ति सम्पन्न होता है। सब तरह की पर्पटी वनाते समय इसप्रकार शोधित गन्धक सबसे अधिक फलप्रद होता है।

गन्धकसेवनविधि

शोधित गन्धक त्रिफलाचूर्ण, घृत, भृङ्गराजरस और मधु के साथ मिलाकर २ माशे सेवन करने पर गिद्ध की तरह दृढ़शक्ति होती है और रोगहीन दीर्घायु प्राप्त होती है।

त्वक् दोष में—गन्धक २ माशे और पक्का केला।

बलक्षय में--चीते की जड़ का चूर्ण और शहद के साथ।

मन्दाग्नि में—त्रिफला के क्वाथ के साथ।

क्षयकास में—बासक के क्वाथ के साथ।

ऊर्ध्वदेहगत सब रोगों में—घृत और मधु के साथ।

कुष्ठ रोग में—गन्धक १ भाग, मरिच १ भाग, त्रिफला ६ भाग, एकत्र कर अमलतास के मूल के रस में सान कर सेवन करने से और अमलतास के मूल के रस मे गन्धक पीस कर प्रतिदिन शरीर पर लेपन करने से सब प्रकार का कुष्ठरोग दूर होता है।

बलवृद्धि के लिए—दूध के साथ गन्धक २ माशे मात्रा मे।

दुष्ट्रव्रण में—तिल के तैल के साथ।

सब रोगों में—गाय के घी के साथ।

चक्षुदोष में—समपरिमाण पीपल और हर्रे के चूर्ण के साथ।

दुर्जय कण्डू और पामारोग में—१ तोला गन्धकचूर्ण, तैल, अपामार्ग रस और मरिच के साथ मिलाकर सर्वाङ्ग पर प्रलेप।

शुक्रतारल्य में—गोदुग्ध, चतुर्जात (दालचीनी, बड़ी इलायची, तेजपत्ता और नागकेशर)।

सुजाक में—गिलोय, हर्रा, बहेडा, आमला, त्रिकटु।

भूख न लगने पर **उदरामय में** **कुष्ठ में** **शूल में**	भृङ्गराज और आदी प्रत्येक के रस या क्वाथ में पृथक् २ विभावित गन्धक १ तोले मात्रा में।

गलत् कुष्ट में—गन्धक तैल सेवन करे।

गन्धक तैल बनाने की विधि ।

गन्धक का चूर्ण दूध में डाल कर कुछ क्षण तक गरम करे फिर उसका दही जमा दे, उस दही को बिलो कर घृत तैयार करे । इसका नाम गन्धक का तैल है । यह गन्धक तैल शरीर पर लेपन करने से या सेवन करने से गलत् कुष्ठ निवृत्त होता है ।

गन्धकसेवी का पथ्यापथ्य ।

गन्धकसेवी, क्षार द्रव्य, खट्टी वस्तु, अधिक लवण वाला द्रव्य, स्त्रीसङ्ग, घोड़े की सवारी पर भ्रमण, मद्यपान, शाक और रेल, मोटर आदि तेज चलने वाली सवारी पर भ्रमण, दाल खाना, कटु द्रव्य छोड़ दे ।

गन्धक का गन्ध दूर करना ।

गन्धक का चूर्ण दूध में औटते-औटते खोआ करे, फिर उसे सूर्यावर्त-रस और फिर त्रिफला के क्वाथ से औटावे । इस प्रकार शोधने से गन्धक की गन्ध दूर होगी ।

रसचिकित्सा

पारद के धातु-ग्रासन की सहज प्रक्रिया

(१) ९ प्रकार के विष और ७ प्रकार के उपविष द्वारा मर्दन करने से पारे मे धातुग्रासनशक्ति उत्पन्न होती है ।

(२) त्रिकटु, दो क्षार, राई सरसों, पांच नमक, लहसन, नौसादर, सहजना, इन प्रत्येक का चूर्ण पारे के सम परिमाण लेकर इन सबको एकत्र गरम खरल में डालकर जमीरी नीबू के रस मे तीन दिन मर्दन करे तो पारे में धातुग्रासनशक्ति उत्पन्न होती है ।

(३) विन्दुली कीट (लाल रंग का कीड़ा)—नमक और नीबू के रस के साथ तीन दिन पारा मर्दन करने से उसमें ग्रासनशक्ति उत्पन्न होती है ।

(४) पूर्वोक्त प्रक्रियानुसार हिङ्गुल से निकाले हुए पारे की अनुवासन क्रिया सम्पन्न करके उसे एक सीज की दृढ़शाखा मे आठ अङ्गुल गहरा छेद करके सम परिमाण गन्धक सहित भरकर मिट्टी से लेप कर दे । फिर गिलोय

और श्यामालता द्वारा अग्नि प्रज्वलित करके तीन दिन अग्नि दें। इस प्रकार पारे मे स्वर्णादि सव धातुओं को ग्रास करने की शक्ति उत्पन्न होती है, यह ग्रासन शक्ति युक्त पारा मकरध्वज वनाने में प्रयोग करना चाहिये।

पारदशोधन और प्रयोग की विशेषविधि

व्यवसायी लोग बिक्री के लिये पारे के साथ सीसा और वङ्ग मिला देते हैं। इस कारण पारद मे जो कृत्रिम दोष उत्पन्न होता है उसका नाम षण्डत्व दोष है। तीन पातन (अर्थात् ऊर्ध्वपातन, अधःपातन और तिर्यक्पातन) द्वारा यह षण्डत्व दोष विनष्ट होता है। विष, वह्नि और मल ये तीन पारद के स्वाभाविक दोप है। इन तीन दोषो से क्रमशः मृत्यु, सन्ताप और मूर्च्छा होती है, अर्थात् पारद के विषदोष द्वारा मानव की मृत्यु होती है, वह्निदोष द्वारा सन्ताप उपस्थित होता है और मलदोष द्वारा मूर्च्छा होती है। नागदोष और वङ्गदोष इन दोनों को पारे का यौगिकदोष कहा जाता है। इन दोषों से मनुष्यो मे जडता, आध्मान (पेट फूलना) और कुष्ठरोग उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त पारे में और सात औपाधिक दोष हैं जिन्हें सात केञ्चुली कहते हैं। ये सात कञ्चुकी भूमिज, गिरिज और वारिज अर्थात् भूमितल, पर्वत और जल के मिलन से उत्पन्न होती हैं। इस तरह रसशास्त्रविदो ने पारे के वारह दोष निर्देश किये हैं।

भेड़ के वाल (ऊन), हल्दी का चूर्ण, ईंट का चूर्ण, घर में जमी हुई धूल, नीवू के रस के द्वारा मर्दन करने से नागदोष; राखालशशा और श्वेत आक की जड़ की छाल के चूर्ण द्वारा मर्दन से वङ्गदोष; अमलतास फल की मज्जा के साथ मर्दन करने से मलदोष; चीते की जड़ के चूर्ण के साथ मर्दन करने से वह्निदोष; काले धतूरे के रस के साथ मर्दन करने से चाञ्चल्यदोष; त्रिफला के क्वाथ के साथ मर्दन करने से विषदोष; त्रिकटु के साथ मर्दन करने से गिरिदोष और त्रिकण्टक (कटेरी, गोखरू, जवासा) के साथ मर्दन करने से असह्याग्निदोष निवृत्त होता है। इससे पारद के आठ दोष और सात कञ्चुकी दोप शान्त होते है।

मर्म्मच्छिन्न और क्षार वा अग्नि द्वारा दग्ध होने पर उन स्थलों में पारद का प्रयोग करना उचित नहीं होता है।

इसके अतिरिक्त अन्यान्य स्थलों मे पारद प्रयुक्त होने से आशानुरूप उपकार प्राप्त हो जाता है। शोधित पारद मृदु अग्निताप सह्य करता है। मूर्च्छित पारद

व्याधि नाश करता है; मारित पारद तीव्र अग्नि ताप से भी निष्कम्प और वेगहीन अवस्था में रहता है और वह मनुष्यादि की आयु और आरोग्य बढ़ाता है।

रसबन्ध

वार्तिककारो ने पारे को बांधने के लिये अर्थात् चांचल्य और दुर्ग्रहत्व के निवारण के लिये पच्चीस प्रकार के रसबन्धों का वर्णन किया है। यथा—हठ आरोट, हठाभास और आरोटाभास, क्रियाहीन, पिष्टि, क्षार, खोट, पाट, कल्कबन्ध, कज्जलि, सजीव, निर्जीव, सबीज, शृङ्खला, द्रुतिबन्ध, बालक, कुमार, तरुण, वृद्ध, मूर्तिबन्ध, जलबन्ध, अग्निबन्ध, सुसंस्कृत और महाबन्ध। ये पच्चीस प्रकार के बन्ध और कोई कोई जालुकाबन्ध नामक और एक प्रकार की बन्ध क्रिया मिलाकर छब्बीस प्रकार के बन्ध कहते है।

जालुकाबन्ध दैहिकक्रिया के उपयोगी नहीं है। कामिनी-द्रावण कार्य में यह अति प्रशस्त है। पारद सम्यक् शोधित किये बिना यदि उसकी बन्धक्रिया की जाय तो उसे हठबन्ध कहते हैं। यह बन्ध क्रियायुक्त पारद सेवन करने से मृत्यु वा उत्कट व्याधि उत्पन्न करता है। सुशोधित पारद की बन्धक्रिया होने से वह आरोटबन्ध कहलाता है। यह पारद क्षेत्रकरण में श्रेष्ठ और धीरे धीरे व्याधि नाशक है। धातु और मूलादि पदार्थ द्वारा भावित करके बन्धक्रिया करने पर भी जिसके गुण मे विकार हो अर्थात् यदि पारद पुटपाक के समय स्वभावानुसार अन्य पदार्थ का संयोग परित्याग कर निकल जाय तो वह हठाभास वा आरोटाभास बन्ध कहा जाता है।

अशोधित धात्वादि के साथ जो पारद संस्कृत हो उसे क्रियाहीन कहते हैं। यह पारा सेवन के बाद अपथ्य सेवन से विविध विकार उपस्थित होते है।

द्रव्यविशेष के साथ पारा गाढ़तर रूप से मथन करके और तेज धूप में रख कर, मक्खन के तुल्य पिट्ठी तैयार करने से उसे पिष्टिकाबन्ध कहते हैं। पिष्टिका-बन्धयुक्त पारद अग्नि का उद्दीपक और अत्यन्त पाचक है। शङ्ख, सीप और कौडी आदि क्षार पदार्थ के साथ पारद मर्दन करने से उसे क्षारबन्ध कहते है। क्षारबन्ध युक्त पारद अग्नि का अत्यन्त उद्दीपक, पुष्टिजनक और शूलनाशक है।

जिस बन्ध मे पारद खोटता को प्राप्त होता है और बार-बार आध्मापिन करने से उसका क्षय होता रहता है। वह खोटबन्ध कहलाता है। खोटबन्ध युक्त पारा सर्व रोगनाशक है।

कज्जली द्रवीभूत करके केला के पत्ते पर ढाल दे और केले के पत्ते से आच्छादित पोटली से उसे दवा कर चिपटा करे। इसे पोटबन्ध कहते हैं।

द्रव्यविशेष के साथ स्वेदादि द्वारा पारद को पङ्करूप मे परिणत करने से उसे कल्कबन्ध कहते है। कल्कबन्ध युक्त पारा कल्क द्रव्य का फल देता है।

पारद-गन्धक का एकत्र मर्दन करने से चिकना काजल की तरह जो पदार्थ होता है उसे कज्जलीबन्ध कहते है।

जिस बन्ध मे पारद भस्म करते समय, अग्नियोग से निकल जाता है, वह सजीव बन्ध निर्दिष्ट होता है। यह सेवन करने से पारदभस्म की क्रिया अथवा शीघ्र व्याधिविनाश कुछ भी कार्य सिद्ध नही कर सकता है।

अभ्र वा गन्धक के साथ जारित होकर भस्मीभूत होने से पारद सब धातुओ मे शिरोमणि हो जाता है। इस तरह भस्मीभूत पारद अतिशीघ्र सर्वरोग विनाश करता है।

चौथाई स्वर्ण और समान गन्धक के साथ पारद मर्दन कर पिट्ठी करके पुटपाक द्वारा जारित करने से निर्बीजबन्ध नाम से कहा जाता है। यह सर्वरोग नाशक है।

हीरकादि के संयोग से जारित पारद के साथ अन्य जारित पारद समान भाग में मिला देने से वह शृङ्खलाबद्ध कहा जाता है। यह पारद देह की दृढ़ता का साधक है। यह अत्यन्त गुणसम्पन्न है।

बाह्यद्रुति वाला पारा बद्ध होकर भस्मरूप मे परिणत होने से वह द्रुतिबद्ध पारा कहा जाता है। श्वेत सरसों का चौथाई (¼) भाग परिमाण मे सेवन करने से यह दुःसाध्य रोगसमूह को विनष्ट करता है।

पारा सम प्रमाण अभ्र के साथ जारित होने से बालबद्ध कहा जाता है। उपयुक्त अनुपान के साथ सेवित होने से यह शीघ्र रसायनकार्य सम्पादन करता है और रोगोत्पत्ति की आशंका दूर करता है एवं उपद्रव और अरिष्टलक्षणाक्रान्त पीड़ाओं को भी विनष्ट करता है। द्विगुण अभ्र के साथ जो पारा जारित हो वह

कुमारवद्ध कहा जाता है। चावल भर मात्रा में इसका तीन सप्ताह सेवन करने से कुष्ठ आदि पापज व्याधियां निवारित होती हैं एवं यह रसायन हो जाता है।

चौगुने अभ्र के साथ जारित पारद तरुणवद्ध है। यह उत्कृष्ट रसायन है। एक सप्ताह तक इस पारा के सेवन से सर्वरोग विनष्ट होते हैं एवं वीर्य और वल उत्पन्न होता है।

छः गुने अभ्र के साथ जीर्ण होकर जो पारा अग्निसहत्व को प्राप्त हो, अर्थात् अग्निताप को सहकर निकल जाय उसे वृद्धवद्ध कहा जाता है। देह-हितकर ओषधियों में और धातुओं के संस्कारों में यह पारा प्रयुक्त होता है।

अभ्र जारण न करके केवल दिव्य ओषधियों के मूलादि द्वारा पारद अतिशय अग्निसह होने से वह मूर्तिवद्ध कहा जाता है। यह पारा जारित करने से अग्नि-ताप से क्षय नहीं होता और इसका सव रोगों में प्रयोग करने से अनुपम उपकार पाया गया है।

शिलाजल द्वारा जो पारा वद्ध हो उसे जलवद्ध पारा कहते हैं। यह जरा, रोग और मृत्युनाशक एवं कल्पनानुसार उन उन द्रव्यों का फल देनेवाला है।

केवल पारा अथवा धातु मिला हुआ पारा आध्मात होकर गोली के आकार में हो जाय और वह गोली अग्निताप से क्षीण न हो तो उसे अग्निवद्ध कहते हैं—यह पारे की गोली मुख में धारण कर मनुष्य आकाश-विचरण करने में समर्थ होते हैं।

सोने और चांदी के साथ पारा आध्मापित करने पर दोनों द्रव्य एकत्र मिल कर अग्निदीप्त उज्वल गुटिकाकार वन जाता है। उस समय वह क्षय को प्राप्त नहीं होता और अत्यन्त भारी होता है। वह गुटिका या गोली चोट लगने से नमक की तरह चूर्ण हो जाता है और घिसने से मलिन नहीं होता है। यही पारद का महावन्ध है। यह वन्ध ठीक ठीक सम्पन्न हुए विना गुटिका क्षण भर में द्रवीभूत हो जाती है।

उल्लिखित वन्ध-प्रक्रियाओं में आठवें संस्कार से संस्कृत पारा व्यवहार्य अथवा हिंगुल से निकाले हुये पारा का भी व्यवहार किया जा सकता है।

पारदभस्मविधि

प्रथम प्रणाली—ढाक के वीज, लाल चन्दन और जम्हीरी नीवू के साथ पारा मर्दन करके सजीव वद्ध करने के वाद उसे यन्त्र में पातित करने से मारित होता

है। अपामार्ग वीज और कमलगट्टा के कल्क के साथ मर्दन कर मूषा में बन्द कर दृढ़ रूप से आध्मापित करने से पारा भस्मीभूत होता है।

द्वितीय प्रणाली—काकडूमर के लासा द्वारा हिङ्गु भावित करके उसके साथ मर्दन पूर्वक पुटदग्ध करने से पारा भस्मरूप मे परिणत हो जाता है।

तृतीय प्रणाली—अपामार्ग के वीज और एरण्ड बीजो का चूर्ण पारे के नीचे ऊपर रख कर मूषारुद्ध करे। इस तरह चार बार पुटपाक करने से पारा भस्मत्व को प्राप्त होता है।

चतुर्थ प्रणाली—पान के रस मे पारा मर्दित करके कॉकरोल-मूल के गर्भ मे रखे हुए एक मिट्टी के मूषा से पुटपाक करने से ही पारा भस्मरूप मे परिणत होता है।

पारदभस्म सेवन के साधारण नियम

पारदभस्म सेवन के वाद यदि अधिक उबकाई आवे तो दही मिला हुआ अन्न या जीरे के साथ कृष्ण मत्स्य भोजन करे। वायु की अधिकता जान पड़े तो नारायणादि तैल मालिश करे। चित्त की अस्थिरता होने पर सिर को शीतल जल से धोवे। घास अधिक होने से डाभ का जल और चीनी मिलाकर मूंग का यूष पान करे। रस-वीर्य वृद्धि के लिये अंगूर, अनार, खजूर और केला एवं दधि, दुग्ध, ईख का रस और चीनी भोजन करना चाहिये। रससेवन परित्याग करते समय तक वृहतीफल, विल्व आदि पदार्थ भोजन करे।

मकरध्वज बनाने की विधि

पृथिवी के इतिहास की आलोचना करने पर मालूम होता है कि मिश्र, चीन आदि देशो मे अति प्राचीन काल से विविध कला-विद्या प्रकाशित होने पर भी अधिकांश शास्त्र का मूल इस भारतवर्ष मे ही प्रथम उद्भावित हुआ था, अव भी जगत के सब सुधी वर्ग इसे एक वाक्य से स्वीकार करते है। प्राचीन वेद-संहिताओ की पर्यालोचना करने से पता चलता है कि अति प्राचीन काल से भारतवर्ष मे ही चिकित्साविज्ञान के मूल सूत्र सव से प्रथम आविष्कृत हुए थे। पाश्चात्य ऐतिहासिक पण्डितो ने स्वीकार किया है कि विविध धातु, उपधातु, रस, उपरस आदि भारत-वर्ष मे ही सबसे प्रथम औषध रूप से व्यवहार मे लाये गये है।

आयुर्वेदीय त्रिदोष विज्ञान, वैदिक औषधपथ्यप्रयोगज्ञान एवं चिकित्सा-प्रणाली के सिवाय तान्त्रिक चिकित्सा विज्ञान ने भारत के चिकित्साशास्त्र को जगत के अद्वितीय चिकित्साशास्त्ररूप में परिणत किया है। मकरध्वज आयुर्वेदीय तन्त्रोक्त महौषध है। चिरकाल से यह महौषध नाना प्रकार साध्य–असाध्य व्याधि को आरोग्य करके जीवजगत का परम कल्याणसाधन करती आ रही है।

पारद, गन्धक और स्वर्णयोग से यह औषध बनती है। स्वर्ण के सूक्ष्म सूक्ष्म पत्र ८ तोला, पारद ६४ तोला और गन्धक १२८ तोला। प्रथम स्वर्णपत्र और पारा एकत्र मांड़ कर फिर गन्धक मिलाकर उत्तम रूप से कज्जली करते हैं फिर उसे घृतकुमारी के रस से मर्दन कर एक समतल बोतल में भरकर वालुका यन्त्र से तीन दिन पाक करते हैं। आजकल इसी पद्धति से सब वैद्य प्रायः मकरध्वज तैयार करते हैं। उक्त प्रणाली से मकरध्वज तैयार करने में स्वर्ण बोतल के तल देश में पड़ा रह जाता है, वह पारे के साथ मिलता नहीं। बोतल के गल देश में पारा और गन्धक एक साथ अग्निताप से उठकर लाल रंग का हो जाता है। साधारण के निकट यही मकरध्वज है। चिरकाल से विज्ञ चिकित्सकगण इसे व्यवहार करते आरहे हैं। इसके गुणों पर मुग्ध होकर पाश्चात्य चिकित्सकों ने कठिन कठिन रोगों में इसे व्यवहार करके आश्चर्य फल पाया है। किन्तु जिस प्रणाली से मकरध्वज तैयार होता आया है वह प्रणाली तन्त्रोक्तप्रणाली से बिलकुल भिन्न है तन्त्रोक्त असल नियमानुसार पारद और स्वर्ण को यथाविधि संस्कार करके उसके द्वारा मकरध्वज तैयार करने से स्वर्ण निःशेषरूप से पारद के साथ मिल जायगा एवं किसी तरह रासायनिक प्रक्रिया इस स्वर्ण को पारे से अलग करने में समर्थ न होगी।

नीचे लिखी प्रणाली से मकरध्वज तैयार करने से अवश्य ही स्वर्ण पारद के साथ मिल जायगा।

प्रथम विधि—स्वर्णभस्म १ पल (८ तोला) मूर्च्छित पारद ८ पल (६४ तोला) गन्धक १६ पल (१२८ तोला) एकत्र कज्जली करके घृतकुमारी के रस में मर्दन करके तीन दिन वालुकायन्त्र में पाक करने से जो मकरध्वज तैयार होता है उसमें सोना पृथक् रूप से अवस्थान नहीं करता।

द्वितीय विधि—शोधित स्वर्णपत्र १ पल, एवं ग्रासन शक्तिविशिष्ट अर्थात् दशम संस्कार द्वारा संस्कृत पारा ८ पल, गन्धक १६ पल एकत्र कज्जली करके

३ दिन वालुका यन्त्र में पाक करने से जो मकरध्वज तैयार होता है, उससे स्वर्ण पृथक् नहीं किया जा सकता।

उक्त प्रणाली द्वारा तैयार किया मकरध्वज प्रायः प्रचलित मकरध्वज की अपेक्षा हज़ार गुण अधिक फल देनेवाला है।

भारतीय रसायनशास्त्र के मत से पारद की विभिन्न प्रकार धातु को ग्रास करने की शक्ति है। परन्तु केवल शोधित पारे मे ग्रासन शक्ति नही रहती। आयुर्वेदीय रसशास्त्र में पारे के जो अठारह प्रकार के संस्कारो का विषय उल्लिखित है, वह वर्तमान समय के अधिकांश आयुर्वेदीय चिकित्सको को मालूम नही है। वे केवल पारद के आठ प्रकार के संस्कार ही जानते है। ८ प्रकार के संस्कारों द्वारा संस्कृत पारे से धातुभोजन शक्ति उत्पन्न नही होती अत एव ऐसे पारे से मकरध्वज तैयार करने से स्वर्ण उससे पृथक् भाव मे अवस्थान करे तो आश्चर्य ही क्या है? प्रचलित मत से तैयार किये हुये मकरध्वज मे केवल शोधित पारे की उक्त धातुग्रासन शक्ति नही रहती।

षड्गुणबलिजारित मकरध्वज प्रस्तुत विधि—ग्रासनशक्ति वाला पारा १ पल, गन्धक २ पल और शोधित स्वर्ण १ तोला एकत्र कज्जली करके घृतकुमारी के रस में घोट कर साधारण मकरध्वज पाक के नियम से पाक करने पर जो मकरध्वज प्राप्त होगा, उसके साथ फिर पूर्व परिमित गन्धक घोट कर फिर पूर्ववत् पाक करे। इस तरह पारद के ६ गुण गन्धक अर्थात् ६ बार पाक क्रिया सिद्ध होने पर षड्गुण वालिजारित मकरध्वज तैयार होगा।

सिद्ध मकरध्वज प्रस्तुत विधि—ग्रासनशक्ति वाले पारद द्वारा साधारण मत से तैयार किये मकरध्वज को २० वार सम परिमाण गन्धक द्वारा घोंट कर २० वार पाक करने से सिद्ध मकरध्वज तैयार होता है।

षड्गुण बलिजारित और सिद्ध मकरध्वज तैयार करने की दूसरी विधि

षड्गुणबलिजारणविधि—वालू से भरी हुई हॉडी के भीतर १ भारी भाण्ड में प्रथमतः पारद सम परिमित गन्धक अग्नि जाल में पाक करे। गन्धक गल कर तैल जैसा होने पर उसमें पारा डाल दे। इस तरह क्रम से पारद का ६ गुणा गन्धक उसमें दे चुकने पर वालू से भरी हांडी उतार कर उसके भीतर

से पारे का वर्तन निकाल ले और भाण्ड के नीचे छेद करके उससे पारद बाहिर कर ले। इस पारद का नाम षड्वलिगुण जारित पारद है।

इसके द्वारा मकरध्वज तैयार करने पर उसे षड्गुणवलिजारित मकरध्वज कहा जाता है।

षड्गुणवलिजारित मकरध्वज प्रस्तुतविधि—ग्रासनशक्ति युक्त षड्गुण वलिजारित पारद १ पल (८ तोला), शोधित स्वर्ण पत्र १ तोला, शोधित गन्धक २ पल (१६ तोला), एकत्र कज्जली करके घृतकुमारी के रस मे मर्दन करके वालुकायन्त्र मे ३ दिन पाक करने पर षड्गुणवलिजारित मकरध्वज तैयार होता है। यह षड्गुणवलिजारित मकरध्वज अनुपानयोग से सर्वरोग हरण करने वाला है।

यदि पारा शुद्ध गन्धक द्वारा जारित हो तो शोधित पारे की अपेक्षा सौ गुना गुण वढ़ जाता है। इस प्रकार दूने गन्धक मे जारित होने पर सब कुष्ठो को दूर करने वाला तिगुने गन्धक से जारित होने से सर्व जड़तानाशक, चौगुने गन्धक में जारित होने से वलीपलित (झुर्री तथा सफेद बाल हो जाने का) नाशक, ५ गुने गन्धक मे जारित होने से क्षयरोगापहारी और षड्गुण गन्धक मे जारित होने से सर्वरोगनाशक होता है।

जो पारद शतगुण गन्धक द्वारा जारित हुआ है, यदि उसको अभ्र-सत्त्व द्वारा जारित किया जाय, तो पूर्व की अपेक्षा सौगुना वीर्यवान होता है। फिर स्वर्णमाक्षिक, खपरिया और हरिताल इत्यादि द्वारा जारित होने से उससे भी अधिक गुणवाला होता है। स्वर्ण के साथ पारा जारित होने से हजार गुने वीर्य से सम्पन्न होता है।

सिद्ध मकरध्वज प्रस्तुत विधि—वीस गुने शोधित गन्धक द्वारा जारित पारा १ पल (८ तोला), शोधित स्वर्णपत्र १ तोला एवं शोधित गन्धक २ पल (१६ तोला) एकत्र वालुकायन्त्र से यथाविधि पाक करने से सिद्ध मकरध्वज तैयार होता है, यह सिद्ध मकरध्वज अमृततुल्य है। अनुपानभेद से सर्वरोग नाशक है। सब प्रकार की असाध्य व्याधि मे, रोगियो की मुमूर्षु अवस्था मे जादू मन्त्र की तरह कार्यकारी होता है। यह प्राच्य चिकित्सा शास्त्र की एक श्रेष्ठ महौषध है। पृथिवी के किसी चिकित्साशास्त्र में इसकी अपेक्षा उत्कृष्टतर औषध नहीं बनी।

ऊपर जो षड्गुणवलिजारित एवं सिद्ध मकरध्वज की प्रस्तुतविधि लिखी गई है, वह अभिज्ञता से उत्पन्न है। उक्त प्रणाली से मकरध्वज तैयार करने पर उससे स्वर्ण पृथक्भाव में अवस्थान नही करगो। पारे और गन्धक के साथ मिल जायगा। इस प्रक्रिया द्वारा भारतीय रसशास्त्र के यथेष्ट कृतित्व का परिचय पाया जाता है। वर्तमान समय से पृथिवी के अधिकांश लोगों को उक्त प्रक्रियाये मालूम नही है। इसी कारण वर्तमान समय मे शुद्ध मकरध्वज तैयार नही होता।

अभ्र (क)

अभ्रक–अमृत स्वरूप, कषाय तथा मधुररस, धातुवर्द्धक, व्रण–कुष्ठनाशक, वातपित्त और क्षयरोगनाशक, मेधावर्द्धक, त्रिदोषनाशक, आरोग्यजनक, वृष्य, आयुवर्द्धक, वलकारक, स्निग्ध, रुचिकर, उदर, ग्रन्थि, प्रमेह, प्लीहा, विष और कफनाशक, अग्नि का उद्दीपक, शीतवीर्य और अनुपानभेद से सर्वरोगनाशक है।

खनिज अभ्रक का ही औषध मे व्यवहार होता है। यह चार प्रकार का है—पिनाक, नाग, मण्डूक और वज्र। श्वेतादि वर्णभेद से इन प्रत्येक के भी चार भेद हैं। पिनाक अभ्र—अग्नि, तप्त, होने से उसके पर्त (स्तर) अलग अलग हो जाते है, यह सेवित होने से मनुष्य का मल रोक कर प्राणनाश करता है। नागाभ्र—अग्नि पर गरम करने से नाग की तरह फुफकारता है, इसके सेवन से मण्डल कुष्ठरोग पैदा होता है। मण्डूकाभ्र—अग्नि तप्त होने से खिल कर उचट जाता है, यह सेवित होने से शस्त्रचिकित्सा का भी असाध्य रोग अश्मरी (पथरी) पैदा करता है वज्राभ्र–अग्निताप से किसी रूप मे विकृत नही होता, इसके सेवन से देह लौहसार और सर्वरोगरहित होता हैं। वज्राभ्र ही औषध में सर्वथा व्यवहार के योग्य है।

वर्णभेद से अभ्र ४ भागो में विभक्त है—श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण। श्वेत वर्ण विधानादि कार्य में श्वेत अभ्र, और रक्तकर्म में रक्त अभ्र और पींत कर्म में पीला अभ्र व्यवहार करे। रसायनकार्य में कृष्ण अभ्र ही अधिक फलदायक है। जो अभ्र–स्निग्ध, स्थूल पर्तवाला, वर्णयुक्त और अधिक भारी है और जिसके पर्त अनायास अलग किये जा सकते है, वही उत्तम है। उत्तरदेशीय पर्वत में उत्पन्न अभ्र ही अत्यन्त सत्त्ववाला और गुणदायक है।

चन्द्रिकायुक्त अभ्र औषध के कार्य में लाने योग्य नहीं होता है। इसके सेवन करने से मेह और मन्दाग्नि आदि अनेक रोग उत्पन्न होते है। अशुद्ध अभ्र—आयु-नाशक, एवं वायु, कफ, क्रिमि, क्षय, बात, शोथ, हृद्रोग, पसली में दर्द, कुष्ठ और क्षय उत्पन्न करनेवाला है। अतएव सब कार्यों में शोधित अभ्र प्रयोग करना उचित है।

अभ्रक की शोधन विधि

(१) अभ्रक को तपाकर क्रम से ७ वार काजी, गोमूत्र और त्रिफला के क्वाथ मे विशेपतः गाय के दूध मे डालने से विशोधित होता है।

(२) अथवा अभ्र को तपाकर ७ वार निसिन्दा रस की भावना देने से वह विशुद्ध होता है।

शोधनान्त मे अभ्र को धान्याभ्र मे परिणत करे।

धान्याभ्रविधि—अभ्र के चौथाई साठीधान के साथ अभ्र को एकत्र कम्वल मे वॉध कर ३ दिन तक जल में भिगो कर रखे। फिर उसे हाथों से मर्दन करने पर कम्वल से जो छोटे छोटे अभ्र के कण निकलें, उनका नाम धान्याभ्र है।

धान्याभ्र विना अभ्रशोधन विधि—अभ्र को तपाकर वेर के क्वाथ मे डाले, फिर उसे हाथ से मर्दन कर चूर्ण करे। इस तरह शोधित अभ्र धान्याभ्र से भी श्रेष्ठ है।

अभ्र की मारणविधि—

(१) हरिताल, आमले का रस और सुहागा इनके साथ शोधित अभ्रक मर्दन करके १ दिन गजपुट में पाक करे। ६ वार इस तरह मर्दन और पाकक्रिया सम्पन्न करने पर अभ्र की मृतभस्म तैयार होती है। यह विशेपतः यक्ष्मारोग में प्रशस्त है।

(२) गीले गुड़ और एरण्ड के पत्तों के रस में एक दिन भावना देकर अभ्र को एक दिन गजपुट में पाक करे। इस तरह ३ वार भावित और पुटपक्व अभ्र मृतभाव से भस्मीभूत होता है। यह विशेषभाव से अग्निवर्धक है।

(३) एक भाग धान्याभ्र, २ भाग सुहागे के साथ मर्दित करके अन्धमूषा में प्रबल अग्नि से पुटपाक करे।

(४) २ भाग धान्याभ्र, १ भाग शोधित गन्धक के साथ 'वड़' के दूध में मर्दन करके एकदिन गजपुट में पाक करे।

अभ्र का अमृतीकरण—घृत और अभ्र तुल्य परिमाण में लेकर लोहे के वर्तन में पाक करे। जब घी गल जाय तब ही समझ लें कि अभ्र का अमृतीकरण हो गया—वह सब कर्म से प्रयोज्य है।

अन्यप्रकार—त्रिफला का क्वाथ १६ पल, गाय का घृत ८ पल, मर्दित अभ्र १० पल सबको एकत्र करके लोहे के पात्र में रखकर मृदु अग्नि से पकावे। तरल पदार्थ सूखने पर ही उसे ग्रहण करते है, यह सब रोगों में काम आता है।

नित्य सेवित जारित अभ्र के गुण—नित्य सेवित जारित अभ्र रोगनाशक, शरीर को दृढ़ करने वाला, वीर्यवर्द्धक, दीर्घायु और सिंह की भांति विक्रमशाली पुत्रजनक, अकाल मृत्युनाशक और रतिशक्ति वर्द्धक है।

अभ्रभस्म के अनुपान

बीस प्रकार के प्रमेह रोगों में—हलदी, पीपल के चूर्ण और मधु के साथ।

राजयक्ष्मा रोग में—स्वर्ण भस्म के साथ।

धातुवृद्धि विषय में—स्वर्ण और चांदी के भस्म के साथ।

रक्तपित्त में—हरीतकी, गुड़, इलायची और शक्कर।

राजयक्ष्मा, पाण्डु और प्लीहामें—त्रिकटु, त्रिफला, चातुर्जात (दारुचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशर)

शुक्रमेह में—गिलोय के रस, ईख के गुड़ या चीनी के साथ।

मूत्रकृच्छ्र में—इलायची, गोखरू, भूमि आंवला, शक्कर और घृत।

सन्ततज्वर और भ्रम में—पीपल के चूर्ण और मधु के साथ।

दृष्टिशक्ति बढाने में—मधु और त्रिफला के साथ।

विद्रधि और दुष्टव्रण में—मूर्वारस के साथ।

बवासीर में—शुद्ध भिलावे के साथ।

वात में—सोंठि, पुष्करमूल, भार्गी, अश्वगन्धा और मधु के साथ।

पित्तवृद्धि में—चातुर्जात और चीनी के संयोग से।

श्लेष्मावृद्धि में—कॉयफर, पीपल और मधु के साथ।

परिपाकशक्ति बढ़ाने में—सब प्रकार के क्षार के साथ।

मूत्राघात, मूत्रकृच्छ और पथरी के रोग में—इलायची, गोखरू भुइ् आँवला, गोदुग्ध और शक्कर।

शक्ति वढ़ाने में—गोदुग्ध और भूमि कुष्माण्ड (बिदारीकंद) के साथ।

शुक्रस्तम्भन में—विजया (भांग) के रस के साथ।

वातरक्त में—हरीतकी और ईख के गुड के साथ।

चक्षुरोग में और शुक्रवर्द्धन में—त्रिफला, घी और मधु के साथ।

अभ्रसेवन की साधारणविधि

एक वर्ष तक प्रतिदिन प्रातः १ रत्ती अभ्रभस्म और सम परिमित आँवला, त्रिकटु और विडङ्ग द्वारा गोली वना कर १ गोली सेवन करना चाहिये। दूसरे वर्ष में मात्रा वढ़ा कर प्रति-दिन प्रातः दो गोली और तीसरे वर्ष प्रतिदिन तीन गोलियॉ सेवन करनी चाहिये। इसके उल्लिखित नियमसे एक सौ पल अभ्रभस्म सेवन करने से मनुष्य वलशाली और स्वास्थ्यवान होता है। कोई व्यक्ति उपयुक्त पथ्य पालन करके यह अभ्रभस्म सेवन करे तो ३ महीने में सब रोगो से छूटकारा पा सकता है। इसके द्वारा राजयक्ष्मा, पांच प्रकार के कफ, हृद्रोग, गुल्म, जटिल, उदरामय, ववासीर, भगन्दर, आमवात, क्षय, कामला और १८ प्रकार के कुष्ठ दूर होते है।

मृतअभ्र के लक्षण—यथार्थरूप से भस्मीभूत अभ्र निश्चन्द्र और कज्जल सदृश चिकना होता है। जो अभ्रभस्म चन्द्रिका (चमक) युक्त हो वह औषध के व्यवहार योग्य नही।

अभ्रअमृतीकरण की विशेषविधि—अभ्रभस्म लाल और काली दो प्रकार की है। केवल काला अभ्रक ही अमृतीकरण मे प्रशस्त है।

अभ्रभस्म में पुट की विशिष्टता—(१) सब प्रकार के रोग नाश करने के लिये अभ्रक में दश से सौ वार् तक पुटपाक करे। रसायनकार्य मे एक सौ से एक हजार वार तक पुटपाक करना आवश्यक है।

(२) वायु नाश करने के लिये अभ्रक में १८ पुटपाक करे। पित्तनाश करने के लिये उसे ३६ वार पुटपाक करे और श्लेष्मा नाश करने के लिये उसे

५४ वार पुटपाक करे। अभ्रक को एक सौ वार से अधिक कालपाक करने से वह बीजरूप में परिणत होता है। वह शोधित होने से वीर्य, ओज, कान्ति और वल वढ़ाता है।

अभ्रमारक गण—कॉटानट, बृहती (वड़ी कटेरी), ताम्बूल, तगर, पुनर्नवा (सार), हिञ्चे, खुलकुड़ी, चिरायता, आक, आदा, पलाश, मूसाकर्णी, मैनफल, विशाला, एरण्ड इन द्रव्यो द्वारा पेषण करके पुटप्रदान करने से अभ्र मारित होता है।

अभ्रसेवन में अपथ्य—अभ्रसेवी क्षार, खटाई, सब प्रकार की दाल, ककड़ी, वैगन और तेल न खाये।

कच्चा अभ्र सेवन के दोष—जो अभ्र सम्यक् रूप से भस्मीभूत नही हुआ है, उसके भक्षण करने से सहसा मृत्यु हो जाती है, व्याघ्र चर्म्म सदृश गात्रचर्म्म होता है और अनेक प्रकार की व्याधि होती है।

अपक्व अभ्रसेवनजनित दोष की शान्ति—दो तोले ऑवला शीतल जल मे पीस कर ३ दिन सेवन करने से कच्चा अभ्रक सेवन से उत्पन्न दोष निवारित होते हैं।

अभ्र का सत्त्वपातन—अभ्र को उसके चौथाई सुहागे के साथ मर्दन करके मूसली के रस मे मर्दन कर कोष्ठिकायन्त्र में पुटपाक करने से अभ्र का सत्त्व निकल आता है।

अभ्र सत्त्व की शोधनविधि—गोमूत्र मे तीन दिन भावना देने से अभ्र सत्त्व शोधित होता है।

अभ्रसत्त्व का भस्मीकरण—एक भाग पारद, दो भाग गन्धक एकत्र कज्जली करके तीन भाग अभ्रसत्त्व के साथ मिलाकर घृतकुमारी के रस मे मर्दन करे। फिर उस मर्दित द्रव्य को पिण्डीभूत करके अण्डी के पत्ते में लपेट कर एक घण्टे तक तांबे के पात्र में धूप मे रक्खे। उसके वाद उठा कर वस्त्र से छान ले तो विशुद्ध अभ्रसत्त्व भस्म मिलेगा।

अभ्र सत्त्व की सेवनविधि—अभ्रसत्त्व जब तक काले रंग का न हो जाय तब तक त्रिफला के क्वाथ की भावना दे। उसके वाद उसे धूप में सुखा कर कपड़े से छान ले फिर उसमें भृङ्गराज का रस, ऑवले का रस, हलदी का रस,

वकरी का घी, गोमूत्र मिलाकर उसे एक लोहे के सम्पुट में वन्द कर धान्य की राशि में एक महीने तक रख छोड़े। फिर उसे वाहर निकाल कर चूर्ण करे। घी और मधु के साथ उपयुक्त मात्रा में यह औषध सेवन करने से मानव अनेक व्याधियों से मुक्त हो जाता है और उसकी आयु तथा वल वढ़ता है।

अभ्रद्रुति—(१) विशुद्ध अभ्र को समान कांकरोले के चूर्ण और पञ्चामृत के साथ मिलाकर १ दिन अम्लरस मे मर्दन करे। उसके वाद उसे घरिया मे वन्द करके १ दिन पुटपाक करने से अभ्र पारे की तरह तरल हो जाता है।

(२) धान्याभ्र को शिवलिङ्गी के पत्ता के रस में मर्दन करके एक जमीकन्द के भीतर भरकर गाय वांधने के घर मे १ हाथ गहरे गढ़े में गाड़ दे, १ महीने वाद निकाल कर देखेंगे कि वह पारे की तरह आकृति वाला हो गया है।

सोनामाखी (माक्षिक) और रूपामाखी

यह स्वर्णपर्वत से उत्पन्न और काञ्चनवर्ण रसविशेष है। माक्षिक धातु दो प्रकार का है। सोनामाखी और रूपामाखी। सोनामाखी–कुछ खट्टा रस लिये मधुररस है और रूपामाखी कुछ कषाययुक्त मधुररस है। दोनो माक्षिक शीतवीर्य, पाक मे कटु और लघु है। इनका सेवन करने से जरा व्याधि और विप से अभिभूत नही होना पड़ता है। कान्यकुब्ज देश में उत्पन्न सोनामाखी स्वर्ण सदृश और ताप्ती नदी की तीरभूमि में उत्पन्न सोनामाखी पञ्चवर्णयुक्त और स्वर्ण सदृश होती है। रूपामाखी अनेक प्रकार की होती है उसमें सोनामाखी से कम गुण होता है। माक्षिक–सर्वरोगनाशक, रसेन्द्र का प्राणस्वरूप, अत्यन्त वृष्य, दुर्मेलक दो धातुओ को मिलाने वाली, वहुगुणयुक्त और सव रसायनो में उत्कृष्ट है।

किसी-किसी रसाचार्य के मत से माक्षिक तीन प्रकार का है। पीला, श्वेत और लाल। यह ३ प्रकार का माक्षिक भी फिर क्षेत्र और आकृति भेद से ४ भागों में, विभक्त है यथा—प्रथम प्रकार का कदम्व फूल के सदृश गोल, दूसरा सीप के पुट की आकृति वाला, तीसरा अङ्गूठी की नाईं, चौथा तुवरी की भस्म के वर्णवाला।

अशोधित माक्षिक सेवन में दोष—अशोधित माक्षिक सेवन करने से क्षुधानाश, वलहानि, विष्टम्भ, नेत्ररोग, कुष्ट, गण्डमाला, व्रण यहां तक कि मृत्यु भी हो सकती है।

माक्षिक की शोधनविधि—एरण्डतैल, बिजौरा नीवू या केले की जड़ के रस के साथ माक्षिक दो घण्टे सिद्ध करने से शोधित होता है अथवा अग्निताप से तपाकर त्रिफला के क्वाथ मे बुझाने पर भी माक्षिक धातु शुद्ध हो जाती है।

माक्षिक की मारणविधि—शोधित माक्षिक और गन्धक एकत्र बिजौरे नीवू के साथ मर्दन करके मूषा मे वन्दकर पांच वार पुटदग्ध करने से मृत होता है। एरण्ड तैल, गाय का घृत और बिजौरा नीवू के रस के साथ खर्पर पात्र मे पाक करने पर भी माक्षिक मृत होकर भस्मरूप में परिणत होता है। इस तरह मृत माक्षिक धातु की तरह क्रिया में और रसायनकार्य मे प्रयोग करने योग्य है।

माक्षिक का सत्त्व पातनविधि—३० भाग सीसा मिला हुआ माक्षिक, क्षार और अम्ल-द्रव्य के साथ मर्दन कर मुखखुली मूषा मे रख कर दग्ध करने से माक्षिक का सत्त्व निकलता है। फिर उस सत्त्व को सात वार गलाकर निसिन्दा या निर्गुण्डी के रस मे डालने से माक्षिक सत्त्व मिला हुआ सीसा नष्ट हो जाता है। मधु, एरण्डतैल, गोमूत्र और गाय का घी और केले की जड़ का रस इन सव द्रव्यो की वार वार भावना देकर मूषा मे पुटदग्ध करने पर भी माक्षिक का ताम्रवर्ण मृदु सत्त्व निकलता है। इस तरह गलित सत्त्व शीतल होने पर वह गुञ्जाफल की तरह लाल रंग का हो जाता है।

माक्षिक सत्त्व की प्रयोगविधि—माक्षिक सत्त्व और पारद एकत्र मर्दन करते करते दोनो के मिश्रित हो जाने पर उनके साथ गन्धक मिलावे। फिर उसमें अभ्र सत्त्व डाल कर सव द्रव्य खरल में मर्दन करे। इसके वाद उसके द्वारा गोलक तैयार करके, लवणयन्त्र में आधा दिन मृदु अग्नि ताप से उसे पकावे, एवं पाक के वाद शीतल होने पर उसका चूर्ण करे। यह माक्षिक सत्त्व दो रत्ती मात्रा में मधु, त्रिकटुचूर्ण और विडङ्गचूर्ण के साथ सेवन करे तो विविध रोग-जनक जरा, अपमृत्यु एवं दु:साध्य व्याधियाँ सप्ताह में दूर हों। यह अमृत से अधिक उपकारी है।

माक्षिक की सत्त्वद्रुति—अंडी का तैल, गुञ्जाफल, मधु और सुहागा इन द्रव्यों के साथ माक्षिक सत्त्व मर्दन करने से वह द्रवीभूत होता है।

माक्षिक भस्म का अनुपान—त्रिफला, त्रिकटु, विडङ्ग और घृत ये द्रव्य अनुपान मे लेकर माक्षिक भस्म व्यवहार करें।

अशुद्ध माक्षिक भक्षण से उत्पन्न दोषों की शान्ति—अशुद्ध माक्षिक भक्षण से उत्पन्न दोष में कुलथी और दाडिम की छाल का क्वाथ-सेवन उपकारी है।

विमल

विमल ३ प्रकार का है। स्वर्ण विमल, रौप्य विमल और कांस्य विमल। स्वर्णादि की तरह कान्ति के अनुसार ही विमल के इस तरह नामभेद हुए हैं। अर्थात् जो विमल देखने में स्वर्ण की तरह हो उसे स्वर्ण विमल, जो रौप्य की भांति उज्वल शुक्लवर्ण हो उसे रौप्य विमल और जो कांसे के वर्णवाला हो उसे कांस्यविमल कहते हैं। विमल—गोलाकार, कोनवाला, स्निग्ध और फलकयुक्त होता है। यह वातपित्तनाशक, ओजवर्धक और अत्यन्त रसायन है। स्वर्णक्रिया में स्वर्ण विमल, रौप्य कार्य में रौप्यविमल और औषधादि में कांस्यविमल व्यवहार किया जाता है। कांस्यविमल की अपेक्षा रौप्य विमल और रौप्यविमल की अपेक्षा स्वर्णविमल अधिक गुणयुक्त है।

विमल की शोधनप्रणाली

अडूसा के क्वाथ, जम्हीरी के रस अथवा मेढासिंगी (कांकड़ासिंगी) के क्वाथ के साथ सिद्ध करने से विमल तथा अन्यान्य धातु भी शोधित होती हैं।

विमल की भस्मीकरणविधि

गन्धक और आक के रस के साथ अथवा सोहागा, आक का रस और मेढाश्रृङ्गी की भस्म के साथ विमल मर्दन करके मूषा में वन्द करे और उसके ऊपर माटी का प्रलेप देकर सुखा ले, इस प्रकार क्रम से १० वार पुटपाक करे तो विमल भस्मीभूत होता है।

विमल से सत्त्वपातन

विमल के साथ समान सौराष्ट्रमृत्तिका, हीराकस और सुहागा एवं कुदरती जमींकंद और मोखा (घण्टापारुल) का क्षार मिलाकर उसमें सहजने का रस और केला की जड़ का रस इनमें ७ दिन भावना दे। फिर उसे मूषा में वन्द करके पुटदग्ध करे। इस तरह विमल से उज्वल सत्त्व निकलता है।

विमल सत्त्व की सेवन विधि

विमल १ भाग, पारा १ भाग, गन्धक १ भाग, हरिताल ३ भाग, मैनसिल ५ भाग, रौप्यभस्म १० भाग का एक भाग, वैक्रान्त (पुखराज) भस्म १० वां ३० भाग मिलाकर अच्छी तरह चूर्ण कर वस्त्र से छान ले। फिर वह चूर्ण कुपी मे भरकर वालुकायंत्र से पाक करे। पाकसिद्ध होने पर एवं विमल, त्रिकटु और त्रिफला के चूर्ण और घृत के साथ सेवन करने से जरा, शोथ, पाण्डु, अरुचि, प्रमेह, ववासीर, ग्रहणी, शूल, यक्ष्मा, कामला और वातपित्तज सब प्रकार की पीड़ा दूर होती है।

शिलाजीत

स्वर्ण आदि पर्वतीय धातुएं सूर्य की गर्मी से गल कर तरल होती है। उनसे लाक्षा के सदृश कोमल, चिकना और स्वच्छ जो मल (गोंद सा) पदार्थ बाहर निकलता है। उसे शिलाजतु कहते है। यह रसायनगुणवाला है। यह दो प्रकार का होता है, १–कर्पूर शिलाजीत और २–गोमूत्र शिलाजीत, गोमूत्र की नाईं गन्धयुक्त शिलाजीत को गोमूत्र शिलाजीत और कपूर जैसी गन्ध वाले को कर्पूर शिलाजीत कहते हैं। उनमें गोमूत्रगन्धि शिलाजीत दो प्रकार का है ससत्त्व और निःसत्त्व। इन दोनों में ससत्त्व शिलाजीत ही अधिक गुणशाली है। हिमालय पर्वत का स्वर्ण, रौप्य, ताम्र, लौह, वङ्ग और सीसकगर्भ पाद देश तीव्र सूर्य की किरणों से उत्तप्त होने पर उससे शिलाजीत निकलता है।

शिलाजीत के प्रकार भेद

स्वर्ण शिलाजीत—स्वर्ण शिलाजीत मधुर, अम्लतिक्त, जवाफूल सदृश, स्निग्ध, गेरू के रंग समान, विपाक में कटु-तिक्त और वात-पित्तनाशक है। यह स्वर्णगर्भ पर्वत से निकलता है।

रजत शिलाजीत—क्षार, कटु, अम्लरस वाला और विदाही, विपाक में मधुर रस, शीतवीर्य, गुरु, पाण्डु, पित्त, मेह, अजीर्ण, ज्वर, शोष, प्लीहा और वातनाशक है। यह रौप्यगर्भ पर्वत से निकलता है।

ताम्र शिलाजीत—ताम्र शिलाजीत मे मयूरकण्ठ की सी आभा होती है, यह तिक्त, कटु रस, तीक्ष्ण, कटुविपाक, मेह, अम्लपित्त, ज्वर और शोषनाशक है। यह ताम्रगर्भ पर्वत से निकलता है।

लौह शिलाजीत—लौह शिलाजीत तिक्त, नमकीन, कटुविपाक और शीतल है। लौह शिलाजीत ही सर्वश्रेष्ठ है। यह रसायन और त्रिदोषनाशक है।

वङ्ग शिलाजीत—वङ्ग शिलाजीत तिक्त, कटु, गाढ़ा, कीचड़ के तुल्य एवं वङ्ग सदृश वर्णवाला होता है। यह सद्य जलोदर, प्रमेह, ज्वर, क्षय, शोष और विसर्प नाशक है। यह वङ्गगर्भ पर्वत से निकलता है।

सीसक शिलाजीत—सीसक शिलाजीत मृदु, उष्णवीर्य, तिक्त, कुसुमवर्ण विशिष्ट, कटु रसप्रधान, वर्ण, तेज और वीर्य वृद्धिकर है, सीसकगर्भ पर्वत से यह निकलता है।

विशुद्ध शिलाजीत की परीक्षाविधि—जो शिलाजीत अग्नि पर डालने से निर्धूमभाव से जल कर लौहमल (लौटकिट्ट) की तरह हो जाय और फिर जल में डालने पर वह पहले तैरता रहे फिर क्रम से तार की तरह गल कर नीचे बैठ जाय, वही उत्तम शिलाजीत है।

शिलाजीत के साधारण गुण—शिलाजीत अनम्ल, कषाय, कटुविपाक, नात्युष्ण और नातिशीतल होता है। यह योगवाही, रसायन, छेदी, कफ, कम्प, अश्मरी (पथरी), शर्करा, मूत्रकृच्छ्र, क्षय, श्वास, मृगी, वात, बवासीर, उन्माद, वमन, कुष्ठ, क्रिमि, ज्वर, पाण्डु, शोथ, मेह, मन्दाग्नि, मेदरोग, यक्ष्मा, शूल, गुल्म, प्लीहा, आम, सब प्रकार के त्वचा और गर्भ के रोग, उदररोग, हृद्रोग और आमाशयरोगनाशक है।

शिलाजीत शोधनविधि—त्रिफला के क्वाथ, गोदुग्ध और भृंगराज का रस इनमें से किसी एक के द्वारा शिलाजीत को १ दिन मर्दन कर धूप में सुखा लेने से वह विशोधित होता है। वातघ्न, पित्तघ्न और कफघ्न द्रव्यों में से प्रत्येक के अथवा सबके क्वाथ में ७ दिन भावना देने से शिलाजीत का वीर्य बढ़ जाता है।

शिलाजतु भावनाविधि

शिलाजीत किञ्चित् उष्ण पूर्वोक्त द्रव्य के क्वाथ में प्रक्षिप्त करे और क्वाथ सूख जाने पर फिर दूसरे क्वाथ में भिगो दे। ऐसा ७ दिन करने को ही भावना देना कहते हैं। शिलाजीत के समान क्वाथ्य द्रव्य चौगुने जल में सिद्ध कर चौथाई (¼) रहने पर उतार कर छान ले। छानते ही गर्म गर्म में शिलाजीत छोड़ दे।

और उसे खूब मिला दे और सुखा ले और फिर उक्तरूप से क्वाथ बना कर उसमें दे, ऐसा ७ दिन करे। इस तरह तैयार किया शिलाजीत और जारित लौह (शिलाजीत का चौथाई ¼ लौहभस्म) मिलाकर दूध के साथ सेवन करने से सुखकर दीर्घ जीवन प्राप्त होता है। यह जराव्याधि-नाशक, देह को उत्कृष्ट दृढ़ता-सम्पादक, मेधा-स्मृतिवर्द्धक एवं शक्तिदायक है, इस औषध को सेवन करते समय दुग्धप्रधान द्रव्य आहार करे।

शिलाजीत सेवन का समय और मात्राविधि—शिलाजीत के सेवन का समय ३ प्रकार है। ७ सप्ताह उत्कृष्ट प्रयोग, ३ सप्ताह मध्यम प्रयोग और एक सप्ताह अधम प्रयोग। इसकी मात्रा भी ३ प्रकार की है, जैसे कि-एक पल उत्तम मात्रा, आधा पल मध्यम मात्रा और २ तोला अधम मात्रा है। शिलाजीत सेवन के दिनों में विदाही (अति गरम दाह पैदा करनेवाली) एवं गुरुपाक द्रव्य और कुलथी, काकमाची और कबूतर का मांस न खाय। शिलाजीतसेवी शिलाजीत सेवन से पूर्व सेवनकाल मे तथा सेवन के बाद व्यायाम, धूपसेवन, वायुसेवन, चिन्ता, गुरुपाक (भारी) द्रव्य, विदाही द्रव्य, खट्टी वस्तु, भुनी हुई वस्तु, एवं दुष्पाच्य द्रव्य भोजन न करे। सावधानी से रखा हुआ वर्षा का जल, कूप का जल और झरने का जल पीवे।

विशुद्ध शिलाजीत की परीक्षा—जो शिलाजीत अग्नि पर डालने से शिवलिङ्ग की आकृति धारण करे और उससे धुआं न निकले और जो जल मे डालने से विलीन हो जाय, वही विशुद्ध शिलाजीत है।

शिलाजीत की भस्म विधि—शिलाजीत के समान मनःशिला, गन्धक और हरिताल मिलाकर बिजौरा नीबू के रस मे माड़ कर बनघुटिया (बाहर मैदान मे बनाया हुआ गोबर का छेना) द्वारा पुटपाक करने से शिलाजतु भस्म होता है।

शिलाजीत की सेवन विधि

शिलाजीत भस्म २ रत्ती, कान्तलोहभस्म २ रत्ती और पुखराज भस्म २ रत्ती एकत्र मिला कर त्रिफला और त्रिकटु चूर्ण एवं घृत के साथ पाण्डु, यक्ष्मा, मन्दाग्नि, मेह, अर्श, गुल्म, प्लीहा, उदर अनेक प्रकार के शूल और योनिरोग आदि मे प्रयोग करे। रसायनविधि के अनुसार शिलाजीत ६ महीने सेवन करने से, वली-पलित रहित देह से एक सौ वर्ष सुख से जीवित रह जायगा।

द्रावण वर्ग ('गुञ्जाटङ्कणमध्वाज्यगुडा द्रावकपञ्चकाः') और अम्लवर्ग (चाङ्गेरी, लकुच, अम्लवेत, जम्बीरक, विजौरा, नागरङ्ग, दाडिम, कैथ, तिन्दुक, तिन्तडीक, अम्लष्ट निम्बू) के साथ शिलाजीत पीसकर मृषा में बन्द करके कोयला द्वारा धौंकनी में दग्ध करने से शिलाजीत से लोहे की तरह सत्त्व निकलता है। कर्पूरगन्धि शिलाजीत-पाण्डुवर्ण और वालुकाकृति होता है। यह शिलाजीत मूत्रकृच्छ्र, पथरी, मेह, कामला और पाण्डुरोगनाशक है। बड़ी कई मछली के क्वाथ में भिगोने से यह शोधित होता है। पण्डित लोग इस शिलाजीत का मारण और सत्त्वपातन आवश्यक नहीं समझते।

अशुद्ध शिलाजीत सेवन के दोप—अशुद्ध शिलाजीत सेवन से दाह, मूर्च्छा, भ्रम, पित्तविकार, शोणितस्राव, भूख कम हो जाना और कोष्टवद्धता होती है।

अशुद्ध शिलाजीत सेवन से उत्पन्न विकार निवारण का उपाय— ३ माशे गोल मरिच का चूर्ण घी के साथ सेवन करने से अशुद्ध शिलाजीत सेवन का विकार शान्त होता है।

औषर नामक शिलाजीत

शिलाजीत २ प्रकार का है: १-पहाड़ से उत्पन्न और २-मिट्टी से उत्पन्न। औपर नामक शिलाजीत को मिट्टी से उत्पन्न कहा जाता है। यह एक प्रकार का श्वेत क्षार विशेष है। यह अग्निवर्धक, वर्णप्रसादक और सब मूत्ररोगों में हितकर है। पहाड़ से उत्पन्न शिलाजीत के प्रकार भेद और गुण पहले विशेष भाव से वर्णित हुए हैं।

तुत्थ-(तूतिया)

तावे और गन्धक के योग से तूतिया वनता है। इसमें कुछ तांवे के से गुण हैं। यह कटु, तिक्त, क्षार और कषाय रस विशिष्ट, वमनकारक, लघु है। यह भेदक, लेखन गुण विशिष्ट, शीतवीर्य, कफ, पित्त, विप, पथरी, कुष्ठ, खाज, विचर्चिका और क्रिमिनाशक है।

तूतिया की शोधन विधि—(१) एक दिन नीवू के रस में घोंटकर लघु पुट में पाक करे। उसके वाद ३ दिन खट्टी दही की भावना देवे।

(२) तूतिया से आधा गन्धक मिलाकर उसे अच्छी तरह घोंटे फिर उसे अच्छी तरह गजपुट में पाक करे। तुत्थ को अम्लवर्ग और तैल में अथवा तक्र (मट्ठा) मे भिगोकर अश्वमूत्र और गोमूत्र में १ दिन दोलायंत्र से पाक करने पर यह शोधित होता है।

तूतिया का सत्त्व निकालना—समपरिमाण मे सोहागे के साथ तूतिया को गलाने से उसका सत्त्व पतित होता।

विना अग्नियोग के तूतिया का सत्त्वपातन—तूतिया को पीसकर नीवू के रस मे लोह पात्र मे ७ दिन भिगोने पर भी इसका सत्त्व निकल आता है।

मयूरपुच्छ से ताम्र तैयार करने की विधि—मयूरपुच्छ (मोरपंख) को घी और शहद मिलाकर भस्म करे। फिर उसके समान खइल (तैलादि का कल्क या खरी), गूगल, क्षुद्रमत्स्य, सोहागा, मधु, गुड़, पीपल वृक्ष का लाख और घृत मिलाकर गोला पकावें। फिर उस ताल को एक अन्ध मूषा में वन्द कर गजपुट मे पाक करे। इसके द्वारा जो ताम्र तैयार होता है उसे नागताम्र कहते है।

शूलनाशक अँगूठी—तूतिया का सत्त्व, नागताम्र और स्वर्ण समभाग लेकर सुनार से अंगूठी तैयार करावें। इस अंगूठी को धारण करते ही सव शूल-वेदना तुरन्त निवारण होती है। इसके द्वारा सव प्रकार के विषदोष और भूत दोष नष्ट होते हैं। प्रसिद्ध रसाचार्य भालुकि ने कहा है कि तैल में इस अंगूठी को डालकर तपाकर वह तैल मर्दन करने से शरीर के सव स्थानों का दर्द वन्द हो जाता है इसके मर्दन से शीघ्र प्रसव वेदना भी निवारित होती है एवं प्रसूति सुख से सन्तान प्रसव करती है। इस तैल के प्रयोग से सभी प्रकार के चक्षु रोग विनष्ट होते हैं।

तुत्थक सत्त्व की भस्म विधि—तूतिया का सत्त्व १ भाग, पारद २ भाग, गन्धक ४ भाग एकत्र नीबू के रस मे ९ घण्टा मर्दन कर उसे धतूरे के पत्तो मे बॉधकर गजपुट मे पाक करे। पुट शीतल होने पर तुत्थ का सत्त्व चूर्ण कर ले। यही तुत्थकसत्त्व भस्म है।

अशुद्ध तुत्थक सेवन से उत्पन्न विकार निवारण का उपाय—३ दिन बिजौरा नीबू का रस पान करने से अशुद्ध तूतिया सेवन से उत्पन्न विकार निवारित होता है।

सस्यक

यह मयूर के कण्ठ की भांति विविध रंगयुक्त और अति भारी होता है। सस्यक सर्वदोषनाशक एवं विषदोष, हृद्रोग, शूल, अर्श, कुष्ठ, अम्लपित्त, मलादि का रुकना और सफेद कुष्ठ रोग को शान्त करने वाला है। यह रसायन, वमन और विरेचनकारक एवं दूषित विष नाश करने वाला है। रक्तवर्ग (दाड़िम, किंशुक, लाक्षा, वन्धूक पुष्प, हरिद्रा दारुहरिद्रा, कुसुम्भ पुष्प, मञ्जिष्ठा–'दाड़िमं किंशुकं लाक्षा वन्धूकञ्च निशाद्वयम्। कुसुम्भपुष्पं मञ्जिष्ठा इत्येते रक्तवर्गकाः') की भावना देने से अथवा स्नेहवर्ग द्वारा ७ वार भिगोने से सस्यक शोधित होता है। गाय, भैंस और वकरी के मूत्र में तीन प्रहर दोलायन्त्र द्वारा पाक करने से सस्यक और खपरिया शोधित होते हैं। आक के रस, गन्धक और सोहागे के साथ मर्दन करने के वाद मूषा में वन्दकर कुक्कुट पुट में दग्ध करने से सस्यक मृत हो जाता है। सस्यक की भस्म उसके चौथाई ¼ सोहागे के साथ करञ्ज तैल में १ दिन भिगो कर अन्धमूषा मे ३ दिन कोयलो की अग्नि से भट्टी मे दग्ध करने से इन्द्रगोप कीड़े की भांति लाल रंग का अति सुन्दर सस्यकसत्त्व निकलता है। अथवा थोड़ा सोहागा और नीवू का रस इनके साथ मर्दनपूर्वक मूषावद्ध करके धौकनी से दग्ध करने पर भी सस्यक का तांवे के रंग का सत्त्व निकलता है।

अथवा शोधित सस्यक और मनःशिला पूर्वोक्त औषधो के साथ मर्दन करके दग्ध करने पर भी सत्त्व निकलता है। इस तरह अनेक विधि से सस्यक का सत्त्व निकलता है।

सस्यक सत्त्व की अँगूठी—कठिन सीसक सत्त्व के साथ यह सस्यक सत्त्व मिलाकर उसकी अंगूठी या तावीज स्पर्श करने से तुरन्त शूल निवारित होता है। यह तावीज़ स्थावर–जङ्गम विष और भूत–डाकिनी की दृष्टि से उत्पन्न पीड़ाओं का नाश करता है। यह देखी हुई विश्वस्त वात है। अग्नि से तपाये हुए तैल में इसकी मुद्रिका को डालकर उस तैल का मर्दन करने से किसी भी स्थान का शूल तुरन्त निवारित होता है। यह शीघ्र प्रसवकारक और नेत्र रोगनाशक है।

चपल

चपल चार प्रकार का है, १-गौरवर्ण, २-श्वेतवर्ण, ३-अरुणवर्ण और ४-कृष्णवर्ण। उनमें स्वर्णवर्ण और रौप्यवर्ण चपल विशेष रूप से रसवन्धकारक है। अन्य दो प्रकार

का अर्थात् लाल और काला चपल लाख की तरह जल्द गल जाता है, एवं वे निष्फल अर्थात् गुणहीन होते हैं। अग्निताप से वङ्ग की तरह चपल शीघ्र गल जाता है इसी से इसका नाम चपल कहा गया है। चपल लेखनकारक, स्निग्ध, देह की दृढ़ताकारक रसराज का सहाय, उष्णवीर्य, एवं तिक्त और मधुर रस है। यह स्फटिक कान्ति षट्कोण, स्निग्ध, गुरु, त्रिदोषनाशक, अत्यन्त वृष्य और रसवन्ध कारक है। किसी किसी के मत से चपल महारसों में गिना जाता है।

जम्हीरी, कांकरोल और आदी के रस में भावना देने से चपल शोधित होता है। अथवा चपल पत्थर प्रथम चूर्ण करके उस चूर्ण को कांजी, उपविष और विष के साथ मर्दन करके उसका गोला बनावें, फिर पातनयन्त्र में विधिपूर्वक पाक करके उसे पातित करें। इस तरह चपल शोधित होता है।

रसक (खर्पर)

रसक दो प्रकार का है; दुर्दर और कारवेल्लक। दलविशिष्ट रसक को दुर्दर रसक और दलहीन रसक को कारवेल्लक रसक कहते है, इसमे दुर्दर रसक सत्त्व पातन कार्य में और कारवेल्लक रसक औषध क्रिया में व्यवहार किया जाता है। रसक सर्वमेहनाशक, कफपित्तनिवारक, नेत्ररोगनाशक और क्षयनिवारक है। यह लौह और पारे का रञ्जनकारक है। रस और दोनो प्रकार का रसक देह के लिये अत्यन्त दृढ़ताकारक है। रस और रसक को अग्नि ताप मे स्थिर रख सकने से देह सुदृढ़ होता है। रसक कड़वी लौकी के रस में घोंट कर पाक करने से शुद्ध, निर्दोप और पीले रंग का होता है। रसक को अग्नि पर तपाकर सात वार विजौरे के रस मे डुवाने से भी निर्मल होता है। अथवा रसक को अग्नि पर तपाकर एक एक वार नरमूत्र, अश्वमूत्र, तक्र और काँजी में बुझाने से भी शोधित होता है। रसक १ महीने तक नरमूत्र में भिगोकर रखने से, इस रसक द्वारा शुद्ध पारद, ताम्र और रौप्य विशुद्ध स्वर्ण के रंग के हो जाते है।

हलदी, त्रिफला, धूना, सेंधानमक, घर का धूमसा, सोहागा और भेला प्रत्येक चौथाई परिमाण, ये द्रव्य और काँजी के साथ खर्पर मर्दन करके उसे बैगन के मूषा में स्थापन कर लेपन करे।

सूख जाने पर उसका मुखवन्ध करे और दूसरी मूषा मे उसे स्थापित करके हापर या धौकनी में पकावे। मूषा की खपरिया गलकर जब उससे नीली और सफेद

लौ निकलने लगे तब चिमटे से उस मूषा को नीचे उतार कर धीरे-धीरे भूमि पर उतार ले, जिससे बैंगन की मूषा फट न जाय—टूट न जाय, इस तरह रसक से वङ्ग की तरह सत्त्व निकलता है। तीन-चार बार इस प्रकार दग्ध करने से इसका सब सत्त्व निकल आता है। हरीतकी, लाख, जमीन का [illegible], हल्दी, धूमसा और सुहागा इन सबके साथ रसक मर्दन कर मूषा में बन्द कर अंगीठी में दग्ध करने से भी रसक का शुद्ध सत्त्व निकलता है। अथवा लाख, गुड़, सफेद सरसो, हरीतकी, हल्दी, धूना और सोहागा इनके साथ रसक चूर्ण करके नारी के दूध और घी के साथ उसे पाक करे। फिर उसका गोला बनाकर बैंगन के मूषा मे बन्द कर बार बार हापर या अंगीठी मे दग्ध करके पत्थर के बर्तन में ढाल दे। इस तरह वङ्ग की तरह मनोहर सत्त्व निकलने पर उसे ग्रहण कर ले। यह रसक सत्त्व और हरताल खपरे में रखकर अग्नि पर तपावे और लोहे के दंड द्वारा मर्दन करे तो उससे वह सत्त्व भस्मीभूत होगा। यह भस्म सम परिमित कान्तलोह भस्म के साथ मिलाकर उसे १ माशा लेवे। त्रिफला के क्वाथ में तिल का तैल ढालकर एक रात कान्तलोह के पात्र में रखना चाहिये, फिर उस क्वाथ के साथ इस औषध का प्रयोग करे। इसके सेवन से मधुमेह, पित्तविकार, क्षय, पाण्डु, शोथ, गुल्म, सोमरोग, विषमज्वर, कास, श्वास, हिचकी एवं स्त्रियों की रक्तगुल्म, प्रदर, योनिरोग और रजःशूल निवारित होता है।

गेरू

गेरू दो प्रकार का है। पाषाण गेरू और सोना गेरू।

कठिन और ताम्रवर्ण गेरू को पाषाण गेरू कहते हैं और जो अत्यन्त रक्तवर्ण, स्निग्ध और नरम हो वह सोना गेरू कही जाती है। सोना गेरू-स्वादिष्ट, स्निग्ध, शीतल, कषाय रस, नेत्ररोग में हितकर, रक्त-दुष्टिनाशक और रक्तपित्त, हिचकी, वमन और विषदोष निवारक है। पाषाण गेरू—सोना गेरू से कम गुण वाली है। गोदुग्ध की भावना देने से गेरू शुद्ध होता है। क्षार और अम्ल द्वारा भिगोने से सत्त्व निकलता है। गेरू का सत्त्व पारे के साथ मिलने से वह अधिक गुणशाली होता है। गेरू, पांशु लवण, सोंठ, वच, कैंट एवं कांजी, ये द्रव्य एकत्र मर्दन करके प्रलेप तैयार करे। उक्त प्रलेप त्रिदोष और सान्निपातिक ज्वरोत्पन्न कर्णमूल से उत्पन्न शोथ मे विशेष उपकारी है। पित्तोल्वण ज्वर मे गेरू केवल

मधु मिला कर अथवा पारा, गन्धक और मधु के साथ व्यवहार करे। इसे धनियां, खसखस और लालचन्दन के क्वाथ के अनुपान के साथ सेवन करने से रक्तपित्त विनष्ट होता है। अथवा इलायची, चीनी, सेंधानमक, दारुहल्दी, हरीतकी, गेरू और रसौत इनको एकत्र मर्दन करके मलहम बनाकर अञ्जन की तरह व्यवहार करे तो सभी प्रकार के चक्षुरोग विनष्ट होते है। गेरू, रक्तचन्दन, लाख, मालती की कली घोटकर आँखो के चारो ओर लेप करने से नेत्रव्रण नष्ट होते है। कांजी के साथ ३ मासे गेरू दिन मे ४ वार सेवन करने से शीतपित्त रोग नष्ट होता है। पकी इमली और गेरू एकत्र मर्दन कर प्रलेप देने से सव शीतपित्त और उदर्द रोग शान्त होता है। तीन मासे गेरू जल के साथ सेवन करने से पित्तज व्याधि नष्ट होती है।

पित्त विकार जनित विसर्प और चर्मरोग मे गेरू को घृत के साथ मर्दन कर प्रलेप देने से विशेष फलप्रद होता है। शरीर का कोई स्थान जल जाने पर उसपर नारियल का तैल, घृत और गेरू मिलाकर प्रलेप देने से जलन दूर होती है और फफोला नही पड़ सकता। आम की गुठली का चूर्ण, विडङ्ग, हल्दी, रसौत और कैंट के साथ गेरू जल के साथ पीस कर (घोंट कर) प्रलेप देने से योनिकण्डू दूर होती है।

कसीस (हीराकस)

कसीस दो प्रकार की है—१-वालुकाकसीस और २-पुष्पकसीस। बालुका और पुष्प दोनों कसीस ही क्षार पदार्थ, अम्लरस, अगुरु के धुएँ के जैसे वर्ण वाले, उष्णवीर्य, विषनाशक, श्वित्रनिवारक और केशरञ्जक हैं। उनमें पुष्प कसीस अधिक प्रसिद्ध है। यह उष्णवीर्य कषाय-अम्लरस, नेत्रों को अत्यन्त हितकर, केशरञ्जक एवं विषदोष, श्वित्र, क्षय, व्रण और वातश्लेष्मज रोगो का विनाश-कारक है।

एक वार भृङ्गराज के रस की भावना देने से ही हीराकस शोधित होता है। तुवरी से सत्त्व निकालने के नियमानुसार कसीस का सत्त्व निकाला जाता है। पित्त द्वारा भावना देने पर भी कसीस शोधित होता है।

गन्धक जारित कसीस और कसीस जारित वैक्रान्त (गोतास) दोनों सम-भाग मिलाकर त्रिफला और विडङ्ग चूर्ण तथा विषम परिमाण घृत और

मधु के साथ मिलाकर आधा तोला प्रातःकाल सेवन करने से श्वित्र, पाण्डु, क्षय, गुल्म, प्लीहा, शूल विशेष कर ववासीर शीघ्र नष्ट होता है। रसायन विधि के अनुसार यह एक वर्ष सेवन करने से आम दोष शोधित होता है मन्द अग्नि उद्दीप्त होती है। एवं वली-पलित आदि निश्चित ही दूर होते हैं।

तुवरी (सौराष्ट्र मृत्तिका)

सौराष्ट्र देश के पत्थर से तुवरी (सौराष्ट्र मृत्तिका) नामक चिकनी मिट्टी उत्पन्न होती है। यह वस्त्र पर लेपन करने से वस्त्र मंजीठ का सा रंगा हुआ लाल रंग का हो जाता है। पीतिका और फुल्लिका नामक एक और तुवरी है। उनमें पीतिका (काठवड़ि)-कुछ पीले रङ्ग की, गुरु, स्निग्ध, विषनाशक, एवं व्रण और सर्व प्रकार के कुष्ठ रोग में उपकारक है। फुल्लिका-शुक्लवर्ण, हलकी, स्निग्ध और अम्ल-रस युक्त है। इस फुल्ल तुवरी का ताम्र पर लेपन करने से ताम्र लोहे का आकार धारण कर लेता है।

तुवरी का दूसरा नाम है काङ्क्षी। यह कटु, कषाय, अम्लरस युक्त, कण्ठ शोधक, केशों को हितकर, व्रणनाशक, विषनिवारक, श्वित्रनाशक, नेत्रों को हितकारी, त्रिदोष को शान्त करनेवाला और पारद के जारण कार्य में उपयोगी है।

तुवरी ३ दिन कॉजी में भिगोकर रखने से शोधित होती है एवं क्षार वर्ग (सज्जी, सुहागा और जवाखार) और अम्लवर्ग के साथ मर्दन करके हापर में दग्ध करने से इसका सत्त्व निकलता है। अथवा इसको गोरोचन द्वारा सौ वार भावना देकर शोधन करे फिर हापर में दग्ध करके इसका सत्त्व पातन करे।

कङ्कुष्ठ

हिमालय के प्रचण्ड शिखर पर कङ्कुष्ठमृत्तिका उत्पन्न होती है। कङ्कुष्ठ दो प्रकार का है, १-नलिका कुङ्कुष्ठ और २-रेणुक कुङ्कुष्ठ। उनमें नलिका कङ्कुष्ठ पीत वर्ण, गुरु और स्निग्ध होता है और यही उत्कृष्ट है; रेणुक कङ्कुष्ठ श्यामक-पीतवर्ण, लघु और सत्त्वहीन होता है। यह निकृष्ट है।

कोई कोई कहते हैं कि सद्योजात (ताज़ी) हाथी की विष्ठा से श्याम पीत वर्ण कङ्कुष्ठ उत्पन्न होता है, यह विरेचक है। और कोई कोई कहते हैं, तेजि-

बाहरनाल श्वेत पीत वर्ण कङ्कुष्ठरूप में परिणत होता है। यह अत्यन्त विरेचक, सत्त्वहीन, बहुविकारजनक एवं रसक्रिया और रसायन कार्य मे अनुपयोगी है।

कङ्कुष्ठ कटुतिक्त रस, उष्णवीर्य, अति विरेचक है एवं व्रण, उदावर्त्त, शूल, गुल्म, प्लीहा और बवासीर आदि रोगनाशक है।

सूर्यावर्त (हुड़हुड़िया), केले की जड़, कड़वी ककड़ी, कड़वी तोरई, देवदाली, सहजना की छाल, कुदरती जमीकन्द, नीरकना और काकमाची, इन द्रव्यो मे प्रत्येक के रस द्वारा एवं लवण क्षार और अम्ल द्रव्य द्वारा अनेक बार भावना देने से कङ्कुष्ठ आदि रस और उपरस शोधित होते हैं। और इन सबोंकी भावना से दग्ध करने पर सब उपरसों का सत्त्व निकल आता है। शुण्डी के क्वाथ से ३ बार भावना देने पर भी कङ्कुष्ठ शोधित होता है। कङ्कुष्ठ सत्त्वमय है, इस कारण इसका सत्त्व निकालने का विधान नहीं लिखा गया है।

विरेचन योग्य व्यक्ति को विरेचन के लिये एक यव (जौ) मात्रा मे कङ्कुष्ठ, मलरोधक द्रव्य के साथ सेवन करे, उससे क्षण भर में शरीर की आमपूर्णता नष्ट होती हैं। पान के साथ इसे भक्षण करे तो विरेचन होकर प्राण विनष्ट होता है।

कङ्कुष्ठ सेवन से विषक्रिया प्रकाशित होने पर उस विष के नाश के लिये बबूल की जड़ के क्वाथ के साथ सम परिमित जीरा और सुहागा वारम्बार सेवन करना आवश्यक है।

स्फटिक (फिटकिरी)

तुबरी के सत्त्व को स्फटिक कहते है। इसे अग्नि पर गलाने से शोधित होता है। स्फटिक-व्रण, उरःक्षत और शूल आदि रोग नष्ट करती है। यह पारद के जारण कार्य में सहायता देती है। यह देखने मे उत्कृष्ट सेंधे नमक की सी आभावाली होती है।

साधारण रस

(१) कम्पिल्ल (निसोत), (२) गौरीपाषाण, (३) नौसादर, (४) कौड़ी, (५) अग्निजार (समुद्रफल), (६) गिरिसिन्दूर, (७) हिङ्गुल और (८) मुर्दासंग ये आठ साधारण रस हैं। नागार्जुन आदि पण्डितगण इन्हें रसों मे ही गिनते हैं।

(१) **कम्पिल्ल**—कम्पिल्लक (कमलागुंड़ि) ईंट के चूर्ण की तरह और वहुत चन्द्रिका (चकचका) विशिष्ट होता है। यह अत्यन्त विरेचक है। कम्पिल्ल सौराष्ट्रदेश मे पैदा होता है। पित्त, व्रण, आध्मान, मलमूत्रादि का रुकना, श्लेष्मा, उदररोग, क्रिमि, गुल्म, अर्श, आमदोष, शोथ, ज्वर और शूल आदि विरेचन साध्य सव रोग इससे विनष्ट होते है।

(२) **गौरीपाषाण**—१-पीत, २-विकट और ३-हतचूर्णक नाम भेद से गौरीपाषाण तीन प्रकार का है। इनमे हतचूर्णक फिटकिरी की तरह, विकट शङ्ख की तरह और पीत हल्दी के रंग के समान पीला होता है। हतचूर्णक की अपेक्षा विकट और विकट की अपेक्षा पीत गौरीपाषाण अधिक गुणशाली है। गौरीपाषाण को करेला फल मे वन्द करके, हांडी मे रख सिद्ध करने से विशोधित होता है। हरिताल सत्त्व निकालने के नियमानुसार इसका सत्त्व निकालते है। गौरीपाषाण का शुद्ध सत्त्व शुभ्रवर्ण, स्निग्ध, दोषनाशक, पारद का वन्धनकारक और वीर्यवर्धक है।

(३) **नौसादर**—वांस के अङ्कुर वा पीलू की लकड़ी सड़ने से उससे जो क्षार पदार्थ उत्पन्न होता है, उसी को नवसार या नौसादर कहते है। इसका दूसरा नाम है चूलिकावरण। पक्की ईंटों पर जो श्वेत हलका नमक की तरह पदार्थ पैदा होता है वह भी नौसादर कहा जाता है। नौसादर पारे का जारण एवं धातुओं का द्रावण करने वाला, जठराग्नि को वढ़ाने वाला एवं गुल्म, प्लीहा, मुखशोप और त्रिदोष का विनाशक है। इसका सेवन करने से भुक्त मांसादि जीर्ण हो जाता है। यह विड द्रव्य (रस जारण) मे गिना जाता है।

(४) **कौडी** (कपर्दक)—जो कौड़ी (वराटिका) पीताभ, पीठपर ग्रन्थि वाली और वड़ी गोल हो उसे ही रसवैद्य रसकार्य मे निर्देश करें। इसका एक नाम चराचर है। छः माशे की कौड़ी उत्तम, चार माशे की मध्यम और तीन माशे की निकृष्ट है। वराटिका—परिणामादि शूलनाशक, ग्रहणी और क्षयरोग निवारक एवं कटुरस, उष्णवीर्य, अग्नि-दीप्तिकर, शुक्रवर्द्धक, चक्षु को हितकर और वातश्लेष्मनाशक है। यह पारद-जारण में प्रशस्त और विड द्रव्य में गिनी जाती है। पूर्वोक्त लक्षणयुक्त वराटिका के अतिरिक्त अन्यान्य वराटिका गुरु और पित्त-श्लेष्मजनक है।

(५) **अग्निजार**—जो अग्निनक्र की जरायु समुद्र की लहरों से उछलती हुई स्थल मे आ पड़े एवं धूपकी ताप से सूख जावे वही अग्निजार कही जाती है। अग्निजार-त्रिदोषनाशक, धनुस्तम्भादि वातव्याधि-निवारक, पारद का वीर्य-वर्द्धक, जठराग्नि का उद्दीपक और जीर्णकर है। यह समुद्र के खारे जल से पूर्व ही शुद्ध हो जाती है। इसलिये इसके शोधन करने की आवश्यकता नही है।

(६) **गिरिसिन्दूर**—महागिरि के पाषाण गर्भ से लाल रंग का सूखा जो थोड़ा सा रस पदार्थ मिलता है वही गिरिसिन्दूर कहा जाता है। गिरिसिन्दूर त्रिदोषनाशक, भेदक, रसबन्धन मे प्रशस्त, देह को दृढ़ करने वाला और नेत्रों को हितकर है।

(७) **हिङ्गुलु**—हिङ्गुलु दो प्रकार का है—१-शुकतुण्ड और २-हंसपाक इनमे शुकतुण्ड थोड़े गुणवाला है, इसे चर्म्मार भी कहते है। और जो प्रवालवर्ण और श्वेत रेखा वाला है, उसका नाम ही हंसपाक है। हिङ्गुलु-सर्वदोषनाशक, अग्निवर्द्धक, अतिशय रसायन, सर्वरोगनिवारक, वृष्य और जारण क्रिया मे अति प्रशस्त है। हिङ्गुलु से जो पारा निकाला जाता है, वह जीर्ण गन्धक पारे के साथ समान गुणवाला है।

हिङ्गुल की शोधनविधि—

(१) आदी अथवा मदार के रस मे सात वार भावना देकर सुखाने से हिङ्गुलु निर्दोष होता है।

(२) हिङ्गुल स्वभावतः ही सुन्दर रक्तवर्ण है, भेड़ी के दुग्ध और अम्लवर्ग द्वारा सात बार भावना देकर धूप में सुखाने से वह उत्कृष्ट कुङ्कुम की नाई वर्ण वाला और विशुद्ध होता है।

(३) हिङ्गुल को तीन दिन जयन्ती (जेथी) पत्तो के रस मे अथवा कॉजी में अथवा गोमूत्र मे अथवा नीबू के रस मे दोलायन्त्र से पाक करने पर शोधित होता है।

हिङ्गुल का सत्त्व पातनः—जल वाले पातन यन्त्र मे हिङ्गुल डालने से उसमे से पारा रूप सत्त्व निकलता है।

हिङ्गुल से पारा निकालने की विधि—

(१) हिङ्गुल के चावल के समान टुकड़े कर नीबू के रस में अथवा आमरूल

शाक के रस में ४ दिन वार वार (७ बार) भावना देवे। फिर एक हांड़ी में उसे स्थापन करके नीवू के रस या आमरूल शाक के रस में डुवा दे। तदनन्तर एक सकोरे को खड़िया से लिप्त कर उससे हांड़ी का मुख ढक कर उसकी सन्धि अच्छी तरह वन्द कर ऊर्ध्वपातन यन्त्र विधान से उस हांडी के नीचे अग्नि और ऊपर सकोरे के अन्दर जल भर देवे। जल गरम हो जाने पर उसे फेक कर शीतल जल भर देवे इस तरह ३० वार जल वदलना आवश्यक है। इस प्रक्रिया से नीचे के वर्तन का पारा निर्दोष होकर खड़िया से लिप्त सकोरे के तलदेश में चिपक जायगा। शीतल होने पर सन्धि स्थल खोल कर खड़िया संयुक्त पारा छुड़ा कर कपड़े में छान ले और जल अथवा काजी में कई वार धो लेवे।

(२) पारद प्रसङ्ग मे हिङ्गुल से वहुत सहज साध्य रसाकर्षण विधि लिखी हुई है।

अशुद्ध हिङ्गुल सेवन जनित दोष—अशुद्ध हिङ्गुल सेवन करने से कुष्ट, क्लैव्य, क्लम, मोह और मस्तिष्क के विकारजनित अनेक प्रकार के रोग पैदा होते हैं।

अशुद्ध हिङ्गुल सेवन से उत्पन्न दोषों की शान्ति—योग्य परिमाण (३ माशे से ६ माशे तक) विशुद्ध गन्धक दूध के साथ सेंवन करने से अशुद्ध हिङ्गुल जनित दोप की शान्ति होती है।

भूनाग

वर्षा और शरद ऋतु में वर्षा से गीली मिट्टी से भूनाग की उत्पत्ति होती है। यह एक प्रकार की मृत्तिका से उत्पन्न क्रिमि विशेष है। भूनाग चार प्रकार का है। १–स्वर्ण की खान के निकट की मिट्टी से उत्पन्न भूनाग, २–रौप्य की खान की निकटस्थ मृत्तिका से उत्पन्न भूनाग, ३–लौह की खान की निकटस्थ मृत्तिका से उत्पन्न भूनाग और ४–ताम्र की खान की निकटस्थ मृत्तिका से उत्पन्न भूनाग। प्रथम कहा हुआ तीन प्रकार का भूनाग दुर्लभ है और चतुर्थ प्रकार अर्थात् ताम्र की खान की निकटस्थ मृत्तिका से उत्पन्न भूनाग सुलभ है।

सामान्य भूमि से उत्पन्न भूनाग अल्प गुण वाला है। अम्ल संयुक्त खारी जल में एक दिन सिद्ध करने से भूनाग शोधित होता है।

भूनाग का सत्त्वपातन

(१) शरत् काल मे उत्पन्न भूनाग को मातगुड़, मधु, घृत सुहागा, केले की जड़ और जमीकन्द के साथ एकत्र मर्दन कर एक गोला पकावे। फिर उस गोले को सुखाकर जब तक सत्त्व न निकले तब तक उसे तपाता रहे। यह सत्त्व मल अंश से पृथक् कर लेवे।

(२) दूध के साथ सिद्ध कर भूनाग-मृत्तिका द्वारा अथवा सुहागे द्वारा मर्दन करे फिर तपावे तो उससे सत्त्व निकलता है। यह सब तरह के कुष्ठ और व्रण नष्ट करता है। इसे जल के साथ सेवन करने से सब प्रकार के स्थावर-जङ्गम विष नष्ट होते हैं। यह पारे को अग्नि सहन करने की शक्ति देता है। यह मयूरपुच्छ सत्त्व के सदृश गुणवाला है।

मृद्दारश्रृङ्गकः—गुजरात देश मे अर्बुदगिरि के निकटवर्ती स्थानों मे मृद्दारश्रृङ्गक उत्पन्न होता है। यह सीसक सत्त्व की भांति भारी, श्लेष्मानाशक, शुक्ररोगनाशक, पारद की बन्धन क्रिया में उत्कृष्ट और उत्तम केशरञ्जन है।

बिजौरे और आदी के रस की ३ रात भावना देकर जारित कर सुखाने से मृद्दारश्रृङ्गक एवं अन्यान्य साधारण रस दोषशून्य होता है। चाहे जितने ही प्रकार के सत्त्व हो, वे सभी शुद्धिवर्ग में कहे हुए द्रव्यो के साथ मिलाकर तपाने से शोधित होते हैं और परस्पर मिल जाते है।

राजावर्तः—राजावर्त अल्प लाल और बहुल परिमाण मे नीलिमा मिले हुए वर्ण वाला है। जो राजावर्त भारी और चिकना है वहीं श्रेष्ठ है। इसके विपरीत गुणवाला होने से वह मध्यम कहा जाता है। राजावर्त—प्रमेह, क्षय, अर्श, पाण्डु, श्लेष्मरोग और वायुरोग निवारक एवं अग्निवर्धक, पाचक, वृष्य और रसायन है।

नीबू के रस, गोमूत्र और क्षार पदार्थ के साथ दो-तीन बार भिगोने से राजावर्तादि धातुये विशुद्ध होती हैं। सिरस के फूल और आदी के रस द्वारा भी राजावर्त शोधित होता है।

राजावर्त चूर्ण करके बिजौरे के रस और गोमूत्र के साथ मर्दन कर ७ बार पुटपाक करने से मृत होता है। राजावर्त चूर्ण के साथ मनःशिला चूर्ण और घृत मिला कर भैंस के दूध के साथ लोहे की कढ़ाई मे पकावे फिर सोहागा और

पञ्चगव्य के साथ गोला बनाकर इसे जारित करे, फिर खैर की लकड़ी के कोयलों द्वारा तपाने से राजावर्त का अति सुन्दर सत्त्व निकलता है।

इस नियम से गेरू भी शोधित होता है और उसका पीत और रक्तवर्ण का सुन्दर सत्त्व निकलता है।

अञ्जन

अञ्जन ५ प्रकार का है, १-सौवीराञ्जन, २-रसाञ्जन, ३-स्रोतोञ्जन, ४-पुष्पाञ्जन और ५-नीलाञ्जन। सौवीराञ्जन-धूम्रवर्ण, शीतल, रक्तपित्तनाशक, विष, हिचकी और नेत्ररोग निवारक और व्रण का शोधन तथा रोपण कारक है। रसाञ्जन पीला सा और चर्मरोगनाशक, श्वास और हिचकी निवारक, वर्णवर्द्धक और वायु, पित्त तथा रक्त का विनाशकारक है। स्रोतोञ्जन-शीतल, स्निग्ध, कषायरस, स्वादिष्ट, लेखनकारक, चक्षु को हितकर एवं हिचकी, विष, वमन, कफ, पित्त और रक्तविकार को दूर करनेवाला है। पुष्पाञ्जन-श्वेत वर्ण, स्निग्ध, शीतल, सर्व नेत्ररोगनाशक, अति दुर्जय हिचकी को दूर करने वाला एवं विष और ज्वर नाशक है। नीलाञ्जन-गुरु, स्निग्ध, चक्षु को हितकर, त्रिदोषनाशक, रसायन, स्वर्णमारक और लौह को मुलायम करने वाला है।

भृङ्गराज के स्वरस की भावना देने से सब अञ्जन शोधित होते है। मनःशिला के सत्त्वपातन नियमानुसार सभी प्रकार के अञ्जनो का सत्त्व निकाला जाता है।

स्रोतोञ्जन की आकृति वल्मीक के शिखर की भांति तोड़ कर खण्ड-खण्ड करने से उसमे नील कमल की सी आभा लक्षित होती है और घिसने से गेरू का सा वर्ण देखा जाता है, ये सब विषय विशेष रूप से लक्ष्य करके स्रोतोञ्जन ग्रहण करे: एवं उसमें गोवर का रस, गोमूत्र, घृत, मधु और वसा की ७ वार भावना दे। इस स्रोतोञ्जन द्वारा पारा शीघ्र वद्ध होता है।

सूर्यावर्त की भावना देने पर भी रसाञ्जन शोधित होता है। राजावर्त के सत्त्वपातन के नियमानुसार भी स्रोतोञ्जन का सत्त्वपातन किया जा सकता है।

हरिताल

सोमल और गन्धक मिलने से हरिताल वनता है। हरिताल ४ प्रकार का है। १-तबकपत्र हरिताल, २-पिण्डहरिताल, ३-गोदन्तहरिताल और ४-वक्रदाल हरिताल। इनमें असल गोदन्त हरिताल और वक्रदाल हरिताल प्रायः मिलते है।

वंशपत्र हरिताल—यह स्वर्ण के वर्ण वाला, गुरु, स्निग्ध, मृदु, चमकदार एवं सूक्ष्म और सूक्ष्मस्तर विशिष्ट है। यह सब प्रकार की व्याधि एवं जरा का नाशक और रसायन है।

पिण्डहरिताल—यह निष्पत्र, पिण्डाकार, अल्प सत्त्व वाला एवं गुरु है। यह विशेष रूप से स्त्रियो का रजोनाशक और अन्यविध हरितालो की अपेक्षा हीनगुण सम्पन्न है।

गोदन्त हरिताल—इसके बड़े-बड़े टुकड़े मिलते है। यह अति चिकना और गाय के दाँत की आकृति वाला होता है। यह भारी है और इसके भीतर हरी और नीली रेखा देख पड़ती है।

बकदाल हरिताल—बकदाल हरिताल अति मृदु और अत्यन्त शीतल गुण सम्पन्न होने के कारण हिम हरिताल कहलाता है। यह पत्रयुक्त, भारी, श्वेतकुष्ठ और अन्य सभी प्रकार के कुष्ठो का निवारक है।

शोधित हरिताल के गुण—विशुद्ध हरिताल—श्लेष्मा, रक्तदुष्टि, वातरक्त, विष, वायुप्रकोप और भूतदोष नाश करता है। यह स्त्रीपुष्पनाशक, स्निग्ध, उष्णवीर्य, कटु, दीपक, कुष्टनाशक और अग्निवर्द्धक है।

मारण योग्य हरिताल—भस्म करने के लिये वंशपत्र हरिताल ही सबसे श्रेष्ठ है। पिण्ड हरिताल भस्म के काम मे नहीं लाया जाता। कर्कटरोग और गलत्-कुष्ठ दूर करने में गोदन्त हरिताल श्रेष्ठ है। श्वित्र नाश करने के लिये बकदाल हरिताल भस्म प्रयोग करे।

अशुद्ध हरिताल सेवन से दोष—अशुद्ध हरिताल-आयुनाशक, कफ, वायु और प्रमेहकारक एवं शोथ, विस्फोटक और अङ्गसङ्कोचकारक है। जो हरिताल यथार्थ रूप से शोधित और भस्मीभूत न हो, उसके सेवन से देह का सौन्दर्य नष्ट होता है और अनेक प्रकार के रोगो की उत्पत्ति होती है। अतएव हरिताल को प्रथम यथाशास्त्र शोधन करके भस्म करे। भस्मीभूत हरिताल सर्वरोगनाशक है।

हरिताल की शोधन विधि

(१) **कूष्माण्ड** (पेठा) के जल में अथवा तिलक्षार जल में अथवा चूना के जल मे दोलायन्त्र से एक दिन पकाने पर हरिताल शोधित होता है।

(२) चूने के जल में सात दिन भावना देने से वंशपत्र हरिताल शुद्ध होता है।

(३) हरिताल को कॉजी मिले हुए चूने के जल में कूष्माण्ड जल में, तिल के तैल में और त्रिफला के क्वाथ में दोलायन्त्र से तीन घण्टे पकाने से शुद्ध होता है।

हरिताल भस्म की सहज विधि

(१) विशुद्ध हरिताल लेकर घृतकुमारी के रस में एक दिन मर्दन कर गोला बनावे। उसके बाद उस गोले को अन्धमूषा में बन्द करे। फिर उसे बारह प्रहर तक तीव्र अग्नि से गजपुट में पकावे। छः बार इस तरह घृतकुमारी रस में मर्दन करके छः बार पुटपाक करने से हरिताल भस्मीभूत होता है।

(२) शोधित हरिताल को ७ दिन घोड़े की लीद के रस मे भावना देकर सुखावे। उसके बाद उसे घोड़े की लीद से प्रस्तुत छेना की अग्नि में ५ बार गजपुट में पाक करे तो वह भस्मीभूत होता है।

(३) मनुष्य का एक पोला (खाली) हड्डी संग्रह करके उसमें शोधित हरिताल का चूर्ण भर दे, उसके बाद उस पोली हड्डी के दोनो सिरे, पीपल, ढाक अथवा पुनर्नवा के क्षार से भर देवे। फिर उसे गजपुट में एक दिन तीव्र अग्नि में पाक करे। इस तरह जो हरिताल भस्म तैयार होगी, वह अति उत्तम और सर्वरोगनाशक होगी।

हरिताल भस्म की परीक्षा—हरिताल भस्म अग्निपर डालने से यदि उसमें से धुआं न निकले तो उसी को हरिताल भस्म जाने।

हरिताल भस्म के गुण और प्रयोग—१२ रत्ती गन्ने का गुड़ लेकर उसके साथ आधी रत्ती हरिताल भस्म सेवन करने से ८० प्रकार के वायु रोग, ४० प्रकार के पित्त रोग, २० प्रकार के श्लेष्मा रोग सब प्रकार के कुष्ठ, मेह और गुप्त प्रदेश के रोगों की शान्ति होती है। इसका श्वास, कास, क्षय, पित्तज और सान्निपातिक रोगों में तथा दाद, पामा, व्रण और वात रोग में प्रयोग किया जाता है।

हरिताल भस्म की अनुपान विधि—सभी प्रकार के रक्तविकारो मे [illegible] के रस के अनुपान से भस्म सेवन करे। मृगी रोग में घिस (कमलनाल)

और जीरे के साथ प्रयोग करें। समुद्रफल के योग से हरिताल भस्म सेवन करने से सभी प्रकार के जलोदर विनष्ट होते हैं। यह तरोई के रस के अनुपान से भगन्दर, मञ्जीठ के क्वाथ के साथ सेवन से फिरङ्ग रोग, त्रिफला और चीनी के साथ पाण्डुरोग और सोंठ के चूर्ण के साथ सेवन से आमवात को नष्ट करता है।

स्वर्णभस्म के अनुपान से इसका व्यवहार करने पर रक्तपित्त और कॉटानट के रस के साथ सेवन करने से आठ प्रकार का ज्वर शान्त होता है।

मञ्जीठ, बाकुची, चक्रमर्द, (चकवड़ इसका फूल पीला होता है। यह हरिद्वार में बहुत होती है), नीम, हर्रा, आँवला, अडूसा, शतावरी, वला, नागवला, मुलेठी, कोकिलाक्षीके बीज, परवल का पत्ता, खसखस, गिलोय एवं लालचन्दन इनके क्वाथ के अनुपान से हरताल भस्म सेवन करने से १८ प्रकार का कोढ़ दूर होता है। इसके सिवाय अनुपानभेद से सर्वरोगनाशक है।

हरितालसेवी का पथ्य—खटाई, नमक, कटुरस, अग्निताप और धूप में वैठना छोड़ दे। जो लोग नमक बिलकुल न छोड़ सकें वे वहुत थोड़ा सेंधानमक खा सकते है। मीठा भोजन हरितालसेवी के लिये उपकारी है।

हरिताल की सत्त्वपातनविधि—

(१) कुलथी का क्वाथ, सोहागा, भैंस का घी और मधु इनके द्वारा हरिताल घोटकर एक थाली में रख ले। फिर उस थाली को छेदवाले सकोरे से ढक दे, फिर थाली को क्रम से बढ़ते हुए अग्नि पर अच्छी तरह पाक करे। एक प्रहर तक उस ढके हुए सकोरे के छिद्र को गोबर से ढक दे। फिर तीन घण्टे पाक करने के बाद सकोरे पर से गोबर हटाकर छिद्र खोल देवे, जब उन छिद्रो से पाण्डुवर्ण का धुआँ निकले तब अग्नि का जलाना बन्द कर देवे। फिर वह थाली जब बिलकुल शीतल हो जाय तब सकोरे को तोड़ डाले और अति सावधानी से थाली में लगा हुआ सत्त्व ग्रहण कर ले।

(२) एक पल हरिताल को आक के दूध में एक दिन घोंटे और इसके साथ इसका १६ गुना तैल मिलावे। फिर इसे खुले वर्तन में रखकर इक्कीस घण्टे तक अग्नि देवे। फिर पात्र जब बिलकुल ठण्डा हो जाय तब उसके तले पर लगा हुआ विशुद्ध सत्त्व ग्रहण करे।

(३) तिर्यक्‌यन्त्र में हरिताल को पातित करने से उससे श्वेत वर्ण का हरिताल सत्त्व पातित होता है। इसके सेवन करने से आश्चर्य रूप से ज्वर और अजीर्ण निवारित होता है एवं कान्ति, पुष्टि और बलवृद्धि होती है। मात्रा १ सरसो भर।

(४) एरण्ड और जमालगोटे के बीजों के साथ मर्दन करके बालुकायंत्र में पाक करने से हरिताल का सत्त्व निकलता है।

हरिताल सत्त्व के प्रयोग की विधि—

एक चावल परिमाण हरिताल सत्त्व सेवन से दुःसाध्य वातरक्त दो सप्ताह में विनष्ट हो जाता है। हरिताल सत्त्व व्यवहार के समय रोगी लवण त्याग कर घृत संयुक्त अन्न, रोटी और पूरी व्यवहार करें।

अशुद्ध हरिताल सेवन से उत्पन्न दोषों की शान्ति —

(१) आधा तोला जीरे का चूर्ण और आधा तोला चीनी शीतल जल के साथ तीन दिन सेवन करने से अशुद्ध हरिताल सेवन जन्य दोष निवारित होते हैं।

(२) राजहंस (हंसराज) अथवा कूष्माण्ड का रस ७ दिन १ छटाक मात्रा मे पान करने से उक्त दोष निवारित होता है।

मैनशिल

मैनशिल हरिताल का केवल प्रकार भेद है। हरिताल का रंग पीला और मैनशिल का लाल रंग होता है। मैनशिल ३ प्रकार का है; १—श्यामाङ्गी, २—कणवीरका और ३—खण्डा। रक्तगौरयुक्त श्यामवर्ण और अधिक भारी मैनशिल का नाम श्यामा मैनशिल है। जो गौररहित, ताम्रवत् रक्तवर्ण और उज्ज्वल है, वह कणवीरका है। जो मैनशिल को चूर्ण करने पर अतिशय रक्तवर्ण और अधिक भारी होता है उसे खण्डा मैनशिल कहते है। ये उत्तरोत्तर अर्थात् श्यामा की अपेक्षा कणवीरा एवं कणवीरा की अपेक्षा खण्डा मैनशिल गुण विषय से उत्कृष्ट है एवं अधिक सत्त्वयुक्त होने से प्रसिद्ध हैं। मैनशिल एक श्रेष्ठ रसायन है। यह कटुतिक्तरस, उष्णवीर्य, कफवातनाशक, अधिक सत्त्वयुक्त एवं भूतदोष, विष, अग्निमान्द्य, कण्डू, कास और क्षयरोग निवारक है।

अशोधित मैनशिल सेवन के दोष—अशोधित मैनशिल से पथरी, मूत्रकृच्छ्र, मन्दाग्नि और मलरोध होता है। और शुद्ध मैनशिल सर्वरोगनाशक है।

मैनशिल की शोधन विधि—अगस्त के पत्तों के रस अथवा आदी के रस द्वारा सात वार भावना देने से मैनशिल शुद्ध होता है। जयन्तीपत्र (जैथी), भृङ्गराज (घमरा) और लाल वकफूल के पत्तों के रस के साथ १ प्रहर दोलायन्त्र में पाक करे। फिर दूसरे वार भी वकरी के मूत्र के साथ १ प्रहर दोलायन्त्र मे पाक करे और कांजी से धो डाले। इस तरह भी मनःशिला शुद्ध होती है अथवा केवल चूने के जल में ७ दिन भावना देने से भी मैनशिल शोधित होता है। शुद्ध मैनशिल सब रोगों में प्रयोग करे।

मनःशिला का सत्त्व निकालने की विधि—गुड़, गुग्गुल और घी के साथ उनका आठवां भाग ($\frac{1}{8}$) परिमाण मनःशिला मर्दन करके कोष्ठिकायन्त्र में बन्द कर उत्तम रूप से दग्ध करने अर्थात् हापर में तपाने से मनःशिला का सत्त्व निकलता है। अथवा सीसक सत्त्व, सोहागा और मैनफल के साथ हरिताल मिलाकर करेला के पत्तो के रस के साथ मर्दन करे और मूषा में वन्द कर दग्ध करे। फिर क्षार और अम्ल द्रव्य के साथ पीस कर दो घंटे अग्नि देवे। इस तरह मनःशिल का सत्त्व निकलता है।

शुद्ध तथा मिश्र धातु

सोना, चांदी, तांवा, लोहा, जस्ता, वङ्ग और सीसा ये ७ शुद्ध धातु हैं। पीतल, कांसा और बर्तलोह ये ३ प्रकार की मिश्र धातु हैं। धातु, लोह और लोह ये ३ शब्द एकार्थवाची हैं। धातु मात्र ही वलीपलित (झुर्री पड़ना, वाल सफेद हो जाना), सिर के वाल गिर जाना, कृशता, दुर्वलता, ज्वर और जरा नाश करके देह की रक्षा करते हैं।

स्वर्ण

असल सोने को गलाने से वह लाल रंग का हो जाता है, काटने से रौप्य वर्ण धारण करता है और कसौटी पत्थर पर घिसने से कुङ्कुम सदृश वर्ण धारण करता है। मलरहित स्वर्ण—स्निग्ध, कोमल, भारी और उत्तम होता है। जो स्वर्ण श्वेतवर्ण, कठिन, रूक्ष, विवर्ण, मलयुक्त, दलविशिष्ट और गलाने से काले रंग का हो जाय और कसौटी पर घिसने से श्वेत वर्ण धारण करे वह लघु, क्षणभङ्गुर और परित्याज्य है।

स्वर्ण के प्रकार भेद—स्वर्ण प्रधानतः दो प्रकार का है—१–रसेन्द्रवेधज और २–खनिज। रसेन्द्रवेधज स्वर्ण १६ प्रकार के वर्ण वाला है। खनिज स्वर्ण १४ तरह के वर्ण वाला है। प्रथम प्रकार का स्वर्ण–रसायन, जरानाशक और श्रेष्ठ है। द्वितीय प्रकार के स्वर्ण को यथाशास्त्र भस्मीभूत करने से वह सर्वरोगनाशक होता है।

शोधित स्वर्ण के गुण—

(१) साधारणतः सभी स्वर्ण आयु, लक्ष्मी, कान्ति, बुद्धि और स्मृति को बढ़ाने वाले, निखिल रोगनाशक, पवित्र, भूतावेश को शान्ति करने वाले, रति शक्ति बढ़ाने वाले, सुखजनक, पुष्टिकर, जरानिवारक, मेहनाशक, क्षीणजन का पुष्टिवर्द्धक, मेधाजनक एवं वीर्यवर्द्धक हैं। रौप्य में भी प्रायः ये ही गुण हैं।

(२) रसेन्द्रवेधज अर्थात् पारे के संमिश्रण द्वारा जो स्वर्ण उत्पन्न होता है उसे रसेन्द्रवेधज कहते हैं। यह रसायन, उपकारिता में सर्वोत्कृष्ट और पवित्र है।

स्वर्ण–स्निग्ध, पवित्र, विषदोषनाशक, पुष्टिकर, अत्यन्त वृष्य, यक्ष्मा और उन्माद आदि रोगनाशक, मेधा, बुद्धि और स्मृति वर्द्धक, सुखजनक, सर्वदोष और सकल रोग निवारक, रुचिकर, अग्नि का उद्दीपक, वेदनानिवारक और मधुर विपाक वाला है।

अशोधित और अमारित स्वर्ण के दोष—अशुद्ध और अमारित स्वर्ण सेवन से वीर्य, बल और सुख विनष्ट होता है एवं अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। अत एव स्वर्ण शोधित कर व्यवहार करें।

स्वर्ण की शोधन विधि—

(१) सम परिमित स्वर्णपत्र और नमक एकत्र सकोरे में सम्पुट करके आधे प्रहर तक कोयलों की अग्नि पर तपावे तो पूर्ववर्ण अर्थात् विशुद्ध हो जाता है।

(२) स्वर्ण, रौप्य, पीतल, तांवा एवं लौह को तपाकर ७ वार तैल में, दही में, गोमूत्र मे, कांजी में और कुलथी के क्वाथ में डालने से शुद्ध होता है।

(३) सब प्रकार के धातु को ७ वार तपाकर केले की जड़ के रस में डालने से शोधित होते हैं।

धातु मारण में पारे की आवश्यकता—सब धातुओं की ही पारे की साथ मिलाने से जो मारण क्रिया सम्पादित होती है वही सर्वोत्तम है। मूल विशेष के

स्वरसादि द्वारा मारण क्रिया सम्पादित करने से वह मध्यम कही जाती है और गन्धकादि द्वारा जो मारण क्रिया की जाती है उसे निकृष्ट कहते हैं। अरि लोह अर्थात् विशुद्ध गुणवाली धातु द्वारा जो किसी धातु की मारण क्रिया की जाय तो वह हानिकारक होती है।

'जो धातुभस्म विना पारद के तैयार होती है उसके सेवन करने से उदर में कीडे उत्पन्न हो जाते हैं' यह सिद्ध लक्ष्मीश्वर प्रमुख रसाचार्यों की वाणी है।

स्वर्णभस्म विधि—

(१) अति पतला स्वर्णपत्र तयार कर उन्हें पारदभस्म और बिजौरा नीबू के रस में लिप्त करे। सूखने पर यथानियम से पुट देवे, इस तरह १० वार पुट देने से ही स्वर्ण मारित होता है।

(२) स्वर्ण द्रवीभूत करके उसमें स्वर्ण के समान पारद भस्म डाले। फिर उसे चूर्ण करके बिजौरे के रस और हिङ्गुल के साथ मर्दन कर पुटपाक करे। इस तरह १२ बार पुट देने से कुङ्कुम वर्ण स्वर्ण भस्म तैयार होती है।

(३) स्वर्ण की चौथाई (¼) पारद की भस्म किसी खट्टी वस्तु के साथ पीस कर उसे स्वर्णपत्र पर लेप करे और सूखने पर पुटपाक करे। इस तरह १८ बार पुटपाक करने से ही स्वर्णभस्म होता है।

बिना अग्नि योग के स्वर्णभस्म विधि—१ भाग पारद, २ भाग गन्धक एकत्र कज्जली कर तीन भाग शोधित स्वर्णपत्र के साथ मिलाकर घृतकुमारी के रस में ६ घण्टे तक मर्दन कर गोला वनावे। फिर उस गोले को एरण्डपत्र में अच्छीं तरह बांध दे। इसके बाद उसे एक तांबे के पात्र में डाल कर एक घण्टा धूप में रक्खे। धूप मे रखने से उस पिण्ड के गरम हो जाने पर उसे सकोरे में बन्द करके ३ दिन अन्न के ढेर में दवाये रक्खे। चौथे दिन उसे वाहर निकाल-सूक्ष्म चूर्ण कर वस्त्र से छान ले। यह चूर्ण ही स्वर्ण का मृत भस्म है। यह इतना पतला होता है कि जल में तैरता रहता है। यह भस्म सर्वोत्कृष्ट है।

स्वर्ण की द्रुति—(१) मेंढ़क की हड्डी और चर्वी एवं सोहागा, कनेर बीरवहूटी, ये सव द्रव्य उसमे डाल रखने से वहुत समय तक स्वर्ण द्रवीभूत अवस्था में रहता है।

(२) वीरवहूटी (इन्द्रगोप कीट) का चूर्ण और देवदाली (घुंघरवेलि) के फल का स्वरस एकत्र मिलाकर उसकी भावना देने से स्वर्ण जलवत् द्रवीभूत होता है।

स्वर्णभस्म के अनुपान—दो रत्ती परिमाण स्वर्णभस्म मरिच के चूर्ण और घी के साथ मिलाकर चाटने से क्षय, मन्दाग्नि, श्वास, कास, अरुचि, पाण्डु, ग्रहणीदोष, सब प्रकार का विषदोष और दूषीविष निवारित होता है। यह ओजोधातुवर्द्धक, बलकर और पथ्य है।

शोथ में—मछली के पित्त के साथ।

बल बढ़ाने के लिये—भृङ्गराज के रस और दूध के साथ।

चक्षुरोग में—पुनर्नवा के रस के साथ।

रसायन में—घी के साथ।

स्मृतिशक्ति बढ़ाने के लिये—वच के चूर्ण के साथ।

सौन्दर्य बढ़ाने के लिये—कुङ्कुम के साथ।

यक्ष्मारोग में—दुग्ध के साथ।

विषदोष में—निर्विषी के रस के साथ।

उन्माद में—सोंठ, लौंग और मरिच के चूर्ण के साथ सेवन करे।

रौप्य

रौप्य के प्रकार भेद—रौप्य तीन प्रकार का है, १-सहज, २-खनिज और ३-कृत्रिम। इनमें से पूर्व-पूर्व अर्थात् कृत्रिम की अपेक्षा खनिज और खनिज की अपेक्षा सहज रौप्य अधिक गुणवाला है।

कैलास आदि पर्वत से जो रौप्य उत्पन्न होता है उसे सहज रौप्य कहते हैं। यह रौप्य एक बार स्पर्श करने से ही मनुष्य व्याधिमुक्त हो जाता है।

हिमालयादि पर्वत शिखर पर जो रौप्य उत्पन्न होता है, धातुतत्त्वज्ञ पण्डित उसे खनिज रौप्य कहते हैं। यह उत्कृष्ट रसायन है।

जो रौप्य पारे से उत्पन्न होता है उसका नाम कृत्रिम रौप्य है। यह यथानियम प्रयुक्त होने से सर्वरोग नाश करता है।

जो रौप्य घन, स्वच्छ, भारी, स्निग्ध, कोमल, शङ्खवत् शुभ्रवर्ण, चिकना, स्फोटकहीन अर्थात् बुद्बुदाकार न हो और दग्ध करने या काटने पर भी जिसके शुभ्रवर्ण में विकार न हो, वह रौप्य ही शुभ फलदायक है।

जो रौप्य तपाने से लाल पीला या काला हो एवं जो रूक्ष, स्फुटन, लघु, स्थूलाङ्ग और कर्कशाङ्ग हो, यह आठ प्रकार का रौप्य त्यागने योग्य है अर्थात् इसके व्यवहार से अपकार होता है।

रौप्य–अम्ल–कषाय रस, विपाक मे मधुर, शीतल, सारक, अत्यन्त लेखन-कारक, रुचिजनक, स्निग्ध, बातश्लेष्मानाशक, जठराग्नि–दीप्तिकारक, अत्यन्त बलकर, आयुस्थापक और मेधाजनक है।

पाठान्तरोक्त रौप्यगुण–रौप्य, शीतल, अम्लकषायरस, स्निग्ध, वायुनाशक, गुरुपाक एवं रसायन विधान मे प्रयुक्त होने से सर्वरोगनाशक है।

स्वर्ण, रौप्य आदि धातु के पत्र प्रत्येक बार तपाकर तिल तैल, तक्र (छाछ), गोमूत्र, काँजी, कुलथी के क्वाथ में यथाक्रम से सात सात बार डालने से शोधित होते है।

अशोधित रौप्य–आयु, शुक्र और बल नष्ट करता है एवं सन्ताप और मलरोध रोग उत्पन्न करता है। अतएव उसे यथाशास्त्र शोधित और भस्मीभूत करे।

(१) सीसा और सोहागा का प्रक्षेप देकर रौप्य गलाने से वह रौप्य शोधित होता है।

रौप्य की अन्यविध शोधनविधि स्वर्णशोधन की तरह है।

रौप्यभस्म विधि—स्वर्णभस्म की चौथी विधि के अनुसार रौप्य भस्म करे।

रौप्य की द्रुति—देवदाली (घोषा) फल मे सात वार नरमूत्र की भावना देने के बाद उस देवदाली फल का चूर्ण डालने से स्वर्ण और रौप्य दोनो ही द्रवीभूत होते है।

रौप्यभस्म का गुण—सर्वसमष्टि के समपरिमाण त्रिकटु और त्रिफला चूर्ण घृत और मधु के साथ उपयुक्त मात्रा मे लेहन करने से यक्ष्मा, पाण्डु, उदर रोग, अर्श, श्वास, कास, नेत्ररोग और सब प्रकार का पित्तविकार शान्त होता है।

रौप्य भस्म का प्रयोग

शोथ में—चीनी के साथ।

वायु और पित्त वृद्धि में—त्रिफला के चूर्ण के साथ।

प्रमेह में—त्रिसुगन्धि (दारुचीनी, इलायची, तेजपात) चूर्ण के साथ।

कास (श्लेष्माधिक्य) में—अडूसा के रस और त्रिकटुचूर्ण के साथ।

श्वास में—भारङ्गी और सोंठ के चूर्ण के साथ।

गुल्म में—जवाखार के चूर्ण के साथ।

क्षय में—शिलाजीत की भस्म के साथ।

कार्श्य में—मांसरस अथवा दूध के साथ।

प्लीहा और यकृत में—त्रिफला और पीपल के चूर्ण के साथ।

जलोदर में—पुनर्नवा के रस के साथ।

रक्त की अल्पता में—लोहभस्म के साथ।

रसायन और सौन्दर्य एवं अग्नि-वृद्धिकरण में—घृत के साथ सेवन करे।

ताम्र

ताम्र दो प्रकार का है, १-म्लेच्छ और २-नैपाल। नैपाल ताम्र उत्कृष्ट है। नैपाल देश के अतिरिक्त अन्य देशों में खान से जो ताम्र उत्पन्न होता है, उसे म्लेच्छ ताम्र कहते हैं। जो ताम्र श्वेत वा कृष्ण की आभायुक्त लाल वर्ण, कठिन और अत्यन्त वमनकारक है तथा जो ताम्र वार वार धोने पर भी कृष्णवर्ण होने लगे वही म्लेच्छ ताम्र है। और जो ताम्र स्निग्ध, मृदु, रक्तवर्ण, भारी, चोट लगने से भी टूटे नहीं, गुरु और निर्विकार हो उसे नैपाल ताम्र कहते हैं। नैपालताम्र उत्कृष्ट गुणशाली है।

पाण्डुवर्ण अथवा कृष्णयुक्त लालवर्ण, लघु, स्फुटनयुक्त (फट-फटा), रूक्षाङ्ग और स्तर विशिष्ट ताम्र रसक्रिया में प्रशस्त नहीं है।

ताम्र कुछ खटाई मिला हुआ तिक्त रस, विपाक में मधुर, उष्णवीर्य, पित्तकफनाशक, ऊर्ध्व और अधोदेश का शोधनकारक, स्थूलतानाशक, क्षुधावर्द्धक, नेत्र रोग में हितकर, लेखन एवं विषदोष, यकृतदोष, जठररोग, कुष्ठ, आमदोष, क्रिमि, अर्श, क्षय और पाण्डुरोग को शान्त करने वाला है।

अशोधित और अमारित ताम्र आयुःक्षयकारक, कान्ति, वीर्य और बल नाशक एवं वमन, मूर्च्छा, भ्रम, उत्क्लेद (वमनवेग), कुष्ठ और शूल रोग का उत्पन्न करने वाला है।

ताम्र सेवन से उत्क्लेद, मलभेद, भ्रम, दाह और मोह ये कई दोष अति प्रबल भाव से उपस्थित होते हैं किन्तु ताम्र शोधित होने से ये सब दोष नष्ट हो जाते है एवं रस-वीर्य और पाक मे अमृत की तरह हितकर होता है।

ताम्र की शोधन विधि—क्षार और खट्टे पदार्थ एवं गेरू के साथ ताम्र मिलाकर जंगली उपलों की अग्नि में उन्हें द्रवीभूत करे एवं भैंस के दूध की छाछ मे डाल दे। सात वार यह प्रक्रिया करने से तांबे के उत्क्लेद आदि पञ्चदोष नष्ट हो जाते हैं। अथवा निर्मल ताम्रपात्र में नीबू का रस और सेंधानमक लेपन करके तपावे और सौवीरक कांजी मे डाल दे। ८ बार यह प्रक्रिया करने से ताम्र शोधित होता है। ताम्रपात्र मे नीबू का रस और सेधानमक लेपन करके तपावे एवं निसिन्दा के रस में उसे डुवावे। इस तरह ८ वार तपाकर ठंडा करने से भी ताम्र शोधित होता है।

ताम्र की भस्म विधि—गोमूत्र के साथ ताम्रपत्र एक प्रहर तक तीव्र अग्नि से पकाने पर भी वह विशोधित होता है। पारद और गन्धक की कज्जली कर जम्हीरी के रस में मर्दन कर, उससे ताम्रपत्र लिप्त करे फिर उसे सकोरे में वन्द कर पुटपाक करे। ऐसा ३ वार करने से ताम्र भस्मीभूत होता है।

मारित ताम्र का अमृतीकरण—मारित ताम्र एक प्रकार के खट्टे रस में मर्दन करके १ गोला वनावे, उस गोलक को जमीकन्द में बन्दकर जमीकन्द के ऊपर मिट्टी का लेप करे। सूखने पर गजपुट में अग्नि देकर उस ताम्र को ग्रहण करे। इस प्रक्रिया के वाद उस ताम्र के सेवन करने से वमन, भ्रम और विरेचन कदापि नहीं होता है।

सूक्ष्म ताम्रपत्र पहले ५ प्रहर तक गोमूत्र में भिगो दे। फिर वह ताम्रपत्र १ भाग, पारद १ भाग और गन्धक २ भाग एकत्र आमरुल के रस में मर्दन कर भाण्ड (मिट्टी के बर्त्तन) में बन्द कर दे। इसके बाद उस भाण्ड के नीचे एक प्रहर तक अग्नि जलावे तो ताम्र भस्मीभूत होता है। यह ताम्रपत्र सर्वत्र प्रयोग किया जा सकता है।

पारद १ भाग, गन्धक १ भाग, हरिताल आधा भाग, एवं मनःशिला चौथाई भाग एकत्र कर अच्छी तरह चिकनी कज्जली करे फिर यन्त्राध्याय में कहे हुए गर्भयन्त्र में उस कज्जली और पारे के समान परिमाण ताम्र पर्याय क्रम से

निहित करे (रक्खे)। अर्थात् पहले थोड़ी सी कज्जली रख कर उसके ऊपर कुछ ताम्र और उसके ऊपर फिर कज्जली और कज्जली के ऊपर फिर ताम्र इस तरह सजाकर एक प्रहर तक यथानियम पाक करे। पाक हो जाने पर जब यन्त्र शीतल हो जाय तब उससे ताम्र छुड़ाकर चूर्ण कर ले।

इस ताम्रभस्म को दो रत्ती मात्रा में उपयुक्त अनुपान के साथ सेवन करने से परिणाम शूल, उदररोग, शूल, पाण्डु, ज्वर, गुल्म, प्लीहा, यकृत, क्षय, मन्दाग्नि, मेह, बवासीर और ग्रहणी रोग निश्चितरुप से निवारित होता है। इसको सोमनाथ ताम्र कहते हैं।

पारद एक भाग, गन्धक एक भाग, ताम्रपत्र दो भाग, एकत्र घृतकुमारी के रस में मर्दन कर उसे एक भाण्ड में रक्खे और भाण्ड के मुख को एक कसोरे से ढक दे। वह भाण्ड एक हांडी मे रखकर लवण से उस हांड़ी को भर देवे एवं हांडी के मुख को भी एक कसोरे से ढक देवे। फिर चार प्रहर तक उसके नीचे अग्नि जलावे। इस ताम्र को चूर्ण करके दो रत्ती की मात्रा में मधु और पीपल के चूर्ण के साथ सब रोगों में प्रयोग करे। विशेषतः उपयुक्त अनुपान के साथ प्रयुक्त होने से यह गुल्म, प्लीहा, यकृत, मूर्च्छा, धातुगत ज्वर, परिणामशूल एवं त्रिदोष से उत्पन्न सब रोगों को विनष्ट करता है। रसक्रिया और रसायन कार्य में भी उपयुक्त मात्रा में यह ताम्रभस्म प्रयोग किया जाता है।

आदी के रस और मधु के संयोग से दो रत्ती ताम्र भस्म सेवन करने से सब प्रकार के उदररोग निवारित होते हैं, ताम्र सब प्रकार के उदर रोगों का सर्वश्रेष्ठ औषध है।

विना अग्नियोग के ताम्र की निरुत्थ भस्म—एक भाग पारद और दो भाग गन्धक एकत्र कज्जली करके तीन भाग शोधित ताम्र के ऊपर डाले। उसके बाद इन द्रव्यों को नीबू के रस में तीन दिन भिगो रक्खे, तीन दिन बीत जाने पर वह ताम्र गल कर कीचड़ की तरह हो जाता है। फिर उस ताम्र को धूप में सुखाकर कपड़े से छान ले। इस तरह से जो ताम्र भस्म मिलेगा वह सर्वश्रेष्ठ और सर्वरोगनाशक होगा। यह विशेष भाव से रसायन गुण सम्पन्न और सब प्रकार के उदररोग का नाशक है।

लौह

आयुःप्रदाता बलवीर्यकर्त्ता रोगापहर्त्ता मदनस्य धाता।
अयःसमानं नहि किञ्चिदस्ति रसायनं श्रेष्ठतमं नराणाम् ॥

लौह तीन प्रकार का हैः—१-मुण्ड, २-तीक्ष्ण और ३-कान्त।

मुण्ड लौह तीन प्रकार का हैः—मृदु, कुष्ठ और कड़ार; जो शीघ्र द्रवीभूत हो, स्फोटक की तरह बुदबुद युक्त न हो और चिकना हो वही मृदु मुण्डलौह है। यह शुभ फल देने वाला है। जिस मुण्डलौह को चोट लगाकर अनायास प्रसारित न किया जा सके उसे कुण्ठ कहते हैं, यह मध्यम है। और जो चोट लगने पर टूट जाय और टूटने पर काला हो जाय वह कड़ार मुण्ड है। उत्तम मृदुमुण्ड लोह सेवन करने से कफ, वायु, शूल, मूलरोग (अर्श), आमदोष, मेह, कामला, पाण्डु, गुल्म, आमवात, उदररोग और शोथ नष्ट होता है। औरअग्नि का उद्दीपक, रक्तवर्द्धक तथा कोष्ठशुद्धिकारक है।

तीक्ष्ण लौह

तीक्ष्ण लौह छः प्रकार का हैः—१-खर, २-सार, ३-हृन्नाल, ४-तारावट्ट, ५-वाजिर और ६-कालालौह। जो तीक्ष्ण लौह परुष (खरस्पर्श), पोगर से रहित (अलकों की तरह टेढ़ी रेखारहित) हो, जिसमें तोड़ने से पारद की तरह आभा दीख पड़े एवं तपाने से टूट जाय, उसे खर लौह (खेरी) कहते हैं। जिस लौह के ऊपर तीव्र वेग से आघात करने पर उसके किनारे फट जावे वह सारलौह है। सारलौह कुटिल रेखायुक्त और पाण्डु भूमि से उत्पन्न है। जो लोह पाण्डुकृष्ण वर्ण चक्षु वा बीजाकृति है, पोगर जिसके गात्र पर स्पष्ट रूप से रहे और जो काटने से अति कठिन जान पड़े वह हृन्नाल लोह है। बीजाकृति एवं सूक्ष्म सूक्ष्म रेखा वाला हो, पोगर द्वारा जिस लोह का गात्र सर्वत्र व्याप्त हो और जो श्यामवर्ण हो उसे वाजिर लोह कहते है। और जो लौह नीलकृष्णवर्ण, सघन, चिकना, भारी, उज्ज्वल और लोह की चोट लगने पर भी टूट न जाय वही कालालौह वा कालायस है।

खर लोह—रूक्ष, विपाक में कुछ मधुर, अति शीतोष्ण वीर्य नहीं और तिक्तरस है एवं कफ, पित्त, कुष्ठ, उदर, प्लीहा, आमदोष और पाण्डुरोग को शान्त करता है। शूल, यकृत, क्षय, जरा, मेह, आमवात, ववासीर और दाहरोग इसके द्वारा शीघ्र निवारित होता है। यह अग्नि का उद्दीपक, अत्यन्त, रसायन और बलकर है।

कान्तलौह

कान्तलौह ५ प्रकार का है:—यथा १-भ्रामक, २-चुम्वक, ३-कर्पक, ४-द्रावक और ५-रोमकान्त। इन लोहो मे से कोई लोहा एकमुख, कोई द्विमुख, कोई त्रिमुख, कोई चतुर्मुख, कोई पञ्चमुख और कोई सर्वतोमुख होता है। इस ५ प्रकार के लौह में पीला, काला और लाल ये तीन रंग देखे जाते हैं। इनमें पीतवर्ण लौह स्पर्शवेधी कार्य में, काले रंग का लौह रसायन कार्य मे उत्तम है और लाल रंग का लौह पारद की वन्धन क्रिया मे प्रशस्त है। भ्रामक लौह निकृष्ट है, चुम्वक मध्यम, कर्पक उत्तम एवं द्रावक अति उत्तम है। जो कान्तलौह दूसरे लोहों को घुमावे वह भ्रामक है; जो लोहे का चुम्वन करे अर्थात् लोहे से चिपक जाय वह चुम्वक है; जो लौह दूसरे लोहे का आकर्षण करे वह कर्षक है; जो अन्यान्य लोहों को द्रवीभूत कर सके वह द्रावक है एवं जो लौह गात्र पर स्फुटित होने से रोमाञ्च हो वह रोमकान्त लौह है। एकमुख लोह निकृष्ट है, द्विमुख और त्रिमुख लोह मध्यम है, चतुर्मुख और पञ्चमुख उत्कृष्ट और सर्वतोमुख लोह सवसे उत्तम है। भ्रामक और चुम्वक लौह व्याधिनाश में प्रशस्त है। कर्षक एवं द्रावक लौह रस और रसायन कार्य में हितकर है। रोमकान्तलौह पारद की वन्धनक्रिया मे अति उत्कृष्ट है। खान से यत्नपूर्वक लोह संग्रह करना चाहिये। जो लोह धूप और वायु मे पड़ा रहे वह त्याज्य है।

कान्तलौह का स्वरूप

जिस लोहे के पात्र में जल रख कर उस पर तेलविन्दु डालने से वह (तेलविन्दु) प्रसृत न हो, जिसके गात्र पर हीग लेपन करने से उसकी गन्ध और निम्वकल्क लेपन करनें से उसकी कटुता नष्ट हो जाय और जिसमे दुग्ध पाक करने से दुग्ध शिखर की भांति ऊपर को उठे तो भी जमीन पर न गिरे उसे कान्त लौह कहते हैं। इसके विना अन्य लक्षणों वाला लौह कान्तलौह नही है। कान्त लौह रसायन कार्य में अति उत्तम है। और स्वस्थ मनुष्य को दीर्घायु देने वाला, स्निग्ध, मेहनाशक, त्रिदोप को शान्त करने वाला, तिक्तरस युक्त, नातिशीतोष्णवीर्य है एवं शूल, आमदोष, मूलरोग (अर्श), गुल्म, प्लीहा, उदर, पाण्डु, यकृत, क्षय आदि नाना रोगनाशक है। सव प्रकार के औषध कल्प में लौह कल्प ही सर्वोत्कृष्ट है।

अत एव सब से पहले लौह की मारण और शोधन क्रिया विशेष यत्न के साथ सम्पन्न करे।

लौह की शोधनविधि

(१) लौह को सामुद्र लवण से लेपन करे और खूब तपाकर त्रिफला के क्वाथ में बुझावे। ऐसा करने पर लौह का गिरिज दोष नष्ट होता है।

(२) इमली के फल या पत्तों का क्वाथ करके उसमे अथवा गोमूत्र मे त्रिफला का क्वाथ बना कर उसमें तपे हुए लौहपत्र डालने से भी वह शोधित होता है।

(३) स्वर्ण शोधन के नियमानुसार भी लौह शोधित होता है।

लौह भस्म विधि

(१) लौह भस्म की विधि स्वर्णभस्म की तरह है। स्वर्णभस्म की चौथी विधि देखिये।

(२) तीक्ष्ण लौह का चूर्ण त्रिफला के क्वाथ के साथ पीस कर उसके साथ थोड़ी सी चावल की पिट्ठी मिलाकर टिकिया बनावे। उन्हें सुखाकर पुटपाक करे। इस तरह ५ वार पुटपाक करने से लाल रंग का भस्म तैयार होता है।

(३) तीक्ष्ण लौह के स्तरहीन पत्र तैयार करके उन्हें तीव्र अग्नि मे तपावे और जल मे बुझा कर ठंडा करे। फिर पत्थर की ओखली में मोटे लोहे दण्ड की चोट से उस लोहपत्र का चूर्ण करे, उसमें जो बड़े बड़े टुकड़े रहें, उन्हें दो सकोरों में बन्द कर फिर दग्ध करे और जल में डाल कर ठंडा करे। इसके बाद पूर्ववत् अलग अलग करके चूर्ण करे, उस चूर्ण को पारद और गन्धक के द्वारा मर्द्दित करके २० वार पुटपाक करे। प्रत्येक वार पुटपाक के बाद दृढ़ रूप से पेषण करना चाहिये इस तरह भस्मीभूत लौह सर्व रोगनाशक होता है।

(४) लौह चूर्ण में उसके सम परिमाण गन्धक मिलाकर घृतकुमारी के रस के साथ मर्दन करके तीन वार पुटपाक करने से लौह भस्म रूप मे परिणत होता है।

(५) लौह को तपाकर हिङ्गुल मिला जम्हीरी के रस में निक्षेप करने से लौह भस्मरूप में परिणत होता है। यदि एक वार में न हो तो कई वार ऐसा करना चाहिये।

जिस लौहपात्र में रक्खे हुए जल में तैल विन्दु डालने से वह विक्षिप्त न हो और तारे के आकार में गोल हो जाय वही कान्तलौह है। सब लोहों में श्रेष्ठ उस कान्त लोह के पतले पत्र करके अग्नि में तपावे और त्रिफला के क्वाथ में उसे ठंढा करे। फिर उस शुद्ध लौह को किसी खट्टे पदार्थ के साथ पीस कर उसके साथ उसका चौथाई (चतुर्थांश) मृतपारद मिला कर अग्नि में पुटपाक करे। अथवा सम परिमित स्वर्णमाक्षिक, गन्धक और पारद के साथ मिश्रित करके पुट देवे। अथवा कान्त लौह में क्षार और अम्ल पदार्थ लेपन कर उसे तपा कर खरगोश के रक्त में बुझावे। इससे भी कान्त लौह शोधित होकर सर्वदोष शून्य होता है। शोधित पारद और उससे दूना गन्धक मिला कर खरल में घोट कर कज्जली वनावे, वह कज्जली और उसके समान लौह चूर्ण मिला कर घृतकुमारी के रस के साथ २ प्रहर मर्दन करके गोला वनावे। उस गोले को कांसे के पात्र में रख कर उसके ऊपर एरण्डपत्र ढक कर आधे प्रहर तक पाक करे, उसके वाद ३ दिन उसे धान्य राशि मे रख दे। फिर पेषण करके वस्त्र से छान ले। इस तरह लौह की जो भस्म तैयार होगी, वह जल में डालने से तैरती रहेगी। कान्त, तीक्ष्ण और मुण्ड इन तीनों तरह के लोहों की इस तरह मृत भस्म तैयार होती है। लौह की नाई स्वर्णादि धातु का चूर्ण करके भी इसी तरह भस्म तैयार की जाती है। कान्त लौह–कमनीय, कान्तिजनक, पाण्डुरोगनाशक, यक्ष्मारोगनिवारक, विषनाशक, त्रिदोषशान्तिकारक, विविध कुष्ठनाशक, बलकर, वृष्य, वयःस्थापक, सर्वव्याधिनाशक, उत्कृष्ट रसायन एवं अद्वितीय और पार्थिव अमृत स्वरूप है। इसके सेवन से क्रिमिविकार, पाण्डु, वायुरोग, क्षीणता, पित्तरोग, स्थूलता, अर्श, ग्रहणी, ज्वर, श्लेष्मविकार, शोथ, प्रमेह, गुल्म, प्लीहा, विषदोष, कुष्ठ और मन्दाग्नि दूर होती है। यह स्वास्थ्यजनक, रसायन और अकाल मृत्यु नाशक है। मृत लौह रसवत् हितकर और योगानुसार से महाव्याधिनिवारक है। लौहभस्म सेवन का अभ्यास करने से देह की दृढ़ता प्राप्त होती है और जरा–व्याधि विनष्ट होती है।

पारद रहित लौह भस्मके दोष दूर करने का उपाय

विना पारद के जिस लौह का भस्म किया गया हो उसका एक तिहाई ($\frac{1}{3}$) अंश पारा और पारद से दूना गन्धक इनके द्वारा ६ घण्टे तक घृतकुमारी के रस में

मर्दन करे। उसके बाद इन सब द्रव्यों को लघुपुट में पाक करने से वह औषध रूप में व्यवहृत हो सकता है।

लौहभस्म की परीक्षा

घृत और मधु मिश्रित लौहभस्म को रौप्यसम्पुट में बन्द करे उसके बाद उसे तेज अग्नि पर तपावे, तपाने पर यदि रौप्य का आकार बदल जाय तो समझना चाहिये कि लौह यथार्थ रूप से भस्म नहीं हुआ उसको फिर लोहा बनाया जा सकता है। ऐसी दशा में लौह को फिर भस्म करना चाहिये। मृत लौह को पञ्चामृत के साथ (मधु घृत, गुञ्जा, सोहागा और गुग्गुल) तल लेने से फिर वह किसी भी तरह से पूर्ववत् लौह में परिणत नहीं हो सकता।

लौहभस्म का अमृतीकरण

तुल्य परिमाण घृत के साथ लोहभस्म लोहपात्र में तपावे। घृत जल जाने पर उतार कर नीचे रख ले। इस तरह लोह का अमृतीकरण साधित होता है। यह योगवाही है।

लौहपुट में प्रयोजनीय द्रव्य

त्रिफला, सहजन, हस्तिकर्णपलाश (कोई इसे लाल एरण्ड भी कहते है), भृङ्गराज के एवं फिर त्रिफला के क्काथ में लोह का मर्दन करते हुए पुटपाक करने से कोष्ठवद्धता नही करता। इसे पीपल के क्काथ में मर्दन करते हुए व्यवहार करने से अग्निमान्द्य नष्ट होता है। उसी तरह भूमिकुष्माण्ड के रस के साथ मर्दन करके व्यवहार करने से ध्वजभङ्ग, नीबू के रस के साथ मर्दन से क्षुधामान्द्य, शिरीष की छाल के क्काथ के साथ मर्दन कर व्यवहार करने से विवर्णता नष्ट होती है। लौह वलारस के साथ मर्दन कर, पुटपाक करने के बाद सेवन करने से वात, पक्षाघात और सब वायु विकार नष्ट हो जाते है। पित्तविकार में क्षेत्रपर्पटी के रस के साथ, त्रिदोष प्रकोप में दशमूल के क्काथ के साथ, विषम ज्वर (मलेरिया और कालाज्वर) में चिरायते के रस के साथ, मेह में गिलोय के रस के साथ, पाण्डुरोग में भैंस के मूत्र के साथ मर्दन करके इसे पुटपाक करे। विडङ्ग और चावल धोये हुए जल के साथ पुटपाक से क्रिमिरोग नष्ट होता है। भिलावे और विडङ्ग के क्काथ के सहयोग से कुष्ठरोग, प्लीहा में सहेलिया की छाल के क्काथ के साथ, मूत्राघात

में सिन्दुवार के रस के साथ, शूल में काञ्जी के साथ, दाद और पापा रोग में दद्रुमारी (चक्रवड़) के रस के साथ मर्दन कर पुटपाक करे। मूसली के रस के साथ पुटपाक करने से अर्श, अर्जुन वृक्ष की छाल के क्वाथ के साथ पुटपाक करने से हृद्रोग, उच्चटा (लाल घुंघुची) के रस से आमवात, सोमराजी और खदिर के क्वाथ के साथ पुटपाक कर सेवन करने से कुष्ठ, पाषाणभेदी के रसयोग से अश्मरी, निसोत के रस से उदावर्त, खट्टे अनार के रस के साथ गुल्म में, स्वरभङ्ग में ब्राह्मीरस एवं अश्वगन्धा और जटामांसी के रस के योग से लौह मर्दन कर भस्मार्थ पुटप्रदान करे।

लौहभस्म के अनुपान

शूल में—हींग और मधु के साथ लौहभस्म सेवन करे।

पुराने ज्वर-(मलेरिया, कालाज्वर) में—पीपल के चूर्ण के साथ।

वायु वृद्धि से उत्पन्न वात और अर्द्धाङ्ग में—घृत और लहसन के रस के साथ।

श्वासकास में—मधु और त्रिकटु चूर्ण के साथ।

शीत में—वृश्चिकाली और मरिच के चूर्ण के साथ।

मेह में—त्रिफला और मिश्री के चूर्ण में मिलाकर।

त्रिदोषवृद्धिजनित सब व्याधियों में—मधु और आदी के रस के साथ।

वायुवृद्धि में—मक्खन के साथ।

पित्तवृद्धि में—केवल मधु के साथ।

कफपित्त-वृद्धि से उत्पन्न रोग में—आदी के रस के साथ।

वायुवृद्धि-जनित शरीर-कम्पन में—निर्गुण्डी के रस के साथ।

वायुवृद्धि में—सोंठ के चूर्ण के साथ।

पित्तवृद्धि में—मिश्री के चूर्ण के साथ।

कफवृद्धि में—पीपल के चूर्ण के साथ।

सन्धिरोग में—त्रिजातक (दारुचीनी, इलायची, तेजपात) के साथ।

जराव्याधि में—त्रिफला के साथ।

श्लेष्म रोग में—कन्नली, मधु और पीपल के चूर्ण के साथ।

रक्तपित्त में—चतुर्जात (दारुचीनी, तेजपात, इलायची, नागेश्वर) मिश्रित गुड़ के साथ।

बलवृद्धिकरण में—गाय के दूध और पुनर्नवा के रस के साथ।

रक्त की अल्पता में—पुनर्नवा के रस के साथ।

बीस प्रकार के प्रमेह रोग और सुज़ाक में—मधु मिश्रित हरिद्रारस और पीपल के चूर्ण के साथ।

मूत्रकृच्छ्र में—शिलाजीत के साथ।

कफरोग में—अडूसा, पीपल, द्राक्षा और मधु एकत्र मिलाकर सेवन करे।

अग्निदीप्ति करने और देह में कान्ति उत्पन्न करने में—गाभफल के रस के साथ।

सर्वरोग निवारण में—त्रिफला और मधु के साथ सेवन करे।

लौहभस्म की मात्रा

लौहभस्म की मात्रा २ रत्ती है।

लौह सेवन में पथ्य

लौहसेवी के लिये निम्नलिखित पथ्य की व्यवस्था करनी चाहिये। बटेर, तीतर, गोह, मयूर, खरगोश, वत्तक, कबूतर, बटेर, हारिल, बाजपक्षी, बड़ा लवा पक्षी, सब प्रकार के मृग, ताजी मछलियां, रोहित, शकुलमत्स्य, पपीता, परवल, रमकलिया, तालफल, शतावरी, बेत की कोपल, विडङ्ग, बथुआ, धनिये का शाक, स्वर्णालु, पुनर्नवा, नारियल, खजूर, अनार, लिसोड़ा, सिंघाड़ा, पके और मीठे आम के फल, अङ्गूर, जायफल, लौंग, सुपारी और पान आदि पथ्य है।

लौहसेवी के लिये अपथ्य

लकुच (बड़हर), बेर, ककड़ी, पेमदी बेर, नीबू, बिजौरा, करोंदा, तिन्तिड़ी (इमली), आनूपमांस, कङ्कर, पिड़की, हंस, सारस, मूंग, कांक, बलाहक, कन्द, चना, कदम्ब, कुम्हड़ा, कद्दू, केबुक, केला, कुलथी, कशेरू, सब प्रकार की दाल, तिल का तेल, लहसन, राई, मद्य, खटाई, बासी मछली, जीरा, बैंगन, उर्द की दाल, करेला, सब प्रकार के व्यायाम, सब प्रकार के सन्धान द्रव्य (आसव, अरिष्ट आदि), दीर्घकाल तक घोड़े की सवारी, श्रम, अत्यधिक वार्ते करना, स्नान, पान,

आहार, शीत और वायु सेवन, असमय में भोजन, विरुद्ध भोजन, दिन में सोना, रात को जागना, वात-पित्तकर द्रव्य भोजन, कटु-खट्टा-तिक्त-कषाय रस भोजन, मैथुन, क्रोध; शारीरिक परिश्रम एवं सब प्रकार के धातु और रसमारक समस्त द्रव्य अपथ्य हैं।

अनियमित लौहसेवन के दोषनिवारण का उपाय

लौहभस्म वा अन्य धातुभस्म का अनियमित भाव से सेवन करने से जो दोष होते है, उनके निवारण के लिये नीचे लिखा सिद्धिसार सेवन करे।

सिद्धिसार

हरीतकी का चूर्ण, सेंधा नमक, सोंठ, सफेद जीरा, समान भाग लेकर प्रत्येक का दूना निसोत लेकर नीवू के रस में भावना दे।

मात्रा-१ रत्ती से आरम्भ कर १२ रत्ती तक बढ़ाई जा सकती है। इसके सेवन से यथासमय मलप्रवृत्ति और उदर की लघुता आ जाती है, डकार शुद्ध आती है, अङ्ग-प्रत्यङ्ग की थकावट दूर होकर मन में फुर्ती आती है।

अविशुद्ध लौह सेवन के दोष

लोहमारण में शास्त्रोल्लिखित जिन द्रव्यो का जो परिमाण है उसकी अपेक्षा कम मात्रा में व्यवहार करने से अथवा अल्पसंख्यक पुट देने से अथवा अल्प मात्रा में गन्धक और पारद के साथ मर्दन करने से लोह दोषयुक्त होता है। इस दोषयुक्त लौह का सेवन करने से मनुष्य अल्पायु होता है।

अशुद्ध लौह सेवन से उत्पन्न विकार की शान्ति

अशुद्ध लोहे से उत्पन्न दोष मे, वासक (अडूसे) के रस में विडङ्ग मर्दन कर उसमें अधिक परिमाण में अडूसे का रस मिलाकर अधिक समक तक धूप में भावना देकर सेवन करे।

लौह द्रावण

सात दिन तक गन्धक को देवदाली के रस में भावना देनी चाहिये, फिर उस गन्धक को सुखा कर अग्निसंयोग से द्रावण करते हुए लौह गिराने से वह पारे की तरह अवस्थान्तर को प्राप्त होता है अर्थात् द्रवित होता है।

गन्धक द्रावण

गन्धक और सोरा दग्ध करके दोनों के धुँए को जल की भाप के साथ किसी सीसे के पात्र मे एकत्र मिलाने से गन्धक मे द्रावण उत्पन्न होता है यह अग्नि की तरह तेज से युक्त और अत्यन्त अग्निसन्दीपक है।

मण्डूर (लोहकिट्ट)

जलते हुए कोयलो की अग्नि मे लोहे को तपाकर हथौड़ी की चोट लगाने से उससे चारों ओर जो मल उचटता है उसे मण्डूर (लोहसिङ्घारिन) कहते हैं। यह जितना पुराना हो उतना ही अधिक उत्तम होता है। मण्डूर मे लोहे के सदृश गुण है। अतएव रोगशान्ति के लिये मण्डूर भी सर्वत्र प्रयोग किया जा सकता है। लोहकिट्ट की अपेक्षा मुण्डलौह दश गुना उत्कृष्ट है। मुण्ड की अपेक्षा तीक्ष्ण सौगुना श्रेष्ठ है, तीक्ष्ण लौह की अपेक्षा कान्त लौह सेवन से लक्ष गुना अधिक उपकारी है। अतएव जरा, मृत्युनाशक कान्तलौह ही सदा सेवन करना उचित है। कान्तलौह के अभाव मे स्वर्ण वा रौप्य व्यवहार्य है।

मण्डूर के प्रकार भेद

मुण्डलौह से उत्पन्न मण्डूर कुछ श्यामवर्णविशिष्ट भारी और कोमल होता है; तीक्ष्ण लौह से उत्पन्न मण्डूर काजल के सदृश चिकना और भारी होता है; कान्तलौह से प्राप्त मण्डूर धूसर वर्ण वाला कर्कश और अन्यान्य मण्डूर की अपेक्षा अधिकतर भारी है। इसके दो टुकड़े करने से रौप्य की तरह स्तर वाला देख पड़ता है।

औषध में व्यवहार करने योग्य मण्डूर

(१) औषध में व्यवहार करने योग्य मण्डूर कोटररहित–भारी, स्निग्ध, दृढ़, सौ वर्ष का पुराना और बहुत प्राचीन ग्राम से संगृहीत होना उचित है। (आगरे से ५० मील पर पाटम Via Shikohabad, जिला मैनपुरी से खेरे पर कई सौ वर्ष का पुराना खोदने पर मिल जाता है। यहाँ पर राजा जनमेजय ने सर्प-यज्ञ किया था।

(२) सौ वर्ष से अधिक पुराना मण्डूर सर्वश्रेष्ठ है, ८० वर्ष से अधिक मण्डूर मध्यम गुणवाला और ६० वर्ष का मण्डूर अधम है। ६० वर्ष से कम का मण्डूर विषवत् है, उसे औषधार्थ कभी व्यवहार करना उचित नहीं है।

मण्डूर की शोधन और मारणविधि

(१) मण्डूर को वहेड़े की लकड़ी के कोयलों पर तपाकर वहेड़े के पात्र में रक्खे हुए गोमूत्र में यथाक्रम ७ वार बुझावे। फिर उस मण्डूर का सूक्ष्म चूर्ण करके सब कार्यों में प्रयोग करे।

(२) अथवा गोमूत्र के साथ त्रिफला सिद्ध करके उस क्वाथ में तप्त मण्डूर वारम्वार बुझावे। जव तक मण्डूर जीर्ण न हो जाय, तव तक इसी तरह तपाता और बुझाता रहे। फिर उस मण्डूर का चूर्ण करके व्यवहार करे।

(३) अथवा मण्डूर अतिसूक्ष्म करके उस चूर्ण को आठगुने गोमूत्र में सिद्ध करे (औटे)। यथेष्ट रूप से सिद्ध होने पर फिर पीस कर व्यवहार करे।

मण्डूर का व्यवहार

मण्डूर भस्म नीचे लिखे प्रत्येक द्रव्य के साथ सम परिणाम में मिला कर प्रतिदिन १ तोला परिमाण (यह मिश्र) सेवन करने से पाण्डु, शोथ, हलीमक, ऊरुस्तम्भ और अर्शरोग आराम होता है:—त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, विडङ्ग, चव्य, चित्रक, दार्वीग्रन्थी एवं देवदारु। इसके साथ व्यवहृत मण्डूर को हंसमण्डूर कहते हैं। इस औषध के हजम होने पर तक्र पान करना उचित है।

मण्डूर का द्रावण

विडङ्ग को वकफूल के पत्ते के रस में मांड़ कर वहुत दिन तक उस रस में भावना दे। लोहकिट्ट को इस रस में कुछ देर डुबाकर रखने से द्रावित होता है।

यशोद (दस्ता)

यशोद रसक (फिटकरी) का सार है। यह वैद्यो को यश देने वाला है। ज्ञानी वैद्य इसके व्यवहार से सफल मनोरथ होकर वास्तव में यथेष्ट यश अर्जन करते हैं।

यशोद के गुण

(१) इसको अग्नि पर गला कर चूने के जल में वुझाने से शोधित होता है।

(२) अथवा गला कर केला की जड़ के रस में बुझाने पर भी शुद्ध होता है।

यशोदभस्म विधि

यशोद मारण की विशिष्ट विधि स्वर्णभस्म की तरह होने से उसकी चतुर्थ विधि देखिये।

यशोदभस्म सेवन विधि

अतिसार में—काटानट की जड़ और खजूर एकत्र जल मे भिगो कर इस जल के साथ।

शीतज्वर में—जवाइन और लवङ्ग के चूर्ण के साथ।

वमन में—चीनी और जीरा के चूर्ण के साथ।

चक्षुरोग में—पुराने घी के साथ अञ्जन लेना चाहिये।

प्रमेह रोग में—पान के रस के साथ।

अग्निमान्द्य में—अग्निमन्थ (अरणि) के रस के साथ।

त्रिदोष में—त्रिसुगन्धि के साथ।

यशोद की मात्रा

हरिताल के संयोग से जारित यशोद १ रत्ती मात्रा में प्रतिदिन सेव्य है। हरिताल के विना जारित यशोद २ रत्ती मात्रा मे सेव्य है।

अशुद्ध यशोद सेवन के दोष

अशोधित यशोद एवं जो विधिपूर्वक भस्मीभूत नही है, ऐसा यशोद सेवन से प्रमेह, अग्निमान्द्य, वमन आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

अशुद्ध यशोद सेवन से उत्पन्न दोष की शान्ति

तीन दिन सुगन्ध बाला और हरीतकी चीनी के साथ मिला कर सेवन करने से अशुद्ध यशोद सेवन से उत्पन्न दोषों की शान्ति होती है।

बङ्ग (टीन)

दो प्रकार का बङ्ग है—१-खुरक और २-मिश्रक। उनमें खुरक वङ्ग ही उत्कृष्ट है। खुरक बङ्ग श्वेत वर्ण, स्निग्ध, शीघ्र द्रवीभूत होता है, भारी होता है और अग्नि पर तपाने से इसमें कुछ शब्द नही होता। मिश्रक बङ्ग श्याम मिला हुआ

शुभ्र रंग का होता है, दोनों वङ्ग ही तिक्तरस, उष्णवीर्य, रूक्ष, ईषत् वायु प्रकोपक एवं मेह, श्लेष्म रोग, मेद और क्रिमि निवारक है।

वङ्ग के गुण

यथाविधि भस्मीकृत वङ्ग बल, अग्नि, क्षुधा, बुद्धि और सौन्दर्य बढ़ाने वाला तथा स्निग्धकर है। यह नियमित सेवन से क्षय, स्वप्नदोष आदि निवारण करता है। एवं धातु को स्थिर करने वाला और प्रमेहनाशक है।

वङ्ग की शोधन विधि

(१) वङ्ग को पिघला कर हलदी का चूर्ण मिले हुए निसिन्दा (निर्गुण्डी) के रस में बुझावे, तीन बार ऐसा करने से खुरक वङ्ग अवश्य शोधित होता है।

(२) पुनर्नवा, कुचिला और कड़वी तूंबी के साथ मर्दन करके खट्टी छाछ में बुझाने से भी वङ्ग विशुद्ध होता है।

(३) वङ्ग और सीसक को सात बार घोषा (विडङ्ग) के चूर्ण और आक का रस लेपन करके धूप में सुखाने पर भी वङ्ग और सीसा विशुद्ध होता है। निर्गुण्डी का चूर्ण मिलाकर निर्गुण्डी के रस में डालकर सुखाने से भी वङ्ग शोधित होता है।

वङ्गभस्म

(१) वङ्ग के पत्र अलग अलग कर उसमें हरिताल और आक का रस लेपन करे। फिर उस वङ्ग को पीपल और इमली वृक्ष की सूखी छाल के क्षार के साथ मिलाकर पुटपाक करे। पाक हो जाने पर वह भस्म चूर्ण कर ले और रसादि क्रिया में उसका प्रयोग करे।

(२) एक मिट्टी के पात्र में वङ्ग पिघला कर उसमें उसका सोलहवां भाग पारा डाले, और थोड़ा थोड़ा हरिताल चूर्ण बारम्बार डालकर भारद्वाज (वन कपास) की लकड़ी से उसे हिलाते रहें। इस तरह भस्म तैयार करके उसका रस-क्रिया में प्रयोग करे।

(३) स्वर्णभस्म की तरह वङ्गभस्म करने से वह भस्म विशेष गुणकारी होती है।

(४) पलास (ढाक) के रस में हरिताल मर्दन करके उसके द्वारा वङ्ग के पत्ते लेपन करके पुटपाक करे तो वङ्ग सहज में भस्म हो जाता है।

वङ्गभस्म सेवन विधि

८ रत्ती परिमाण (उपयुक्त मात्रा मे) यह वङ्गभस्म, गाय की छाछ और पिसी हुई हलदी के साथ चाटने से इसके द्वारा सुन्दर रूप से रसायन क्रिया सिद्ध होती है। एवं २० प्रकार के मेहरोग निश्चय विनष्ट होते हैं। बङ्गभस्म सेवन करके महीन चावल, मूंग का यूष, मक्खन, तिल का तैल, परवल, तिक्त तेलकुचा और छाछ ये पथ्य प्रशस्त है।

वङ्ग के अनुपान

मुख की दुर्गन्ध में—कपूर के साथ वङ्ग सेव्य है।

जायफल के साथ सेचन से यह देह पुष्ट करता है और वीर्यधारण की शक्ति वढ़ाती है।

प्रमेहरोग में—तुलसी पत्ते के साथ।

रक्तशून्यता में—घृत के साथ।

गुल्मरोग में—शोधित सुहागे के साथ।

अम्लपित्त रोग में—हलदी के साथ। मधु के साथ सेवन से मलवृद्धि होती है।

पित्तवृद्धि में—मिश्री के साथ। पान के रस के साथ सेवन से शुक्र वृद्धि होती है।

जीर्ण शक्तिलोप में—पीपल के चूर्ण के साथ।

दमा और श्वास में—हल्दी के साथ।

गात्र की दुर्गन्धि में—चम्पा फूल के रस के साथ सेवन करने से गात्र की दुर्गन्ध नष्ट होती है।

वायुवृद्धिजनित पीडा में—कस्तूरी के साथ।

चर्मरोग में—खदिर के क्वाथ के साथ।

अजीर्ण में—सुपारी के साथ।

क्षयरोग में—मक्खन के साथ। दुग्ध के साथ सेचन करने से यह खूब पुष्टिकारक है। भङ्ग के साथ सेवन से वीर्यस्तम्भन होता है।

वायुजनित पीड़ा में—लहसुन के रस के साथ।

कुष्ठव्याधि में—समुद्रफल और निर्गुण्डी के रस के साथ।

क्लैब्य में—अपामार्ग की जड़ के साथ सेवन से सुन्दर फल मिलता है।

जननेन्द्रिय की शक्ति बढ़ाने के लिये—लवङ्ग, समुद्रफल और पान के रस के साथ वङ्ग मलहम की तरह लगावे।

इसका तिलक कपाल पर धारण करने से सम्मोहन शक्ति प्राप्त होती है।

एरण्ड मूल के रस और जल के साथ कपाल पर लेपन करने से शिरोरोग विनष्ट होते हैं।

सीसक (सीसा)

सीसक शीघ्र पिघल जाता है। यह अत्यन्त भारी है, छेदन करने से उज्ज्वल कृष्णवर्ण दीख पड़ता है। जिस सीसे मे बदबू आती हो और बाहर से काला हो वह अच्छा नही। इससे अन्य प्रकार का सीसा निर्दोष है। सीसक अत्यन्त उष्ण-वीर्य, स्निग्ध, तिक्तरस, वातश्लेष्मनाशक, प्रमेह और जलदोष निवारक, अग्नि का उद्दीपक और आमवात नाशक है।

सीसा अग्नि की ज्वाला में चढ़ाकर, उसमे निर्गुण्डी की जड़, वराहीकन्द और हलदी का चूर्ण डाले। द्रवीभूत होने पर उस सीसे को निर्गुण्डी के रस में डाल दे। ऐसा ३ बार करने से सीसक शुद्ध होता है और उस शोधित सीसक का सेवन करने से मूर्च्छा और फोड़ा आदि पीड़ा उत्पन्न नही होती है।

सीसक के गुण

भस्मीभूत सीसक जीवनीशक्ति और शुक्र वर्द्धक है, यह पाचन शक्ति को बढ़ाता है। दीर्घकाल नियमित व्यवहार से प्रजनन शक्ति बढ़ती है।

सीसक मिष्ट और तिक्त रसयुक्त है। यह रौप्य का रञ्जक है। दीर्घकाल व्यवहार से जीवनीशक्ति, वीर्य और स्मरणशक्ति बढ़ाता है।

शुद्ध सीसक की परीक्षा

जो सीसक शीघ्र गल जाय, बहुत भारी हो और जो काटने से समुज्ज्वल कृष्ण वर्ण दीख पड़े वह विशुद्ध है।

सीसक शोधन विधि

सीसक के पत्र करके, निर्गुण्डी की जड़ के चूर्ण और आक के रस के साथ मिलाकर उन पत्रों पर लेप कर सुखा लेवे फिर गला कर निर्गुण्डी के रस में डुबा दे।

यह क्रिया सात वार करने से सीसा शोधित होता है। सीसक को पिघला कर केला की जड़ के रस में भिगोने से वह शोधित होता है।

सीसक की भस्म विधि

(१) सीसक भस्म की विधि स्वर्णभस्म की तरह है। (चतुर्थ विधि देखिये)।

(२) सम परिमित सीसक और यवक्षार एकत्र मिलाकर प्रवल अग्निताप पर चढ़ावे और लोहे की कर्छी से चलाता रहे एवं धूल की भांति चूर्ण हो जाने पर उतार ले फिर वड़ की जटा के क्वाथ में मांड़ कर पुटपाक करे।

(३) सीसक के पत्र पर मैनशिल और आक का रस लेपन करके पुटपाक करने से उसका निरुत्थ भस्म तयार होता है।

सीसक का अमृतीकरण

दो पल सीसक भस्म समपरिमित हिङ्गुल और एक तोला गन्धक एकत्र नीबू के रस में मर्दन करके गजपुट मे पाक करे। इस प्रकार का सीसक विशेष शक्तिशाली होता है।

सीसक का अनुपान

सीसक भस्म चीनी के साथ सेवन करने से वायु, पित्त, शिरःशूल, चक्षु की पीड़ा, शुक्रदोष, प्रलाप, प्रदाह, अग्निमान्द्य दूर हो जाते हैं।

अशोधित सीसक सेवन से उत्पन्न दोषों की शान्ति

हर्रा और चीनी के साथ स्वर्णभस्म तीन दिन सेवन करने से उक्त दोषो की शान्ति होती हैं।

मिश्र धातु

पीतल

पीतल दो प्रकार की है—१-रीतिका और २-काकतुण्डी। जो पीतल तपाकर काँजी में डालने से ताम्रवर्ण हो वह रीतिका है। और जो तपाकर काँजी मे डालने से काली पड़ जाय वह काकतुण्डी है।

पीतल के गुण

रीतिका पीतल-तिक्तरस, रूक्ष, क्रिमिनाशक, रक्तपित्त-निवारक, कुष्टनाशक, संयोगवश कुछ उष्णवीर्य किन्तु स्वभावतः शीतवीर्य है। काकतुण्डी पीतल-रूक्ष, तिक्तरस, उष्ण, कफपित्तनाशक, यकृत-प्लीहा निवारक और शीतवीर्य है।

पीतल शोधन विधि

पीतल को तपाकर, हल्दी के चूर्ण मिले हुए निर्गुण्डी के रस में ५ वार डालने से विशोधित होता है।

पीतल-भस्मविधि

(१) पीतल-भस्मविधि तावे की तरह है।

(२) नीवू का रस, मैनशिल और गन्धक के साथ पीतल मर्दन करके आठ वार पुटपाक करने से पीतल भस्म हो जाता है।

पीतल का व्यवहार

पीतलभस्म, कान्तलौह भस्म और अभ्र सत्त्व ये तीनों द्रव्य समपरिमाण में लेकर सव की तौल वरावर त्रिकटु, विडङ्ग, वामनहाटी के वीज, वनयमानी, चीते की जड़, भेला और तिलों के चूर्ण के साथ मिलाकर एक मात्रा परिमाण सेवन करने से क्रिमि, कुष्ठ विशेषतः श्वेतकुष्ठ निवारित होता है।

कांसा (कांस्य)

आठ भाग तॉवा और दो भाग वङ्ग (दस्ता) पिघला कर एकत्र मिलाने से कासा वनता है। सौराष्ट्र देश में उत्पन्न कांसा शुभ फल देने वाला है। अथवा तीक्ष्णशव्दकारी, मृदु, स्निग्ध, कुछ श्याम युक्त शुभ्र वर्ण, निर्मल और तपाने से रक्तवर्ण इन छः गुणों वाला कांसा ही प्रशस्त है। जो कांसा पीले रङ्ग का, तपाने से ताम्रवर्ण हो और जो खरस्पर्श, रूक्ष, घन, आघात सहने मे असमर्थ (फूट जाय) और मर्दन करने से जिसकी ज्योति निकले, यह सात प्रकार का कांसा परित्याग करने योग्य है।

कांसे के गुण

कांसा लघु, तिक्तरस, उष्णवीर्य, लेखन, दृष्टि की प्रसन्नता करने वाला, क्रिमि और कुष्ठनाशक, वायु और पित्त का शान्तिकारक, अग्नि का उद्दीपक और हितकर है।

घी को छोड़कर अन्य सब द्रव्य कांसे के पात्र में सेवन करने से आरोग्य, सुख और शान्ति प्राप्त होती है।

कांस्य की शोधनविधि

कांसे को तपाकर गोमूत्र में बुझाने से शोधित होता है। अथवा तीन घण्टा तेज अग्नि पर गोमूत्र में सिद्ध करने से शोधित होता है।

कांसे की भस्मविधि

शोधित कांसा गन्धक और हरिताल के साथ मर्दन कर ५ वार पुटपाक करने से उसका निरुत्थ भस्म प्रस्तुत होता है।

वर्तलौह

कांसा, तांवा, पीतल, लौह और सीसा इन ५ धातुओं के मिलने से वर्तलौह की उत्पत्ति होती है। इसका दूसरा नाम पञ्चलौह है।

वर्तलौह के गुण

वर्तलौह शीतवीर्य, अम्लकटुरस, रूक्ष, कफपित्तनाशक, रुचिकर, त्वचा को हितकर, क्रिमिनाशक, नेत्रों को उपकारक एवं मलशुद्धिकारक है। वर्तलौह के पात्र में अन्न, व्यञ्जन और दाल आदि पकाने से और उसमें खटाई का संयोग न रहने से वे पदार्थ अग्नि बढ़ाने वाले और पाचक हो जाते हैं।

वर्तलौह को शोधन-विधि

वर्तलौह पिघला कर घोड़े के मूत्र में बुझाने से वह विशुद्ध होता है।

वर्तलौह की भस्मविधि

उक्त रूप से शोधित वर्तलौह गन्धक और हरिताल के साथ मर्दन करके पुटपाक करने से भस्म होता है।

त्रिलौह

२५ भाग स्वर्ण, १६ भाग रौप्य और १० भाग ताम्र एकत्र गलाने से त्रिलौह तैयार होता है। यह सर्वदोष नष्ट करता है और श्रेष्ठ रसायन है। यह अग्निवर्द्धक और सर्वरोगनाशक है।

त्रिलौह को शोधन और भस्म विधि

यह स्वर्ण के शोधन और भस्म की विधि से शोधित और भस्मीभूत होता होता है। पूर्ण रूप से शोधित और भस्मीभूत हुए विना यह विप की तरह असर करता है।

त्रिलौह रसायन

जो व्यक्ति प्रतिदिन सवेरे १ रत्ती त्रिलौह भस्म मधु, घृत, त्रिफला और त्रिकटु के साथ सेवन करे वह सुखी, दीर्घायु और स्वस्थ रहता है।

रत्न

मणिसमूह भी पारद का वन्धनकारक है। वैक्रान्त, सूर्यकान्त, हीरा, मुक्ता, चन्द्रकान्त, राजावर्त्त, मरकत (गरुडोद्गीर्ण), पुखराज, महानील, माणिक्य, मूंगा, वैदूर्य और नील, इनको मणि कहा जाता है।

पद्मराग, इन्द्रनील, मरकत, पुखराज और हीरा ये ५ श्रेष्ठ रत्न कहलाते हैं। माणिक, मोती, मूंगा, मरकत, पुष्पराग, हीरा, नीलमणि, गोमेद और वैदूर्य यथाक्रम से ये ७ मणि ९ ग्रहों को प्रसन्न करने वाली है। पद्मराग (माणिक्य), पुष्पराग, प्रवाल, मुक्ता, मरकत, हीरा, नीलमणि, गोमेद और वैदूर्य ये मणि यथाक्रम से इष्ट सिद्धि के लिये अंगूठी धारण में प्रशस्त हैं।

ये सव रत्न सुलक्षण और सुजात होने से रसक्रिया, रसायन कार्य, दान, धारण और देवपूजा में सिद्धिप्रद हैं।

माणिक्य

माणिक्य दो प्रकार का है, १–पद्मराग और २–नीलगन्धि। कमलदल की नाईं जिसकी कान्ति हो और जो स्वच्छ स्निग्ध और अतिशय उज्वल हो, वही पद्मराग है। वृत्त, आयत, सम और स्थूल पद्मराग उत्कृष्ट है। और जो गङ्गाजल से उत्पन्न और नीलगर्भ रक्तवर्ण है वही नीलगन्धि माणिक्य है। यह भी पद्मराग की तरह वृत्तादि गुणवाला होने से उत्कृष्ट है।

छिद्रयुक्त, कर्कश, मलिन, रूक्ष, अस्वच्छ, चपटा, लघु और वक्र यह ८ प्रकार का माणिक्य दूषित है।

माणिक्य अग्नि का उद्दीपक, वृष्य, कफ-वातनाशक, क्षयरोग निवारक एवं भूत, वैताल, पाप और कर्म्मज व्याधियो का शान्तिकारक है।

मौक्तिक

आह्लादजनक, श्वेतवर्ण, लघु, स्निग्ध, किरण विशिष्ट, निर्मल, वृहत्, जल-विम्ववत् और गोलाकार यह नौ प्रकार गुणयुक्त मौक्तिक शुभजनक होने के कारण प्रसिद्ध है।

मुक्ता लघु, शीतल, मधुररस, कान्तिवर्धक, दृष्टिशक्ति को बढ़ाने वाला, अग्निदीप्तिकर, पुष्टिजनक, विषनाशक, विरेचक और वीर्यवर्द्धक है। समुद्र मे जो सीप उत्पन्न होती है वह उज्ज्वल एवं परिणाम शूल का शीघ्र शान्तिकारक है।

जो मुक्ता रूक्षाङ्ग, शुष्कवत्, काले वर्ण की, ताम्राभ और लवण सदृश है, आधा शुभ्र, विकटाकार अथवा ग्रन्थिविशिष्ट है, उन सब मुक्ताओ का परित्याग करे।

मुक्ता कफपित्त और क्षयरोगनाशक, कास, श्वास और अग्निमान्द्य निवारक, पुष्टिजनक, शुक्रवर्द्धक, आयुवर्द्धक एवं दाहशान्तिकारक है।

मुक्ता निम्नलिखित विषयो से उत्पन्न होता है:—हाथी, मेढक, शूकर, शङ्ख, मत्स्य, सींप और वांस।

गजमुक्ता

हाथी से जो मुक्ता पाई जाती है उसे गजमुक्ता (मोती) कहते हैं। यह खूब उज्ज्वल, जयप्रदानकारी और सब रोगों को शान्त करने वाली है।

सर्पमणि

सर्पमणि रम्य, नील वर्ण की ज्योतिवाली एवं अत्यन्त उज्ज्वल, कटहल की आकृति सदृश, आमले और गुञ्जावीज सदृश होती है।

मीनमुक्ता

यह कौंच के बीज सदृश होती है। एक प्रकार की तिमिजातीय मछली के भीतर उत्पन्न होती है। यह लघु एवं पारुल पुष्प के सदृश होती है। यह गोलाकार और ज्यादा उज्ज्वल नही होती है।

मीनमुक्ता मछली की आँख के सदृश, पवित्र और वहुगुणविशिष्ट और वृहत् होती है। यह तिमि के मुख मे उत्पन्न होती है।

वराहमुक्ता

किसी किसी शूकर के दाँत की जड़ में जो मुक्ता उत्पन्न होती है उसे वराह मुक्ता कहते हैं। यह चन्द्रविम्ब की तरह उजली और अनेक गुण वाली होती है।

वेणुमुक्ता

वांस से उत्पन्न मुक्ता वांस के भीतर होती है। चन्द्रविम्ब की भांति उज्ज्वल और हलदी की सी आभावाली होती है। वंशलोचन में और इनमें भेद यह है कि-वंशलोचन चीनी की तरह वस्तु, कोमल और लघु है। वेणुमुक्ता कठिन एवं भारी होती है।

शङ्खमुक्ता

शङ्खमुक्ता चन्द्रसमान श्वेतवर्ण वाली, गोलाकार, उज्ज्वल और मनोहर है, इसकी वेर की सी आकृति होती है और समय समय पर कभी कभी कबूतर के अण्डे के समान बड़ी भी होती है।

दादुर (मेंढक) मुक्ता

मेंढक के सिर पर जो मुक्ता उत्पन्न होती है वह सर्पमणि सदृश होती है।

सीपमुक्ता

सीप से जो मुक्ता उत्पन्न होती है उसे सीप की मोती कहते हैं। शङ्ख और सीप में जो मोती उत्पन्न होती है वह अन्यान्य मोतियों की अपेक्षा हीन है। जो मोती या मुक्ता समुद्र में उत्पन्न होती है (मीनमुक्ता, शङ्खमुक्ता, सीपमुक्ता) वे वीर्यवान और रोगनाशक होती हैं।

प्रवाल-मूंगा

पके हुए विम्बफल कुंदरू की तरह लालरंग, गोला और बड़ा, सीधा, चिकना, अक्षत (टूटा न हो) और मोटा यह ७ प्रकार का प्रवाल शुभ फलदायक है।

पाण्डु वा धूसरवर्ण, सूक्ष्म, क्षत (दागी) वाला, भीतर कोटर वा गांठ वाला, हलका, ताम्रवर्ण ये आठ प्रकार के प्रवाल अच्छे नहीं हैं।

प्रवाल अग्निवर्द्धक, पाचक, लघु, क्षीण, पित्त, रक्त और कास निवारक है।

तार्क्ष्य

हरिद्वर्ण, भारी, चिकना, किरणयुक्त, मुलायम, उज्ज्वल और स्थूल इन सात लक्षणों से युक्त मरकत मणि उत्तम है। जो मरकत कपिल, नील, पाण्डु वा कृष्ण वर्ण, कर्कश, लघु, चपटा, विकट और रूक्ष हो वह अच्छा नहीं है। मरकत मणि ज्वर, वमन, विषदोष, श्वास, सन्निपात, अग्निमान्द्य, अर्श, पाण्डु और शोथ रोग को शान्त करने वाला और ओजवर्द्धक है।

पुष्पराग

भारी, स्वच्छ, चिकना, स्थूल, समगात्र, मृदु, मुलायम और कर्णिकार (कनेर) के कुसुम की नाईं पीतवर्ण, इन ८ लक्षणोसे युक्त पुष्पराग मणि शुभजनक है। पीला, श्याम, कपिश, कपिल, वा पाण्डुवर्ण, प्रभाहीन, कर्कश, रूक्ष और विषम गात्र वाले पुष्परागमणि का परित्याग करे। पुष्पराग अग्निवर्द्धक, पाचक, लघुपाक और विषदोष, वमन, कफ, वायु, मन्दाग्नि, दाह, कुष्ठ और रक्तदोष का शान्तिकारक है।

वज्र-हीरा

पुरुष, स्त्री और नपुंसक भेद से हीरा तीन प्रकार का है। रसवीर्य और विपाक में इनमें पूर्व पूर्व उत्कृष्ट है अर्थात् नपुंसक की अपेक्षा स्त्री और स्त्री की अपेक्षा पुरुषजातीय हीरा श्रेष्ठ है।

अष्टकोण, अष्टफलक या षट्कोणयुक्त, अत्यन्त दीप्तिवाला एवं मेघ, इन्द्रधनु या स्वच्छ जल की आभा वाला हीरा पुरुषजातीय होता है। जो गोलाकार किन्तु दीर्घ और चपटा हो, वह स्त्रीजातीय है। और जो वर्तुलाकार किन्तु कोनों पर सङ्कुचित और कुछ भारी है, वही नपुंसकजातीय हीरा है।

स्त्री, पुरुष और नपुंसक व्यक्ति के लिये यथाक्रम से स्त्रीजातीय, पुंजातीय और नपुंसकजातीय हीरे का प्रयोग करें। पुंजातीय हीरक के सिवाय अन्य कोई हीरा इस नियम के विपरीत प्रयोग किया जाय तो वह फलप्रद नही होता, अर्थात् पुंजातीय हीरा स्त्री, पुरुष, नपुंसक सब के लिये ही उपकारी है। इन तीन प्रकार के हीरों में से प्रत्येक के श्वेतादि भेद से चार प्रकार हैं। वे चार विभाग वर्णभेदानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कहे जाते हैं। श्वेतवर्ण-हीरा ब्राह्मणजातीय,

लालवर्ण का क्षत्रिय, पीले वर्ण का वैश्य और कृष्ण वर्ण का शूद्रजातीय है। इनमे पीतवर्ण की अपेक्षा पूर्व-पूर्व उत्तम जातीय हीरक अधिक फलप्रद है।

हीरा आयुवर्द्धक, शीघ्र सद्गुणप्रद, वृष्य, त्रिदोष का शान्तिकर्त्ता, सर्वरोग-नाशक, पारद का बन्धन, जारण और गुणोत्कर्ष सम्पादक, उद्दीपक, मृत्युनिवारक और अमृतवत् उपकारक है।

सब रत्नो के ही ५ साधारण दोष हैं जैसे गौर, त्रास, विन्दु, रेखा और जल-गर्भता। क्षेत्र और जलजात ये दोष रत्न में नहीं लगते हैं।

हीरे का शोधन

(१) कुलथी के क्वाथ अथवा कोदो (धान्य) के क्वाथ के साथ एक प्रहर तक भिगोने से हीरा शुद्ध होता है।

(२) किसी भी प्रकार के रत्न को दोलायंत्र में जयन्ती (जैंथी) के पत्तों के रस में ३ घण्टा पाक करने से वह शोधित होता है।

हीरे की भस्मविधि

श्वेतवर्ण वाले हीरे को पीपल, वेर और जयन्ती वृक्ष की छाल, माक्षिक और कैंकड़ा का खोला और सम परिमाण मनसा वृक्ष के रस के साथ मर्दन करके उस मलहम का लेप लगाकर गजपुट मे पाक करने से हीरा भस्मीभूत होता है।

लाल रंग का हीरा करबी, मेढ़ाश्रृङ्गी, वेर, गूलर समान लेकर आक के रस के साथ माड़कर मलहम सा तयार कर उसे हीरे पर लगाकर गजपुट में पाक करने से भस्मीभूत होता है।

पीले रंग का हीरा बला, अतिबला, गन्धक और कछुए के खोल समपरिमित इन्द्रवारुणी के रस के साथ मर्दन करके यह मलहम लगाकर गजपुट में पाक करने से भस्मीभूत होता है।

कृष्णवर्ण हीरे को जमीकन्द, लहसुन, शङ्ख, मैनशिल सम परिमाण वट के रस के साथ मर्दन करके गजपुट में पाक करने से भस्मीभूत होता है।

स्त्रीजातीय और नपुंसकजातीय हीरे को पुंजातीय की तरह भस्म करते हैं।

हीरे की भस्म तिगुने पारद के साथ मर्दन कर गुटिका (गोली) बनावे। इस गुटिका को मुख मे धारण करने से हिलते हुए दांत दृढ़ होते है।

हीरे की भस्म ३० भाग, स्वर्णभस्म १ भाग, रौप्य ८ भाग, पारद ११ भाग, अभ्र १ भाग, स्वर्णमाक्षिक ८ भाग, वैक्रान्त ६ भाग, ये द्रव्य एक साथ मिलाने से पारद का षाड्गुण्य सिद्ध होता है।

नीलम (नीलमणि)

नीलमणि दो प्रकार का है, जलनील और इन्द्रनील। इनमें इन्द्रनीलमणि ही श्रेष्ठ है। जिस नीलमणि के गर्भ मे श्वेत आभा दिखाई पड़े और जो लघु हो वही जलनील है। और जिसके गर्भ मे कृष्ण आभा दिखाई पड़े और जो भारी हो, वही इन्द्रनील है।

एक रंग वाला, भारी, स्निग्ध, स्वच्छ, पिण्डाकृति और मध्यदेश मे ज्योति-वाला हो, यह ७ प्रकार का नीलरत्न उत्कृष्ट है। जलनीलमणि भी ७ प्रकार का है; यथा कोमल पंचवर्ण अधिष्ठित (आधा भाग एक वर्ण और आधा भाग पंचवर्ण), रूक्ष, हलका, रक्तगन्धयुक्त, चपटा और सूक्ष्म। नीलमणि–श्वासकास-नाशक, वृष्य, त्रिदोषनाशक, अग्निदीपक एवं विषमज्वर, बवासीर और पापनिवारक है। इसके अतिरिक्त और भी एक प्रकार का नीलमणि है, जिसका नाम महानील है। यह नील १०० गुने दूध में रखने से इसके वर्ण की अधिकता के कारण वह दूध नील वर्ण का हो जाता है।

नील उड़ीसा के कुछ भागो मे एवं लङ्का मे पाया जाता है।

गोमेद

गोमेद मणि का वर्ण गोमेद की तरह होने से इसे गोमेद कहा जाता है। गोमूत्र के वर्णवाला और स्वच्छ, स्निग्ध, समगात्र, गुरु, स्तरहीन, मुलायम और उज्ज्वल यह ८ प्रकार का गोमेद मणि शुभफलप्रद है। विकृतवर्ण, लघु, रूक्ष, चपटा, त्वचा की तरह आवरणयुक्त, प्रभाहीन और पीले कॉच की तरह वर्णवाला गोमेद शुभजनक नहीं है।

गोमेद मणि कफपित्त, क्षय और पाण्डुरोगनाशक एवं अग्नि का उद्दीपक, पाचक, रुचिकर, त्वचा को हितकर और बुद्धिवर्द्धक है।

वैदूर्य

जो वैदूर्य मणि शुभ्र आभायुक्त, समगात्र, स्वच्छ, भारी और उज्ज्वल हो और जिसके मध्यभाग मे शुभ्र चद्दर सा घूमता जान पड़े वही शुभजनक कहा

जाता है। और जलवत् श्यामवर्ण, चपटा, लघु, कर्कश और जिसके भीतर चद्दर जैसा पदार्थ दीख पड़े वह अच्छा नहीं है।

वैदूर्यमणि रक्तपित्तनाशक, प्रज्ञा, आयु और वल को वढ़ानेवाला, पित्त प्रधान रोग निवारक, अग्नि का उद्दीपक और मलनाशक है।

रत्नशुद्धि

खट्टी वस्तु द्वारा माणिक्य, जयन्ती पत्ते के रस द्वारा विद्रुम, गोदुग्ध द्वारा मरकत, कुलथी के क्वाथ में मिले हुए मद्य वा काञ्जी द्वारा पुष्पराग, तन्डुलीय (कँाटानट के) रस द्वारा हीरा, नीलवृक्ष के रस द्वारा नीलमणि, गोरोचन द्वारा गोमेद और त्रिफला के जल द्वारा वैदूर्यमणि शोधित होता है।

रत्नों ा भस्म

आक के रस, मैनशिल, गन्धक और हरिताल के साथ मर्दन करके ८ वार पुट देने से हीरे के सिवाय अन्य सव रत्न भस्म हो जाते हैं।

हींग, पञ्चलवण, जवाखार, सज्जीखार, सुहागा, मांसरस (एक प्रकार का अम्लवेत), चूलिका लवण, पका हुआ जमालगोटा फल, भिलावा, द्रवन्ती, रुदन्ती लता, क्षीरविदारी, चीते की जड़ और मनसा सीज का रस, 'आक का रस इन सवको एकत्र पीस कर उसका एक गोला वना ले, उस गोलक में निर्दोप और शुभफलदायक उत्तम जाति के रत्न रक्खे, फिर उस गोलक के ऊपर भोजपत्र लगाकर धागे से वांध दे। फिर उसके ऊपर वस्त्र लपेट कर, सव अम्लद्रव्य और काँजी से भरी हुई हांडी में दोलायन्त्र से पाक करे। ३ दिन रात तक तीव्र अग्नि से आर्द्र कर रत्नों को धो डाले। इसके वाद पुटपाक करके उन रत्नों की भस्म ग्रहण कर ले। रत्नभस्म रत्न की तरह प्रभा विशिष्ट, लघु, देह की दृढ़ताजनक और विविध शुभफलप्रद है।

मुक्ताचूर्ण अम्लवेत के साथ १ सप्ताह मर्दन करके जम्हीरी में रख दे और फिर अन्न के ढेर में गाढ़ दे। १ सप्ताह वाद उसे वाहिर निकाल कर पुटपाक करे तो उसकी भस्म तैयार होती है।

वज्रवल्ली (हाड़जोड़ा) में हीरा रखकर, अम्लद्रव्य से भरे मिट्टी के पात्र में ७ दिन उसे भिगोवे, फिर पुटपाक करने से हीरा भस्मरूप में परिणत होता है।

वैक्रान्त

श्वेत वर्ण वैक्रान्त अम्लवेतस के रस में भिगोकर तेज धूप मे सुखावे, इस तरह ७ दिन भावना दे, फिर केतकी के स्वरस, सेंधानमक और स्वर्णपुष्पी (स्वर्णयूथी वा विषलाङ्गलीया) और बीरबहूटी कीट, ये सब द्रव्य एक हांड़ी मे रखकर उस हांड़ी में दोलायन्त्र से एक सप्ताह तक वैक्रान्त को भिगोवे। इस तरह वैक्रान्त भस्म तैयार होता है। ८ तरह की धातु मे हीरा डाल कर भिगोवे उस योग के प्रभाव से वह भी निश्चित द्रवीभूत होता है।

रत्नभस्म कसूम के बीजों के तैल मे रखने से वह चिरकाल तक निर्विकार रहती है। इस प्रकार से रत्नभस्म रखकर आवश्यकता के समय उसका व्यवहार करे।

रत्नधारण करने से सूर्यादि ग्रहो का दोष दूर होता है एवं दीर्घायु और आरोग्य प्राप्त होता है, धैर्य वढ़ता है, कान्तिहीनता और पत्थर धूलि आदि के संसर्ग से उत्पन्न अलक्ष्मी का नाश और भूतादि निवारित होते हैं।

विन्ध्य पर्वत के उत्तर और दक्षिण की खानो में वैक्रान्त मिलता है।

वैक्रान्त की शोधन विधि

कुलथी के क्वाथ में तीन दिन पकाने से वैक्रान्त शुद्ध होता है।

वैक्रान्त का सत्त्वपातन

वैक्रान्त की भस्म, गुड़, गुग्गुल, लाख, उम्फल, पिण्याक (तिलकल्क), राल, लोम एवं छोटी मछली इनको मिलाकर यथेष्ट दुग्ध के साथ मर्दन कर मूषावन्ध करके तपाने से वैक्रान्त का सत्त्व निकलता है।

स्फटिक

साधारणतः कई प्रकार का स्फटिक देखा जाता है। मन्दकान्ति (लाख की सी ज्योति) वाला स्फटिक विन्ध्याचल के जङ्गलों मे उत्पन्न होता है। उसका रंग अशोक के कच्चे पत्ते के सदृश अथवा अनार के बीज के सदृश होता है। काले रंग का स्फटिक सिंहल मे उत्पन्न होता है। पद्मराग की खान में तीन प्रकार का स्फटिक उत्पन्न होता है। उनमे से प्रत्येक अत्यन्त निर्मल, स्वच्छ और स्तरविहीन होता है। इनका साधारण नाम ज्योतीरस है। इनमें लाल

रंग के स्फटिक को राजावर्त, नीले रंग को राजमय और जिस स्फटिक के गात्र पर ब्रह्मसूत्र का सा चिह्न हो उसे ब्रह्ममय स्फटिक कहते हैं।

स्फटिक के गुण

यह न अति शीतल और न अति उष्ण है। यह पित्त, सूजन, रक्त की खरावी और क्षयरोग में परम हितकर है।

स्फटिक के वने हुए वर्त्तन में जल रखने से वह शीतल और पित्तनाशक गुण वाला होता है।

चन्द्रकान्त और सूर्यकान्त मणि

सूर्यकान्त मणि हिमालय के शिखर पर उत्पन्न होता है। यह सूर्यग्रह की प्रिय वस्तु है। सूर्यकिरण इस पर पड़ने से इसके वीच से अग्नि शिखा निकलती है। यह रत्नो मे श्रेष्ठ है। चन्द्रकान्त मणि चन्द्रग्रह की प्रिय वस्तु है। यह भी हिमालय के शिखर पर मिलती है। यह दुर्लभ है। इसके ऊपर चन्द्रकिरण पड़ने से इसके वीच से अमृत सदृश सामर्थ्यवान जल कण निकलते हैं।

सूर्यकान्त मणि के गुण—यह उष्ण, निर्मल, रसायन, वातकफहर्त्ता और मेधाजनक है। यह रत्न धारण करने से रविग्रहजनित सव दोष नष्ट होते है।

चन्द्रकान्त मणि के गुण—यह शीतल, स्निग्ध, रक्तपित्त और शोथ-नाशक है। यह महादेव की प्रिय वस्तु है एवं ग्रहदोप और दुर्भाग्यनाशक है। चन्द्रकान्त मणि से जो जल कण निकलते हैं वे अत्यन्त विशुद्ध और पित्त को शान्त करने वाले होते हैं।

प्रवाल सम्बन्ध में विशेष कथन

(१) उत्तम प्रवाल (सूंगा)—लाल श्वेत वर्ण का होता है, यह मृदु और सहज में वेधा जा सकता है।

(२) उसकी अपेक्षा कुछ हीन गुणवाला प्रवाल—जवापुष्प, सिन्दूर अथवा अनार के पुष्प के रंग का होता है। यह कठोर अर्थात् कोमल नही है, और सहज में वेधा नही जा सकता है।

(३) इसकी अपेक्षा हीन गुणवाला प्रवाल–ढाक के फूल के सदृश लालपीला वर्ण वाला होता है। यह स्निग्ध है किन्तु कोमल नहीं है।

(४) इससे निकृष्ट प्रबाल रक्त-कृष्ण का वर्ण है। यह कठिन और ज्योति-विशिष्ट नही है तथा सहज मे नहीं वेधा जा सकता है।

व्यवहार योग्य प्रवाल के लक्षण—विशुद्ध प्रवाल-रक्तवर्ण, चिकना, स्निग्ध, विदारणयोग्य, ज्योतिविशिष्ट, गोलाकार और स्थूल होता है।

व्यवहार के अयोग्य मूंगा के लक्षण—यह पाण्डु, धूसर, दागी, ताम्र की आभा वाला और लघु होता है।

प्रवाल के गुण—प्रवाल-क्षय, पित्त, रक्तस्राव, खांसी, चक्षुरोग, विषदोष और भूतदोषनाशक है। यह लघु और पाचक है।

कर्केत

कर्केत मणि श्लीपद और सर्व स्पर्शजदोषनाशक है। यह वर्णभेद से ७ प्रकार का है। उनमे नीला और श्वेत रंग का कर्केत हीनगुणवाला है।

भीशम रत्न

यह हिमालय पर्वत पर मिलता है। यह सर्व विषनाशक है। यह मणि हाथ में धारण करने से व्याघ्र, सिंह, सर्प आदि हिंसक जन्तुओं का कुछ भय नहीं रहता है। यह जल, अग्नि, दस्यु और शत्रुभय निवारक है। जो भीशम मणि सिवार एवं बगुला के पंख के रंग वाला, कर्कश, प्रभाहीन, पीतवर्ण वाला और मलिन हो वह व्यवहार के योग्य नहीं होता है।

नीलमणि के विशेष गुण

नीलमणि श्वास, कास और त्रिदोषनाशक, वृष्य, दीपन, विषम ज्वर, बवासीर और पापनाशक है।

उपरत्न

उपरत्न अनेक प्रकार के मिलते है। उनमें ७ प्रकार के प्रधान हैं। यथा पालस्क, रुधिर, पूतिका, तार्क्ष्य, पीलु, उपल और सुगन्धिक। रत्नों में जो जो गुण हैं उपरत्न मे वे थोड़े परिमाण से हैं। सर्वरत्नों के शोधन और मारण के नियमानुसार इनको शोधित और मारित करे। मारित उपरत्न सब रत्न संस्कारों में और औषध में व्यवहृत होते हैं।

ग्रहरत्न

सूर्यग्रह विरुद्ध हो तो वैदूर्यमणि, चन्द्र होने से नीलकान्त, मङ्गल होने से प्रवाल, बुध होने से पद्मराग, बृहस्पति होने से मुक्ता, शुक्र होने से हीरा, शनि होने से इन्द्रनील, राहु होने से गोमेद और केतु होने से मकरत मणि धारण करनी चाहिये।

ग्रह औषधि

सूर्य विरुद्ध होने से वेल की जड़, चन्द्र मे खीराई की जड़, मङ्गल मे अनन्तमूल, बुध में वृद्धदारक की जड़, बृहस्पति में ब्रह्मयष्टि (भारंगी) की जड़, शुक्र में सिंहपुच्छ (रामवासक) की जड़, शनि के लिये वला की जड़, राहु में चन्दन और केतु में अश्वगन्धा की जड़ धारण करनी चाहिये।

क्षार

क्षार मात्र ही मल निकालने वाले हैं।

क्षारत्रय

जवाखार, सज्जीखार और सोहागा।

क्षारचतुष्टय

सज्जीखार, औपरक्षार, यवक्षार और सोहागा।

पञ्चक्षार

पलाशक्षार, घण्टापारुल (मोखा) क्षार, यवक्षार, सज्जीक्षार और तिलक्षार। इस क्षारपञ्चक मे सोहागा, सज्जीक्षार, औपरक्षार ये भूमि मे पाये जाते हैं। शेष वृक्षों की भस्म से तैयार किये जाते हैं। नौसादर भी क्षार कहा जाता है। हमने उपरस के साथ इसका वर्णन किया है। इसमें पारे का कुछ अंश मौजूद रहता है।

नीचे लिखे वृक्षों के क्षार औषध में व्यवहार किये जाते हैं, यथा—

पलाश, पीपल, मोखा, मनसासीज, अपामार्ग, चने का पौधा, आक, इमली, तिल का पेड़, जौ, अडूसा, जवासा, कटेरी, मूली, चीता, पुनर्नवा, अदरक।

उपर्युक्त क्षारों में यवक्षार, सज्जीक्षार, नौसादर, औषर क्षार और सोहागा अधिक व्यवहार में आते हैं।

क्षार के गुण

सब क्षार तीक्ष्णवीर्य, उष्ण, लघु, दीपक, क्लेदक, दाहकर, शोथकारक, कफनाशक, क्रिमिघ्न, व्रणनाशक, व्रणशोधक और व्रणरोपक हैं।

क्षार पारे का मुख उत्पन्न करनेवाले एवं गुल्म, अर्श, शूल, बहुमूत्र, पथरी और ग्रहणीनाशक हैं। क्षार पाचक हैं किन्तु रक्तपित्तकारक है। अनेक समय अस्त्र प्रयोग की अपेक्षा क्षार प्रयोग से ही अधिक सफलता होती है। अधिक क्षार सेवन से वीर्यक्षय होता है।

क्षार तैयार करने की साधारण विधि

जिस वृक्ष या पत्तों से क्षार तैयार करना हो उसे आग में जलाकर भस्म करे फिर उस भस्म को सोलह गुने जल में १२ घण्टा भीगने दे, फिर मोटे कपड़े से सात वार छान लेने पर जो जल रहे उसे अग्नि पर गरम करे जब जल सूख जाय तब नीचे जमा हुआ श्वेत अंश ग्रहण करे।

जवाखार तैयार करने की विधि

जौ को जलाकर १६ गुने जल में भिगो कर पूर्वोक्त प्रकार से क्षार तैयार कर ले, यही जवाखार है।

जवाखार के गुण

जवाखार कटु, स्निग्ध, लघु, उष्ण, सूक्ष्म, पाचक, सारक, मूत्रकारक, वातकफनाशक, आनाह (मलमूत्र का रुक जाना), ग्रहणी, पाण्डु, गुल्म, ववासीर, श्वास, शूल, प्लीहा, हृद्रोग और आमदोषनाशक है। यह अग्निगुणवाला और शुक्रनाशक है।

औषरक्षार के गुण (पाकिम क्षार वा नवसार)

यह मेदनाशक और वस्तिशोधक है। एवं वायुनाशक, क्लेदक, वलनाशक, अग्निवृद्धिकारक, विरेचक, कोमल, शीघ्र ही शरीर के सब स्थानों पर असर करने वाला, कुछ पित्त वढ़ाने वाला, लघुपाचक और ऊर्ध्वगत वायु को शान्तिकारक है। यह यक्ष्मा, उदर आनाह (पेट फूलना, दस्त-पेशाव रुक जाना), शूल, गुल्म, डकार, आम और क्रिमिनाशक है।

मिश्रक्षार

पंसारी लोग कभी कभी क्षार अधिक उत्पन्न करने के लिये कीचड़ के साथ घास की राख मिला देते हैं और उस कीचड़ मिलित भस्म को जल में डाल कर ऊपर स्थित तरल पदार्थ अग्नि पर गर्म करके क्षार तैयार करते हैं। इसे मिश्र क्षार कहते हैं।

सज्जीक्षार

किसी किसी पहाड़ पर या उसके समीपवर्ती स्थानो में यथेष्ट परिमाण में क्षार मिली हुई मिट्टी देखी जाती है। इसको सज्जी मिट्टी कहते हैं। इसमें सज्जी-मृत्तिका और अन्यान्य पदार्थ रहते है। यह मिट्टी चौगुने जल मे घोलकर मोटे कपड़े में छान कर साफ करते हैं फिर वह तरल पदार्थ अग्नि पर वर्तन में तपा कर क्षार ग्रहण कर लेते हैं। इसी को सज्जीक्षार कहते हैं।

सज्जीक्षार के गुण

जवाखार की तरह सज्जीक्षार भी आग्नेय गुणवाला है। यह कटु, उष्ण, तीक्ष्ण और कफ तथा वायु नाशक है। एवं गुल्म, आध्मान, उदररोग, व्रण, क्रिमि, आनाह, प्लीहावृद्धि, यकृतरोग और शुक्रदोषनाशक है।

कृत्रिम (वनावटी) सज्जीखार

ऊपर लिखे सज्जीखार के अभाव में वैद्य लोग कभी कभी जवासा और जवासी की राख से सज्जीखार तैयार करते और व्यवहार करते हैं।

टङ्कन-सोहागा

उत्तर भारत और तिव्वत के सूखे जलाशयों के गर्भ से एक प्रकार की मिट्टी मिला हुआ क्षार देखा जाता है इसको टङ्कन या सोहागा कहते हैं। इसको जल में गलाकर पूर्वोक्त प्रकार से छान कर अग्निताप से सुखाने पर पात्र के तलदेश में रह जाता है।

टङ्कन के भेद

टङ्कन दो प्रकार का है १-पिण्ड और २-दानेवाला। पहले की अपेक्षा दूसरा अधिक सफेद होता है। पहला उतना सफेद नही होता है।

टङ्कन के गुण

पिण्ड टङ्कन–कटु, उष्ण, रूक्ष, अग्निवर्द्धक, कफ को नाश करने वाला और वायुपित्तवर्द्धक है। यह कास, श्वास, रज का रुकना और स्थावर विष नष्ट करता है। यह दाने वाले टङ्कन से अल्पगुण वाला है। श्वेतवर्ण वा दानेदार टङ्कन–कटु, उष्ण, स्निग्ध, तीक्ष्ण, सादा, विरेचक और वलप्रदानकारीं, पाचक एवं कफ, वायु क्षय, आमदोष और विषदोष नाशक है। श्वेतटङ्कन पिण्डटङ्कन से विशुद्ध है।

टङ्कन शोधन विधि

इसको तवे या करछी पर रख कर आग पर फुला ले, वह शुद्ध हो जायगा।

क्षार के भेद

दो प्रकार का क्षार देखा जाता है, १–कठिन और २–तरल। कठिन क्षार का वाह्य प्रयोग और औषध की सामग्री रूप से व्यवहार किया जाता है और तरल क्षार कुछ रोगों मे काञ्जी, मद्य, दधि, दुग्ध, छाछ और त्रिफला के क्वाथ के साथ पिलाया जाता है।

क्षारद्वय और क्षारत्रय के गुण

सज्जीखार और जवाखार को क्षारद्वय कहते हैं इनके साथ सोहागा मिला देने से इसे क्षारत्रय कहते हैं। इन तीन क्षारों के जो जो गुण पृथक् पृथक् कहे गये है, दो–तीन क्षार मिलाने पर भी वे ही गुण रहते है। विशेष कर मिलित क्षारद्वय या क्षारत्रय गुल्म रोग नाश करने के लिये अति उपयोगी है।

क्षाराष्टक

पलाश, सिज, अपामार्ग, इमली, आक, तिलनाल और जौ इन सात द्रव्यो का क्षार और सज्जीखार यह क्षाराष्टक कहलाता है। यह क्षाराष्टक अग्निगुणवाला और गुल्म तथा शूलविनाश के लिये श्रेष्ठ है।

लवण

साधारणतः ६ प्रकार का लवण देखा जाता है—समुद्री, सैन्धव, विड, सौवर्चल, रोमक और चूलिका।

लवण के साधारण गुण

लवण-शोधक, रुचिकारक, पाचक, कफपित्तवर्द्धक, पुरुषत्व और वायुनाशक है। यह देह की शिथिलता और मृदुताकारक, बलघ्न, मुख में जलोत्पन्नकारी, कपोल और गलदाहकारी है।

अति लवण सेवन के दोष

अधिक लवण सेवन से आंखें दूखना, रक्तपित्त, आंतो में क्षत, बाल सफेद होना, कुष्ठ, विसर्प और तृष्णा आदि उपद्रव उपस्थित होते है।

समुद्री लवण

यह पाचक, तीक्ष्ण, लघु, रोचक और सारक, क्षार गुण युक्त, कफपित्तवर्द्धक और वायुनाशक है।

सैन्धव

सेंधा नमक पहाड़ मे उत्पन्न होता है। पंजाब और सिन्ध मे इसकी खान है। यह पाचक, शीतवीर्य, लवणमधुर, लघु, स्निग्ध, अग्निवर्धक, रोचक, चक्षु को हितकर, शुक्रवर्द्धक, त्रिदोषनाशक, सूक्ष्मस्रोतगामी, कोष्ठ-कठिनता और व्रण-नाशक है।

बिड लवण

यह एक प्रकार का कृत्रिम लवण है। यह लवण रसयुक्त, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण क्षारयुक्त, लघु, पाचक, रूक्ष, रुचिकारक, व्यवायी, ऊर्ध्वगत कफ और अधोगत वायु का अनुलोम कारक (ठीक तरह से निकालना), क्षुधा, पित्तवर्द्धक और रोचक है। और शूल, अजीर्ण, कोष्ठबद्धता, गुल्म, हृद्रोग और मेहरोग मे शुभ फलप्रद है।

बिड लवण बनाने की विधि

(१) ८ भाग समुद्री लवण, १ भाग हर्रा, १ भाग आंवला, १ भाग शोधित सज्जी एकत्र अच्छी तरह पीस कर मिट्टी के वर्त्तन मे अग्नि पर जब तक गोला ना न बन जाय तब तक तपावे।

(२) ८ भाग समुद्री लवण, १ भाग आँवले का चूर्ण मिलाकर मिट्टी के पात्र में तीक्ष्ण अग्नि से पाक करके शीतल होने पर बिड लवण तैयार होता है।

सौवर्चल लवण

सौवर्चल लवण—रुचिकारक, भेदक, अग्निदीपक, अत्यन्त पाचक, स्निग्ध, वायुनाशक, अति पित्तकर नहीं, विशदगुणयुक्त, लघु, उद्गारशुद्धिकारक, सूक्ष्म स्रोतगामी एवं विबन्ध, आनाह और शूल निवारक है। औषर क्षार और यह लवण प्रायः एक ही वस्तु है। बनाने की विधि औषर क्षार की तरह है।

रोमक लवण

इसे सांभर लवण कहते हैं। यह लघु, वायुनाशक, अत्यन्त उष्णवीर्य, भेदक, पित्तवर्द्धक, तीक्ष्ण, व्यवायी, सूक्ष्मस्रोतगामी. अभिष्यन्दी और कटु विपाक युक्त है।

राजपूताने के जयपुर राज्य में शाकम्भरी नामक लवण सरोवर है। समुद्र जल की तरह इसका जल नमकीन है। इस जल से उत्पन्न लवण को रोमक या सांभर नमक कहते हैं।

चूलिका लवण

नौसादर और चूलिका लवण एक ही वस्तु है। और भी तीन प्रकार का लवण देखा जाता है; काच लवण या कालानमक, द्रोणी लवण और औषर लवण।

काला नमक

यह शूल, गुल्म, कफ और वायु विनाश मे प्रयुक्त होता है।

द्रोणी लवण

यह भेदक, कुछ स्निग्ध, उष्णवीर्य, शूलघ्न, कुछ पित्तजनक और विदाही है।

औषर लवण

औषर लवण—पित्तजनक, मलसंग्राहक, क्षार तिक्तरस, मूत्रकारक, विदाही, शोषकारक और कफवात-विनाशक है।

विष

विष ३ प्रकार का है, यथा—१—स्थावर, २—जङ्गम और ३—गर।

प्रथम से १० प्रकार का और द्वितीय से १६ सोलह प्रकार का विष उत्पन्न होता है। तृतीय विरुद्ध भोजन से उत्पन्न दोष से उत्पन्न होता है। जैसे दूध और मछली मांस या दूध और खट्टी वस्तु एकत्र भोजन।

स्थावर विष

आगे कहा गया है कि स्थावर विष १० प्रकार का होता है। यथा, जड़, पत्ते, फल, फूल, छाल, वृक्ष या गुल्म का लासा, लकड़ी, निर्यास, (गोंद) धातु और कन्द। इन सब विषों में कन्द विष ही श्रेष्ठ है। ऐसा विष १८ प्रकार का है, यथा—सक्तुक, मुस्तक, शृङ्गी, वालुक, सर्षप, वत्सनाभ, कूर्म्म, श्वेतशृङ्ग, कालकूट, मेषशृङ्गी, हलाहल, दार्दुर, कर्कट, मर्कट, ग्रन्थी, हरिद्रा, रक्तशृङ्ग और केशर। इन १८ मे प्रथम ८ शास्त्रनिर्देशानुसार व्यवहार किये जाते हैं शेष १० वर्जनीय हैं।

सक्तुक

शक्तुक या पुण्डरीक विष–जिस कन्द विष का मध्य भाग सक्तु से बना हो और श्वेत वर्ण हो उसे सक्तु विष कहते हैं, यह बड़ा उग्र और कार्यकारी है।

मुस्तक

इसकी क्रिया मन्द गति से होती है। इसके द्वारा व्याधि होती है।

शृङ्गी

इस विष का कन्द गाय के सींग पर बांध दिया जाय तो उसके दूध का रंग लाल हो जाता है। यह कन्द काला-पीला रंग का है।

वालुक (सैकत)

वालुक विष–कन्द के भीतर रेत की तरह भरा रहता है। इसके द्वारा ज्वर और अन्यान्य व्याधियाँ दूर होती हैं।

सर्षप

सर्षप कन्द हल्दी के रंग का और ज्वर को दूर करने वाला है, इसकी बालों की तरह रोमराजी ही विषाक्त है।

वत्सनाभ

यह विषकन्द देखने में गाय के बछड़े की नाभि की तरह होता है। यह ५ अङ्गुल बड़ा होता है। यह दो प्रकार का है, १–श्वेत और २–कृष्ण। इनमें प्रथम श्वेतवर्ण का शीघ्र फल देनेवाला एवं लघु और रोचक है। द्वितीय कृष्णवर्ण का विपरीत गुणवाला है। और दोनों प्रकार के ही औषध तथा रसायन में प्रयुक्त होते हैं।

कूर्म्म

जो विषकन्द कूर्म्म के आकार का हो उसे कूर्म्मकन्द कहते है।

श्वेतशृङ्ग

श्वेतश्रृङ्ग वा दार्विक विष देखने मे सफेद सींग की तरह अथवा सांप के फन की तरह होता है। यह गाय के सींग पर बांध देने से उसके दूध का रंग लाल हो जाता है।

कालकूट

पीपल के पेड़ की तरह एक प्रकार का विष वृक्ष है। इस वृक्ष के दूध या गोंद को कालकूट कहते है। इसकी आकृति और वर्ण कौवे की आंख की तरह है। इस वृक्ष का कन्द काला और नीबू की तरह गोलाकार होता है। यह विप इतना तीक्ष्ण होता है कि इसके सूंघने मात्र से ही मानव की मृत्यु हो जाती है। दक्षिण देश के शृङ्गवेर, मलय और कोकण के पहाड़ पर यह विष वृक्ष उत्पन्न होता है।

मेषशृङ्गी

इसका आकार मेढ़े के सीग की तरह है। गाय के सींग पर इसके बांधने से गाय का दूध लाल रंग का निकलता है।

हलाहल

हलाहल वृक्ष का फल गाय के थन की तरह होता है। इसका एक गुच्छा फल देखने मे अच्छे पत्तों का छाता जैसा होता है। इस विष वृक्ष के निकट किसी प्रकार का वृक्ष उत्पन्न नही हो सकता। यह साधारणतः किष्किन्धा, हिमालय, भारतवर्ष के दक्षिणी तट पर और कोङ्कुण मे मिलता है। इसका कन्द अतीस के कन्द की तरह होता है। इसका वाहरी भाग श्वेत वर्ण और अन्तर्भाग नीले रंग का होता है।

दार्दुर

मलय पर्वत के समीप दार्दुर नामक विप वृक्ष उत्पन्न होता है। यह ब्रह्मपुत्र और कर्दम नाम से भी प्रसिद्ध है। यह कर्दम की तरह कपिल वर्ण होता है।

कर्कट

कर्कट विष वानर के रंग का होता है और आकृति केंकड़े की सी होती है। इसके ऊपर कुछ रेखायें दिखाई पड़ती है उन रेखाओं के नीचे का अंश कोमल और शेष अंग कठिन होता है।

मूलक

यह एक प्रकार का श्वेतकन्द विष है। इसकी आकृति मूली और कुत्ते के दांत की वनावट की होती है। इसको यमद्रंष्टा और सौराष्ट्र देश मे उत्पन्न होने सौराष्ट्री कहा जाता है।

ग्रन्थि

यह हल्दी के रंग का एक प्रकार का कन्द विष है। इसका रंग काला और अतिशय विषाक्त होता है।

हरिद्रा

यह एक प्रकार का कन्द विष है—इसका कन्द हलदी जैसा होता है। विराट देश मे उत्पन्न होने से इसे बैराट भी कहते है। इस कन्दविष के दोनो सिरे गोलाकार और इसका अन्तर्भाग पीले रंग का होता है।

रक्तशृङ्गी

यह कन्द विष गाय की नासिका मे लगाने से नासिका से खून गिरने लगता है। इसकी वनावट गाय के थन की सी होती है।

प्रदीपन

यह एक प्रकार का कन्द विष है, इसका आकार सूखे अदरक की तरह लाल रंग का होता है। यह शरीर से कही छू जाय तो वह स्थान तुरन्त फूल उठता है।

विष का व्यवहार

कालकूट आदि १० प्रकार के विष रसकार्य में विष तैयार करने से और लौह, ताम्र आदि धातु को स्वर्ण में परिणत करने के कार्य मे प्रयुक्त किये जाते है। औषध में उनका कभी व्यवहार नहीं होता। सक्तुक, मुस्तक, शृङ्गी, कालकूट, सर्षप, वत्सनाभ, कूर्म्म, श्वेतशृङ्ग, ये कई विष विशेष रूप से शोधित कर औषध मे व्यवहृत होते हैं।

विष वर्णभेद से ४ प्रकार का है—१-श्वेत, २-रक्त, ३-पीला और ४-काला। ये यथाक्रम से परस्पर हीन गुणयुक्त हैं। जैसे सफेद से रक्त या लाल हीन है इत्यादि।

श्वेत वर्ण विष-औषध मे प्रयोग करे, यह रसायन है। रक्त वर्ण विष-रसकार्य मे आवश्यक है, इसका प्रयोग विषभक्षण से उत्पन्न विकार दूर करने मे करे। पीले रंग का विष-कुष्टनाशक है, इसका प्रयोग क्षुद्ररोग मे करे। कृष्णवर्ण विष-मृत्युदायक है। इसका प्रयोग सर्प से काटे हुए मनुष्य पर करे।

विष के साधारण दोष

विष-रूक्ष, उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, शीघ्र व्यवायी, विकासी (सन्धिवन्धांस्तु शिथिलान् यत् करोति), विसर और दुष्पाच्य है। यह रूक्ष गुण के कारण वायु-प्रकोपक और उष्ण गुण के कारण पित्तप्रकोपक है एवं रक्त को दुष्ट करता है, तीक्ष्ण गुण के कारण मोह का उत्पादक और देहवन्धन-शिथिलकारी है, सूक्ष्म गुण के कारण अति शीघ्र शरीर के सव अंशों में व्याप्त होता है और उनको विकल करता है। शीघ्र गुण के कारण शीघ्र प्राण विनाश करता है। व्यवायी गुण के कारण परिपाक को प्राप्त होने से पहले ही सव शरीर में क्रिया करता है। विकासी गुण के कारण त्रिदोष, सप्त धातु और मल को नष्ट करता है। विसर गुण के कारण अधिक विरेचन करता है और लब्धपाकी गुण के कारण औषध प्रयोग करने से विषक्रिया के विरुद्ध कोई फल प्राप्त नही होता। अविपाकी गुण के कारण विष दुर्जर और चिरकाल क्लेशदायी है। स्थावर, जङ्गम और कृत्रिम ये तीनों प्रकार के विषों में ये सव गुण होने से शीघ्र प्राणनाश करते है।

स्थावर विष सेवन से उत्पन्न दोष

स्थावर विष सेवन करने से ज्वर, हिचकी, दन्तहर्ष, गलग्रह, लालास्राव, वमन, अरुचि, श्वास और मूर्च्छा उपस्थित होती है।

सहसा विष सेवन का फल

सहसा शरीर में विष प्रवेश करने पर प्रथम चर्म की विवर्णता फिर कम्पन शुरू होता है, फिर दाह होता है, फिर सारा अङ्ग विकृत होता है, उसके वाद मुख से फेन निकलता है, उसके वाद दोनों कन्धे टूटने लगते हैं, फिर सर्वाङ्ग निस्तब्ध (स्थिर) होकर अन्त में मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा क्षेत्र में चिकित्सक इन विषयों पर लक्ष्य रखकर चिकित्सा करें तो कृतकार्य होंगे।

विष सेवन जनित विकार की चिकित्सा

(१) विप भक्षण के वाद विकार उपस्थित होने पर चिकित्सक सवसे पहले रोगी को वमन कराने की चेष्टा करे। इस वमन कार्य मे वकरी का दुग्ध सेवन प्रशस्त है। जव तक वमन आरम्भ न हो तव तक वकरी का दूध सेवन कराना चाहिये। प्रत्येक वमन के वाद फिर दूध सेवन करावे। इस तरह जव तक वमन वन्द न हो, तव तक वकरी का दूध सेवन कराना चाहिये। ऐसा करते करते दूध पिलाने पर जव वमन न हो तव समझ ले कि रोगी विष मुक्त हो गया।

(२) विष क्रिया होने पर रोगी को तुरन्त वमन कराने की चेष्टा करे और वमन कराते कराते जवतक पित्त न निकलने लगे, तव तक वमन करावे। इस वमन कार्य में सिल पर पिसा हुआ मैनफल, सेंधानमक और राई पीसकर वकरी का दूध और मछली धोया जल सेवन कराना प्रशस्त है। इस तरह वमन क्रिया सम्पन्न होने पर रोगी को विरेचन कराना आवश्यक है। विरेचन कराने में जव तक आँव न निकलने लगे, तव तक विरेचन करावे, इस तरह विरेचन क्रिया पूरी होने पर रोगी जितना पी सके उतना गाय का घृत पिलावे क्योंकि गाय का घृत ही सबसे अधिक विषघ्न और जीवनीशक्तिवर्द्धक है।

(३) नीचे लिखे योगो की व्यवस्था करने से शीघ्र विष क्रिया नष्ट होती है। कॉटानट का रस और हल्दी (कच्चा) का रस मिलाकर सेवन करने से विष नष्ट होता है।

गन्धनाकुली (सर्पाक्षी) अथवा सोहागा घी के साथ सेवन करने से विष नष्ट होता है।

पुत्रजीवी (जियापोता) का रस नीवू के रस के साथ सेवन करने से विष क्रिया नष्ट होती है। अथवा उक्त दोनो द्रवो को अञ्जनरूप मे व्यवहार करने से विपक्रिया नष्ट होती है।

(४) निम्नलिखित द्रव्य विषक्रिया—नाशक है।

जाती (चमेली), नीली (नील का वृक्ष), ईश्वरीमूल (नागदौन की जड़), काकमाछी (कौआठोड़ी), अपराजिता, त्रिफला, कारवी (हिङ्गुपत्री, यवानी, राई), कुष्ट, मुलहठी, जीरा, सव क्षीरी वृक्षों की छाल, इलायची और गाय का घृत।

(५) अतिरिक्त विषक्रिया होने से गाय के घी के साथ भृङ्गराज (घमरा), दधि, वज्रक्षार (वाजवृक्ष का क्षार), अनन्तमूल, कॉटानट का मूल, झुल, मजीठ और मुलहठी सेवन करावे। अथवा घृत और मधु के साथ अर्जुन छाल का चूर्ण सेव्य है। अथवा सोहागा, कॉटानट के मूल के रस के साथ मिलाकर सेव्य है।

प्रशस्त विष के गुण

विष शास्त्र-विधिपूर्वक प्रयोग करने से आसन्न मृत्यु रोगी को भी प्राणदान करता है। यह रसायन, योगवाही, त्रिदोष-नाशकर्त्ता, बृंहण और वीर्यवर्द्धक है। प्रशस्त विष में जो दोष हैं वे शोधन करने से नहीं रहते। अतएव सब प्रकार के विषों को शोधन कर व्यवहार करना चाहिये।

कन्द विष संग्रह करने का समय

फल पकने पर कन्द विष ग्रहण करे। यह ताजी काम मे लाना चाहिये। क्योंकि कुछ दिन धूप और हवा लगने से इसका गुण नष्ट हो जाता है। अतएव इसको सुपक्व अवस्था मे ग्रहण कर राई सरसो के जल मे कपड़े का टुकड़ा भिगो कर उसमे लपेट कर रखना आवश्यक है।

कन्द विष की शोधनविधि

(१) प्रथम कन्द विष की छाल छुड़ा कर फेंक दें, फिर खण्ड खण्ड करके काट कर २४ घण्टे गोमूत्र मे भिगो रक्खे। फिर उसे तेज धूप में सुखा लेने पर वह शोधित होता है। सूखने पर उसे चूर्ण कर वस्त्र में छान कर औषध मे व्यवहार करते हैं।

(२) दोलायन्त्र मे उक्त विष २४ घण्टे पाक करने पर भी शोधित होता है।

कन्द विष की मारणविधि

सम परिमाण शोधित सुहागे के साथ मर्दन करने से कन्द विष मारित होता है।

प्रसङ्ग क्रम से सोहागे की शोधनविधि

सुहागे को अग्नितापं से फुला कर लावा बना लेने से शुद्ध होता है। सुहागे के साथ मर्दित विष सेवन करने से किसी तरह का विकार उपस्थित नहीं होता है।

विषसेवन के योग्य पात्र

विष योगवाही और रसायन है अतः जो व्यक्ति नियमित रूप से घृत और दुग्ध सेवन करे और मिताचारी एवं रसायन सेवन के नियम यथार्थ रूप से पालन करे, वही शोधित विष सेवन का उपयुक्त पात्र है।

विषसेवन के अयोग्य पात्र

जो व्यक्ति क्रोधी हो, जिसका पित्त अधिक हो, जो क्लीव और क्षुधार्त्त, तृष्णार्त्त, क्लान्त, पसीने से तर हो, रूक्ष शरीर वाला हो और क्षयरोगी, गर्भिणी एवं बालक और वृद्ध ये सब विष सेवन के अयोग्य पात्र है।

विषसेवन के नियम

विषसेवन करने के पहले दिन रोगी अश्वगन्धा, गोजिह्वा और त्रिफला के क्वाथ के साथ पारे की भस्म अथवा बद्ध पारद (गन्धक के साथ) सेवन करे। पश्चात् दूसरे दिन से विष भक्षण आरम्भ करना चाहिये।

विषसेवी को निम्नलिखित नियम पालनीय हैं।

(१) वह स्त्री सङ्ग त्याग करे।

(२) सुस्थ चित्त से और चिन्तारहित हृदय से भोजन करे।

(३) गाय का घी और दूध मिला कर शालि तन्दुल का अन्न भोजन करे और शीतल जलपान करे।

(४) बकरे का रक्त, जङ्गली पशु का मांस, मद्गुरु मत्स्य और चीनी, मधु, दुग्ध, आदि सब प्रकार के शीत द्रव्य एवं शास्त्रोक्त हितकर द्रव्य भक्षण करे।

नियमित रूप से नित्य विष सेवन से शरीर जरा और व्याधिमुक्त होकर सबल और सूक्ष्म होता है। विषसेवी संयत होकर उल्लिखित नियम अवश्य पालन करे। शीत और बसन्तकाल ही विष सेवन के लिये प्रशस्त है। वर्षाकाल और दुर्योग के दिन कदापि विष सेवन न करे। नितान्त आवश्यक होने पर ग्रीष्मकाल में भी विष सेवन किया जा सकता है किन्तु वर्षाकाल मे इसे कदापि सेवन नही करना चाहिये।

विषसेवन की मात्रा

शोधित विष प्रथम दिवस एक सरसों के समान सेव्य है, दूसरे, तीसरे और चौथे दिन की मात्रा २ सरसों। नवम दिवस की मात्रा चार सरसो भर। दसवें दिबस से

एक सरसों मात्रा बढ़ाते हुए ३६ सरसों यानी एक रत्ती तक पूर्ण मात्रा का व्यवहार विधेय है। कुष्ठरोगी प्रतिदिन १ रत्ती या ३६ सरसों अर्थात् पूर्ण मात्रा सेवन करे। नियमित रूप से यह विष एक महीना सेवन करने से आठ प्रकार का कुष्ठ विनष्ट होता है।

विष इसी तरह ६ मास सेवन करने से मनुष्य परमसौन्दर्यवान हो जाता है। यह एक वर्ष सेवन करने से सर्वरोगनाशक और दो वर्ष सेवन से दिव्य देह प्राप्त होती है।

विषसेवन में पथ्य

विषसेवन-काल में नीचे लिखी वस्तुएँ हितकर हैं—घी, दूध, चीनी, गेहूँ, चावल का भात, काली मिर्च, सेंधा नमक, मीठी वस्तुएं और शीतल जल। विष-सेवी को शीतप्रधान देश, शीत ऋतु और शीतल जल उपकारी है।

विषसेवन में अपथ्य

विषसेवी नीचे लिखी वस्तुएं यत्नपूर्वक परित्याग करे, यथा-कटु, अम्ल (खट्टा), लवण, तैल, दिन में निद्रा, अग्नि और धूप सेवन। विषसेवनकाल में घृत विना अन्न सेवन करने से चक्षुरोग, चर्मरोग और नाना प्रकार के बातरोग (वायुरोग) होते हैं।

विष का प्रयोग

बातज्वर में—दधि······के साथ शोधित विष सेव्य।

पित्तज्वर में—दुग्ध के साथ।

कफज्वर में—बकरी के मूत्र के साथ।

त्रिदोषजज्वर में—त्रिफला के जल के साथ।

जीर्णज्वर में—लोध, चन्दन, वच, चीनी, घृत, मधु और दुग्ध के साथ।

सर्वप्रकार का जीर्ण ज्वर, प्रमेह और चर्मरोग में—दन्तीमूल, निसोत, त्रिफला, घृत और मधु के साथ।

विषम ज्वर (मैलेरिया और कालाज्वर) में—शिखिकर्ण (नीलकण्ठ चासक) के रस के साथ।

रक्तपित्त में—मुलहठी, रास्ना, उशीर (खस), उत्पल (नीलकमल) इन द्रव्यों को एकत्र चावल धोये हुए जल के साथ पीस कर विष सेवन करें।

श्वास और कास में—रास्ना, विडङ्ग, त्रिफला, देवदारु, गुरुच, पद्मकाष्ट और त्रिकटु के साथ सेव्य है।

हिक्का में—चीनी, दूध, पारदभस्म, प्रवालभस्म और मुलहठी के साथ सेव्य है।

उबकाई वा छर्दि में—दूध, उशीर, मधु, जवाखार, हलदी और कुटज के साथ सेव्य है।

ग्रहणी रोग में—मोथा, इन्द्रजव, पाठा, चित्रक, त्रिकटु, अतीस, धाय के फूल, मोचरस, आम की गुठली मिलाकर सेवन करे।

मूत्रकृच्छ्र में—हरीतकी, चित्रक की जड़, किसमिस, अड़ूसा और हलदी के साथ सेवन करे।

यक्ष्मा में—च्यवनप्राश के साथ सेव्य है।

पथरी और उदावर्त में—शिलाजतु और त्रिकटु के साथ एवं गोमूत्र, सैन्धव लवण, पाथर कुचि के पत्तो के रस के साथ विष मर्दन कर सेवन करे।

गुल्म में—सज्जीखार और त्रिफला के साथ।

शूल में—पीपल के चूर्ण के साथ।

प्लीहा वृद्धि में—द्रवन्ती, रास्ना, किसमिस, शठी (कचूर), पीपल, अतीस, विडङ्ग, सौंफ और जवाखार के साथ अथवा शुलफा, विडङ्ग और दूध के साथ।

कुष्ठ में—काकमाची के रस के साथ।

जङ्गम विष

सब प्रकार के जङ्गम विषो मे सर्पविष ही औषध के लिये अधिक प्रयोज्य है। एक बलवान युवा काले सर्प से विष ग्रहण करे। बुड्ढे काले सर्प वा अन्य सर्प का विप औषध के लिये ग्राह्य नही है। काले सर्प का विष त्रिदोषनाशक, अग्निवर्द्धक, सन्निपात, विसूचिका आदि रोगो से आसन्न मृत्यु मनुष्य को जीवन दान करने वाला है।

जङ्गम विष की शोधन विधि

(१) ३ दिन गोमूत्र मे भिगो कर धूप मे सुखाने से सर्पविष शोधित होता है

(२) असल पीली सरसों के तैल में ३ दिन भिगोकर रखने पर भी सर्प-विष शोधित होता है।

(३) पान, बकफूल, तुलसी पत्ता और कूठ के क्वाथ में ३ दिन भावना देने से सर्पविष शोधित होता है।

जङ्गम विष-सेवनजनित विकार

जङ्गमविष सेवन करने से निद्रा, तन्द्रा, क्लम, दाह, मुख से फेन निकलना, शोथ, लोमहर्ष, अतिसार आदि विकार उपस्थित होते हैं।

सर्पदंशन का प्रतिकार

जमालगोटा के बीज के भीतर की पत्ती को २१ दिन नीबू के रस मे भावना देकर गोली बनावे। वह गोली मनुष्य की लार (थूक) के साथ मिलाकर आंख में अञ्जन देने से सर्प का काटा मनुष्य जीवन प्राप्त करता है। (मत्प्रणीत विष चिकित्सा नामक ग्रन्थ में यह विषय विस्तारपूर्वक वर्णित है)।

उपविष

स्नुही (मनसागाछ, सेहुड़, थूहर, तिधारा), आक, लाङ्गली, करवी (कनेर), गुञ्जा विषमुष्टि (कुचिला), धतूरा, जमालगोटा, भिलावा, निर्विषा, अतीस, अफीम, भङ्ग ये उपविषों के नाम है। अधिक मात्रा मे सेवित होने से ये भी प्राणनाश करते हैं।

सब प्रकार के विष और उपविषो द्वारा मर्द्दित होने से पारा पक्षहीन होता है अर्थात् उसमे धातु-ग्रासनशक्ति उत्पन्न होती है। ऐसे पारद द्वारा मकरध्वज तैयार होने से स्वर्ण पारद के साथ निःशेष रूप से मिल जायगा।

केवल शोधित पारे के द्वारा मकरध्वज तैयार होने से उसके साथ साथ स्वर्ण मिलता नहीं, क्योंकि केवल शोधित पारे मे धातु-ग्रासनशक्ति नही होती है।

उपविष-शोधन की साधारण विधि

(१) पञ्चगव्य की भावना देने से सभी प्रकार के उपविष शुद्ध होते हैं। (दही, दूध, घी, गोबर और गोमूत्र इनको पञ्चगव्य कहते है)

(२) दोलायन्त्र में एक प्रहर पाक करने से सभी तरह के उपविष शोधित होते हैं

स्नुही (सेंहुड)

सेंहुड़ का लासा-विरेचक, तीव्र, अग्निवर्द्धक, कटु और गुरु है। यह शूल, आम, अष्ठीला, वातोदर, कफ, गुल्म, उन्माद, प्रमेह, कोढ़, अर्श, शोथ, मेद, अश्मरी, पाण्डु, फोड़ा, ज्वर, प्लीहा, विष, व्रण और दूषीविष नष्टकारक है।

सेंहुड़ क्षीर—उष्णवीर्य, कटु, लघु, एवं स्निग्ध है। गुल्म, कोढ़ एवं उदररोग में भी विरेचन क्रिया के लिये प्रशस्त है।

सेंहुड़क्षीर का शोधन

एक तोला इमली के पत्तो के रस मे ८ तोला सेंहुड़क्षीर (दूध) घोंट कर धूप में सुखाने से वह शोधित हो जाता है। आक का दूध भी इसी तरह शोधित होता है।

आक

आक दो प्रकार का है, १-सफेद फूल और २-लाल फूल वाला। दोनों प्रकार के आक विरेचक, वायु, कुष्ठ, दाद, विष, दुष्टव्रण, प्लीहा, गुल्म, अर्श, उदररोग और क्रिमिनाशक हैं। श्वेत आक-वृष्य, लघु, पाचक, अरुचि, श्लेष्मा, अर्श, कास और श्वासनाशक है। लाल आक के फूल-मधुर रस, तिक्त एवं कुष्ठ, क्रिमि, श्लेष्मा, अर्श, विष और रक्तपित्तनाशक है ये अग्निवर्द्धक, गुल्म और जलोदर में विशेष उपकारक है।

लाङ्गली

लाङ्गली—विरेचक, कुष्ठ, जलोदर, अर्श, फोड़े (स्फोटक) और शूल रोग में उपकारक है। यह क्षारविशिष्ट, क्रिमि और कास नाशक है। यह तिक्त, कटु, तीक्ष्ण, उष्ण, पित्तकर और गर्भनाशक है।

लाङ्गली का शोधन

गोमूत्र में एक दिन भिगो रखने से लाङ्गली शोधित होती है।

गुञ्जा

श्वेत और लाल दो प्रकार की गुञ्जा होती है। दोनों प्रकार की घुंघची केशो के लिये हितकर एवं वायु पित्त और ज्वरनाशक है। वे मुखशोथ, सिर चकराना, श्वास, मदात्यय एवं चक्षुरोग नाशक है। वे फोड़ा, दाद, क्रिमि, इन्द्रलुप्त

और कुष्ठनाशक है। दोनों प्रकार की घुंघची की जड़ और सफेद घुंघची के बीज वमनकारक हैं। दोनों प्रकार की घुंघची शूल और विषदोष में उपकारक है।

गुञ्जा शोधन

दोनों प्रकार की गुञ्जा ३ घण्टे काञ्जी मे सिद्ध करने से शोधित होती है।

श्वेत गुञ्जा का व्यवहार

विषाक्त शस्त्र द्वारा उत्पन्न व्रण में श्वेत गुञ्जा के पत्ते गर्म जल से धोकर और पीसकर प्रलेप देने से आरोग्य होता है।

करवी (कनेर)

फूल के रंग भेद से कनेर ५ प्रकार की है:—श्वेत, लाल, पीली, श्याव (राख का रंग) और काली। सब प्रकार की करवीं-तिक्त, कषाय, कटु, व्रण-नाशक, नेत्ररोग, कुष्ठ और क्षतरोग मे हितकारी हैं। वे उष्णवीर्य, क्रिमि और दाद रोग मे हितकर हैं। सफेद, पीली और लाल करवी अश्व-मारक हैं। श्याव वर्ण की करवी शिरोरोगनाशक एवं वायु और कफनाशक है। पूर्व दिशा में उत्पन्न श्वेत कनेर की जड़ सर्पविषनाशक है। गोदुग्ध पूर्ण दोलायन्त्र मे एक प्रहर पाक करने से कनेर शोधित होता है।

विषमुष्टि (कुचिला)

कुचिला-शीतवीर्य, तिक्त, कुछ वायुवर्द्धक, मत्तताजनक, लघु, अतिशय वेदना को शान्तिकारक, अग्निवर्द्धक, पित्तश्लेष्मा और रक्तपित्तनाशक है।

कुचिला की शोधन विधि

दो प्रहर दोलायन्त्र में काञ्जी या गोवर के जल मे पाक कर घी में भून लेने से कुचिला शोधित होती है।

धतूरा

धतूरा-मत्तताकारक, वर्ण, क्षुधा और वायु वृद्धिकारक है तथा ज्वर और कुष्ठनाशक है। यह कषाय मधुर, उष्णवीर्य और गुरु है एवं जुएँ, फोड़ा, श्लेष्मा, दाद, क्रिमि, कण्डू और विषनाशक है।

धतूरे का शोधन

४ प्रहर तक गोमूत्र में भिगोकर लोहदण्ड द्वारा खरल में निस्तुप (भूसी) करने से धतूरा शुद्ध होता है।

जयपाल (जमालगोटा)

जमालगोटा—गुरु, स्निग्ध, विरेचक, पित्तकफनाशक है। अशुद्ध अवस्था में अधिक परिमाण में खाने से यह प्राणनाश करता है।

जयपाल का शोधन

जयपाल का छिलका छुड़ाकर दूध में वा महिष के गोवर मिले जल में दोला-यन्त्र से १ दिन पका कर, बीच का पत्ता सा अंश अलग कर धूप में सुखा लेने पर यह शोधित होता है। शोधित जयपाल को नीवू के रस में भावना देने से वह विशेष उपकारी होता है।

भिलावा

भिलावे का फल—विपाक मे मधुर, लघु, कषाय रस, पाचक, तीक्ष्ण, उष्ण, छेदी, विरेचक, मेदनाशक, अग्निवृद्धिकारक, स्मृतिशक्ति तथा क्षुधावर्द्धक, श्लेष्मा, वायु, व्रण, उदर रोग, कोढ़, अर्श, गुल्म, ग्रहणी, जलोदर, वद्ध वायु, ज्वर और क्रिमिनाशक है। भिलावे की टोपी (वोटा)—मधुर, पित्तनाशक, केशप्रसारक और अग्निवृद्धिकर है। वह उष्ण, शुक्रवृद्धिकर, कफ और वायुनाशक, सभी प्रकार के उदर रोग, आनाह, कोढ़, ववासीर, ग्रहणी, गुल्म, ज्वर, सफेद कोढ़, अग्नि-मान्द्य और सभी प्रकार के व्रणों का नाशक है।

भिलावे को चूर्णित कर सुर्खी मे २ दिन रखकर धो डालने से (अथवा भैंस के गोवर में पानी मिला कर ६ घण्टे पाक करके धो डालने से) शोधित होता है।

निर्विषा

यह मोथा की नाई एक प्रकार की घास है जो जमीन की मेड़ो पर प्रायः होती है। यह कटु, शीतल, व्रणरोपक, श्लेष्मा, वायु, रक्तदुष्टि एवं नाना प्रकार के विषदोषों का नाशक है।

इसकी जड़ लेकर कपाल मे २ वार फेरने से या लगाने से सिर की व्यथा दूर होती है।

अतिविषा

यह उष्णवीर्य, तिक्त, पाचक, क्षुधावर्द्धक, कफ, पित्त, अतिसार, विष, आम और वमननाशक है। अतिविषा और निर्विषा दूध मे सिद्ध करने से शोधित होती है।

अफीम

यह तिक्त, मत्तता और निद्राकारक, वेदनानाशक और आक्षेपक (एक वातरोग) नाशक, स्पर्शशक्तिविनाशक, कफ और श्वासनिवारक, क्षुधावर्द्धक एवं वायु और पित्त वृद्धिकारक, धातुशोषक, रूक्षताकारक, दाह और मेह वर्द्धक है। अति अल्प मात्रा मे प्रयोग करने से ग्रहणी और अतिसार मे हितकर है। स्वास्थ्य और सुखभोग पूर्वक दीर्घजीवी होने के लिये अधिक दिन तक अफीम सेवन करना उचित नहीं है।

आदी के रस में ७ दिन भावना देकर धूप मे सुखाने से यह शोधित होती है।

भङ्ग

भङ्ग–कफनाशक, तिक्त, क्षुधावर्द्धक, लघु, उष्णवीर्य, पित्तवर्द्धक, प्रमेह, मत्तता, वाक्शक्ति, मैथुनेच्छा, निद्रा और हास्यकारक है। यह धनुष्टङ्कार, जलातङ्क, मदात्यय, अतिरज और सूतिका रोग में हितकर है।

भङ्ग का शोधन

ववूल की छाल के क्राथ मे पाककर सुखाने के वाद गोदुग्ध की भावना देने से यह शोधित होता है। अथवा गोदुग्धमें सिद्धकर घृत मे भून लेने से शुद्ध होता है।

उपविष-विकार को शान्ति

अफीम—(१) ४ तोला काँटानट की जड़ का रस (अथवा नारी नामक वेलि जलाशय मे होती है, उसका रस) सेवन करने से अफीमसेवन–जनित विकार शान्त होता है।

(२) सेंधानमक, पीपल और मैनफल पीसकर गरम जल के साथ सेवन करने से उक्त विकार नष्ट होता है।

(३) सोहागा और तूतिया में घी मिलाकर सेवन करने से प्रचुर परिमाण मे वमन होकर अफीमसेवनजनित विष की शान्ति होती है।

धतूरा—(१) ४ तोले बैंगन का रस सेवन करने से धतूरा सेवन से उत्पन्न विकार नष्ट होता है।

(२) कपास के बीज और फूलों का क्वाथ अथवा नमक मिला हुआ जल सेवन करने से अथवा १ सेर दूध ८ तोले चीनी के साथ पान करने से धतूरा विष नष्ट होता है।

भिलावा—मक्खन के साथ मेघनाद का रस मालिश करने से अशुद्ध भिलावा के सेवन और स्पर्शजनित शोथ की शान्ति होती है। अथवा देवदारु, मोथा, सरसों और मक्खन एक साथ मर्दन कर प्रलेप करने से भिलावासेवनजनित विकार की शान्ति होती है। अथवा मक्खन, पिसा तिल, दुग्ध और गीला गुड़ एक साथ मर्दन करके प्रलेप देने से अशुद्ध भिलावा के सेवन और स्पर्शजनित शोथ शान्त होता है।

भङ्ग—सोठ का चूर्ण दही मे मिलाकर सेवन करने से भङ्ग सेवन से उत्पन्न विकार नष्ट होता है।

गुञ्जा—चीनी और दूध के साथ मेघनाद का रस सेवन करने से गुञ्जासेवन-जनित विकार नष्ट होता है। अथवा मधु, खजूर इमली, द्राक्षा, खट्टा अनार और आंवला मिलाकर सेवन करने से उक्त विकार नष्ट होता है।

करवी (कनेर)—आक की जड़ की छाल, दही और मिश्री एकत्र घोंट कर सेवन करने से कनेर का विष नष्ट होता है।

स्नुही (सेंहुड़)—(१) मिश्री मिला हुआ शीतल जल पान करने से अथवा इमली के पत्ते पीस कर सेवन करने से सेहुड़ का विष दूर होता है।

(२) गेरू मिट्टी जल मे घिस कर पिलाने से आक और सेंहुड़ का विष नष्ट होता है।

जमालगोटा—चीनी और दही के साथ धनिये पीस कर सेवन करने से-जमालगोटा-सेवन से उत्पन्न विकार नष्ट होता है।

शोधन योग्य अन्य कुछ द्रव्यों की शोधनविधि

गुग्गुलु—गुग्गुलु के केश-मलादि दूर कर उसे गरम दशमूल के क्वाथ में डाल कर और मथकर वस्त्र मे छान ले, फिर तेज धूप मे सुखा कर घृत मे सान कर गोला बना ले। इस तरह गुग्गुल शुद्ध होता है। अथवा गुरुच के क्वाथ में

भिगोकर सूर्य की गर्मी से सुखाने पर भी शुद्ध होता है। अथवा गुरुच के क्वाथ में भिगोकर सूर्य की गर्मी में सुखाने से भी शुद्ध होता है। अथवा गुग्गुल को गोदुग्ध अथवा त्रिफला के क्वाथ में दोलायन्त्र से पाक कर वस्त्र द्वारा छान लेने पर भी शोधित होता है।

वृद्धदारक बीज—थोड़ा सेंधानमक मिले जल में अथवा अपामार्ग के क्वाथ में भिगोकर धूप में सुखाने से विशोधित हो जाते हैं। अथवा दूध से भरे हुए पात्र में दोलायन्त्र से पाक करके वृद्धदारक बीज शोधित करे। नीबू के बीज, सहिजन के वीज, कपास के वीज और अपामार्ग के वीज अपामार्ग के क्वाथ में भिगो कर धूप में सुखा लेने से विशोधित होते हैं। किन्तु इसमे नमक नही डालना चाहिये। कुटकी, कटुतरोई के वीज, दन्ती बीज, डोंड़का के वीज, कड़वी कद्दू के बीज, और मकालफल ये आंवले के रस में और करोंदा के बीज एवं छोटे करोदा के वीज भृङ्गराज के रस मे शोधित होते हैं।

यन्त्र

दोलायन्त्र—एक हांड़ी का आधा भाग द्रव्य से भर कर उसके मुख (किनारे) के दोनों ओर छेद करे और उन छेदों में एक लकड़ी प्रवेश कराकर उस लकड़ी मे रस की पोटली लटका दे, इस तरह के स्वेदनयन्त्र को दोलायन्त्र कहते हैं।

स्वेदनीयन्त्र—एक जल से भरी हॉडी के मुख पर कपड़ा बांध दे और उसके ऊपर पाक की वस्तु रखकर उसे एक सकोरे से ढक दे। इस यन्त्र को स्वेदनीयन्त्र कहा जाता है।

पातनायन्त्र—दो बर्तनों द्वारा पातनायन्त्र बनता है। उनमें ऊपर का वर्त्तन जलाधार होता है। इसके गलदेश का नीचा भाग आठ अङ्गुल परिधि वाला, दस अङ्गुल विस्तार और चार अङ्गुल ऊँचा होना चाहिये। यह वर्तन १६ अङ्गुल चौड़ी पीठ वाले दूसरे भाण्ड के मुख पर बैठा कर दोनो की सन्धि-भैस के दूध, मण्डूर के चूर्ण और मात गुड़ द्वारा उत्तमरूप से लेप कर सुखा लेना चाहिये। इस नीचे के भाण्ड के भीतर पारद रक्खे और ऊपर के भाण्ड में जल रक्खे। यह यन्त्र चूल्हे पर रखकर उसके नीचे अग्नि जलावे तो नीचे के वर्तन का पारा उड़ कर ऊपर के वर्तन के तले पर जा लगेगा। इसी को पातनायन्त्र कहते है। (ऊपर के वर्तन का जल गरम होने पर उसे बार बार बदल देना आवश्यक है)

अधःपातनयन्त्र—इस यन्त्र के ऊपर वाले पात्र के भीतरी स्थान में पारद लिप्त करते है, और उस पात्र को फिर दूसरे जल से भरे हुए पात्र के ऊपर औंधा रखकर उनका संयोग स्थान पूर्ववत् बन्द कर दे। फिर उस ऊपर वाले पात्र के ऊपर जङ्गली उपलो की आंच दे, तो ऊपर का पारद नीचे की हांडी के जल में गिरता है। इसका नाम अधःपातनयन्त्र है।

कच्छपयन्त्र—एक जल से भरे पात्र में एक खपरा रख कर, उसके ऊपर विड मिला हुआ पारा कोष्ठिकायन्त्र में करके स्थापन करे। फिर इसके ऊपर एक पतला लौह का कटोरा ढक कर सन्धिस्थल पर ६ बार अच्छी तरह लेप देवे। फिर पूर्वोक्त जलपात्र के चारो ओर खदिर या बेर के कोयले जला देवे। अन्यान्य सत्त्व भी इसी प्रकार से द्रवीभूत होते है।

दीपिकायन्त्र—कच्छपयन्त्र के भीतर एक दीपक रख कर उस दीप मे पारा रक्खे। फिर अग्नि जला दे, वह पारा कच्छपयन्त्र में पतित होगा। इसको दीपिकायन्त्र कहते है।

डेकीयन्त्र—एक भाण्ड के कण्ठ देश के नीचे एक छिद्र करे और उस छिद्र मे एक वांस के नल का एक मुख प्रवेश करावे। दो कांसे के पात्रों मे जल भर कर सम्पुट करते हुए, उनमे भी १ छेद करे और उस छेद मे पूर्व कहे हुए नल का दूसरा मुख प्रविष्ट कर देवे। यथोपयुक्त द्रव्य मिला हुआ पारद उस भाण्ड में रक्खे और दोनों पात्रो के संयोगस्थल दृढ़ रूप से बन्द कर देवे। फिर उस भाण्ड के नीचे अग्निताप देने से भाण्ड में रक्खा हुआ पारद उस नल द्वारा कासे के पात्र में रक्खे हुए जल मे आकर गिरेगा। कांसे का पात्र जव तक गरम जान पड़े, तव तक उसमे पारा गिर रहा है ऐसा समझे। यह यन्त्र डेकी नाम से कहा जाता है।

जारणयन्त्र—१२ अङ्गुल के दो लोहे के मूषा वनवा कर उनमे से एक में छोटा छिद्र करावे, उस छिद्र युक्त मूषा में गन्धक और दूसरे मे पारद रक्खे। गन्धक का मूषा पारद के मूषा के ऊपर स्थापन करके सन्धि बन्द कर दें। पारद और गन्धक दोनों हो द्रव्य वस्त्र में छने हुए लहशुन के रस मे डुवो दे। फिर उन दोनों के मूषा रुद्ध कर एक जल से भरी हांडी मे रक्खे और उसके ऊपर फिर दूसरी हांडी ढंक कर सन्धि स्थल को मिट्टी और वस्त्र द्वारा अच्छी तरह से लपेट दें।

इसके बाद कपोतपुट में वह यन्त्र रख कर उसके नीचे और ऊपर जङ्गली उपलों की अग्नि जलावे। अथवा चूल्हे के ऊपर रख कर नीचे तीव्र अग्नि जलावे। ३ दिन अग्नि देने के बाद जब चूल्हे और हांडी का जल अपने आप शीतल हो जाय, तब यन्त्र खोलना चाहिये। चूल्हे और जल गरम रहने पर शीतल क्रिया न करे। वह अपने आप शीतल होने से यन्त्रस्थित पारद क्षार प्राप्त नही होता है या उड़ भी नहीं जाता है, इस नियम से गन्धक का भी जारण होता है।

विद्याधरयन्त्र और कोष्ठिकायन्त्र—एक हांडी के ऊपर दूसरी हांडी ढक कर उनका सन्धि स्थल प्रलिप्त करने से उसे विद्याधरयन्त्र कहते है। इसे चतुर्मुख चूल्हे के ऊपर चढ़ा कर नीचे अग्नि जलावे। नीचे के भाण्ड में औषध रख कर दोनों भाण्डो का मुख वन्द कर दें, इसे कोष्ठिकायन्त्र भी कहते हैं।

सोमानलयन्त्र—ऊपर अग्नि और नीचे जल रख कर उनके बीच मे पारद पाक करने से वह सोमानलयन्त्र कहा जाता है।

गर्भयन्त्र—पिट्टी भस्म करने के लिये इस यंत्र का व्यवहार होता है। मिट्टी के द्वारा ४ अङ्गुल लम्बी और ३ अङ्गुल चौड़ी मूषा तैयार कर उसका मुख गोलाकार करे। २० भाग लौह और १ भाग गुग्गुल अच्छी तरह घोंटकर उससे मूषा कई वार लिप्त करे अन्त मे आधा भाग लवण मिला कर मिट्टी और जल द्वारा लेप करे, फिर उस मूषा के भीतर पारद आदि वन्द कर भूमिगर्भ में तुषानल (भूसी की आग) से मृदु स्वेद देवे। १ दिन रात वा ३ दिन तक इस तरह स्विन्न करने से पारद भस्मरूप मे परिणत होता है।

हंसपाकयन्त्र—एक खपरा वालू से भर कर उसे दूसरे खपरे से ठीक-ठीक सन्धि वन्द कर दें। उसमे पञ्चक्षार, मूत्र, लवण वा विड द्रव्य सहित पाच्य पदार्थ स्थापन कर मृदु अग्नि से पाक करे, टीकाकार इसे हंसपाकयन्त्र कहते हैं।

वालुकायन्त्र—एक चौड़ी मुख वाली काच की शीशी के ऊपर एक अङ्गुल मोटी मिट्टी और कपड़े का लेप कर सुखावे। इस काच कूपी के दो तिहाई ($\frac{2}{3}$) भाग पारदादि पाच्य पदार्थ से भर कर उसे एक वालिश्त गहरी वालू से भरे भाण्ड के भीतर रक्खे फिर भाण्ड की खाली जगह को वालू से भर दे और भाण्ड के ऊपर ढक्कन रख दे और सन्धिस्थल मिट्टी से वन्द कर देवे। फिर उस भाण्ड को चूल्हे पर चढ़ाकर नीचे अग्नि देवे। ऊपर के ढक्कन की

पीठ पर तृण रखने से जब तक वह जलने न लगे, तब तक अग्नि देना आवश्यक है, इसीको वालुकायन्त्र कहते हैं। वालू के स्थान पर लवण भरने से वह लवणयन्त्र भी कहा जाता है। भाण्ड में पाँच आढक वालू भर कर उसमें रस-गोलकादि पाक करने से, उसको भी बालुकायन्त्र कहते हैं।

लवणयन्त्र—वालुकायन्त्र में वालुका के बदले लवण भरने से वह लवण यन्त्र कहा जाता है।

ताम्र पात्र में पारद प्रलिप्त करके उस पात्र के मुख पर ढक्कन रख कर मिट्टी और लवण द्वारा उसका सन्धिस्थल बन्द करे। फिर उस ताम्र पात्र को एक भाण्ड के भीतर रख कर भाण्ड को लवण या क्षार द्वारा पूर्ण करे और पूर्ववत् नियम से उसके नीचे अग्नि जलावे। यह लवणयन्त्र हैं। पारद-संस्कार कार्य में इस यन्त्र का व्यवहार होता है।

नालिकायन्त्र—एक लोहे के नल मे पारा रख कर उसे लवण से भरे पात्र मे (भाण्ड मे) स्थापन करके पूर्ववत् पाक करे इसे नालिकायन्त्र कहते हैं।

भूधरयन्त्र—एक गढ़े मे बालू भर कर उस बालुका के बीच मे रसयुक्त मूषा स्थापन कर उसके ऊपर जङ्गली उपलो की अग्नि जलावे तो यह भूधरयन्त्र कहा जाता है।

पुटयन्त्र—एक कसोरे में पाच्य द्रव्य रख कर उसे दूसरे कसोरे से ढक कर रख दे और सन्धिस्थल अच्छी तरह बन्द कर दे। इसका नाम पुटयन्त्र है। चूल्हे के वीच कण्डों से ढक कर पुटयन्त्र-स्थित पारद दो प्रहर तक पाक करते हैं।

कोष्ठिकायन्त्र और खेचरीयन्त्र—धातुओं के सत्त्वपातनार्थ कोष्ठीयन्त्र का व्यवहार होता है। यह १ हाथ लम्बा और १६ अङ्गुल चौड़ा होना आवश्यक है। दो लोहे के पात्र तैयार कराकर एक का वेष्टन करना होगा। एक पात्र के वेष्टन मे दूसरा पात्र प्रविष्ट हो सके, इस भाव से दोनों पात्र तैयार कराने होंगे। छोटे पात्र में मूर्च्छित पारा रख कर वह पात्र वड़े पात्र के भीतर वैठा दे और वड़ा पात्र काञ्जी से भर दे। इसका नाम कोष्ठिकायन्त्र है।

दो प्रहर तक इस यन्त्र में स्विन्न (स्वेदन) करने से पारद उठता है। इसे खेचरीयन्त्र भी कहते हैं। इस यन्त्र में पाक करने से पारद में षड्गुणता

सम्पादित होती है। सूक्ष्म कान्त लोह के होने से पारद अधिकतर गुणशाली होता है।

तिर्यक्पातनयन्त्र—एक कलश के मुख पर एक वक्र किये हुए नल का मुख संयुक्त करे और उस नल का दूसरा मुख दूसरे कलश की कुक्षि में छिद्र करके उसमें प्रविष्ट करे। दोनों कलशों के मुख और नल से संयुक्त स्थानों को मिट्टी से अच्छी तरह वन्द कर दे। इसी का नाम तिर्यक्पातन है। इसके एक कलश में पारद और दूसरे कलश में स्वादु शीतल जल रक्खा जाता है। पारद के कलश के नीचे तीव्र अग्नि देने से यह पारा उत्थित होकर नल द्वारा दूसरे कलश के जल में जा गिरता है।

पालिकायन्त्र—एक लोहे के वने हुए गोलाकार पान पात्र में ऊर्ध्वभाव से अग्रभाग मुड़ा हुआ दण्ड लगाया जाय तो उसे पालिकायंत्र कहते है। गन्धक-जारण के लिये इस यन्त्र का व्यवहार होता है।

घटयन्त्र—४ प्रस्थ (२५६ तोला) जल जिसमे आ सके और मुख ४ अङ्गुल का हो, इसका नाम घटयन्त्र है। इसे आप्यायनयन्त्र भी कहते हैं।

इष्टकायन्त्र—एक गोलाकार गर्त कर उस गर्त मे १ सकोरा रख दे। और उसके चारों ओर १ अङ्गुल ऊंचा घेरा वनावे। १ ईंट के टुकड़े के वीच मे एक गर्त करके वह ईंट उस सकोरे में रक्खे। ईंट के वीच के गर्त मे पारद रख कर उसके ऊपर १ कपड़ा और कपड़े के ऊपर गन्धक रक्खे। फिर दूसरा १ सकोरा लेकर उसे ढक दे एवं सकोरा और गर्त के आस-पास के घेरे का संयोग स्थान मिट्टी से अच्छी तरह वन्द कर दे। इसका नाम इष्टकायन्त्र है। जङ्गली उपलो की अग्नि से कपोतपुट में मृदु अग्नि से इसे पाक करे। इस यन्त्र से गन्धक जारण और सम्पादन होता है।

हिङ्गुलाकृष्टि-विद्याधरयन्त्र—एक हाँडी मे हिङ्गुल रख कर उसके ऊपर दूसरी हाँडी वैठाकर उनका सन्धि स्थान अच्छी तरह वन्द कर दें, इसको हिङ्गुला-कृष्टि-विद्याधर यन्त्र कहते हैं। ऊपर की हांड़ी का जल गरम हो जानेपर उसे वदल कर शीतल जल भर देना आवश्यक है।

डमरुयन्त्र—१ हांडी के ऊपर दूसरी हांडी का मुख मिला कर उलटी रक्खे और उनका संयोगस्थल अच्छी तरह वन्द करने से डमरूयन्त्र कहा जाता है। इसका व्यवहार पारदभस्म करने में होता है।

नाभियन्त्र—एक सकोरे के भीतर चारो ओर मिट्टी लगा कर वीचो वीच गर्ताकार करे, उसमे पारद और गन्धक रख कर उसके चारो ओर एक अङ्गुल ऊंचा घेरा लगा दे और ऊपर गाय के थन के आकार की मूषा ढक कर जल और मिट्टी द्वारा उसका संयोगस्थल अच्छी तरह वन्द कर दे। फिर ववूल का क्वाथ खूब गाढ़ा लेही सा करके उसमे जीर्ण किट्ट (मण्डूर) का चूर्ण, गुड़ और चूना मिला कर, अच्छी तरह मर्दन करने से वह जलमृत्स्ना नाम से कहा जाता है। इस पदार्थ का प्रलेप देने से उसमे जल प्रवेश नही कर सकता। खड़िया, नमक और मण्डूर भैंस के दूध में मर्दन करने से, उसे वह्निमृत्स्ना कहते है।

इस वह्निमृत्स्ना द्वारा प्रलेप देने से, वह तीव्र ताप सह सकता है। इस वह्निमृत्स्ना द्वारा रुद्ध होने से पारा निकल नहीं सकता। उक्त प्रकार से मूषा का संयोगस्थल रोक कर उस सकोरे मे जल भरे और नीचे अग्नि जलावे, इसको नाभियन्त्र कहते है। इस यन्त्र द्वारा पारद जीर्ण होता है और गन्धक धूमहीन और शुद्ध हो जाता है।

ग्रस्तयन्त्र—एक मूषा दूसरी एक मूषा के भीतर घुसा रहेगा, दोनो मूषाओं के आद्यन्त अवयव गोलाकार हो और केवल तलभाग चपटा हो, इसको ग्रस्तयन्त्र कहा जाता है। पारा बन्धन करने मे इसका व्यवहार होता है।

स्थालीयन्त्र—एक हांडी मे ताम्रादि धातु रख कर उसका मुख ढक कर सन्धिस्थल वन्द करे और हाडी के नीचे अग्नि जलावे, इसका नाम स्थालीयन्त्र है।

धूपयन्त्र—आठ अङ्गुल प्रमाण एवं आठ अङ्गुल ऊंचा एक लौहपात्र तयार करा कर उसके कण्ठ से नीचे दो अङ्गुल प्रमाण स्थान मे जलाधार स्थापन करके उसके ऊपर कुछ पतली पतली लोहे की शलाकाये तिरछी रक्खे और उस जलाधार के नीचे धूपन पदार्थ निहित करे, उन शलाकाओं के ऊपर सूक्ष्म स्वर्णपत्र स्थापन कर, दूसरे पात्र से उलटा कर ढक दे और सन्धि स्थल मिट्टी से बन्द कर दे। फिर लोहपात्र के नीचे अग्नि जला देवे। इस विधान से सब स्वर्णपत्र जारित होंगे और स्वर्ण द्रवीभूत होकर पात्र के भीतर गिर जायगा।

गन्धक, हरिताल और मैनशिल की कज्जली अथवा जारित सीसक, ये सव पदार्थ स्वर्णपत्र के धूपनार्थ प्रशस्त है। रौप्य जारण के लिये रौप्य की पत्र पर जारित वन्ध की अथवा उपयुक्त समझ कर अन्य उपरसों की धूप दी जाती है।

इसको धूपयन्त्र कहते हैं। जारण क्रिया साधन के लिये यह यन्त्र व्यवहार किया जाता है।

कन्दुकयन्त्र—एक बड़ी हांडी जल से भर कर उसके मुख पर एक कपड़ा दृढ़ रीति से बांध दे। उस कपड़े के ऊपर स्वेद्य वस्तु रख कर उसके ऊपर ढक्कन रख कर मुख बन्द कर दे। फिर हांडी के नीचे अग्नि जलावे। इसका नाम कन्दुकयन्त्र है। कोई कोई इसे स्वेदनीयन्त्र भी कहते है। अथवा जल से भरी हांडी के ऊपर तृण बिछा कर उन तृणों के ऊपर स्वेद्य द्रव्य स्थापन कर ढक दे और हांडी के नीचे अग्नि जलावे, इसको भी कन्दुकयन्त्र कहा जाता है।

खल्वयन्त्र—नील वा श्यामवर्ण, स्निग्ध, दृढ़ और भारी पत्थर खरल बनाने के योग्य होता है। खरल का परिमाण १६ अंगुल ऊंचा, ९ अंगुल चौड़ा और २४ अंगुल लम्बा होना चाहिये। खरल की घर्षणी घिसने की जगह यदि १२ अङ्गुल हो तो खरल २० अङ्गुल लम्बा और १० अङ्गुल ऊँचा वेध विशिष्ट होना आवश्यक है। ऐसा खरल ही पारद-मर्दन मे श्रेष्ठ है। पारदादि मर्दन की सुविधा के लिये दो प्रकार के (दीर्घाकृति और गोलाकृति) खरल बनाये जाते हैं। सब खरल और उसकी पुत्रिका निरुद्गार (जिससे द्रव्य छिटक न पड़े) और चिकना कर तैयार करते हैं।

मतान्तर से—दश अङ्गुल ऊँचा, १६ अङ्गुल लम्बा, १० अङ्गुल चौड़ा तल देश में ७ अंगुल और स्थूलता मे दो अङ्गुल परिमित खरल तयार करते है। यह चिकना और अर्द्धचन्द्राकार होना उचित है। इसकी घिसने की जगह १२ अङ्गुल तयार करे। यह कार्यसिद्धि विषय में प्रशस्त है।

मर्दन विषय में गोलाकार खरल अधिक सुविधाजनक है, वह १२ अङ्गुल लम्बा और ४ अङ्गुल गहरा होना आवश्यक है। अत्यन्त चिकने पत्थर से यह खरल तैयार कराकर उसका मध्यभाग खूब चिकना करे, इसके घर्षण का भाग चपटा और मूसली में पकड़ने का स्थान सुखकर तैयार कराना चाहिये।

लोहे का खरल ९ अङ्गुल लम्बा, ६ अङ्गुल गहरा बनाते हैं, उसमे घिसने का स्थान आठ अङ्गुल बड़ा होना चाहिये। खरल की सी आकृति वाली एक चुल्ली अंगारो से भर कर उपर्युक्त लोहे का खरल उसमें स्थापन कर पङ्खे द्वारा हवा करने से वह तप्त खरल कहा जाता है। मर्द्दित पारा पिट्ठीक्षार और खट्टे पदार्थ के

साथ मिला कर उस तप्त खरल में स्वेदित करने से अतिशीघ्र द्रवीभूत होता है। लौह (घनकान्तलौह) द्वारा वना हुआ होने से पारद सहस्रगुना अधिक गुण-शाली होता है।

मूषा

रसशास्त्रवित् मूषा को क्रौञ्चिका, कुमुदी, करभादिका, पाचनी और वह्निमित्रा ऐसे काई नामों से कहते है। मिट्टी और लौह ये दो मूषा के उपादान हैं। मूषा और उसका ढक्कन दोनों के मिलन स्थान के रोकने को वन्धन, सन्धिलेपन, अन्ध्रण, रन्ध्रण, संश्लिष्ट और सन्धिवन्धन कहते हैं।

पाण्डु, रक्तवर्ण, स्थूल, शर्कराहीन और वहुत देर तक अग्नि का ताप सहन करने मे समर्थ मिट्टी मूषा वनाने मे श्रेष्ठ है। अभाव में वल्मीक-मृत्तिका (वामी की मिट्टी) अथवा कुम्हार की सानी हुई तैयार मिट्टी मूषा के लिये ली जावे।

मृत्तिका के साथ जली हुई भूसी, सन, गोवर या घोड़े की लीद मिलाकर लोहे की मूसली से उसे कूटे। इस तरह साधारण मूषा की मिट्टी तैयार की जाती है।

श्वेत पत्थर का चूर्ण, जली हुई भूसी, गोबर, सन, जीर्णवस्त्र, घोड़े आदि की लीद और लौह-मलादि पदार्थ उपयुक्त परिमाण मे मूषा की मिट्टी के साथ मिलाते है।

मृत्तिका ३ भाग, सन और लीद २ भाग, दग्ध भूसी और पत्थर चूर्णादि १ भाग और लौह मल आधा भाग, ये सब एकत्र मिलाकर वज्रमूषा वनाते हैं।

वज्रमूषा—सत्त्वपातन क्रिया मे व्यवहार किया जाता है।

योगमूषा—चिकनी वल्मीक की मिट्टी के साथ दहकते हुए कोयले, दग्ध तुष और यथोचित विड द्रव्य (क्षार वस्तुएं) उसमें मिश्रित करे। इस तरह जो मूषा तैयार होती है, उसे योगमूषा कहते है। इस योगमूषा में पारद पकाने से वह अत्यधिक गुणशाली होता है।

वज्रद्रावणिका मूषा—गारा, सीसक सत्त्व, सन और जली हुई भूसी प्रत्येक समभाग, सबके वजन के समान मूषोपयोगी पूर्वोक्त मृत्तिका। ये सब द्रव्य भैंस के दूध के साथ मिलाकर वज्रद्रावण के लिये अनेक आकृति की मूषा वनावे।

वरमूषा—वज्र (लौहचूर्ण), कोयले और भूसी प्रत्येक सम परिमाण, मृत्तिका चौगुनी, गारा मृत्तिका के सम परिमाण ये सब द्रव्य एकत्र कर वर-मूषा तैयार करते हैं। यह एक प्रहर तक अग्नि की ज्वाला सह सकती है।

गारमूषा—भैंस का दूध ६ गुना, गारा, लोहकीट, कोयला और सन इन सब द्रव्यों के साथ काली मिट्टी मिलाकर उसके द्वारा जो मूषा बनती है, उसे गारमूषा कहते है। यह मूपा दोपहर तक अग्नि में दग्ध करने से भी नष्ट नहीं होती।

वर्णमूषा या रूप्यमूषा—पत्थर का चूर्ण और लाल रंग की मृत्तिका रक्तवर्गोक्त द्रव्य के रस के साथ ('दाडिमं किंशुकं लाक्षा बन्धूकञ्च निशाद्वयम् कुसुम्भपुष्पं मञ्जिष्ठा इत्येते रक्तवर्गकाः') मर्द्दित कर उसके द्वारा मूषा तैयार करे फिर उस मूषा में खदिंर और हीराकस लेपन करे। इसको वर्णमूषा कहते हैं। धात्वादि का वर्णोत्कर्ष सम्पादन के लिये यह मूपा व्यवहृत होता है, श्वेत वर्गोक्त पदार्थ के साथ मर्दन कर यह मूषा तयार करने से उसको रौप्यमूषा कहा जाता है।

विडमूषा—यथानिर्दिष्ट भिन्न भिन्न मृत्तिका द्वारा मूषा तैयार कर उसमे निर्देशानुसार वस्तुओं का लेपन करे, उसे विडमूषा कहते हैं। देह की दृढ़ता साधक औषध तैयार करने में इस मूषे का व्यवहार होता है।

गारा (जल में बहुत देर तक भीगी हुई मिट्टी) और सीसक सत्त्व १-१ भाग, भूसी ८ भाग, इन सब के बराबर मृत्तिका ये सब एकत्र भैंस के दूध के साथ मर्दन कर कई प्रकार के क्रौञ्चिकायंत्र (मूषा) तैयार करते हैं। इस मूषा से जुएं का रक्त एवं सुगन्धवाला और काटानट की जड़ लेपन करने से यह वज्रद्रावण मूपा में परिणत होता है। इसे द्रव पदार्थ से पूर्ण कर अग्नितापं पर रखने से चार प्रहर तक अग्निताप सह्य करता है।

मूषा मे कोई पदार्थ द्रवीभूत होते समय कुछ देर के लिये यदि उसकी आध्मापन क्रिया बन्द रख कर मूषा उतार लेते है तो उसको मूषा की आध्मापन क्रिया कहते है।

वृन्तकामूषिका—बैंगन की आकृतिवाली मूपा तैयार कर उस पर १२ अङ्गुल परिमित १ नाल संयुक्त करे। उसका ऊपरी भाग धतूरे के फूल की सी

आकृति वाला और सुदृढ़ करना चाहिये। मूषा का परिमाण ८ अङ्गुल हो और उसमें छिद्र रहे। इसको वृन्तकामूषिका कहते हैं। इस मूषा द्वारा खपरिया आदि मृदु द्रव्यों का सत्त्व संग्रह करते है।

गोस्तनीमूषा—जो मूषा गाय के थन की सी आकृतिवाली हो एवं शिखा-युक्त और आच्छादन (ढक्कन) युक्त हो उसे गोस्तनीमूषा कहते हैं। धात्वादि की शुद्धि और सत्त्व द्रावण कार्य में इसका व्यवहार होता है।

मल्लमूषा—एक सकोरे के ऊपर दूसरा सकोरा मुख से मुख मिलाकर रखने से जो मूषा बनती है, उसे मल्लमूषा कहते हैं। यह पर्पटादि रस पदार्थ स्वेदन के लिये व्यवहृत होती है।

पक्वमूषा—कुम्हार के बनाये भाण्ड की तरह आकृति तैयार कर उसे पका ले। इसे पक्वमूषा कहते हैं। पाट्ठली आदि पाक करने में इस मूषा की आवश्यकता होती है।

गोलमूषा—एक गोलाकार मूषा में पुटन द्रव्य रख कर उसका मुख बन्द कर दे। इसे गोलमूषा कहते हैं। इसके द्वारा पुटन द्रव्य शीघ्र द्रवीभूत और शोधित होता है।

महामूषा—तलभाग मे कूर्पर की नाई सूक्ष्म और फिर क्रमशः चौड़ा कर बैंगन की तरह जो बड़ी मूषा तैयार की जाय उसे महामूषा कहते हैं। लौह, अभ्र आदि के पुटपाक और द्रावण के लिये यह मूषा व्यवहृत होती है।

मण्डूकमूषा—मेंढक की सी आकृतिवाली और तल भाग में चौड़ी और विस्तार में ६ अङ्गुल परिमित जो मूषा तैयार की जाय उसे मण्डूकमूषा कहते है। यह मूषा धरती मे गाड़कर उसके ऊपरी भाग में पुट देते है।

मुशलमूषा—जिस मूषा का मूल भाग चपटा और शेष अवयव गोलाकार एवं ८ अङ्गुल जिसकी ऊंचाई हो उसे मुशलमूषा कहा जाता है। चक्रीबद्ध रस अर्थात् पारद का चाकी पाक करने में यह मूषा उपयोगी है।

पुट

पुटविधान ही रसादि द्रव्य पाक का ज्ञापक है, अर्थात् रसादि द्रव्य का पाक सम्यक् हुआ है या नही, वह पुट के अनुसार ही जाना जायगा। निर्दिष्ट पाक की अपेक्षा न्यून वा अधिक पाक हितकर नहीं होता है। जिस औषध का पाक पूर्ण

विहित हुआ हो, वही हितकर होता है। लौहादि धातुओं का निरुत्थ भस्म, गुण की अधिकता और क्रमशः उत्कर्ष, जल मे डूबना और दबाने से अङ्गुली की रेखा का प्रवेश ये सब केवल पुटक्रिया द्वारा ही सिद्ध होते हैं। पुटक्रिया द्वारा ही पत्थर और धातुओं का लघुत्व, शीघ्र देह में व्याप्ति, अग्निदीपन एवं जारित पारद की अपेक्षा भी अधिक गुणशाली होता है।

बाहर स्थित पुट संयोग द्वारा धातुओं मे जितनी अग्नि प्रवेश करे और जितना ही वह चूर्ण रूप मे परिणत हो उतना ही उसका गुण अधिक होता है।

महापुट—दो हाथ चौड़ा एक चौकोर कुण्ड बनवावे, कुण्ड के नीचे का भाग क्रमशः चौड़ा हो। फिर उस कुण्ड में एक हजार जंगली उपले रखकर उनके ऊपर मूषाबद्ध पुटपाकोपयोगी औषध स्थापन करे, फिर औषध के ऊपर और भी ५०० जंगली उपलें (जो खेतो मे पशु गोबर करते हैं, वह सूखा हुआ) रख कर अग्नि संयोग करे। इसको महापुट कहते है।

गजपुट—एक हाथ परिमित गहरा और चौकोर एक कुण्ड तैयार कर हजार जङ्गली उपलों द्वारा उसे कण्ठदेश तक भर दे। वन उपलों के ऊपर पुटन द्रव्य से भरा पात्र स्थापन कर उसके ऊपर फिर ५०० वन उपलो को रख कर उनमें अग्नि संयोग करे। इसका नाम गजपुट है, गजपुट औषध में महागुण प्रदान करता है।

वराहपुट—ऐसे ही नियम से मुट्ठी भर कुण्ड तैयार कर पुटपाक करने से उसे वराहपुट कहा जाता है।

कुक्कुटपुट—दो बालिश्त गहरे और दो बालिश्त चौड़े कुण्ड में पुटपाक करने को कुक्कुटपुट कहते हैं।

कपोतपुट—पारद भस्म करने के लिये मूषा रुद्ध कर भूतल पर ८ वन उपलों द्वारा पाक करने से उसे कपोतपुट कहते हैं।

गोबरपुट—गोचारण स्थान में पड़े हुए, गोखुर द्वारा कुटे हुए, सूखे गोमय के चूर्ण को गोबर कहते है। यह रस-साधन कार्य में विशेष उपयोगी है। रस भस्म-साधन के लिये उक्तरूप गोबर और भूसी द्वारा जो पुट देते है उसे गोबरपुट कहते है।

भाण्डपुट—एक बड़े भाण्ड में भूसी भर कर उसके मध्यस्थल में मूषा निहित करे फिर उस भूसी में अग्निसंयोग कर उसे दग्ध करे। इसको भाण्डपुट कहते हैं।

बालुकापुट—पाच्य (पकाने योग्य) पदार्थों से भरी हुई मूषा को नीचे और ऊपर गरम बालू से ढक कर पाक करे। इसका नाम वालुकापुट है।

भूधरपुट—भूतल पर दो अङ्गुल गड्ढा कर उसमें मूषा रक्खे और उसके ऊपर बन उपलों की अग्नि द्वारा पुट देवे। इसको भूधरपुट कहते हैं।

लावकपुट—मूषा के ऊपर सोलह गुनी भूसी अथवा गोबर द्वारा जो पुट दिया जाय, उसे लावकपुट कहते हैं। अति मृदु द्रव्य पुटपाक करने में यह उपयोगी है।

जिस स्थल मे पुट का अर्थात् गोबर के कण्डे आदि द्रव्यो का परिमाण निर्दिष्ट न हो, उन स्थलो मे पाच्य पदार्थ का बलाबल विचार कर पुट का परिणाम स्थिर कर लिया जाय।

रस-परिभाषा

कोई द्रव पदार्थ दिये बिना केवल धातु समूह एवं गन्धकादि के साथ पारद मर्दन कर कज्जलवत् चिकना चूर्ण करने से उसे कज्जली कहते हैं। और वे सब द्रव पदार्थ के साथ मर्दित हो तो उन्हें रसपक्क कहते हैं।

पारा, सोनामाखी और गन्धक बारह भाग और अभ्र चार आना भाग एकत्र खरल में मर्दन कर और तीव्र अग्नि पर रख कर मक्खन जैसा तैयार होने पर उसे रसपिष्टि कहा जाता है।

अन्यान्य पण्डित कहते हैं कि गन्धक और दूध के साथ पारा खरल मे मर्दन कर पिष्टवत् तैयार करने से उसे ही पिष्टि कहते हैं।

चतुर्थांश स्वर्ण के साथ पारद मर्दन कर जो पिष्टि तैयार की जाती है उसें पातनपिष्टि कहते हैं। इससे पारद अच्छी तरह साफ होता है।

रौप्य या स्वर्ण, पारद और गन्धकादि के साथ मारित कर उसे बारम्बार ऊर्ध्वपातन द्वारा उत्थापित करने से उसे स्वर्ण वा रौप्य की कृष्टि कहते है।

यह कृष्टी वा कृष्णी स्वर्ण में डालने से उसके द्वारा स्वर्ण की वर्णहानि नहीं होती। विशेषतः यह स्वर्णकृष्टी पारद के रञ्जन कार्य में बीजस्वरूप है।

ताम्र और तीक्ष्ण लौह बारम्बार द्रवीभूत कर गन्धक मिले हुए आक के रस में डाल देने से वह श्रेष्ठ लौहरूप में निकलता है। इस तरह स्वर्ण का संस्कार

करने से वह हेमरक्ती कहा जाता है। द्रवीभूत स्वर्ण में यह हेमरक्ति डालने से स्वर्ण का वर्णोत्कर्ष होता है।

रौप्य के भी इस तरह संस्कार कर मनोहर रौप्य रक्त वा बीज तैयार करते हैं। इस का नामताररक्ती है। ताररक्ती रौप्य का और रौप्य रञ्जक बीज का भी रञ्जक है।

धृत वा बद्ध पारद अथवा अन्य किसी धातु के साथ कोई धातु संस्कृत होकर यदि श्वेत वर्ण हो तो वह चन्द्रदल एवं यदि वह पीतवर्ण हो तो अग्निदल कही जाती है।

ग्रन्थान्तर में भी ऐसा वर्णित है कि बद्ध पारद अथवा अन्य किसी धातु के साथ कोई धातु संस्कृत होकर श्वेत वा पीतवर्ण होने से वह श्वेतदल वा पीतदल नाम से कीर्तित होती है।

सोनामाखी के साथ तांबा १० बार पुटपाक कर, मारित किया ताम्र, और ऐसा विशोधित सीसा दोनों ४ पल एकत्र मिला कर नीलाञ्जन के साथ सौ बार मारित करने से वह शुल्वनाग नाम से कहा जाता है। यह विशुद्ध है। इस शुल्वनाग के साथ साधित पारद एक मास तक मुख में धारण करने से मनुष्यादि के मेहरोग निवारित होते हैं। पथ्यभोजी होकर एक वर्ष तक मुख मे धारण करने से वली और पलित नष्ट होते हैं, गिद्ध की सी दृष्टिशक्ति प्रखर, शरीर परिपुष्ट और सब प्रकार के रोग विनष्ट होते हैं।

एक धातु दूसरी धातु के साथ मिलाकर, फिर उसे दग्ध कर द्रवपदार्थ विशेष में बुझाने से यदि वह पाण्डु पीतवर्ण हो तो उसे पिञ्जरी कहते हैं।

रौप्य सोलह भाग और ताम्र बारह भाग एकत्र आवर्तित कर लेने से उसे 'चन्द्रार्क' कहते हैं।

जिस किसी एक साध्य धातु में दूसरी धातु डाल कर टेढ़े नली की फूंक द्वारा दग्ध करने से वैद्य लोग उसे निर्वापण कहते हैं। इसमें जो धातु निर्वापित करनी हो उसका जैसा परिमाण निर्दिष्ट हो, निर्वापण द्रव्य अर्थात् जिसके द्वारा निर्वापण करते हैं, वह द्रव्य भी उसके समपरिमाण में डाली जाती है।

जिस मृत धातु का भस्म जल में डालने से जल के ऊपर तैरता रहे उसे वारितर कहते है।

और जो धातुभस्म अङ्गुष्ठ और तर्जनी अङ्गुली द्वारा मर्दित करने से अङ्गुली की रेखाओं में प्रविष्ट हो जाय उसे रेखापूर्ण कहते है।

गुड़, गुञ्जा, सुखस्पर्श (सोहागा), मधु और घी के साथ मिलाकर जो धातु भस्म आध्मापित करने से वह अपनी स्वाभाविक अवस्था को प्राप्त न हो उसे अपुनर्भव धातु भस्म कही जाती है। उस धातु भस्म के ऊपर धान्यादि भारी वस्तु स्थापन कर उसे जल में डालने से यदि हंस की तरह तैंरती रहे तो उसे उत्तम कहते हैं।

किसी धातु भस्म के साथ रौप्य मिलाकर उसे आध्मापित करने पर यदि वह भस्म रौप्य पात्र से लग जाय तो उसे निरुत्थ वा अपुनर्भव धातु भस्म कही जाती है।

निर्वापण द्रव्य विशेष के संस्रव से धातु भस्म जब उस वर्ण विशेष को प्राप्त हो और वह मृदु और विचित्र संस्कार युक्त हो, तब उसे बीज कहते हैं। इस बीज संस्कार को वैद्य लोग उत्तरण क्रिया कहते हैं।

संसृष्ट दो धातुओं में एक धातु टेढ़े नली की फूत्कार द्वारा दग्ध करने से उसे ताडन कहते हैं।

अभ्र का चूर्ण, साठी चावल और काञ्जी के साथ मिलाकर वस्त्र में बांध कर मर्दन करने से वस्त्र में होकर जो अभ्र कण गिरें उन्हें धान्याभ्र कहते हैं।

क्षार, अम्ल और द्रावक पदार्थों के साथ धातु द्रव्य मिलाकर कोष्ठिकायन्त्र में आध्मापित करने से जो सार पदार्थ निकलता है उसी का नाम सत्त्व है।

कोष्ठिकायन्त्र में शिखराकार से कोयले भर कर उनमें मूषा स्थापन कर उसके कण्ठ देश तक उन कोयलों से ढक कर आध्मापित करने को 'एकक्कोलीसक' कहते हैं। कार्य विशेष में भिन्न-भिन्न कोयले का व्यवहार होता है। यथा— द्रावण और सत्त्व पातन कार्य में महुआ और खदिर काष्ठ का कोयला उत्तम है। द्रव पदार्थ रहित द्रव्य आध्मापित करने में वांस का कोयला उपयोगी है और स्वेदन कार्य में वेर के लकड़ी का कोयला प्रशस्त है।

हिङ्गुल आदी के रस के साथ मर्दन कर विद्याधरयन्त्र द्वारा उससे पारा आकर्षण करने पर उस पारे को हिङ्गुलाकृष्ट रस कहा जाता है। कांसे के साथ थोड़ा हरिताल मिलाकर टेढ़े नली की फूंक द्वारा उसे दग्ध करे, इस तरह कांसे का रङ्ग भाग (दस्ता भाग) दूर होने पर शेष ताम्र भाग को घोषाकृष्ट कहते हैं।

तीक्ष्ण लौह नीलाञ्जन के साथ मिलाकर तीव्र अग्नि से अनेक बार आध्मापित करने पर जब वह कोमल कृष्ण वर्ण और शीघ्र द्रावणशील हो जाय तब उसे चरनाग कहते है।

मृत (जारित) द्रव्य की पुनर्बार स्वाभाविक अवस्था प्राप्ति को उत्थापन कहते हैं। द्रव पदार्थ मे द्रवीभूत द्रव्य निक्षेप करने को ढालन कहा जाता है।

तीस पल परिमित सीसक आक के रस के साथ मर्दन कर क्रमशः फिर पुटपाक करे। पुटपाक से क्रमशः क्षय प्राप्त होकर जब एक कर्ष (२ तोला) मात्र शेप रहे तब पुटपाक बन्द कर दे। इसके बाद हजार बार पुटपाक करने पर भी फिर उसका क्षय न होगा। टीकाकार इसको नागसम्भूत चपल कहते हैं।

इसी प्रक्रिया से वङ्ग का भी चपल तैयार करते हैं। वह चपल हाथ में लेकर उस हाथ से पारद स्पर्श करने से, पारद बद्ध होता है। यह पारद धातु क्रिया में प्रशस्त होता है, किन्तु रसायन कार्य मे उपयोगी नही। आचार्य लोकनाथ ने इस वङ्ग के चपल का नाम खर्पर कहा है।

सीसक का मल जल से धोकर उस पर मिली हुई रज आदि दूर कर देने से वह कृष्ण वर्ण का हो जाता है। रसवित् पण्डित इसे धौत कहते है।

सम परिमाण मे दो धातु द्रव्य एकत्र मर्दित और आध्मापित करने से उसे द्वान्द्वान कहते है। फिर उन दो द्रव्यो मे एक द्रव्य दूसरे द्रव्य की अपेक्षा अधिक भाग होने से उसको अनुवर्ण और न्यून होने से सुवर्णक कहते है। अन्य किसी पदार्थ द्वारा वर्ण का ह्रास होने से धातुविद्गण से उसे भञ्जनी कहते है।

धातु विशेष में पारदादि के कल्क द्वारा रौप्य वा स्वर्ण की नाईं वर्ण उत्पन्न करने पर वह यदि थोड़े दिन रह कर नष्ट हो जाय तो उसे चुल्लका (गिलटि) कहते है और यदि वह रञ्जित वर्ण चिरस्थायी हो तथा दग्ध करने पर भी नष्ट हो तो उसे पतङ्गीराग कहते हैं।

द्रवीभूत लौहादि धातु में जो अन्य द्रव्य का प्रक्षेप दिया जाय उसे आवाप, प्रतीवाप और आच्छादन कहते हैं।

कोई धातु अग्निताप से द्रवीभूत कर ८ निमेष समय तक अपेक्षा कर उस पर थोड़ा थोड़ा जल निक्षेप करने से उसको अभिपेक कहा जाता है। उत्तप्त धातु जल में डाल देने को अभिषेक, निर्वापण और स्नपन कहते हैं।

धातु द्रवीभूत होकर जब निर्मल होती है, तब उसमें प्रतीवाप आदि अर्थात् दूसरे द्रव्य का प्रक्षेपादि करे। धातु पदार्थ आध्मापित करते समय जब उससे शुभ्र वर्ण की अग्नि शिखा निकले तब उसे शुद्धावर्त कहते है। वही सत्त्व निकलने का समय है। और जब आध्मापन समय में द्रवीभूत द्रव्य की सी शिखा निकले और द्रव पदार्थ में उन्नत होने (उथलने) लगे, तब उसे वीजावर्त कहते हैं।

जो कोई पदार्थ अग्नि में जला देने के बाद उस अग्नि से रहकर ही क्रम से अपने आप शीतल हो जाय उसे स्वाङ्गशीतल कहते हैं। और यदि वह द्रव्य अग्नि के ऊपर से उतार लेने के बाद शीतल हो तो उसे बहिःशीतल कहा जाता है।

क्षार, अम्ल वा अन्य किसी औषध के साथ कोई द्रव्य दोलायन्त्र में पाक करने से उसे स्वेदन कहते है। मर्दन द्वारा उस पदार्थ का बहिर्गत मल विनष्ट होता है।

यथानिर्दिष्ट औषध के साथ मर्दन कर किसी द्रव्य के नष्ट-पिष्ट करने को मूर्च्छन कहा जाता है। मूर्च्छन क्रिया द्वारा वङ्गादि द्रव्यान्तर संयोग और कञ्चुकादि दोष निवारित होता है।

स्वेद और आतपादि योग से भस्मीभूत धातु की फिर स्वाभाविक अवस्था उत्पन्न कराने को उत्थापन क्रिया कहते है। इसके द्वारा मूर्च्छनक्रिया-जनित व्यापत्ति विनष्ट हो जाती है।

पारदादि का स्वरूप विनष्ट होकर वह पिष्टाकार में परिणत होने से उसे बन्धन क्रिया कहते है। इस तरह निर्जित पारद को पण्डितों ने नष्टपिष्टि नाम से कीर्तन किया है।

यथानिर्दिष्ट औषध के साथ मर्दित पारद यथायथ यन्त्र में निहित कर ऊर्ध्व, अधः और तिर्यक् भाव से पातित कर निर्वापित करने का नाम पातन क्रिया है। इसके द्वारा वङ्ग और सीसक-संसर्गजनित कञ्चुक दोष विनष्ट होता है।

जल और सेंधा नमक के साथ पारद संयुक्त कर तीन दिन एक कलस में निहित (भीतर) कर रखने से उसे आस्थापनी और रोधनक्रिया कहते है।

इस तरह रोधनक्रिया द्वारा पारद लब्धवीर्य होने से उसकी चपलता बढ़ जाती है, उस चपलता की निवृत्ति के लिये जो स्वेदक्रिया निर्दिष्ट है, उसको नियामन कहते हैं।

धातु, पाषाण और मूलादि औषध के साथ (पारद) मिलाकर उसे घट में रख कर तीन दिन ग्रासार्थ जो स्वेद दिया जाय उसे पण्डितजन दीपन कहते हैं।

इतना परिमित पारद इतने परिमित द्रव्य का ग्रास कर सकेगा, ऐसी विवेचना कर पारद और ग्रासार्थ द्रव्य का जो परिमाण निश्चित किया जाता है, उसे ग्रासमान कहते हैं।

प्रसिद्ध टीकाकारों ने जारणक्रिया ३ प्रकार की कही है यथा—१—ग्रासचारण, २—गर्भद्रावण और जारण। उनमें ग्रासचारण ३ प्रकार का है, यथा—१—ग्रास, २—पिण्ड और ३—परिणाम। और जारण क्रिया १—समुखा और २—निर्मुखा भेद से दो प्रकार की है। जिस जारण क्रिया से निर्दिष्ट भाग परिमित वीज गृहीत हो उसे निर्मुखा जारण कहते है। शोधित स्वर्ण और रौप्य इन दो धातुओं को बीज कहा जाता है। चौसठ (६४) अंश परिमित वीज डालने का नाम मुख है, उस मुख के साथ जारण किया हुआ पारा ग्रासलोलुप मुखवान होता है अर्थात् कठिन धातुओं को भी ग्रास करने में समर्थ होता है। बनवासी सिद्ध पुरुष इसी को समुखा जारण कहते हैं।

मैनशिल मिश्रित पारद, कोष्ठिकायन्त्र में आध्मात होते समय यदि समस्त धातु ही ग्रास करने में समर्थ हो तो वह पारद राक्षसवक्त्र नाम से कहा जाता है।

पारदगर्भ में ग्रासोपयोगी पदार्थ क्षय होने से अर्थात् वह पदार्थ पारद के साथ मिल जाने से उसे ग्रासच्चारण कहते हैं। ग्रसित पदार्थ पारदगर्भ में द्रवीभूत होने से उसको गर्भद्रुति वा गर्भद्रावण कहा जाता है।

पारद—जारणकाल में घन—सत्त्वादि पदार्थ वाहर हो अर्थात् पारद के साथ मिश्रित न होकर ही द्रवीभूत हो जाय, तो उसे वाह्यद्रुति कहते है।

निर्लेपत्व, द्रुतत्व, तेजस्त्व, लघुता और पारद के साथ असंयोग ये पांच द्रुति के लक्षण हैं। पारद आध्मापित करते समय यदि औषध अथवा लौहादि धातु द्रवीभूत अवस्था में अवस्थित रहें तो उसे भी द्रुति कहते है।

विड और यन्त्रादियोग से द्रुति, ग्रास, परिणाम आदि जो सब संस्कार होते हैं, उन सबका नाम जारण है। जारण क्रिया के करोड़ो भेद है।

रसग्रास के समय जीर्णार्थ जो क्षार, अम्ल, गन्धादि पदार्थ, मूत्र और लवणादि ये सब पदार्थ दिये जाते है, उन्हें विड कहते है।

सुसिद्ध बीज धातु आदि के साथ रस के जारण द्वारा जो पीतादि वर्ण की उत्पत्ति होती है उसे रञ्जन कहते है।

तैलयुक्त यन्त्र मे पारद रख कर उसमे स्वर्णादि डालने से उसे सारणा कहते हैं। यह धातु संस्कार विषय में वेधकर्म की अपेक्षा भी अधिक कार्यकर है।

व्यवायी (जो जीर्ण न होकर भी क्रिया प्रकाश करे) औषधों के साथ पारद मिलाने से वेध नाम से कहा जाता हैं। लेप, क्षेप, कुन्त, धूम और शब्द नाम से भी वेधक्रिया अनेक प्रकार की है।

पारद विशेष लौह पर प्रलिप्त कर, जो स्वर्ण वा रौप्य उत्पन्न करना है उसे लेपवेध कहते है। उससे जिस प्रकार का पुटपाक करते हैं, वह अनायास साध्य है। द्रवीभूत लौह मे पारद विशेष प्रक्षेप से जो स्वर्णादि तैयार करना है, उसे क्षेपवेध कहते है।

एक सन्दंश (सन्नाय) मे पारद विशेष धारणपूर्वक उस सन्दंश से द्रवीभूत लौहादि ग्रहण कर स्वर्णादि तैयार करने से उसे कुन्तवेध कहा जाता है।

अग्नि में कोई धातु निहित कर उष्ण अग्नि पर पारद निक्षेप करने से उससे धूम निकलने के साथ ही साथ जो स्वर्णादि तैयार हो उसे धूमवेध कहा जाता है।

मुख मे पारद विशेष धारण कर अल्प परिमित धातु मे उस मुख से फूत्कारपूर्वक जो स्वर्ण, रौप्य तैयार करते है उसे शब्दवेध कहते हैं।

पारद मिलाकर प्रसिद्ध औषधो की मलिनतादि का निवारण कर स्वाभाविक वर्ण का प्रकाश करने से उसे उद्घाटन कहते है।

क्षार और अम्ल औषधो के साथ बड़े यत्न से भाण्ड में पारद निहित कर उसे भूमि के अन्दर दवा देते हैं। इसे स्वेदन क्रिया कहते है।

औषध मिला हुआ पारद भाण्ड मे रख कर मन्दाग्निपूर्ण चुल्ली में निहित करने को संन्यास कहते हैं।

स्वेदन और संन्यास ये दो क्रियायें पारद के गुणोत्कर्षजनक और शीघ्र व्याप्तिकारक है।

रससेवन की मात्रा

औषध सेवन की मात्रा की कोई स्थिरता नही। रससिद्ध पण्डितों ने प्रत्येक को रससेवन के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न मात्रा का निर्देश किया है। रोगी की आयु,

बल और शारीरिक अवस्था पर लक्ष्य कर चिकित्सक औषध की मात्रा निर्देश करे। चिकित्सों की सुविधा के लिये हम अपनी व्यक्तिगत अभिज्ञता से उत्पन्न रससेवन मात्रा लिखते हैं।

पारदभस्म की मात्रा प्रतिदिन १ रत्ती, स्वर्णभस्म की मात्रा १ रत्ती, रौप्य भस्म की २ रत्ती, ताम्रभस्म, लौहभस्म, अभ्रभस्म, सीसकभस्म, बङ्गभस्म, पीतल और कांस्मभस्म प्रतिदिन २ रत्ती, मुक्ताभस्म की मात्रा दो यव, हरितालभस्म की मात्रा १ सरसों से चौथाई रत्ती तक।

रस सेवन के नियम

जो रस मत्स्यादि के पित्त द्वारा भावित हो उन रसों के सेवन करने के बाद जल सेचन और अवगाहन क्रिया करने से औषध का बल बढ़ता है। रससेवन से विदाह उपस्थित होने पर गात्र पर शीतल जल का सींचना, चन्दनादि लेपन, मन्द-मन्द वायुसेवन, शर्करा मिली हुई ताजी दही सेवन, डाब (नारियल) का जल पीना, मधुर और शीतल पानीय और अन्यान्य शीत क्रिया हितकर है।

रसेन्द्रवेधज स्वर्ण-प्रस्तुतविधि

(१) गन्धक, हिङ्गुल, लौहचूर्ण और मनःशिला को ३ दिन अम्ल रस में मर्दन करे। फिर उसे एक सुदृढ़ लोहे की कढ़ाई मे डाल कर भून कर चूर्ण करे। फिर वह चूर्ण एक काच की शीशी मे भर कर ९ घण्टे बालुकायन्त्र में तीव्र अग्नि से पाक करे। इस अवसर में दूसरी एक मूषा मे चांदी गला ले। उसके बाद उक्त बालुकायन्त्र से उत्तप्त अवस्था मे (गर्म) वह मिला हुआ द्रव्य थोड़ा सा बाहर निकाल कर गले हुए रौप्य के साथ मिलाओ, तो देखोगे कि उस मिले हुये द्रव्य के सम परिमित रौप्य स्वर्ण मे परिणत हो गया है। इस स्वर्ण का आधा अंश बाजार में विकने वाले विशुद्ध स्वर्ण के तुल्य है।

(२) ताम्र को हिङ्गुल के साथ ३ बार जारित कर ३ बार फिर जीवित करे। ऐसा करने से ताम्र विशुद्ध, पीत और लाल वर्ण विशिष्ट होगा। उसके बाद उक्त ताम्र को खपरे के पात्र मे त्रिफला के जल में भावना देकर सेंहुड़ के दूध (रस) में मर्दन करे। फिर उस ताम्र को तीव्र अग्नि से मूषा मे तपावे तो वह राजभोग्य विशुद्ध स्वर्ण मे परिणत होगा।

विशुद्ध स्वर्ण का वर्ण बढ़ाना

तूतिया ~), रसक ~), मनःशिला =) भर एकत्र मिलाकर १ तोला निकृष्ट स्वर्ण के साथ गलाने से उसका रंग बढ़ कर विशुद्ध स्वर्ण के से वर्ण का हो जायगा।

रौप्य प्रस्तुतविधि

(१) १२ भाग तीक्ष्ण लौह चूर्ण, ३ भाग वङ्गचूर्ण, २ भाग सीसकचूर्ण, ३ भाग हरिताल चूर्ण, कांटानट के रस और सुहागे के चूर्ण के साथ १ दिन अन्धमूषा में पाक करे। पाक होने पर वह मिश्रित द्रव्य समपरिमित रौप्य के साथ मिलाने से मिश्रित द्रव्य विशुद्ध रौप्य मे परिणत होगा।

(२) ६ पल शोधित चूर्ण किया हुआ हरिताल, २ पल भूनाग सत्त्व, १ पल सोहागा, एकत्र कर केले और जमीकन्द के रस मे ३ दिन मर्दन कर एक बोतल में ३ दिन बन्द कर रक्खे, उसके बाद सत्त्वपातन करे। उक्त बन्द किये हुये उस द्रव्य के सत्त्व का १६ गुना तांबा उसके साथ मिलाने से वह विशुद्ध रौप्य मे परिणत होगा।

मल्लिखित 'भारतीय रसविद्या' नामक ग्रन्थ में यह विषय विस्तारपूर्वक लिखा है।

रसशाला-निर्माण

महानगरी के बीचो बीच चारों ओर अहाता (प्राचीर) बनवा कर विघ्न-बाधारहित स्थान में रसशाला का निर्माण करना चाहिये। इसमे मनोरम बगीचा सब प्रकार की ओषधियो से भरा और स्वच्छ कुआँ रहना चाहिये। यहा उपयुक्त समय मे शिव-दुर्गा की पूजा होनी चाहिये। अहाता ऐसा बनाना चाहिये कि जिससे चोर आदि दुष्टजन किसी तरह का अनिष्ट साधन न कर सकें। इस रसशाला मे उपयुक्त संख्या में द्वार और गवाक्ष रक्खे। ऐसी रसशाला मे विज्ञ चिकित्सक अति निर्जन मे शान्त मन से रसक्रिया साधन करे।

रसशाला के पूर्व की ओर गवाक्ष के समीप सूर्य की किरणों द्वारा प्रकाशित स्थान में स्फटिक शिला की तरह समुज्ज्वल सर्वसुलक्षणयुक्त मृत्तिका की वेदी

रचना कर, उस पर रसलिङ्ग स्थापन कर रसज्ञ व्यक्ति शास्त्रीय मत से उसका पूजन करें।

रसशाला के अग्निकोण में अग्निकार्य, दक्षिण में पाषाणकार्य, नैर्ऋत्य में शस्त्रकार्य, पश्चिम में प्रक्षालनकार्य, वायुकोण में शोषणकार्य, उत्तर में वेधकर्म और ईशानकोण में सिद्ध वस्तुएं स्थापन करे। रसशाला का मध्यभाग रस साधना की वस्तुओं से भरपूर रखना चाहिये।

रसशाला के उपकरण

सत्त्वपातन कोष्ठी, सुशोभन झरत्कोष्ठी, भूमिकोष्ठी, चलत्कोष्ठी आदि कोष्ठिकायन्त्र, नाना प्रकार की जलद्रोणी (गमले), दो हापर (अङ्गीठी), वांस के वने और लोहे के वने दो नल, स्वर्ण, लौह, कॉसा, ताम्र और पत्थर के कुम्भ, चर्मकारों के अनेक प्रकार के यन्त्रादि पदार्थ, ओखली, पेषणी (शिल-बट्टा), द्रोणी की तरह खरल, लोहमय खरल (हिमाम दस्ता), तप्त खरल और उसके उपयोगी मर्द्दक (मूसलियें), छानने के लिये वारीक चलनी, कषायित चर्मखण्ड, शलाका और मुशल द्रव्य समूह ये रसशाला के उपकरण (सामग्री) हैं।

मूषा (मिट्टी के सकोरा), मृत्तिका, तुप, कर्पास, वन उपले (आरण्य कण्डे), पिष्टक, धातुमय, मूलमय और जीवमय औषध, शिखित्र (जलते हुए कोयले), गोवर, शर्करा और सितोपला ये द्रव्य भी रसशाला में रखने चाहिये। काच, लौह, मृत्तिका एवं कौडी निर्मित वोतल एवं पानपात्र संग्रह करने चाहिये। सूपा आदि वांस के वने द्रव्य, खन्ती, क्षिप्र, शङ्किका (लोहदण्ड), क्षुरप्र (लोहे का दस्ता), पाक्य, पालिका, कर्णिका (कुर्णि), चाकू, गृहसंमार्जनी (झाड़ू) एवं रसपाक के उपयोगी अन्यान्य द्रव्य भी संग्रह करने चाहिये।

जलते हुए कोयलों को शिखित्र और कोयलों पर जल डाले विना बुझाया जाय तो उन्हें कोकिल (कोयला) कहते है। सूखे गोवर का नाम पिष्टक है।

आचार्य लक्षण

रसशास्त्रज्ञ, निघण्टुज्ञ (आभिधानिक) और सर्वदेश की भाषा जाननेवाले वार्तिक वैद्यजनों को रसपाक के समय साधकों को संग्रह करना आवश्यक है। वे रसपाक की समाप्ति तक नियत समय में अघोर मन्त्र जप करें। रसकार्य-

साधन के लिये उद्यमशील, शुचि, शौर्यशाली और बलिष्ठ परिचारक (सेवक) नियुक्त करना चाहिये। धार्मिक, सत्यवादी, विद्वान, शिव-विष्णु पूजक, दयावान और पद्म चिह्नवाले वैद्य को रसपाक के लिये नियुक्त करे। जिसके हाथ में पताका, कुम्भ, पद्म, मत्स्य और धनुष का चिह्न अङ्कित रहे और अनामिका के अधोभाग तक ऊर्ध्व रेखा अङ्कित देखी जाय, उस वैद्य को पीयूषपाणि कहा जाता है। अमृत हस्त का पीयूषपाणि वैद्य रसकार्य-साधन मे अधिक प्रशस्त है। इसका तात्पर्य यह है कि सुलक्षणाक्रान्त वैद्य को रसक्रिया साधन मे प्रवृत्त होने से सिद्धि अवश्य प्राप्त होती है। और भाग्यहीन, निर्दय, लुब्ध, गुरुवर्जित और दग्धहस्त (जिसके हाथ में कृष्णवर्ण रेखायुक्त हो उसे दग्धहस्त कहा जाता है), ऐसा वैद्य रसक्रिया साधन में परित्याज्य है।

भूतनिवारक मन्त्रज्ञ व्यक्तियों को निधिसाधन कार्य में नियुक्त करना चाहिये। बलवान, सत्यवादी, रक्तनेत्र, कृष्णमूर्ति और भूतों को भयोत्पादक, विद्याशाली व्यक्तियों को बलिसाधन के लिये नियुक्त करे। लोभहीन, सत्यवादी, देवब्राह्मण-पूजक, संयमी और पथ्यभोक्ता व्यक्तियों को रसायन कार्य में नियुक्त करे। धनवान वदान्य, सर्वउपकरणवान और गुरुवाक्यरत व्यक्ति साधुसाधन मे प्रशस्त हैं। और औषध आहरण के लिये सब ओषधियो का नाम जानने वाला, शुचि, वञ्चना-रहित और नाना विषय और भाषाज्ञानशाली व्यक्ति ही उपयुक्त होता है।

शुचि, सत्यवादी, आस्तिक, बुद्धिमान और निःसंशय चित्त व्यक्ति की रस-क्रिया सदा ही सुसिद्ध होती है। जो साधक पारद के १८ संस्कार सुसिद्ध कर सकते हैं, उन्हीं को रससिद्ध कहते है। रससिद्ध मानव दाता, भोगी, अयाचक, जरामुक्त, जगत्पूज्य, दिव्यकान्तिवाला और नित्य सुखी होता है।

राजवैद्य का लक्षण

जो समग्र रसशास्त्र पूर्णरूप से अध्ययन कर पारद के १८ संस्कार, सब रस, उपरस, धातु, उपधातु, रत्न, उपरत्न, विष, उपविष आदि रसचिकित्सा के उपकरणों (सामग्रियों) का शोधन, जारण, मारण, भस्मीकरण, द्रावण और स्वत्त्व पातनादि कर्म अपने हाथ से सम्पन्न कर, उनके प्रयोग द्वारा रोगाक्रान्त जनो के रोगमुक्त करने में समर्थ है, वही यथार्थ राजवैद्य-पदवाच्य है।

मकरध्वज की पाकविधि

हमने पूर्व मे कहा है कि मकरध्वज आयुर्वेदशास्त्र की. महौषधि है। वर्तमान समय में वङ्गदेश में वङ्गभाषा और संस्कृत के वङ्गानुवाद में जो जो आयुर्वेदीय पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं उनमें से किसी में भी असल पाकविधि नहीं लिखी गई है। अधिकांश चिकित्सा-व्यवसायी इच्छा रहने पर भी पाकविधि न जानने के कारण उसका पाक करने में कृतकार्य नहीं होते। मकरध्वजपाक-शिक्षार्थियों की सुविधा के लिये नीचे रससिन्दूर और मकरध्वज की पाकविधि लिखी गई है।

रससिन्दूर की पाकविधि

मकरध्वज तैयार करने की वोतल का तलदेश समतल होना आवश्यक है। बाजार में प्रायः जिसको गठीली वोतल कहते हैं, ऐसी बोतल ही मकरध्वज के पाक में प्रशस्त है। अनेक वोतलों का तलदेश समान न होने से वे कुब्ज भाव से उठे रहते है। ऐसी वोतल में रससिन्दूर पाक करना उचित नहीं है। जिस बोतल का गलदेश तिर्यग्भाव से उठकर मुख नल के साथ मिलता हो ऐसी बोतल मकरध्वजपाक के उपयोगी नहीं है। एवं जिस वोतल का गलदेश सरल रेखा क्रम से उठ कर मुख नल के साथ मिला हो ऐसी बोतल मकरध्वजपाक के लिये उपयोगी है। मतलव यह है कि बोतल मजबूत होनी चाहिये। फिर उस बोतल पर मिट्टी का प्रलेप देना चाहिये, मिट्टी अच्छी तरह चिकनी हो। उसमें थोड़ा सा तुष और पाट (सन) वारीक मिलाकर अच्छी तरह मर्दित करना चाहिये। बोतल के तले पर सामान्य प्रलेप देकर उसके सर्वाङ्ग पर दो अङ्गुल मोटा प्रलेप देवे और प्रलेप के ऊपर सूक्ष्म कपड़ा लपेट कर उसके ऊपर फिर प्रलेप देवे। बोतल के गले पर और गलदेश के सन्धिस्थल (जोड़) पर भरपूर लेप देवे। प्रलेप देना समाप्त होने पर प्रलेप को धूप में सुखा लें। उस समय यदि प्रलेप फट जाय तो फिर थोड़ी सी मिट्टी लगाकर उस सन्धि को भर देवें। पारद और गन्धक की सुसिद्ध कज्जली, इस मृत्तिका लिप्त बोतल में रक्खें। इसके वाद एक खड़िया द्वारा डाट वनाकर उसके मुख पर लगा देवें; डाट ऐसी बनानी चाहिये जिससे बोतल के मुख में सन्धि न रहे। उसके बाद ऐसी एक हांडी लेवे जिसमें बोतल रखने से

वोतल के चारों ओर कम से कम चार अङ्गुल जगह खाली वनी रहे। इसके वाद उस हांडी के तले बीचो बीच एक ऐसा गोलाकार छिद्र किया जाय जिसमें कनिष्ठा अङ्गुली प्रवेश कर सके। वह कीचड़लिप्त वोतल छिद्र के ऊपर वैठाकर हांडी को खूव सूखी बालू से भर देवे। इस यन्त्र का नाम बालुकायन्त्र है। उसके वाद यह बालुकायन्त्र चूल्हे पर स्थापन कर काष्ठ की धीमी अग्नि से पाक करे, एवं कज्जली द्रवीभूत होने पर ज्वाला की मात्रा भी वढ़ा देवे (अग्नि कुछ तेज कर देवे)। डाट खोलकर देख ले कि कज्जली द्रवीभूत हुई या नही। कज्जली ऊपर को उठती हो तो एक लोहे की शलाका अग्नि मे तपा कर उसके द्वारा उक्त वोतल के गलदेश में सञ्चित द्रवीभूत अंश हिला चलाकर डाट मजवूती से लगा कर वन्द कर दे। इस तरह पाक करते करते जव देखे कि वोतल का तलदेश प्रभात के सूर्य की तरह दीप्तिमान हो गया, तव एक स्वच्छ शीतल लोहे की शलाका वोतल के तले तक डाल कर कुछ देर तक रख कर उठा कर देखे कि उसके सिरे पर स्याही लगी है या नही यदि शलाका के सिरे पर स्याही लगी रहे तो और भी थोड़ी देर तक अग्नि जलाता रहे। इस समय ज्वाला कुछ मन्द होनी चाहिये। उसके वाद फिर उक्त शीतल शलाका को वोतल के भीतर प्रवेश कर उठाकर देखे कि उसके सिरे पर राख लगी है या नही। उस राख का रङ्ग यदि श्वेत हो तो फिर अग्नि न लगाये। इसके बाद यन्त्र को उतार कर जव तक शीतल न हो जाय तव तक नीचे रक्खा रहने दे। पात्र शीतल होने पर वोतल वाहर निकाल कर तोड़ दे और उसके ऊपर लगा हुआ वालार्क (प्रातःकालीन सूर्य) सदृश रससिन्दूर ग्रहण करे। साधारणतः १२ घण्टे ज्वाला देने से रससिन्दूर तैयार होता है।

मकरध्वज-पाकविधि

मकरध्वज-पाकविधि रससिन्दूर की ही तरह है। किन्तु रससिन्दूर की अपेक्षा मकरध्वज-पाक में अधिक समय लगता है, इसे पाक करने में कम से कम ३ दिन आवश्यक हैं। इसका पाक पहले मृदु अग्नि से आरम्भ करते हैं फिर क्रम से ज्वाला वढ़ाते जाते हैं। पाक की समाप्ति अवस्था में ताप फिर मृदु (कम) कर देते हैं।

मकरध्वज की कज्जली

ग्रासनशक्तिवाला पारा, स्वर्ण की निरुत्थ भस्म और शोधित गन्धक एकत्र पत्थर के खरल में डाल खरल कर काजल सदृश चिकना कर उसके साथ घृतकुमारी का रस मिला कर फिर मर्दन करे उसके बाद सुखा कर बोतल में भर ले।

स्वर्णभस्म के बदले में विशुद्ध स्वर्ण के अति सूक्ष्म पत्र भी कज्जली तैयार करने में व्यवहार किये जा सकते हैं।

स्वर्णादि भस्म

स्वर्ण, लौह, रौप्य, सीसक, दस्ता, वङ्ग, पीतल और कांसे की भस्म तैयार करने के लिये उन्हें पूर्वोक्त प्रक्रिया से विशुद्ध करे। उसके बाद खरल में मर्दन कर उसका चूर्ण तैयार करे। इस प्रक्रिया द्वारा धातुओं का खूब चूर्ण हो जाता है। उक्त चूर्ण को १ दिन त्रिफला के क्वाथ में भावना देकर सुखा ले। उसके बाद स्वर्णभस्म की चौथी विधि के अनुसार उनकी भस्म तैयार कर १ बार गजपुट में पाक करने से ही उनका अति विशुद्ध निरुत्थ भस्म तैयार होता है।

इति रसचिकित्सा का प्रथम खण्ड समाप्त।

द्वितीय खण्ड

प्रथम अध्याय

मै शिवजी के पाद-पद्म में भक्तिपूर्वक प्रणिपात कर रस-चिकित्सा नामक ग्रन्थ का द्वितीयखण्ड (चिकित्सा खण्ड) प्रणयन करता हूँ। इसके पढ़ने से रसचिकित्सा सम्बन्ध मे सम्यक् ज्ञान उत्पन्न होगा।

ज्वर-चिकित्सा

नवज्वर—नव ज्वर में साधारणतः प्रथम सप्ताह मे पाचन प्रयोग निषिद्ध है। केवल दोषसंशोधक, आमरस-पाचक और कोष्ठशोधकवटिका सेवन करने के लिये देना चाहिये। रस-चिकित्सा मे दोष की सामता, निरामता, रोग, व्यक्ति, देश, काल किसी का भी विचार आवश्यक नही है। अतएव ज्वर ज्ञात होते ही विवेचनापूर्वक रसौषधि का प्रयोग करे।

नवज्वर में वर्जनीय—नवज्वर में रोगी स्नान, तैलादि मर्दन, स्नेहपान, वमन-विरेचनादि क्रिया, दिवानिद्रा, मैथुन, शीतल जलपान, क्रोध, प्रबल वायु, अन्नादि गुरु द्रव्य भोजन, एवं कषाय रस सेवन न करे।

नवज्वर में पथ्य—नवज्वर की प्रथम अवस्था में रोगी, निर्वात गृह में रहे, वायु की आवश्यकता होने पर पङ्खे से हवा करे; उसके द्वारा तृष्णा, पसीना, मूर्च्छा और श्रमनाश होता है। तालपत्र के पङ्खे की हवा त्रिदोषनाशक है। वांस के वने हुए पंखे की वायु गर्म और रक्तपित्त-प्रवर्त्तक है, चॅवर, मयूर पुच्छ, वस्त्र और वेत के वने हुए पङ्खे की वायु दोषनाशक, स्निग्ध और हृद्य है।

नव-ज्वरी गर्म और मोटा वस्त्र ओढ़ कर लेटा रहे। प्यास लगने पर साधारणतः गरम जल पीवे। वात ज्वर, कफ ज्वर, वा वात और कफ दोनों से उत्पन्न ज्वर में गरम जल पीना चाहिये। मद्यपान से वा पित्त से उत्पन्न ज्वर मे गर्म जल ठंढा करके पीवे। गरम और गरम करके शीतल किया हुआ जल ये

अग्नि के उद्दीपक, रसके पाचनकर्ता, ज्वरनाशक, स्रोतों के विशेष शोधन करने वाले, बलकारक, रुचिप्रद, पसीना लाने वाले और मङ्गलदायक हैं। नव ज्वर में पहले उपवास करे किन्तु धातुक्षय-जनित अथवा राजयक्ष्मा से उत्पन्न ज्वर, वातज्वर, भयज्वर, क्रोधज्वर, कामज्वर, शोकज्वर और श्रमज्वर में उपवास नहीं करना चाहिये। वायुप्रधान-धातु, क्षुधातुर, तृष्णार्त, मुखशोष युक्त, भ्रमयुक्त, शिशु, वृद्ध, गर्भिणी स्त्री और दुर्बल मनुष्यों को उपवास वर्जित है। जिससे रोगी का वल न घटे इस विषय में विचार रख कर उपवास करावे। क्योंकि वल ही आरोग्य का मूल कारण है। नव ज्वर मे दोष और अग्नि यथास्थान में और यथापरिमाण में नही रहते, अतएव उस अवस्था में उपवास कराने से दोष का परिपाक, ज्वर का ह्रास, अग्नि की दीप्ति, आहार की आकांक्षा, रुचि और शरीर की लघुता सम्पादित होती है। नव ज्वर मे वमन निषिद्ध है किन्तु तुरन्त किये हुए भोजन के वाद और अत्यन्त तृप्तिजनक स्निग्ध भोजनादि के वाद ज्वर होने से रोगी यदि वमन योग्य (गर्भिण्यादि से भिन्न) हो तो वमन कराना कर्त्तव्य है।

वातज्वर-चिकित्सा

ज्वरधूमकेतु—यह वातज्वर की एक वहुत उत्तम औषध है। शुद्ध किया हुआ पारा, गन्धक, हिङ्गुल और समुद्रफेन समभाग में लेकर एक प्रहर तक आदी के रस में घोंटकर दो रत्ती के प्रमाण गोलियां वनावे। यह गोली अदरक के रस और मधु के साथ प्रातः, मध्याह्न और सन्ध्या मे सेवन करने से ३ दिन में वातज और अन्यान्य नव ज्वर निश्चय दूर होते हैं।

ज्वरगजहरिरस—हिङ्गुल, अभ्र, पारद और गन्धक प्रत्येक समभाग, ये सब एकत्र एक प्रहर तक घोंटकर चूर्ण कर रख देवे। यह चूर्ण दो रत्ती प्रमाण अदरक के रस और मधु के साथ ३ वार सेवन करने से एक दिन में ही ज्वर वन्द हो जाता है। इस औषध सेवन के वाद यदि दाह हो तो दूध वा चीनी का शर्वत पान करे।

पित्तज्वर-चिकित्सा

नवज्वरेभाङ्कुश—सोहागा, पारा, गन्धक और हरिताल समभाग में लेकर मर्दन करे, फिर रोहू मछली के पित्त में दो दिन भावना देकर दो रत्ती

प्रमाण गोली बनावे। इस गोली के सेवन से थोड़ी देर में पसीना आकर नवज्वर शान्त होता है। जो ज्वर शान्त न होता हो, वह भी इस वटी के सेवन से निश्चय ही दूर होता है। ज्वर छूट जाने के बाद, दाह, सिर चकराना आदि उपसर्ग उपस्थित हो तो थोड़ी सी छाछ चीनी मिलाकर सेवन करे। यह औषध प्रत्यक्ष फलप्रद है।

त्रिपुरारि रस—हिङ्गुलु से निकाला हुआ पारा, गन्धक, ताम्र, लौह, अभ्र और विष प्रत्येक समान भाग लेकर उसमें पारे से आधा रौप्य मिलावे, फिर आदी के रस में उत्तम रूप से मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण गोली बनावे। चीनी मधु अथवा आदी के रस के साथ यह औषध सेवन करने से सब तरह का ज्वर विनष्ट होता है, यह परीक्षित है।

कफज्वर-चिकित्सा

स्वच्छन्दभैरव—ताम्र भस्म और मीठा विष समभाग मे लेकर धतूरे के पत्तों के रस में सौ बार भावना देकर १ रत्ती प्रमाण गोली बनावे। यह आदी के रस, चीनी और सेधा नमक के साथ सेवन करने से कफज्वर और अन्यान्य सब प्रकार के ज्वर निवारित होते हैं। औषध तैयार करते समय सौ बार से कम भावना होने पर भी औषध कार्यकर होगी। इस औषध के सेवन से ज्वर छूटने पर रोगी यदि अस्वस्थता, बेचैनी और चञ्चलता प्रकाश करे तो मट्ठा (छाछ) दाख और चीनी आदि पथ्य देवे।

पर्पटी रस—शोधित पारा १ भाग, गन्धक २ भाग एकत्र कज्जली कर भीमराज (भांगरा) अथवा आदी के रस मे मर्दन करे, फिर मिलित पारे और गन्धक के चौथाई परिमाण जारित ताम्र और लौह भस्म लेकर उक्त कज्जली सहित एकत्र लोहपात्र में पाक करे और लोहे के दण्ड से बार बार चलाता जाय। जब गल कर अच्छी तरह मिल जाय तब गोबर के ऊपर केले का पत्ता बिछा कर उसके ऊपर उसे ढाल दे और दूसरा पत्ता लेकर उससे गोबर की पोटली बनाकर उससे दाब कर रख दे और विधिवत् पर्पटी तैयार करे। फिर उस पर्पटी को खरल में चूर्णित कर निर्गुण्डी के पत्तों के रस में एक दिन भावना दे। अनन्तर जयन्ती, त्रिफला, घृतकुमारी, भारंगी, अडूसा, त्रिकटु, भृङ्गराज, चीते की जड़ और मुण्डी के यथासम्भव रस वा क्वाथ मे ७ दिन भावना देकर कोयलो पर

सुखालें। इसे दो रत्ती प्रमाण सेवन करने से श्लैष्मिक (कफ) ज्वर समूल नष्ट होता है। अनुपान–हरीतकी, सोंठ और गिलोय का क्वाथ अथवा पीपल का चूर्ण और मधु।

वात-पित्तज्वर-चिकित्सा

नवज्वरमुरारि—पारा, गन्धक और मनःशिला तीनों समान भाग लेकर कांकरौल के पत्ते के रस के साथ मर्दन कर सुखाले। यह औषध दो रत्तो मात्रा में चीनी के साथ सेवन कर चीनी मिले हुए कांटानट का रस अनुपान करे। इसके द्वारा–वात पित्तज नवज्वर शीघ्र नष्ट होता है।

वातपित्तान्तक रस—शोधित पारा, गन्धक, अभ्र, मोथा, ताम्र, लौह, सोनामाखी और हरिताल, इन सबको समभाग में एकत्र मर्दन करे एवं मुलहठी, मुनक्का, गिलोय, आमला, सतावर और विदारीकन्द इनके प्रत्येक के यथासमय रस वा क्वाथ में एक दिन भावना देकर उर्द बराबर गोली बनावे। अनुपान-चीनी और मधु। इससे वातपैत्तिकज्वर, क्षय, दाह, तृष्णा, भ्रम और शोथ शान्त होता है। इस औषध के सेवन के बाद शर्करा मिला दूध अथवा मुलहठी के क्वाथ में चीनी डालकर पान करे।

वात-कफज्वर-चिकित्सा

महाज्वराङ्कुश—शोधित पारा १ भाग, मीठा विष १ भाग, गन्धक १ भाग, धतूरे का वीज ३ भाग, त्रिकटु ४ भाग, ये सब एकत्र मिलाकर आदी के अथवा जम्हीरी के रस में मर्दन कर दो रत्ती प्रमाण गोली बनावे। अनुपान—आदी का रस वा जम्हीरी का रस। इस औषध के सेवन से २–३ दिन मे बातकफ ज्वर निवृत्त होता है।

कस्तूरीभैरव—हिङ्गुल, विष, सुहागे का फूला, जयन्ती, जायफल, मरिच, पीपल और कस्तूरी प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर जल के साथ मर्दन कर दो रत्ती प्रमाण गोली बनावे। यह वातश्लेष्मजज्वर–नाशक है।

पित्तश्लेष्मज्वर-चिकित्सा

चन्द्रशेखर रस—पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, सोहागे का फूला २ भाग, मरिच २ भाग और सब के समान चीनी अथवा मैनशिल एकत्र मिलावे। रोहू मछली के पित्त में तीन दिन भावना देकर मर्दन कर दो रत्ती प्रमाण गोली

वनावे। अनुपान-आदी का रस। औषध सेवन के वाद शीतल जल पान करावे। यह वटिका ३ दिन में अतिकठिन पित्तकफज्वर निवारण करे।

रत्नगिरि रस—पारा १ भाग, गन्धक १ भाग, अभ्र १ भाग, स्वर्ण १ भाग, लौह $\frac{1}{2}$ भाग, वैक्रान्त चौथाई $\frac{1}{4}$ भाग, इन द्रव्यों को भागरे के रस में घोटकर पर्पटी की तरह पाक करे, फिर पर्पटी का चूर्णकर उस मे क्रम से सहजना, अड़्सा, सम्हालू, वच, चीते की जड़, भांगरा, भूकदम्व (गोरखमुण्डी), कटेरी, गिलोय, जयन्ती, अगस्त्य, ब्राह्मी, चिरायता और घृतकुमारी इन द्रव्यो के रस वा क्वाथ की ३ बार भावना दें। फिर मूषा में बन्द कर वालुकायन्त्र मे लघुपुट से उसे पकावे। यह औषध २ रत्ती मात्रा मे मधु और पीपल चूर्ण एवं धनिये के क्वाथ आदि अनुपान के साथ प्रयोग करने से पित्तश्लेष्मज्वर निवृत्त करती है।

द्वितीय अध्याय

सन्निपातज्वर-चिकित्सा

सव प्रकार के ज्वर की चिकित्साओं में सन्निपातज्वर की चिकित्सा अत्यन्त कठिन है। इस रोग की चिकित्सा करते समय चिकित्सक कभी शीघ्रता और व्याकुलता प्रगट न करे। रोग की प्रवलता और उपद्रव की अधिकता देखकर अत्यन्त उग्रवीर्य वा विषाक्त औषधियां सब से पहले प्रयोग करना उचित नही। प्रथमतः जिससे आम और कफ का परिपाक हो उस पर सब से पहले चिकित्सक को लक्ष्य रखना चाहिये। इसके लिये दोष-परिपाचक रसौषध और लङ्घन की व्यवस्था करे। आम और कफ की शान्ति होने पर वायु और पित्त की शान्ति की चेष्टा करे, जव तक दोष रोगी के शरीर में प्रबल भाव से मौजूद रहेंगे, तब तक रोगी उपवान सहन कर सकेगा, दोष के क्षय होने पर रोगी फिर उपबास सहन नही कर सकेगा।

पूर्व में कहा है कि सन्निपातज्वर में साधारणतः उपद्रवों की प्रबलता हुआ करती है, अतएव चिकित्सक प्रथम मूलरोग अर्थात् त्रिदोष का नाशक विशेष भाव से आम और कफनाशक दो-एक औषध प्रयोग करके जिस तरह उपद्रव का नाश हो उधर लक्ष्य रक्खें। उपद्रव घट जाने से क्रमशः मूलरोग की भी शान्ति होगी।

त्रिनेत्ररस—शोधित पारद, गन्धक और ताम्रपत्र ये तीन द्रव्य समभाग लेकर उन तीनों के तुल्य परिमाण गोदुग्ध में उन्हें तेज धूप में मर्दन करे। फिर निर्गुण्डी और सहजना के रस मे एक दिन घोटे। इसके बाद उसे गोलाकार और मूषागत कर वालुकायन्त्र में ३ प्रहर तक पकावे, पकाने के बाद खरल में चूर्ण करे फिर उसका ८ वा अंश $\frac{1}{8}$ मीठा विष डालकर उसके साथ मर्दन करे। पञ्चकोल कषाय वा बकरी के दूध के साथ यह रस दो रत्ती परिमाण सेव्य है। त्रिनेत्ररस सेवन से सन्निपातज्वर निश्चय ही शीघ्र नष्ट होता है।

बृहत् कस्तूरीभैरवरस—वङ्ग, खर्पर, स्वर्ण, कस्तूरी और रौप्य प्रत्येक २ तोला, लौह ८ तोला, सोनामाखी, लवङ्ग, जायफल प्रत्येक ४ तोला। ये द्रव्य एकत्र कर द्रोणपुष्पी (गूमा) के रस और पान के रस मे ७-७ दिन भावना दे। फिर उसके साथ कपूर और त्रिकटुचूर्ण ४-४ तोले मिला कर एक रत्ती प्रमाण गोलियां तैयार करे। यह वातोल्वण सन्निपातज्वर की उत्कृष्ट औषध है।

सन्निपातसूर्यरस—सन्निपातज्वर में रोगी को तन्द्रा, प्रलाप, संज्ञा-हीनता, छाती और पसली मे दर्द और मत्तता इत्यादि उपद्रव रहने पर यह औषध सेवन करावे। पारद १ तोला और गन्धक २ तोला एकत्र कर कज्जली करे, अनन्तर लाल चीते के रस, आदी के रस और निर्गुण्डी के रस मे ७-७ वार यथाक्रम से भावना दे। भावना समाप्त होने पर उसके साथ विष ८ तोला, हिङ्गुल ८ तोला और रससिन्दूर ८ तोला मिलावे, समस्त औषध एकत्र मर्दन कर रोहू मछली के पित्त में फिर एक वार भावना दे। १ रत्ती की वटी बनावे।

चतुर्भुजरस—स्वर्णसिन्दूर २ तोला, स्वर्ण १ तोला, कस्तूरी १ तोला और हरिताल १ तोला एकत्र कर घृतकुमारी के रस में मर्दित करे। २ रत्ती की वटी बनावे। यह औषध एरण्ड के पत्ते में लपेटकर धान्य की राशि में ३ दिन रखते हैं, सन्निपातज्वर मे रोगी की मूर्च्छा, गात्रकम्प, सारे शरीर में वेदना, शैत्यबोध, प्रलाप आदि अनेक वायु विकारो में यह विशेष उपयोगी है। अनुपान—ताड़ की शाखा का रस और मधु।

महालक्ष्मीविलास—अभ्र ८ तोला, रस २ तोला, गन्धक २ तोला, वङ्ग २ तोला, रौप्य १ तोला, हरिताल १ तोला, ताम्र आधा तोला, कपूर २ तोला,

जातीफल २ तोला, जैत्री २ तोला, बीजताडक बीज २ तोला, धतूरे के बीज २ तोला, स्वर्ण १ तोला ये सब द्रव्य एकत्र कर पान के रस मे मर्दन करे। वटी की मात्रा २ रत्ती; अनुपान—आदी का रस वा पान का रस और मधु। श्लेष्मोल्वण सन्निपात ज्वर मे यह औषध विशेष उपयोगी है।

वृहत् सूचिकाभरण रस—रस, गन्धक, सीसा, अभ्र, विष और काले सर्प का विष, इनमे से प्रत्येक समभाव से लेकर जल मे मर्दन करे, अनन्तर रोहू मछली का पित्त, बराह का पित्त, महिषपित्त, वकरी का पित्त और मयूरपित्त, इन सबों के द्वारा पृथक् पृथक् ७ वार भावना देवे। वटी—सरसो प्रमाण। अनुपान—डाब का जल वा ताड़ की शाखा का रस। सन्निपात ज्वर की अन्तिम अवस्था मे रोगी की संज्ञा और नाड़ी लोप होने पर एवं अन्य किसी औषध का फल न होने पर इस औषध का प्रयोग करे। यदि एक वटी का असर न हो तो जब तक नासा-रन्ध्र की वायु गरम गरम प्रवाहित और नाड़ी उष्ण न हो तब तक आधे आधे घण्टे के अन्तर से एक बटी सेवन करावे। औषध की क्रिया का प्रकाश (असर) होते ही तुरन्त रोगी के माथे पर तिल का तैल मर्दन करे और प्रचुर शीतल जल की धारा देवे। नही तो रोगी का जीवन संशय युक्त हो सकता है। शिशु, वृद्ध और गर्भिणी को यह औषध नहीं देना चाहिये।

—oo:o:oo—

तृतीय अध्याय

विषमज्वर-चिकित्सा

सभी प्रकार के विषमज्वर सान्निपातिक हैं अत एव इन मे जो दोष प्रवल हो, उस दोष की ही चिकित्सा करनी चाहिये।

त्रिपुरारि रस—हिङ्गुल से निकाला हुआ पारा, गन्धक, ताम्र, लौह, अभ्र और विष प्रत्येक सम परिमाण में लेकर उस मे पारे का आधा भाग रौप्य मिलाकर आदी के रस में मर्दन कर २ रत्ती मात्रा से वटिका बनावे। अनुपान—चीनी मधु वा आदी का रस। इसके द्वारा ८ प्रकार का ज्वर, प्लीहा, उदर, शोथ और अतीसार शान्त होता है। यह औषध प्रत्यक्ष फलदायक है।

ज्वराशनिलौह—पारद १ तोला, गन्धक १ तोला, सैन्धव १ तोला, विष १ तोला, ताम्र १ तोला, लौह ५ तोला और अभ्र ५ तोला। ये समस्त द्रव्य

एकत्र कर लौहपात्र में स्थापन कर निर्गुण्डी के पत्तों के रस के साथ लौहदण्ड से मर्दन करे फिर मरिच का चूर्ण १ तोला इस के साथ मिला कर १ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। यह वटी उपयुक्त अनुपान के साथ सेवन करने से सब प्रकार का विषमज्वर, यकृत और प्लीहा वृद्धि शान्त होती है।

पुटपाक-विषमज्वरान्तक-लौह—हिङ्गुल से निकाला हुआ पारा और शोधित गन्धक सम भाग में लेकर कज्जली करे, फिर उसके द्वारा पर्पटी पाक करे, फिर वह पर्पटी २ तोला, स्वर्ण ३ माशे, लौह २ तोला, अभ्र २ तोला, ताम्र २ तोला, वङ्ग ६ माशे, प्रवाल ६ माशे, गेरू ६ माशे, मुक्ता ३ माशे, शङ्खभस्म ३ माशे, सीप की भस्म ३ माशे, ये सब एकत्र कर जल मे मर्दन कर २ सीपियों मे बन्द कर मिट्टी से लेप करे फिर मृदु पुट से पाक करे। जब गन्धक की गन्ध न आवे, तब पाक पूर्ण हुआ समझ ले। वातपित्त वा पित्तकफ प्रधान विषमज्वर में यह औषध सेवन करावे। ज्वर मे उदरामय, ग्रहणी, शोथ प्लीहा और यकृत की वृद्धि आदि में यह अत्यन्त उपकारी है। सतत, सन्तत, तृतीयक, चातुर्थक ज्वर अल्पकाल स्थायी होते हैं, अतः इनके लिये यह औषध सेव्य है। अनुपान—उदरामय हो तो जीरा चूर्ण और मधु एवं प्लीहा बढ़ने पर पीपल, हींग और सेंधानमक।

विषमज्वरान्तक लौह—पारा २ तोला, गन्धक २ तोला, ताम्र १ तोला, सोनामाखी १ तोला, लौह ३ तोला एकत्र मर्दन कर, जयन्तीपत्र, तालमखाना का क्वाथ, अडूसे के पत्ते, आदी और पान के रस में क्रम से ५-५ भावना देकर २ रत्ती मात्रा मे वटी तैयार करे। और द्वितीयक, तृतीयक और चातुर्थक ज्वर मे वात-पित्त वा पित्त-कफ प्रवल रहने पर निराम अवस्था में यह औषध-प्रयोग करे। प्लीहा और यकृत बढ़ने और सूखी खांसी होने मे यह औषध उपकारी है। अनुपान—पीपल का चूर्ण और मधु।

बृहत् सर्वज्वरहर लौह—पारद, गन्धक, ताम्र, अभ्र, सोनामाखी, स्वर्ण, रौप्य और हरिताल ये द्रव्य प्रत्येक २-२ तोला, एवं लौह ८ तोला ये सब एकत्र मर्दन कर करेला के पत्तो के रस, दशमूल के क्वाथ, पितपापड़े के रस, त्रिफला के क्वाथ, गिलोय के रस, पान के रस, मकोय के रस, निर्गुण्डी के रस, पुनर्नवा के रस और आदी के रस इन द्रव्यो में यथाक्रम से

७-७ भावना दें। १ वटी २ रत्ती प्रमाण। वायु और पित्त प्रधान, सतत, द्वितीयक, तृतीयक और चातुर्थक ज्वर वा मलेरिया ज्वर में निराम अवस्था में यह औषध सेव्य है। पुरानी प्लीहा, यकृत्, शोथ, उदरामय, उत्कासी वर्तमान रहने से यह औषध विशेष फलप्रद है। अनुपान-पितपापड़े का रस और मधु वा निर्गुण्डी के पत्तो का रस और मधु, प्लीहा वा यकृत संयुक्त ज्वर मे पीपल चूर्ण और मधु, उदरामय युक्त ज्वर मे काले जीरे का चूर्ण और मधु।

बृहत् विषमज्वरान्तक रस—पारा, गन्धक, रससिन्दूर, स्वर्ण, रौप्य लौह, अभ्र, ताम्र, हरिताल, वङ्ग, मुक्ता, प्रवाल और सोनामाखी ये सब द्रव्य सम भाग मे लेकर मर्दन करे। फिर सम्हालू के पत्तो का रस, पान का रस, मकोय का रस, पित्तपापड़े का रस, पुनर्नवा का रस, पान का रस, गिलोय का रस, अड़ूसे के पत्तो का रस, भांगरे का रस और काला भांगरे के रस में यथाक्रम से ३-३ बार भावना देकर २ रत्ती प्रमाण वटी बनावें। सतत, तृतीयक, चातुर्थक एवं चातुर्थक विपर्यय आदि ज्वर में आमरस की परिपाक अवस्था मे वा किञ्चित् आम रस वर्तमान रहने पर यह औषध सेव्य है। अनुपान—पीपल का चूर्ण और मधु।

महाज्वराङ्कुश—पारा, गन्धक, ताम्र, हिङ्गुल, हरिताल, बङ्ग, लौह, सोनामाखी, खर्पर, मैनशिल, अभ्र, गेरू, सोहागे की खील और दन्ती के बीज ये सब द्रव्य सम भाग लेकर मर्दन करे। फिर नीबू के रस, भङ्ग के पत्तो का क्काथ, तुलसी के पत्तो के रस, कच्ची इमली के रस, इन प्रत्येक के द्वारा ३-३ बार भावना देकर २ रत्ती प्रमाण वटी बनावे। इसके सेवन से अन्येद्युष्क, तृतीयक, तृतीयक-विपर्यय, चातुर्थक ज्वर एवं मलेरिया ज्वर में, आम रस की बिलकुल परिपाक अवस्था में उक्त औषध सेव्य है। प्लीहा और यकृत की वृद्धि और शरीर की कृशता दीखने पर यह औषध अतीव फलप्रद है। अनुपान—स्याह जीरे का चूर्ण और मधु अथवा पीपल चूर्ण और मधु।

श्रीजयमङ्गल रस—हिङ्गुलु से निकला हुआ पारा, गन्धक आंवलासार, सोहागा भुना हुआ, ताम्र, वङ्ग, स्वर्णमाक्षिक, सेंधानमक, मरिच, लौह और रौप्य प्रत्येक का एक-एक भाग और स्वर्ण २ भाग एकत्र मर्दन करे; इस के बाद धतूरे के पत्तों का रस, निर्गुण्डी के पत्तों का रस, दशमूल का क्काथ और चिरायते का

क्राथ इन प्रत्येक के द्वारा ३-३ वार भावना देकर ३ रत्ती प्रमाण वटी बनावे। सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक, चातुर्थिक, एवं रक्तगत, मेदोगत आदि धातुगत ज्वर में निराम अवस्था में यह औषध सेव्य है। मलेरिया ज्वर और साथ ही प्रमेह दोष रहने पर यह औषध अतिशय उपकारी है। अनुपान—जीरे का चूर्ण और मधु।

ज्वरभैरव—स्वर्ण, ताम्र, रौप्य, सीसक, पारा, गन्धक, सोनामाखी, सादा दारमुज और मनःशिल, ये द्रव्य सम परिमाण में लेकर आमरूल (खट्टाशाक विशेष) शाक के रस में मर्दन करे, फिर मूषा में स्थापन कर, लघुपुट में पाक करे। वटी २ रत्ती प्रमाण। अन्येद्युष्क अन्येद्युष्क-विपर्यय, तृतीयक, तृतीयक-विपर्यय और चातुर्थक-विपर्यय ज्वर में और मलेरिया में ज्वर वेग तीव्र होने पर यह औषध सेवनीय है। अनुपान—मधु; प्लीहा और यकृत विद्यमान रहने पर पिप्पल चूर्ण और मधु।

चतुर्थ अध्याय

रसद्वारा ज्वर चिकित्सा के विशेष सङ्केत

वातज्वर में—पारद, गन्धक और मीठा विष विशेष फलप्रद है। कोई औषध तैयार न हो तो केवल इन ३ द्रव्यों को एकत्र कर उपयुक्त मात्रा में उपयुक्त अनुपान योग से प्रयोग करने पर वातज्वर आरोग्य होता है।

पित्तज्वर में—हिङ्गुल सर्वश्रेष्ठ औषध है। परन्तु अति शिशु, अति वृद्ध और पूर्णगर्भा स्त्री को हिङ्गुल देना अनुचित है। पित्तनाशक अनुपान के साथ केवल शोधित हिङ्गुल प्रयोग करने से पित्तज्वर और सब प्रकार की पित्तज व्याधि नष्ट होती हैं।

श्लेष्मज्वर में—पारद, गन्धक, स्वर्ण और ताम्र उत्कृष्ट औषध है। कज्जली संयोग से स्वर्ण और ताम्र भस्म श्लेष्मानाशक हैं, अनुपान योग से प्रयोग करने पर सब प्रकार के श्लेष्मज रोग नष्ट हो जाते हैं।

वातपित्तज्वर में—हिङ्गुल, गन्धक, मीठा विष और पारा उत्कृष्ट औषध है।

पित्तकफज्वर में—हरिताल और ताम्र महौषध है। केवल हरिताल भस्म अनुपान के साथ प्रयोग करने से दुःसाध्य पित्तश्लेष्मज्वर शीघ्र नष्ट होते हैं।

वातश्लेष्मज्वर में—पारा, गन्धक, ताम्र, कस्तूरी और स्वर्ण महौषध है।

सन्निपातज्वर में—स्वर्णभस्म, हरितालभस्म, कस्तूरी, दारमुज, मीठा विष और ताम्रभस्म उपयुक्त अनुपान से प्रयोग करने पर विशेष उपकारक होता है।

विषमज्वर में—सेंको विष, तूतिया की भस्म, ताम्रभस्म, हरिताल भस्म, लौहभस्म, सीसक भस्म उपयुक्त अनुपान योग से उत्कृष्ट औषध है।

जीर्णज्वर में—लौह, ताम्र और हरिताल भस्म का उपयुक्त अनुपान के साथ सेवन से विशेष उपकार होता है।

क्षयजज्वर में—स्वर्णभस्म, अभ्रभस्म, लौहभस्म, हरितालभस्म, कौड़ी भस्म, शङ्खभस्म, मुक्ताभस्म और प्रवालभस्म, उपयुक्त अनुपान से व्यवहार करे।

मेहजज्वर में—वङ्गभस्म, दस्ताभस्म, सीसकभस्म, ताम्रभस्म और स्वर्ण भस्म प्रयोग करे।

प्लीहा और यकृत् संयुक्त ज्वर में—लौहभस्म, ताम्रभस्म और हरितालभस्म और सेंको विषभस्म का व्यवहार करे।

शोथज्वर में—पारद और गन्धक का प्रयोग करे। पर्पटीरूप मे व्यवहार करने से अव्यर्थ फलप्रद है।

जब सब प्रकार के शास्त्रीय औषध प्रयोग और पूर्वाचार्यों के मतानुसार चिकित्सा से भी ज्वर को कुछ आराम न हो, तब निम्नलिखित उपायो मे से कोई एक अवलम्बन करने से अवश्य ही ज्वर शान्त होता है।

(१) हिङ्गुल से निकाला हुआ पारा ८ तोला, गन्धक ८ तोला, एकत्र कज्जली कर बेर की लकड़ी के कोयलों पर पर्पटी बनाने की रीति से पर्पटी बनावे। यह पर्पटी २ रत्ती, जीरा पिसा हुआ और एक रत्ती हींग अनुपान से सेवन करे। प्रथम यह पर्पटी २ रत्ती से आरम्भ कर क्रमशः १० रत्ती तक बढ़ावे। यह औषध १० रत्ती व्यवहार करने पर भी यदि ज्वर न छोड़े तो जब तक ज्वर त्याग न हो, तब तक प्रतिदिन १० रत्ती मात्रा रोगी सेवन करे। औषध सेवन के दिनों मे रोगी जल और नमक त्याग कर केवल दुग्ध और अन्न अथवा केवल निर्जल दुग्ध पथ्य करे। असह्य प्यास होने पर डाब का जल दिया जा सकता है। इस औषध के सेवन-दिनों में स्नान निषिद्ध है। मस्तिष्क गरम होने पर शीतल जल

द्वारा मस्तक धो सकते हैं। इस औषध के व्यवहार में प्रथम रोगी कुछ दुर्बल हो सकता है, परन्तु उससे कुछ चिन्ता नही करनी चहिये। रोगी क्रमशः रोगमुक्त होने पर सबल होगा। इसके द्वारा यकृत्, प्लीहा, उदरामय, शोथ, क्षय, उदर-शूल, विषम ज्वर आदि संयुक्त ज्वर ४।५ सप्ताह में निरामय होते देखा गया है।

(२) हरिताल भस्म ½ रत्ती प्रतिदिन प्रातः गाय के घी के साथ सेवन करनी चाहिये। इस औषध के सेवन काल में रोगी को प्रथम थोड़ा थोड़ा कर प्रारम्भ कर प्रतिदिन ½ पाव से पावभर तक शुद्ध गाय का घी, भात, तरकारी, पूरी इत्यादि के साथ रखना चाहिये। रोगी प्रतिदिन शीतल जल से स्नान करे, आवश्यकता होने पर दो बार भी स्नान कर सकता है, मांस-मछली खाना निषिद्ध है। यह औषध दृष्ट-फल है।

(३) चौथाई रत्ती परिमाण सैको विष भस्म उक्त नियम से सेवन करने पर भी उक्त फल पाया गया है। सैको विष की शोधन और भस्मीकरण प्रणाली हरिताल की तरह है।

(४) कज्जली योग से भस्मीकृत ताम्र का अमृतीकरण कर पर्पटी सेवन के नियम से १ रत्ती से आरम्भ कर प्रतिदिन १ रत्ती से बढ़ाकर १० रत्ती पर्यन्त सेवन करे। यह १० रत्ती मात्रा आरोग्य प्राप्त होने तक चालू रहे। आरोग्य देख पड़ने पर प्रतिदिन एक रत्ती कम करता रहे। अनुपान-त्रिकटुचूर्ण १० रत्ती, विडङ्ग चूर्ण १ रत्ती, यह औषध सेवन के लिये ताम्र-विशुद्ध नैपाली ताम्र होना चाहिये और यह कज्जली योग से भस्मीकृत और यथाविधि अमृतीकृत होना भी उचित है नहीं तो ताम्र-व्यवहार से वमन आदि अनेक रोग उत्पन्न कराके रोगी का अनिष्ट कर सकता है। अतएव चिकित्सक यह औषध बड़ी सावधानी से प्रयोग करें।

(५) रसचिकित्सा के प्रथमखण्ड मे, पारद प्रसङ्ग में कथित 'रसतालक' सब प्रकार ज्वर की महौषध है। जो ज्वर किसी औषध से दूर न हो उस ज्वर मे दीर्घकाल तक यह रसतालक आदी के रस और मधु सहित अथवा उपयुक्त अनुपान सहित व्यवहार किये जाने से ज्वर तो छूट ही जायगा परन्तु साथ ही सब उपसर्ग भी दूर होकर रोगी का शरीर सबल और कान्तियुक्त हो जायगा।

(६) शोधित वंशपत्र हरिताल उपयुक्त परिमाण में ग्रहण करे। उसके बाद उसे श्वेत अभ्र के मोटे पात्र से एक लोहे की कढ़ाई मे रखकर आवृत करे। उसके बाद उस कढ़ाई को चूल्हे पर चढ़ाकर नीचे अग्नि जलावे और उस अभ्रखण्ड के ऊपर एक भारी लोह रखकर ढक दे। आधे घण्टे तक अग्नि की गर्मी में रहने से हरिताल गल जायगा। तव उसे अग्नि पर से उतार कर अभ्र के पात्र को उठा लेने पर कढ़ाई के ऊपरीभाग में माणिक की सी आभा युक्त जो एक प्रकार का द्रव्य पाया जायगा उसे ग्रहण करे। यह द्रव्य दो रत्ती परिमाण में विशेष ज्वर की अवस्था में आदी के रस और मधु के साथ सेवन करने से नूतन-पुरातन सभी प्रकार के ज्वर का वेग बन्द होगा और उपयुक्त पथ्यभोजी होने से रोगी का शरीर नीरोग हो जायगा।

(७) **ज्वर में लौह प्रयोग**—सव प्रकार के ज्वर में, रक्तहीनता में, क्षय में, प्लीहा और यकृत के विकार में लौह महौषध है। जव नाना प्रकार के औषधों का प्रयोग करने पर भी ज्वर न छोड़े, तव कुछ दिन तक विशुद्ध लौहभस्म वा लौह घटित औषध उपयुक्त अनुपान से अवस्थानुसार व्यवस्था करने से अतिशय सुफल पाया गया है। विशेष कर क्षयज ज्वर में लौह प्रयोग से विशेष सुफल देखा गया है। किन्तु लौह अच्छी तरह शोधित और भस्मीकृत होना चाहिये। असम्यक् रूप से मारितलोह सेवन करने से बहुत कुफल होता है। धातु सम्यक् रूप से जीर्ण हुए बिना उसमे रोगनिवारक शक्ति उत्पन्न नहीं होती। अमारित धातु भक्षण करने से वायु वृद्धि होती है, और उससे उत्पन्न उपसर्ग लक्षित होते हैं। धातुओं में लोह अच्छी तरह भस्म कर लेने पर वह सुवर्ण, प्रवाल, मणि-मुक्तादि से भी चिकित्सा क्षेत्र में अधिकतर सुफल उत्पन्न करता है। कान्तलौह सवसे अधिकतर उपकारी और आश्चर्यवान होने पर भी वह सर्वत्र सुलभ नहीं है। उसके वदले विशुद्ध इस्पात व्यवहार करने से भी सुफल पाया गया है। रस-चिकित्सा प्रथम खण्ड मे लौह का शोधन, जारण और मारण विस्तारपूर्वक वर्णित होने पर भी प्रसङ्ग क्रम से यहां लौहमारण विशद भाव से वर्णित हुआ है।

शोधन और भस्म करने के लिये एक बार में आधा सेर परिमित लौह ग्रहण करे, इससे कम लौह लेने से भस्मीकरण विषय मे अच्छा फल न होगा। लौह शोधन में गोमूत्र, त्रिफला का क्वाथ और केले की जड़ का रस अत्यन्त

आवश्यक हैं। लौह को प्रचण्ड अग्नि के उत्ताप से गला कर केला की जड़ के रस में डाले। ७ बार इस तरह करने से लौह विशोधित होता है। लोहे को थोड़ा सा गरम कर केले की जड़ के रस में डाल देने से वह शोधित न होगा, उसको इतना तपाये कि वह गल जाय। कोई कोई लोहे के छोटे-छोटे पत्र कर उसे गोमूत्र में वहुत दिन भिगो रखते हैं; इससे लोहा जीर्ण हो जाता है। इसके वाद त्रिफला के क्काथ में बारम्बार मर्दन कर पुटपाक करते रहते हैं। परन्तु कितना लोहा कितने क्काथ में शोधित और मर्दित होने से लौह प्रयोग में सफलता होगी वह सवसे पहले जानना आवश्यक है। आधसेर परिमित लौह त्रिफला के क्काथ द्वारा शोधित करने के लिये, दो सेर त्रिफला ग्रहण करे, उसको १६ सेर जल में औटा कर जव ४ सेर शेष रहे तब उतार ले। इसके बाद आधसेर लौह को ७ बार अग्नि ताप से तपाकर ७ बार त्रिफला के क्काथ में डाले, उससे लौह सर्वदोष-विमुक्त होगा, इसी तरह लौह शोधित होने पर उसे चूर्ण कर ले। कुछ दिन गोमूत्र में भिगोकर, इमामदिस्ता मे चूर्णित कर लेने से उत्तम लौह चूर्ण अवश्य हो जाता है, गोमूत्र मे भिगोने से पूर्व लोहे के छोटे छोटे पत्र कर लेना आवश्यक है। इस भाव से चूर्ण किया हुआ लौह २ भाग, पारा १ भाग और गन्धक २ भाग घृतकुमारी के रस में घोंटकर रस-चिकित्सा के प्रथमखण्डोक्त विधि के अनुसार भस्म करने से उसके द्वारा शास्त्रोक्त फल पाया जायगा।

७ लौह की भानुपाक-विधि

शोधित लौह को इमामदिस्ता में चूर्ण कर निर्मल जल में बारम्बार धोकर सब तरह उसका मल दूर कर ले फिर उसे प्रचण्ड धूप मे अच्छी तरह सुखा ले। उसके वाद, जितने लोह का भानुपाक करना हो उसके समान त्रिफला लेकर उसे दूने जल में औटाकर चौथाई जल शेष रहने पर उतार ले। इस त्रिफला के क्काथ में उक्त लौह को उत्तम रूप से ३ दिन भिगोकर धूप मे सुखा ले। किसी किसी के मत से ७ दिन धूप में सुखाना ठीक होता है।

८ लौह की स्थालीपाक विधि

लौह का भानुपाक समाप्त होने पर स्थालीपाक करना चाहिये, स्थालीपाक के लिये क्काथ तैयार करने के लिये जितना लौह हो उसका तीन गुना त्रिफला ले

और १६ गुने जल में सिद्ध कर अष्टमांश रहने पर उतार कर छान ले। उसके वाद मजबूत लोहे की कढ़ाही मे उक्त क्काथ और लौह लकड़ी की अग्नि से पकावे। उसके बाद रस जल जाने पर उतार ले। इस तरह लौह का स्थालीपाक समाप्त होगा, फिर उसको जल मे धोकर धूप मे सुखा लेना चाहिये।

लौह की पुटपाकविधि

स्थालीपाक के बाद लोहे का पुटपाक करे, जितना अधिक पुट दिया जायगा, उतना ही लोहे का गुण अधिक होगा। जिस जिस रोग के विनाश के लिये लोहे की भस्म तैयार करनी हो, उस उस रोगनाशक द्रव्य के क्काथ और स्वरस द्वारा लोह को उत्तम रूप से भावित कर पुट देवे। इससे लोह अधिक गुण वाला हो जाता है।

पुटपाक के पूर्व लोह को कुछ द्रव्यो के क्काथ या स्वरस में मर्दन कर लेने से, वह लौह विशेष फलप्रद होता है। निम्नलिखित द्रव्य लोह-मर्दन के हैं अर्थात् इनके रस अथवा क्काथ मे लोह को मर्दन करने से बहुत जल्द लौह जारित होता है। निसोथ, त्रिफला, दन्ती, कुटकी, तालमूली, बीजताड़क, विछुटी लता, अडूसे के पत्ते, चीता, अदरक, विडङ्ग, भृङ्गराज, भेला, सोठ, दाडिमपत्र, सतावर, पुनर्नवा, कुडालिया, कान्तक्रामक, मोथा, जमीकंद, गिलोय, खुलकुडि, हस्तिकर्ण पलास, हाड-फोढ़ा, कशेरू, मान, खारकोण, और गोजियाशाक ये लोहमारक है। इन्हें त्रिफलादि गण कहते हैं। वायुजनित रोग विनष्ट करने के लिये एरण्डादिगण द्वारा, एवं श्लेष्माजनित रोग नष्ट करने के लिये शृङ्गवेरादिगण द्वारा, वासश्लेष्माजनित रोग नष्ट करने के लिये गोक्षुरादिगण द्वारा, पित्तश्लेष्माजनित रोग नष्ट करने के लिये पटोलादिगण और त्रिदोषजनित रोग नष्ट करने के लिये किंशुकादिगण द्वारा लौह का पुटपाक करते हैं।

इसके वाद पुटपाक गणों के नाम नीचे लिखते हैं:—

एरण्डादिगण—एरण्ड की जड़, अनन्तमूल, द्राक्षा, शिरीष, प्रसारिणी, मापपर्णी, मुद्गपर्णी, विदारीकंद और केतकी। इनको एरण्डादिगण कहते हैं, इनके स्वरस द्वारा लौह मर्दित होने से यह लौह वायुजनित सव रोग विनष्ट करता है।

किरातादि गण—चिरायता, गिलोय, नीमछाल, धनिया, सतावरि परवर, लालचन्दन, पद्मशाल्मली, गूलर, मुलहठी ये सव पित्तरोगनाशक है।

शृङ्गवेरादिगण—अदरक, निर्गुण्डी, इन्द्रजौ, नाटाकरञ्ज, बड़ा करञ्ज, मूर्वा, सहंजना, शिरीष, वरुण छाल, आक के पत्ते, पटोल और कटेरी ये श्लेष्माजनित रोग विनष्ट करते हैं।

गोक्षुरादिगण—गोखरू, तालमखाना, कटेरी और शालपर्णी ये वात–कफ जनित रोगनाशक हैं।

पटोलादिगण—पटोल, खस की जड़, लालचन्दन, मूर्वा, गिलोय, पान, कटुरोहिणी, अपराजिता, लोध, नीलकमल, वाराहीकंद और प्रियङ्गु, ये पित्तश्लेष्मा-रोगनाशक हैं।

किंशुकादिगण—पलाश, गाम्भारी की छाल, सोंठ, गनियारी, गोखुरू, अरलू की छाल, शालिपर्णी, चाकुले, माषाणी (माषपर्णी), स्थिरा (पृश्निपर्णी), पाटला, कटेरी–छोटी–बड़ी, बेल की छाल ये त्रिदोषज रोगनाशक हैं।

वाजीकरणार्थ पुटपाक द्रव्य

शतावरी, श्वेत बेडेला, आवला, गिलोय, बीजताडक–बीज, आलकुशी बीज, भाँगरा, कसेरू, विदारीकन्द, गोखुरू, कुले खोड़ा बीज, अश्वगन्धा और पीपल इनका स्वरस वा पुटपाक वाजीकरण मे उपयोगी है।

रसायन के लिये पुटपाक द्रव्य

विदारीकन्द, तगर पादुका, भांगरा, सतावरि, सिरीश, भेला, गिलोय, चीता, हस्तिकर्ण–पलाश, तालमूली, मुलहठी, मुण्डिरी और कशेरू ये रसायन मे व्यवहार्य हैं।

पञ्चम अध्याय

वर्तमान युग में उत्पन्न कुछ ज्वरों की चिकित्सा

प्लेग (Plague)

प्लेग एक प्रकार की ग्रन्थिक उत्कट महाव्याधि है। प्लेग होने वाले रोगी को ज्वर बहुत तेज होता है। बगल के नीचे, गले मे, वक्षपर और जङ्घा के मूल मे ग्रन्थिया निकलती है और उनमे अत्यन्त जलन होती है। यह रोग अतिशय संक्रामक और सांघातिक (छूत की बीमारी और मारक) है।

इस रोग के होते ही उपाय करना चाहिये। आयुर्वेद-मत से इसकी त्रिदोष युक्त सान्निपातिक ज्वर की तरह चिकित्सा करनी चाहिये। प्लेग प्रधानतः ३ तरह का होता है—(१) ग्रन्थिक, (२) सान्निपातिक, (३) आन्त्रिक।

ग्रान्थिक प्लेग ज्वर साधारणतः वायुपित्त-प्रधान होता है। इस प्रकार का प्लेग ज्वर बहुत सहज साध्य है। ग्रान्थिक प्लेग ज्वर में ताम्रभस्म २ रत्ती, घृत ५ बूंद और १० बूंद मधु, मिलाकर प्रातः एक बार सेवन करना विशेष उपकारी है। योगरत्नाकर नामक औषध, घृत ५ बूंद और मधु १० बूंद मिलाकर तीसरे प्रहर एकवार प्रयोग करने से ज्वर का वेग और ग्रन्थि-प्रदाह तथा वेदना घट जाती है।

सान्निपातिक प्लेग ज्वर

इसमें साधारणतः पित्तश्लेष्मा प्रबल होता है। यह अपेक्षाकृत कष्टसाध्य व्याधि है। इस व्याधि में प्रथम से रसेन्दुचूर्ण १ जौ मात्रा मे आदी के रस और मधु अनुपान से सफल पाया जाता है। बृहत् कस्तूरीभैरव, बसन्ततिलक और महालक्ष्मीविलास ये अति उत्तम औषध हैं।

आन्त्रिक प्लेग ज्वर

इसमें साधारणतः पित्त और वायु का प्रकोप होता है। इस रोग में श्रीकृष्ण रस दो रत्ती, जीरा पिसा हुआ और मधु अनुपान से विशेष सफल पाया गया है। ताम्रभस्म, कर्पूररस, रसतालक आदि अति उत्कृष्ट औषध हैं। इस रोग के अत्यन्त बढ़ जाने पर बृहत् सूचिकाभरण, सन्निपातभैरव, अघोरनृसिंहरस, आदि सन्निपात-रोगाधिकारोक्त औषधो का प्रयोग विशेष फल देता है। इस रोग के विभिन्न उपसर्गों की विभिन्न व्यवस्थाओं में अनेक प्रकार की औषधें हमारे प्रणीत 'आयुर्वेद प्रभाकर' नामक चिकित्सा ग्रन्थ मे विशेष भाव से लिखी गई है।

इन्फ्लुयेञ्जा

यह एक प्रकार का वायुश्लेष्माजनित सान्निपातिक ज्वर है। इसमें सर्वत्र ही कफ की अधिकता रहती है। इसके द्वारा अनेक समय दोनो फेफड़े घिर जाते हैं, रक्त मिला हुआ कफ निकलता है और सारे अङ्ग मे असह्य वेदना अनुभूत होती है। अनेक समय मोह और प्रलाप उपस्थित होता है।

आजकल अनेक समय इस ज्वर ने व्यापक भाव से उपस्थित होकर शहरों का नाश किया है। श्रीरसराज इस रोग की सर्वश्रेष्ठ औषध है। प्रतिदिन प्रातः काल आदी के रस और मधु के अनुपान से सेवन करने पर, ज्वरवेग, अङ्गमर्द, प्रलाप, कफाधिक्य विनष्ट होता है। यह औषध दृष्टफल है। वसन्ततिलकरस, वृहत् कस्तूरीभैरव, ताम्रभस्म, महालक्ष्मीविलास, सर्वाङ्गसुन्दररस, पञ्चानन रस आदि औषध युक्तिपूर्वक यथायोग्य अनुपान से प्रयोग करने पर सफल पाया जाता है।

सब प्रकार के इन्फ्लुयेंजा ज्वर के कुछ दृष्टफल व्यवस्थापत्र नीचे दिये हुए हैं—

(१) आदित्यरस (आदी का रस और मधु) प्रातः ७ बजे।

(२) वृहत् कस्तूरीभैरव (पान का रस और मधु) समय १२ बजे।

(३) रसेन्द्रचूर्ण (तुलसी का रस और मधु) समय ४ बजे।

(४) वसन्ततिलकरस (वासक का रस और मधु) रात को ८ बजे।

इस व्यवस्था पत्र के अनुसार औषध सेवन और आक के पत्तों पर पुराना घी लगाकर गुनगुने कर छाती पर रखकर पसीना देने से असंख्य रोगियो को लाभ हुआ है। एवं नगरविनाशक इस भारी भय से मुक्त हुए हैं।

डेंगूज्वर

यह एक प्रकार की दारुण यन्त्रणादायक वातश्लेष्मज व्याधि है। साधारणतः १ सप्ताह में यह ज्वर आरोग्य होता है। देहात के लोग अचानक शहर में आ जाने पर कुछ दिन बाद ही इस ज्वर से आक्रान्त हो जाते हैं। छोटे बालक-बालिकाओं को यह ज्वर अधिक कष्टदायक होता है। श्रीमृत्युञ्जयरस, कस्तूरी भैरव, रसतालक, वातविध्वंसी महालक्ष्मीविलास, गरम पञ्चाननरस आदि वात-श्लेष्मनाशक औषधियां विवेचनापूर्वक उपयुक्त अनुपान सहित व्यवहार करने से सफल पाई गई है। इस ज्वर के छूट जाने पर रोगी कुछ दिन तक घोर अरुचि से कष्ट पाता है। उस समय उसके पक्ष में कागजी नीबू का रस बड़ा ही उपकारी है।

न्यूमोनिया

यह एक प्रकार का वातश्लेष्मज सान्निपातिक ज्वर है। इस रोग में कभी एक और कभी दोनों फेफड़े आक्रान्त होते हैं। दोनों फुस-फुस आक्रान्त होने से

उसे डवल न्यूमोनियां कहते है। इस रोग में प्रबल ज्वर, कास, श्वासकष्ट, खांसी के साथ खून निकलना, स्वेद निकलना, शरीर में दर्द, प्रवल श्वास होना, प्रलाप, मोह, दुर्वलता, गला घड़घड़ाना, अनियमित नाड़ी की गति और शरीर में अत्यन्त असुस्थता जान पड़ती है। यह रोग प्रकट होते ही बहुत शीघ्र सुचिकित्सा होनी चाहिये, नही तो रोग बड़ी जल्दी बढ़ जाता है और फेफड़े मे वायु रुककर रोगी की मृत्यु हो जाती है। फुस-फुस मे पचन आरम्भ होने के अतिरिक्त पसीना आना, प्रलाप, श्वासकष्ट आदि उपद्रब उपस्थित होते हैं, और रोग प्रायः निरोग नही होता।

न्यूमोनिया की चिकित्सा

रसचिकित्सा द्वारा न्यूमोनियां रोग अति शीघ्र अतीव सुफल पाया गया है। परन्तु औषध खूव उत्तम होना आवश्यक है। चिकित्सक की बहादुरी और कृतित्व औषध के ऊपर ही अधिक निर्भर है। रसचिकित्सा की विशेषता यह है कि यह द्रव्य के विशेष प्रभाव पर अधिक निर्भर करती है। अधिकांश क्षेत्रो मे यह दोष की प्रवलता वा न्यूनता की ओर लक्ष्य नहीं रखना चाहता। तान्त्रिक युग में रससिद्ध चिकित्सक रससाधना मे इतने आगे वढ़ गये थे कि वे त्रिदोष सिद्धान्त की अपेक्षा विशिष्ट योग विशेष के ऊपर अधिक निर्भर करते थे। योग विशेष के प्रभाव पर मुग्ध होकर वे एक ही योग अनेक क्षेत्रों मे प्रयोग करके अति आश्चर्य सुफल दिखाते थे।

रसतालक—शोधित पारा १ भाग, गन्धक १ भाग, लालदारु मुज १ भाग हरिताल १ भाग, एकत्र उत्तम रूप से चूर्ण कर वालुकायन्त्र में काच की कुपी रख ४ प्रहर पाक करे। इसके द्वारा पीताभ रसतालक तैयार होगा। यह औषध एक यव मात्रा में सव प्रकार के न्यूमोनियारोग में रोगी की अवस्था का विवेचन कर निम्नलिखित अनुपान के साथ प्रयोग करे।

आर्दी का रस और मधु, तुलसीपत्र का रस और मधु, वासक पत्तो का रस और मधु अथवा केवल मधु।

इसके द्वारा ज्वर का वेग कम होता है, जीवनी शक्ति वढ़ती है, हृत्पिण्ड की अवस्था अच्छी रहती है, फेफड़ों के क्षत और सड़ना निवारित होता है।

महादित्यरस—गोमूत्र में शोधित नैपाली ताम्र ३ भाग, पारा १ भाग, गन्धक २ भाग की कज्जली, इन दोनों द्रव्यों को नीबू के रस में भिगोकर रक्खे। ३ दिन बाद सुदृढ़ पत्थर के खरल में उनको अच्छी तरह मर्दन कर प्रचण्ड धूप में सुखाले। उसके बाद उसे बालुकायन्त्र मे ४ प्रहर पाक करे, इस तरह जो औषध पाई जाय उसका नाम महादित्यरस है। यह सब प्रकार के सान्निपातिक, त्रिदोष ज्वर, कास, श्वास, हिक्का, यक्ष्मा आदि दुःसाध्य क्षयजरोगो की महौषध है। इसकी मात्रा—१ रत्ती से ४ रत्ती तक है। अनुपान आदी का रस और मधु।

न्यूमोनिया रोग में रोगी को विकार उपस्थित होने पर नीचे लिखी औषध प्रयोग करने से उपकार होगा।

भैरवरस—वङ्ग, सीसक, पारा, गन्धक और मीठा विष प्रत्येक एक भाग, ताम्र ३ भाग इन सबों को निर्गुण्डी, पुनर्नवा और आमरूल के रस में मर्दन कर एक रत्ती परिमाण में गोली बनावे। यह एक वटिका आदी के रस और मधु के साथ प्रयोग करे।

न्यूमोनियारोग में खांसी के साथ रक्त आता दीख पड़े तो नीचे लिखा योग प्रयोग करे।

शोधित हिङ्गुल २ रत्ती, पटोल (परवल) के रस के साथ सेवन कराने से रक्त गिरना बन्द होगा और ज्वर तथा पित्तश्लेष्मा का वेग कम हो जायगा।

कनकसुन्दर रस—स्वर्ण, रससिन्दूर, मुक्ता, लौह, अभ्र, प्रबाल, वैक्रान्त, रौप्य, ताम्र, वङ्ग, कस्तूरी, प्रत्येक दो दो तोला के हिसाब से लेकर घृतकुमारी, बकरी का दूध और भृङ्गराज के रस की ३ दिन भावना देकर ४ रत्ती की वटिका तैयार करे। दोषानुसार पीपलचूर्ण, अडूसे के पत्तों का रस, तुलसी के पत्तो का रस, वंशलोचन चूर्ण, पान का रस, आदी का रस, अर्जुन की छाल का चूर्ण, मृगशृङ्ग भस्म आदि अनुपान विचारपूर्वक प्रयोग करें। परन्तु आदी का रस और मधु वा पीपल का चूर्ण और मधु ये दो अनुपान विशेष प्रशस्त हैं।

न्यूमोनिया रोग में कुछ दृष्टफल-व्यवस्था पत्र

समय	औषध	अनुपान
प्रातः ७ बजे	महादित्य रस २ रत्ती	आदी का रस और मधु
१० बजे	बृहत् कस्तूरीभैरव	पान का रस और मधु

समय	औषध	अनुपान
१ बजे	वसन्ततिलक रस	वासक पत्तों का रस, पीपल चूर्ण और मधु
४ बजे	रसताल	तुलसी पत्र का रस और मधु
रात के १ बजे	कनकसुन्दर रस	वंशलोचन चूर्ण और मधु

रोग अतिशय बढ़ने पर उक्त व्यवस्थापत्र के अनुसार औषध व्यवहार करके अनेक रोगी केवल ७ दिन में निरोग हो गये हैं। रोग की अवस्था उत्कट होने पर उक्त औषधियो मे दो एक नया उपद्रव होने पर या कम होने पर दो एक औषधि घटाने-बढ़ाने की व्यवस्था भी की जा सकती है और अच्छा फल होता है।

महादेव रस—स्वर्ण, अभ्र, लौह, बङ्ग, पारद, गन्धक और वैक्रान्त प्रत्येक १- तोला परिमाण लेकर कपूर के जल में भावना देकर १ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अर्जुन छाल के रस अथवा आमलकी के रस के साथ सेवन से ज्वर, कास, श्वास और फेफड़े के सब रोग दूर होते हैं।

नीचे लिखी प्रायः सर्वत्र प्रचलित कुछ औषधियां भी विवेचनापूर्वक प्रयोग करने से अनेक क्षेत्रो में सफल पायी जाती हैं। नारदीय महालक्ष्मीविलास, पञ्चानन रस, कफकेतु रस, सर्वाङ्गसुन्दररस, सर्वतोभद्ररस, कफचिन्तामणि आदि औषधियां उपयुक्त अनुपान योग से प्रयोग करने पर निमोनियां रोग में अधिक सफलता पाई जाती है।

न्यूमोनिया मे पुराना घृत और आक के पत्ते से स्वेदन कराने से अतीव चमत्कार होता है। अर्थात् छाती पर पुराना घृत मलकर उसके ऊपर घृताक्त आक के पत्ते बिछा दे ऊपर पुरानी रूई वा आककी रूई से सेके और फिर वे ही पत्ते बांध दे तो बहुत लाभ हो।

टाईफाईड वा (अन्त्रज्वर)

यह एक प्रकार का सान्निपातिक अन्त्रज्वर है। कोई कोई इसको सान्निपातिक विकार भी कहते हैं। पाश्चात्त्य चिकित्सकों के आधुनिक मत से यह एक प्रकार की संक्रामक व्याधि है। जीवाणुविद्गण कहते हैं कि एक प्रकार के जीवाणु शरीर में प्रवेश कर रक्त, रस और आँतों को दूषित कर इस व्याधि को

पैदा करते हैं। रोग का विस्तृत कारण वर्णन करना इस पुस्तक का उद्देश्य न होने पर भी हम संक्षेप में इस रोग का विषय साधारण भाव से वर्णन करते हैं। हमारी लिखित 'सरलनिदान' नामक पुस्तक में इसकी विस्तारपूर्वक आलोचना की गई है, यह ज्वर प्रायः सब क्षेत्रों मे त्रिदोषज ही है।

जल बहने वाली प्रणालियों की अव्यवस्था के कारण ड्रेन वा नाली से वाहर निकली हुई दूषित भाप, वहुत दिन के सञ्चित मलमूत्रादि की दुर्गन्ध, दूषित जल, उपयुक्त प्रकाश और वायु का अभाव, एक साथ बहुत से आदमियों का निवास, सफाई और पर्दे का अभाव, दूषित खाद्य ग्रहण आदि कारणों से वायु, पित्त कफ-त्रिदोप कुपित होकर इस आन्त्रिक ज्वर की उत्पत्ति करते हैं। इससें पेट में दर्द, फूलना, गुड़ गुड़ की आवाज, कभी उदरामय, दस्त में मल के साथ रक्त निकलना, सिर, पीठ, छाती और पेट सें वेदना, एवं गात्र मे विशेषकर उदर में लाल रंग की फुंसी निकलना, भूख नहीं लगना, जी अकुलाना, जिह्वापर मैल जमना आदि उपसर्ग हो जाते है। इस रोग में नाड़ी की गति तेज होती है। किसी किसी को कोष्ठवद्धता देखी जाती है। किसी को दस्त अधिक होते हैं। प्रथम थोड़ा-थोड़ा जाड़ा लगता है, फिर शरीर में गर्मी बढ़ती है और सिर में दर्द अधिक होता है। रोगी कभी-कभी प्रलाप करता है और बीच में मोह उपस्थित होता है, इसमें रोगी का पेट फूलता है, पेट दबाने से रोगी को दर्द जान पड़ता है। यह दशा प्रायः ४ सप्ताह तक रोगी की रहती है। कोई कोई चौथे सप्ताह में ज्वर न छूटकर ५-६ सप्ताह तक भोगते हैं। यह रोग साधारणतः तीसरे सप्ताह में वढ़ता है। इस रोग में कभी कभी न्यूमोनियां, ब्रङ्काइटिश और प्लूरिसी भी होते देखी जती है। यदि आंतो का क्षत वढ़कर आंत कटने लगती है तो, रोगी को वमन, पेट फूलना और वेदना बढ़ती है और चेहरा विकृत हो जाता है तव रोगी का वचना कठिन हो जाता है।

टाईफाईड ज्वर वा आन्त्रिक ज्वर चिकित्सा

टाईफाईड वा आन्त्रिक ज्वर अत्यन्त कठिन व्याधि है। इस रोग की चिकित्सा करने में चिकित्सक को वहुत धैर्य रखना चाहिये। धीरता चिकित्सक का सर्वश्रेष्ठ गुण है। रोगी तथा रोगी के आत्मीय स्वजन सभी चिकित्सक से चिकित्सा और औषध को वदलने के लिये नाना प्रकार के अनुयोग करते हैं, किन्तु

इससे चिकित्सक को अधीर नहीं होना चाहिये, वह ऐसे कठिन रोग में वड़ी होशियारी से आगे बढ़े। इस रोग में रोगी की परिचर्या पर सब का विशेष ध्यान होना उचित है। सबसे पहले यह व्यवस्था होनी चाहिये कि जिससे रोगी का घर, शय्या, पथ्य आदि परिच्छन्न भाव से रक्षित हों। और ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये जिससे रोगी के घर मे प्रकाश और हवा अच्छी तरह जाय। रोगी के घर में अधिक लोगो की भीड़ न होने देवे। रोगी के समीप सदा एक सुस्थ जन, स्नेहशील, बलिष्ठ और कर्मपटु परिचारक होशियारी से उपस्थित रहे, क्योंकि अनेक समय इस रोग से रोगी का माथा खराब हो जाता है और रोगी अचानक शय्या छोड़कर चला जाना चाहता है और चोट खाता है। इस भाव से अनेक रोगियो का वहुत अनिष्ट होता है।

गन्धक की कज्जली—एक मिट्टी के पात्र मे कटेरी, सम्हालू और कञ्जा के पत्तो का रस समान रखकर अग्नि के ऊपर तपावे। उसके बाद उसके ऊपर शोधित गन्धक का चूर्ण डाले, फिर गन्धक गल जाने पर गन्धक के समान पारा उसमे डालें। पारा गन्धक के साथ मिश्रित होने पर उस मिश्रित द्रव्य को हलके हाथ से उतार कर उत्तम रूप से मर्दन कर कज्जली करें। औषध १ रत्ती मात्रा मे भुने हुए जीरे के चूर्ण और हीग के अनुपान से प्रयोग करने से सब तरह के आन्त्रिक ज्वर मे अत्यन्त सफलता प्राप्त होती है। अनुपान भेद से यह औषध नाना प्रकार की व्याधियो की नाशक है। सब तरह के आन्त्रिक ज्वर मे विजयपर्पटी एक महौषध है। यह औषध रोग की सब अवस्था मे जीरे का चूर्ण २ रत्ती और हीग १ रत्ती अनुपान के साथ प्रयोग करने से अति सुफल पाया जाता है। विजयपर्पटी के अभाव में स्वर्णपर्पटी, लौह-पर्पटी, ताम्रपर्पटी, पञ्चामृत पर्पटी अथवा रसपर्पटी के प्रयोग से भी विशेष सफलता होती है, उक्त पर्पटियो में से किसी एक का प्रयोग करते समय रोगी पर्पटीसेवन के सब नियम पालन करे अर्थात् रोगी नमक और जल बन्द कर दूध पिये और अधिक प्यास होने पर डाव का जल पान करे।

टाईफाईड रोग साधारणतः ग्रहणी, नाड़ी और आमाशय का आश्रय करके होता है इसमें आंतों में क्षत होता है इस कारण इस रोग मे कोई कठिन द्रव्य पथ्य रूप से प्रयोग नही करते, तरल खाद्य, एक उबाल का गाय का दूध ही टाईफाईड रोग का अति उत्कृष्ट पथ्य है। यदि पर्पटी प्रयोग करता न होवे तो

कमला नीबू (नारंगी) का ताजा रस और अङ्गूर का रस खाने को दिया जा सकता है। दस्त अधिक हों तो अनार का रस और वार्ली देना उचित है।

भुना जीरा पिसा हुआ और मधु, मोथा का रस और मधु, अनार का रस और मधु आदि अनुपान से सर्वाङ्गसुन्दर अथवा महागन्धक टाईफाईड रोग में प्रयोग करने से सुफल पाया जाता है। ज्वर का वेग अधिक होने से श्रीजयमङ्गल रस, त्रिपुरारि रस, त्रैलोक्यचिन्तामणि रस आदि औषध उपयुक्त अनुपान से प्रयोग करने पर अच्छा फल मिलता है। टाईफाईड में पेट फूलने पर वज्ररस हींग के अनुपान से देने पर अच्छा लाभ पहुँचता है। पेट के दर्द में सर्ववातारि चमत्कार युक्त फल दिखाता है। कोष्ठवद्धता रहने पर केवल आदी रस और मधु के अनुपान से त्रिनेत्र रस प्रयोग से इस रोग में चमत्कारपूर्ण फल होता है।

पर्पटी सेवन विधि

साधारणतः पर्पटी दो रत्ती से आरम्भ कर १० रत्ती पर्यन्त व्यवहृत होती है, उसके वाद औषध की मात्रा घटाते हुए दो रत्ती पर आ जाने पर बंद कर देते हैं। औषध सेवन के आरम्भ काल से समाप्ति पर्यन्त जल और नमक बंद रखते हैं। रोगी को केवल मात्र दुग्ध और अन्न, चीनी मिश्री के साथ सेवन कराते है। प्यास असह्य होने पर डाव का जल देना चाहिये। कोई कोई दो रत्ती से १० रत्ती तक औषध की व्यवस्था कर १० रत्ती के वाद से ही औषध की मात्रा घटाकर २ रत्ती पर उतार लाते है उसके वाद आवश्यकता होने पर फिर मात्रा वढ़ाकर घटाते है और इस तरह आरोग्य काल तक पर्पटी व्यवहार करते हैं। कोई कोई दो रत्ती से आरंभ कर प्रति सप्ताह १ रत्ती बढ़ा कर १७ सप्ताह मे औषध वन्द करते हैं। कोई २ दो रत्ती और ३ रत्ती से अधिक मात्रा मे पर्पटी व्यवहार नही करते। कोई २ पर्पटी व्यवहार के समय गरम जल वा वेलपत्र सिद्ध किया हुआ जल व्यवहार करने का उपदेश देते है। किसी २ ने कशेरु के पत्तों के रस में भूना हुआ नमक व्यवहार करने का उपदेश दिया है।

पर्पटी सेवन की विशेष विधि

पर्पटी आयुर्वेदीय चिकित्सा शास्त्र की एक दृष्टफल विचित्र महौषध है। युक्तिपूर्वक उपयुक्त अनुपान के सहयोग से रोग की अवस्था विशेष मे प्रयोग करने से इससे अपूर्व सुफल पाया गया है। अनेक लोगों की धारणा है कि

नमक और जल बन्द कर के कविराजी चिकित्सा में रोगी को उस के अन्तिम काल मे पर्पटी दी जाती है। परन्तु ऐसी धारणा करना भूल है। पर्पटी कभी अन्तिम औषध नहीं हैं। यह सभी क्षेत्रों में और सभी रोगों में अवस्था विशेष प्रयोग की जाती है। परन्तु यह औषध व्यवहार करते समय रोगी और चिकित्सक दोनों को वड़ी सावधानी रखनी चाहिये। यह औषध सेवन करते समय रोगी जलपान बिलकुल न करने पावे, असह्य प्यास होने पर डाब का जल थोड़ा-थोड़ा पिला सकते है। नही तो प्यास लगने पर एक उबाल का ठण्डा दूध थोड़ा-थोड़ा कर वार बार पिलावे, दूध के साथ चीनी और मिसिरी और पुराने चावल का सुसिद्ध अन्न दोनो समय खावे। क्षुधा होते ही तुरन्त दुग्ध पान करे। किन्तु यदि क्षुधा न हो तो दूध पीना आवश्यक नही। बिना भूख के दूध पीना हानिकारक होगा, यदि औषध सेवन काल मे हठात् रात में स्वप्न-विकार होकर शुक्रपात हो जाय, तो तुरन्त दुग्ध पान करना चाहिये। औषध सेवन कर रोगी कदापि किसी तरह की दुश्चिन्ता, झगड़ा-विवाद, मनोमालिन्य वा मन ही मन किसी के ऊपर क्रोध वा ईर्षा धारण न करे। धूप मे भ्रमण वा घर में बैठ कर धूप सेवन, शीतल वा जल की वायु न लगने देवे, रोगी निर्जन घर में चुपचाप बैठ कर वा सोकर दिन काटे, जिस घर मे अधिक धूप वा हवा आती जाती हो रोगी ऐसे घर में न रखा जावे। वायु की आवश्यकता होने पर ताडपत्र के पंखे की हवा लें। इलेक्ट्रिक पंखे का व्यवहार न करे। यह औषध खाना आरम्भ करके हठात् उसका त्याग कर जल और लवण खाना अत्यन्त अनिष्टकर है। जल और नमक खाने के समय प्रथम वहुत थोड़ा-थोड़ा कर आरम्भ करे। अधिक क्या कहें यह औषध व्यवहार करते समय स्नान करना बन्द रहे। औषध सेवन के समय माथा अत्यन्त गरम जान पड़े तो शीतल जल से माथा धो देना चाहिये। प्रयोजन होने पर २ वार अथवा ३ वार सिर धोया जा सकता है। यह औषध व्यवहार करने पर दाड़िम वेदाना आदि किसी प्रकार की खटाई वा कषाय रस युक्त किसी प्रकार का फल नही खाना चाहिये।

यह औषध सेवन से प्रथम चिराभ्यस्त पथ्यादि बन्द करने के कारण कुछ शरीर की दुर्वलता हो जाने पर भी औषध लेने के कुछ दिन बाद से ही शरीर की जीवनी शक्ति वढ़ने लगती है, त्रिदोष की शान्ति हो जाती है। भीतर चाहे कोई दोष किसी प्रकार का क्यों न रहे, सव प्रकार के दोष वा व्याधि जादूगर की

माया की तरह तिरोहित हो जाती है। शरीर में नूतन शक्ति का सञ्चार होता है, मन में नूतन तेज की उत्पत्ति होती है, नूतन कर्मशक्ति बढ़ती है और बहुत काल के लिये शरीर नूतन हो जाता है। किन्तु उल्लिखित नियम अच्छी तरह प्रतिपालित हुए विना उक्त औषध व्यवहार सुफल नहीं होता बल्कि अधिकांश क्षेत्रों में कुफल हो जाता है।

पर्पटी सेवन के समय स्त्री-सहवास बिलकुल निषिद्ध है। स्त्रियों के साथ अधिक वात चीत करना भी निषिद्ध है। पर्पटीसेवी कूष्माण्ड, ककड़ी, तरबूज, करेला, कुसुम पाक, कांकरौल, कलमी और काकमाची सेवन न करे।

पर्पटी सेवन की मात्रा

पर्पटी २ रत्ती से आरम्भ कर प्रतिदिन १ रत्ती बढ़ा कर १० रत्ती तक की मात्रा सेवन करना उचित है। १० रत्ती के वाद से फिर मात्रावृद्धि न कर आरोग्य काल पर्यन्त उसी मात्रा में व्यवहार करना उचित है। जव यह जान पड़े कि रोग आरोग्य हुआ है तव औषध की मात्रा प्रतिदिन १ रत्ती कम करता हुआ २ रत्ती पर समाप्त कर दे। फिर कुछ दिन २ रत्ती मात्रा मे औषध व्यवहार कराकर एकदम औषध वन्द कर देवे। पर्पटी व्यवहार की मात्रा-निरूपण के समय चिकित्सक रोगी की अवस्था समझकर मात्रा ठीक करे। आज कल अधिकांश लोग ही हीन-सत्त्व है। इन लोगों के पक्ष मे १० रत्ती की मात्रा में पर्पटी प्रयोग करने से फल अच्छा नहीं होता, इससे रोगी अति सत्वर दुर्वल हो जाता है। इस प्रकार रोगी को पर्पटी देना आवश्यक होने पर २ रत्ती मात्रा में प्रयोग करना उचित है। बालकों के पक्ष में अवस्था समझ कर १ रत्ती से २ रत्ती तक मात्रा में यह औषध व्यवस्था करना उचित है।

पर्पटी निर्माण विधि

सब प्रकार की पर्पटी वनाने के लिये हिङ्गुलसे निकाला हुआ पारा ही सवसे अधिक उपयोगी है। क्योकि यह सव प्रकार से निर्दोष है। साधन रूप पारे मे यदि किसी तरह का शोधन में दोष रह जाय तो रोगी को अनिष्ट हो सकता है। अत एव सव क्षेत्रो में हिङ्गुल से निकला हुआ पारा व्यवहार करने से किसी तरह की विपद की आशङ्का नही रहती। पर्पटी वनाते समय अत्यन्त मृदु एवं वेर की लकड़ी की अग्नि से शुभदिन में शुद्ध चित्त से पाकक्रिया सुसम्पन्न करे।

तेज अग्नि से पाक की हुई पर्पटी विष तुल्य है। मृदु, मध्य पाक की पर्पटी ग्रहण करे।

रसपर्पटी बनाने की प्रणाली—पारा और गन्धक सम परिमाण लेकर कज्जली करे। फिर एक लोह के चम्मच को वेर की लकड़ी के दहकते हुए कोयलों पर रख कर उस में वह कज्जली डाल दे और जब वह गल जाय तब गोवर के ऊपर केले का पत्ता रख कर उसके ऊपर वह कज्जली ढाल दे। और तुरन्त गोवर और केले के पत्ते की पोटली से उसे दवाकर रख दे। इस तरह रसपर्पटिका तैयार होती है।

विजयपर्पटी प्रस्तुत-प्रणाली—पारा ४ तोला, गन्धक ८ तोला, रौप्य २ तोला, स्वर्ण १ तोला, मुक्ता ६ माशे और वैक्रान्त ६ माशे एकत्र मिलाकर पूर्वोक्त विधान से पर्पटी तैयार करने को विजय पर्पटी कहते है।

स्वर्णपर्पटी प्रस्तुत-प्रणाली—हिङ्गुलोत्थ पारा ८ तोला, स्वर्ण १ तोला ये दोनों वस्तुएं मर्दन कर उत्तम रूप से मिलावे। फिर ८ तोला गन्धक मिलाकर दृढ़ लोह के पात्र में दृढ़ हाथ से अच्छी तरह मर्दन कर कज्जली वनावे। शेष रसपर्पटी के नियमानुसार पर्पटी बना ले।

पञ्चामृतपर्पटी प्रस्तुत-प्रणाली—गन्धक ८ तोला, पारद ४ तोला, लोह २ तोला, अभ्र १ तोला और ताम्र ½ तोला ये सब वस्तुएं एकत्र लोहपात्र मे मर्दन कर कज्जली करे। फिर रसपर्पटी की तरह पर्पटी वनाले। इसका नाम पञ्चामृतपर्पटी है।

लौहपर्पटी प्रस्तुत-प्रणाली—शोधित पारा और गन्धक सम भाग में लेकर कज्जली करे। फिर पारे के समान लोह भस्म उस कज्जली के साथ मिलाकर दृढ़ रूप से मर्दन करे। जब लौह भस्म कज्जली मे अदृश्य हो जाय तब समझे कि यह औषध मिल गई है। अनन्तर पर्पटीपाक की तरह पाक करे। इस तरह लौह पर्पटी तैयार होगी।

ताम्रपर्पटी बनाने की विधि—पारा और गन्धक सम भाग ले कज्जली वनाकर उसमें पारद के समान ताम्र मिलावे। और ताम्र कज्जली के साथ मिलजाने पर पर्पटी पाक की तरह पाक करे। इस तरह ताम्रपर्पटी तैयार होगी।

षष्ठ अध्याय

ज्वर के उपसर्ग की चिकित्सा

ज्वर में अतीसार—यदि ज्वर के साथ अतिसार हो तो महागन्धक नामक औषध अति उत्कृष्ट फलदायक है—अनुपान-अनार के पत्तों का रस, मोथा का रस, जीरा भुना हुआ और मधु।

महागन्धक बनाने की रीति—पारा २ तोला, गन्धक २ तोला एकत्र कज्जली करे, फिर रसपर्पटी की तरह पाक कर साथ ही जायफल, जावित्री, लौंग, नीम के पत्ते, सम्हालू के पत्ते, इलायची प्रत्येक २-२ तोला मिलाकर जल में मर्दन करे। फिर सीप में भरकर मिट्टी द्वारा लेपन कर मृदुपुट से पाक करे। मात्रा ४ रत्ती।

ज्वर में उदराध्मान—यदि ज्वर के साथ पेट फूलता हो तो वज्ररस सर्वोत्कृष्ट औषध है।

वज्ररस बनाने की विधि—फिटकिरी १ तोला, सोरा ४ तोला एकत्र अग्निताप से उत्तप्त कर कांसे के पात्र में डाल कर वज्रक्षार प्रस्तुत करे, इसके साथ रससिन्दूर १ तोला मिलावे। यह औषध १ आना भर और घी में भुनी हुई हींग दो रत्ती प्रयोजनानुसार डाब के जल, शीतल जल, काञ्जी वा कागजी नीबू के रस वा चूने के जल के साथ प्रयोग करने से सब प्रकार का उदराध्मान, पेट फूलना, पेट गरम होना दूर हो कर पेशाब सरल हो, पतला दस्त होना बन्द हो और पेट मे वायु की गांठ न बंधे। टाईफायेड ज्वर वा आन्त्रिक ज्वर में यह सहजसाध्य और सुलभ औषध अति चमत्कार फल देती है।

ज्वर में शूल वेदना—ज्वर के समय पेट मे अत्यन्त शूल उपस्थित होने पर नीचे लिखी औषध अत्यन्त शुभफल प्रदान करती है।

शूलगजेन्द्र—शोधित कुचिला १० तोला, मरिच का चूर्ण १ तोला, रससिन्दूर २ तोला एकत्र जल में घोंटकर ४ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। गरम जल के साथ यह वटिका सेवन करने से वज्रहत वृक्ष की तरह सब शूल-वेदना नष्ट होती है।

ज्वर में वमन—ज्वर मे वमन उपसर्ग उपस्थित होने पर कुमुदेश्वर रस प्रयोग करने से सुफल देखा जाता है। कुमुदेश्वर रस—ताम्र २ भाग और

बङ्ग १ भाग, एकत्र मिलाकर मुलहठी के क्वाथ द्वारा सात वार भावना देकर ४ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। उसके बाद नागकेशर, मोथा, छोटी इलायची, लाल चंदन, और अनंतमूल ये द्रव्य समपरिमाण मे और इन सब द्रव्यों के समपरिमाण खीलें एकत्र मिलाकर सोलहगुने जल मे सिद्ध कर आधा शेष रहने पर उतार ले फिर चीनी और मधु का प्रक्षेप देकर इस क्वाथ द्वारा उक्त औषध सेवन करने को दे।

ज्वर में दाह—ज्वरकालीन दाह नाश करने के निमित्त चिरसुन्दर रस सुफलप्रद है।

चिरसुन्दर रस—रससिन्दूर, श्वेत चन्दन, मुलहठी, लोध प्रत्येक १-१ तोला, ये सब द्रव्य लालचन्दन के क्वाथ में मर्दन कर ४ रत्तीप्रमाण वटिका करे। यह औषध घृष्ट श्वेत चन्दन और मधु के साथ प्रयोग से दाह नाश करती है।

ज्वर में पिपासा—स्वर्णसिन्दूर आधी रत्ती, षडङ्गपानीय अनुपान से सेवन करने पर ज्वरकालीन पिपासा नष्ट होती है।

ज्वर में सिर दर्द—ज्वर के सिर दर्द में महालक्ष्मीविलास रस अति उत्कृष्ट औषध है। अनुपान आदी का रस, पान का रस और मधु।

ज्वर में गात्र वेदना—वातगजकेशरी ज्वर में गात्रवेदना की एक महौषध है। अनुपान—बेल के पत्तो का रस आदी का रस और मधु।

वातगजकेशरी—स्वर्णसिन्दूर, लौह, स्वर्णमासिक, गन्धक, हरिताल, मीठा विष, त्रिकटु, सोहागे की खील, कांकड़ासिंगी, गनियारी की छाल, बेल की छाल, प्रत्येक सम भाग लेकर वेलपत्र और निर्गुण्डी के पत्तों के रस मे मर्दन कर चना के वरावर वटिका वनावे।

ज्वर में अरुचि—स्वर्णसिन्दूर पाव $\frac{1}{4}$ रत्ती लेकर आमले के रस और मधु अथवा वातावी नीबू के रस और सेंधा नमक अथवा आदी का रस और मधु के साथ सेवन करने से सव तरह की अरुचि नाश हो।

ज्वर में श्वास, कास और हिचकी की चिकित्सा—श्वासकुठाररस पीपल का चूर्ण और मधुके साथ सेवन करने से सब तरह का श्वास-कास विनष्ट होता है।

श्वासकुठाररस बनाने की विधि—पारद, गन्धक, विष, सोहागे की खील और मैनशिल प्रत्येक २ तोला, मिर्च १६ तोला, त्रिकटु प्रत्येक ४ तोला,

जल में मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण वटिका करे। बहेड़े की गुठली के चूर्ण और मधु और बेर की गुठली की मीगी के चूर्ण और मधु अनुपान के साथ सेवन करे।

ज्वर में खांसी हो तो कासकुठार एक महौषध है।

कासकुठार बनाने की विधि—हिङ्गुल, मरिच, गन्धक, सोंठ, पीपल, मरिच और सोहागा ये सब द्रव्य सम परिमाण लेकर जल में मर्दन कर दो रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान आदी का रस और मधु।

श्वासकासचिन्तामणि—ज्वरकालीन श्वास और कास का उपद्रव होने से यह एक महौषध है।

श्वासकासचिन्तामणि बनाने की विधि—सोनामाखी, स्वर्ण और पारद प्रत्येक एक भाग, गन्धक और अभ्र प्रत्येक दो भाग और लौह ४ भाग, ये सब एकत्र मर्दन कर मुलहठी के रस, कटेरी का रस, बकरी का दूध, पान का रस इनसे पृथक् २ सात वार भावना देकर २ रत्तीप्रमाण वटिका करे। अनुपान-पिप्पली चूर्ण और मधु।

ज्वर में हिक्का रहने पर—(१) रसचिकित्सा प्रथमखण्ड में कथित रस और गन्धक के योग से प्रस्तुत ताम्रभस्म १ रत्ती मात्रा में घी में भुनी हींग और गरम जल के अनुपान से प्रयोग करने से सब प्रकार की हिचकी को आराम होता है।

(२) उत्कृष्ट स्वर्णसिन्दूर बहेड़े का चूर्ण और मधु के साथ देने से विशेष उपकार होता है, हींग का धुंआ नासिका में ग्रहण करने से तुरन्त हिचकी बंद हो जाती है।

(३) कृष्णचतुर्मुख, मयूरपुच्छ भस्म और मधु मिलाकर देने से अति दुर्जय हिचकी भी आराम होती है।

ज्वर में कोष्ठबद्धता—ज्वर में कोष्ठबद्धता हो तो 'इच्छाभेदी रस' का प्रयोग करने से कोष्ठशुद्धि होती है। नव ज्वर में कभी विरेचक औषध प्रयोग न करे। ज्वर की आमावस्था हट जाने पर विरेचक औषध प्रयोग करना उचित है। जब यह अनुभव किया जा सके कि मल-विबद्धता के कारण ज्वर नहीं छोड़ता है तभी युक्तिपूर्वक इच्छाभेदी रस का प्रयोग करने से पेट साफ होकर ज्वर टूट जाता है।

रस-चिकित्सा में विरेचन सम्बन्ध में विशेष विधि

सब प्रकार की चिकित्सा के पूर्व देह शुद्ध करके तव औषध देना उचित है। रसचिकित्सा का प्रकृष्ट फल पाने के लिये प्रथम विरेचन औषध सेवन कराकर रोगी की देह शुद्ध कर ले। फिर लघु पथ्य से विरेचनजनित दुर्बलता दूर हो जाने पर रसौषध प्रयोग करे।

इच्छाभेदी रस बनाने की विधिः—सोठ, मिरच, पारा, गन्धक, सोहागा, ये द्रव्य प्रत्येक समभाग और जमालगोटा के वीजो का चूर्ण ३ भाग लेकर एकत्र जल में मर्दन करे, फिर २ रत्ती प्रमाण वटिका वनावे। अनुपान—चीनी और जल। यह औषध खाकर जितनी बार जल पियेगा उतने ही दस्त होंगे। विरेचन कार्य शेष होने पर रोगी को मट्ठा के साथ अन्न पथ्य देवे।

इच्छाभेदी गुडिका बनाने की विधिः—पारद, गन्धक, सोहागा और पिप्पली समानांश लेकर सब समष्टी के समान जयपाल बीज का चूर्ण उसके साथ मिलाकर जल में मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण गुटिका बनावे। यह औषध सेवन कर जितना शीतल जल पीये, उतने ही अधिक दस्त होगे और गरम जल पीने पर दस्त वन्द हो जायंगे।

सर्वाङ्गसुन्दर रस बनाने की विधिः—शोधित पारा, गन्धक, सीठा विष, जमालगोटा के बीज, मरिच, पीपल, सोठ, हरीतकी, आमलकी, बहेड़ा, इन द्रव्यो का चूर्ण समानाश में लेकर एकत्र मिलाकर जल में मर्दन कर वटिका करे। मात्रा–२ रत्ती। इससे सब प्रकार का ज्वर, आमवात, श्वास, कास, अग्निमान्द्य आदि रोग शीघ्र विनष्ट होते हैं।

विरेचन के अयोग्यपात्र—बालक, वृद्ध, दुर्वल, क्षीण, पीनस-रोगाक्रान्त, भीत, रुक्ष, शोषरोगी, तृष्णार्त, गर्भिणी, नवज्वरी, अधोग रक्तपित्तरोगग्रस्त, एवं सूतिकारोगग्रस्ता, रोगिणी ये विरेचन के योग्य नही है।

ज्वर में मोह और प्रलाप की चिकित्सा

ज्वर के समय मोह और प्रलाप उपस्थित होने पर नीचे लिखे योगो से कोई विवेचनापूर्वक प्रयोग करने से उपसर्ग शीघ्र शान्त होते हैं।

(१) गन्धक और पारा सम परिमाण लेकर एकत्र लहसन के रस में

एक प्रहर मर्दन कर लहसन के रस के साथ नस्य देने से रोगी चेतना प्राप्त करता है एवं मरिच के साथ नस्य देने से रोगी की तन्द्रा और प्रलाप दूर होता है।

(२) सोहागे की खील, ताम्र, लौह, चीता, खर्पर, त्रिकटु एवं रससिन्दूर इन द्रव्यों को आक के रस में अच्छी तरह मर्दन करे। आक के रस के साथ इसका नस्य प्रयोग करने से सान्निपातिक-ज्वरकालीन प्रलाप, मोह आदि उपसर्ग शीघ्र दूर होते हैं।

(३) गन्धक और पारा समान लेकर कज्जली कर एक दिन धतूरे के रस में मर्दन करे फिर उसके समान त्रिकटु चूर्ण लेकर उसके साथ मिलावे। इस औषध का नस्य देने से सन्निपातज ज्वर और प्रलाप, तन्द्रा आदि उससर्ग नष्ट होते हैं।

(४) गन्धक, लौह, पारद और पीपल समभाग और मिलित द्रव्य की समष्टि का २ गुना जमालगोटा एकत्र मिलाकर जम्हीरी के रस में मर्दन करे। यह औषध जल द्वारा घिस कर आंख में अंजन देने से सब उपद्रव दूर होकर सान्निपातिक ज्वर विनष्ट होता है।

(५) ताम्र, मैनशिल, तूतिया, सीसा और रससिन्दूर प्रत्येक समपरिमाण में लेकर राखाल शशा (खीरा) के रस में एक दिन मर्दन कर चना के प्रमाण वटिका बनावे। यह जल में घिस कर रोगी को नस्य देने से सर्वोपद्रव सहित सान्निपातिक ज्वर विनष्ट होता है।

(६) अभ्र, गन्धक, पारद, मरिच, हिङ्गुल, हरिताल, सेंधानमक और सोहागे की खील समपरिमाण और मिलित सब वस्तुओंकी चौथाई भैंस के पित्त द्वारा मर्दन करे। सान्निपातिक ज्वर के समय रोगी जब कोई औषध गले से नीचे न उतार सके, तब उक्त औषध ब्रह्मरन्ध्र में किञ्चित् क्षत कर उसके ऊपर लगा दे। इससे सब प्रकार के उपद्रव सहित सान्निपातिक ज्वर और रोगी की ज्ञानशून्यता विनष्ट होती है। इस औषध के प्रयोग के बाद क्रिया आरम्भ होने से मस्तक पर शीतल जल बार बार डाला जाय। इससे औषध का गुण बढ़ता है और रोगी का किसी प्रकार का अनिष्ट नहीं होता। इसके बाद रोगी को ठण्डा द्रव्य जैसे-डाव का जल, ईख का रस, मिसरी का शरबत, काञ्जी आदि सेवन करावे।

सप्तम अध्याय

मैलेरियाज्वर-चिकित्सा

मैलेरिया ज्वर का कारण वर्णन करना इस पुस्तक का उद्देश्य नही है। अत एव जिन औषधो के करने से रोग दूर हो सके केवल उन औषधो का उल्लेख नीचे किया जाता है।

चन्दनादि लौह—लाल चन्दन, सुगन्धबाला, आकनादि (पाठा), उशीर, पीपल, हरीतकी, सोंठ, नीलोफर, आमलकी, मोथा, चीता की जड़, विडङ्ग, ये सम भाग लेकर इनकी समष्टि के समान विशुद्ध कान्तलोह भस्म मिलाकर जल में मर्दन कर २ रत्ती परिमाण वटिका बनावे। दार्वादि पाचन अनुपान से यह औषध सव प्रकार की पुरानी मलेरिया का नाशक है।

चिन्तामणि रस—पारद, गन्धक, विष, त्रिकटु, त्रिफला, मनःशिला, रौप्य, स्वर्ण, मुक्ता, हरिताल, कस्तूरी, प्रत्येक १ तोला, भीमराज (काला भांगरा), तुलसी और आदी के रस में भावना देकर २ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। शिउली (हारसिंगार) के पत्ते के रस और मधु के अनुपान से मलेरिया नाशक है।

रसशार्दूल—हरिताल १ भाग, हिङ्गुलोत्थ पारा २ भाग, गन्धक ३ भाग, मनःशिला ४ भाग, ये सब द्रव्य एकत्र पीस कर ताम्रपात्र पर लेप करे। फिर एक हांडी में वह तांवे का पात्र अधोमुख वैठावे, ऊपरी भाग बालू से भर कर विधिपूर्वक पाक करे। फिर ताम्र पात्र के नीचे से ताम्र चूर्ण ग्रहण करे २ रत्ती प्रमाण यह औषध पान के रस से मिलाकर मरिच के चूर्ण के साथ भक्षण करने से शीतयुक्त मलेरिया ज्वर समूल विनष्ट होता है। औषध सेवन के अन्त में साठी चावल का भात और दूध पथ्य करे।

दुर्जलजेता रस—विष २ भाग, कौडी की भस्म ५ भाग, मरिच और सोंठ प्रत्येक ५ भाग, ये सव द्रव्य चूर्ण कर वस्त्र में छान ले। फिर आदी के रस में मर्दन कर मूंग के प्रमाण वटी वनावे। प्रातः और सन्ध्या में जल के साथ २ वटी सेवन करे। यह मलेरिया, सामज्वर, अजीर्ण, पेट, फूलना, दस्त-पेशाव वन्द हो जाना, शूल, श्वास और कास मे प्रयोज्य है।

सर्वज्वरामृतरस—कस्तूरी, प्रवाल, रौप्य, लौह, हरिताल, स्वर्ण, रससिन्दूर स्वर्णसिन्दूर, लवङ्ग, मुक्ता, दारुचीनी, मोथा, सोनामाखी, चुम्वक पत्थर, गोखुरू,

जायफल, जावित्री, मरिच, कर्पूर, तूतिया, प्रत्येक १ भाग, अश्वगन्धा २ भाग, ये सब एकत्र मर्दन कर निर्गुण्डी के पत्ते, बामनहाटी (भारंगी) की जड़, अडूसा के पत्ते, आक की जड़ और गोखुरू इनके रस मे पृथक्-पृथक् ७ बार भावना दे। मात्रा २ रत्ती, यह सब प्रकार के दुःसाध्य ज्वरों को शीघ्र विनष्ट करता है।

मलेरिया ज्वर विषमज्वर के अन्तर्गत है अत एव विषमज्वर-चिकित्सा में कही औपधियां युक्तिपूर्वक प्रयोग करने से मलेरिया ज्वर में प्रकृष्ट फल प्राप्त होता है। मलेरिया ज्वर से प्लीहा, यकृत्शोथ, उदररोग, यक्ष्मा आदि रोग उपस्थित हो सकते हैं, इन की चिकित्साप्रणाली यथास्थान लिखी जायगी।

मलेरिया ज्वर की औषध के अनुपान—आदी का रस, बेलपत्र का रस, तुलसीपत्र का रस, नीम के पत्तों का रस, सम्हालू के पत्तों का रस, नाटाउगा का रस, हारसिंगार के पत्तों का रस, कालामेघ का रस, गिलोय का रस, बृहत् भाङ्गर्यादि, दास्यादि, दशमूल, दार्वादि आदि पाचन मे से जो कोई एक या दो का रोगी की अवस्थानुसार प्रयोग करने से सुफल होता है।

प्लीहा और यकृत-चिकित्सा

सर्वतोभद्र रस—यह औषध सब प्रकार की प्लीहा और यकृत संयुक्त ज्वर, शोथ, श्वास, कास आदि पीड़ाओं को शान्ति देती है।

सर्वतोभद्र बनाने की विधि—पारा, गन्धक, ताम्र, अभ्र, लौह, प्रत्येक सम भाग लेकर आदी के रस में भावना देकर २ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान-हरीतकी १ तोला, सहेलिया की छाल १ तोला १½ सेर जल में औटे, चौथाई रहने पर उतार ले उसके साथ प्रतिदिन प्रातः १ वटिका सेवन करे।

अर्कभस्म—सेंधानमक, पारद और गन्धक प्रत्येक २ तोला एवं गोमूत्र शोधित नैपाली ताम्र ६ तोला एकत्र १ सप्ताह तक नीबू के रस में भिगोकर रक्खे। उसके बाद उसे अच्छी तरह मर्दन कर कुदरती जमीकंद, पीपल, हुलहुल, मोचरस, रोहीतक की छाल, आदी, त्रिफला और त्रिकटु के क्वाथ में भावना देकर २ रत्ती परिमाण की वटिका बनावे। आदी के रस और मधु के योग से यह औषध सेवन करे तो सब प्रकार की प्लीहा और यकृत रोग निर्दोष रूप से आरोग्य होता है।

लोकनाथ रस—पारद, गन्धक, अभ्र ये प्रत्येक १ भाग, लौह २ भाग, ताम्र २ भाग, कौड़ी की भस्म ६ भाग ये सब द्रव्य एकत्र कर पान के रस द्वारा मर्दनपूर्वक मूषा में स्थापन कर गजपुट में पाक करे, फिर शीतल होने पर चूर्ण कर २ रत्ती मात्रा सेवन करे। इसके सेवन के अन्त में पीपल चूर्ण और मधु अथवा हरीतकी चूर्ण और गुड़ अथवा गोमूत्र, अथवा जीरे का चूर्ण और गुड़ सेवन करे। यह यकृत, प्लीहा, उदर, गुल्म और शोथ रोग नष्ट करता है।

बृहत् लोकनाथ रस—शोधित पारा १ भाग और गन्धक २ भाग, एकत्र कज्जली करे। अनन्तर उसके साथ अभ्र १ भाग मिलाकर घृतकुमारी के रस द्वारा मर्दन कर उसके साथ ताम्र २ भाग और लोह २ भाग मिलावे, फिर काकमाची के रस द्वारा मर्दन कर उसके साथ गन्धक और कौड़ी की भस्म प्रत्येक २ भाग मिलाकर जम्हीरी के रस में मर्दन कर गोला बनावे। इसके बाद यह औषध २ भाग कर २ सकोरो मे रख कर और २ सकोरो से ढक कर मिट्टी की भस्म (जली हुई चूल्हे की मिट्टी), नमक और जल द्वारा उन सकोरों का सन्धिस्थान अच्छी तरह लेपन कर कुछ देर धूप मे सुखाकर गजपुट मे पाक करे। शीतल होने पर चूर्ण कर उपयुक्त पात्र मे रख दे। इसकी मात्रा ४ रत्ती है। अनुपान हरीतकी चूर्ण, पुराना गुड़, गोमूत्र, जीरे का चूर्ण और पीपल चूर्ण। इस औषध के सेवन से यकृत, प्लीहा, पेट बढ़ जाना, शोथ, वाताष्ठीला, प्रत्यष्ठीला, शूल, अग्रमांस, भगन्दर, अग्निमान्द्य और कास रोग आरोग्य होता है।

मृत्युञ्जय लौह—पारद, गन्धक, अभ्र ये प्रत्येक १ भाग, लौह २ भाग, ताम्र ४ भाग, यवक्षार, सज्जीक्षार, सोहागा, विडलवण, कौड़ीभस्म, शङ्खभस्म, चीते की जड़, मनःशिल, हरिताल, कुटकी, हीग, रोहितक की छाल, निशोथ, तेतुल चरा की भस्म, खीरा की जड़, खदिर काष्ठ, दारुहल्दी, अपांक्षार, तालजटाभस्म, इमली, हलदी, कालिया कड़ा, धतूरे के वीज, तूतिया, जमालगोटा के वीज, रसौत इन द्रव्यो का चूर्ण प्रत्येक १ भाग, ये सब द्रव्य एकत्र कर आदी और गिलोय के स्वरस द्वारा पृथक् पृथक् सात सात भावना देकर फिर ½ सेर मधु की भावना देकर १ मासे परिमाण वटिका बनावे। दोषानुसार अनुपान की व्यवस्था करे। इसके सेवन से प्लीहा, ज्वर, कास और विषमज्वर विनष्ट होते हैं।

लोहमृत्युञ्जय—रस, गन्धक, लौह, अभ्र, मैनशिल, ताम्र, कुचिला, कौड़ी भस्म, तूतिया, शङ्खभस्म, रसौत, जायफल, कुटकी, यवक्षार, जमालगोटा के वीज, सोंठ, पीपल, मरिच, हींग, सेंधानमक ये सब द्रव्य समभाग लेकर अति सूक्ष्म चूर्णकर हुलहुल के रस द्वारा ७ वार और केले के पत्र के रस द्वारा ७ वार भावना देकर सुखा ले। अनन्तर हुड़हुड़ के रस द्वारा फिर मर्दन कर दो रत्ती की वटी वनावे। इसके सेवन से प्लीहा, यकृत, गुल्म, अष्ठीला, अग्रमांस, शोथ, सब प्रकार के उदररोग, वातरक्त, प्लीहा एवं अन्तर्विद्रधि रोग नष्ट होता है।

प्लीहार्णव रस—हिङ्गुल, गन्धक, सोहागा, अभ्र, विष इनका सूक्ष्म चूर्ण प्रत्येक एक पल, पीपल और मरिचचूर्ण प्रत्येक आधा पल इन वस्तुओं को एकत्र मर्दन कर दो रत्ती परिमाण वटिका वनावे। निर्गुण्डी के पत्तों के रस और मधु के साथ यह औषध सेवन करने से प्लीहा, ज्वर मन्दाग्नि, कास, श्वास, वमनरोग आदि विनष्ट होता है।

यकृदरिलोह—लोहचूर्ण ४ तोला, अभ्र ४ तोला, ताम्र २ तोला, कागजी नीवू की जड़ की छाल एक पल, मृगचर्म भस्म १ पल ये सब द्रव्य एकत्र कर जल द्वारा मर्दन कर २ रत्ती परिमाण की वटिका बनावे। इसके सेवन से प्लीहा, यकृत, कामला, हलीमक, कास, श्वास और ज्वर नष्ट होता है। यह बल, वर्ण और अग्निकारक और वातगुल्मनाशक है।

शङ्खामृत—शोधित लाल दारुमुज, शोधित गन्धक और सेंधा नमक सम भाग लेकर आक के पत्तो के रस में मर्दन कर अन्धमूषा के गजपुट में पाक करे। मात्रा–आधी रत्ती परिमाण। अनुपान–पीपलचूर्ण, पुराना गुड़, गोमूत्र, आदी का रस, पेपेका निर्यास, गिलोय का रस।

योगराज रस—पारा ६ माशे, गन्धक १॥ तोला, ताम्र १ तोला, जमीकंद के रस मे घोट कर गजपुट मे पाक करे। दो रत्ती मात्रा में आदी के रस के अनुपान से प्रयोग करने पर सव तरह के उदररोग विनष्ट होते हैं।

हरिताल भस्म—गाय के घी के अनुपान से हरिताल भस्म $\frac{1}{4}$ रत्ती मात्रा में सेवन से प्लीहा, यकृत, अग्रमांस, पाण्डु, कामला, ज्वर आदि सव रोग आरोग्य होते है।

रसेन्द्रसार—पारद, गन्धक, वङ्ग और ताम्र आक के पत्तों के रस में खरल कर गजपुट में पाक कर अडूसा के पत्ते के रस में ७ दिन भावना देकर २ रत्ती की वटिका बनाकर सेधानमक और हरीतकी चूर्ण के अनुपान से प्रयोग करने पर सब तरह के प्लीहा और यकृत जनित विकार नष्ट होते हैं।

कालाज्वर-चिकित्सा

आयुर्वेद मत से कालाज्वर एक प्रकार का त्रिदोषज विषमज्वर है। विषम ज्वर चिकित्सा की जो ओषधियां कही गई हैं, कालाज्वर-चिकित्सा में उन्हें युक्ति पूर्वक प्रयोग करने से अति सुफल होगा।

नीचे लिखी ओषधियां प्रयोग करने से कालाज्वर में विशेष सुफल होता है।

(१) शङ्खनाभि की भस्म आधा तोला से १ तोला मात्रा तक नीबू के रस के साथ सेवन करने से कालाज्वर शान्त होता है।

(२) रसचिकित्सा प्रथम खण्ड में हरिताल प्रसङ्ग में कहा हुआ हरिताल सत्त्व ¼ रत्ती मात्रा में प्रयोग कर हरितालभस्म सेवन की पथ्य व्यवस्था करने से कालाज्वर निर्दोष भाव से हट जाता है। हरिताल भस्म सेवन के समय मत्स्य-मांस त्याग कर उपयुक्त मात्रा में घृत सेवन करते हैं।

(३) रसचिकित्सा प्रथम खण्ड में कथित ताम्र प्रसङ्ग मे कही हुई ताम्रभस्म प्रातः दो रत्ती मात्रा में और तीसरे प्रहर रसतालक एक यव मात्रा में प्रयोग करने से कालाज्वर आरोग्य होता है।

(४) पर्पटीप्रयोग विधि के अनुसार यक्ष्मारोगाधिकार मे कथित बिजय पर्पटी प्रयोग करने से कालाज्वर निश्चय आरोग्य होता है।

(५) कालाज्वर के साथ ही प्लीहा, यकृत आदि उपसर्ग निवारण के लिये प्लीहा और यकृत प्रसङ्ग मे कथित महामृत्युञ्जय लौह प्रयोग करना चाहिये। रक्तशून्यता के लिये नवायस लौह प्रयोग करने से अच्छा फल मिलता है।

(६) यक्ष्मारोगाधिकार में कथित वज्रपर्पटी और पञ्चामृतपर्पटी उपयुक्त अनुपान के साथ प्रयोग करने से इस रोग में विशेष फल पाया जाता है। कालाज्वर में साधारणतः देखा जाता है कि रोगी का शरीर एकदम घोर काले वर्ण का हो जाता है। प्लीहा और यकृत बहुत बढ़ जाता है, अनियमित ज्वर होता है और उस ज्वर का भोग बहुत देर तक रहता है। अनेक दिन ज्वर भोग

लेने पर भी किसी २ के शरीर पर कई जगह शोथ हो जाता है। मैलेरिया ज्वर अनेक दिन भोगने पर भी रोगी कालाज्वर का ग्रास हो जाता है। मैलेरिया ज्वर रोगी को प्रथम शीत बोध होता है, फिर ज्वर का वेग वहुत बढ़ता है, प्यास प्रवल रहती है, गात्रवेदना, कम्प, प्रलाप, पसीना, प्लीहा और यकृत वढ़ना, खून की कमी, कामला, पाण्डु, शीर्णता आदि उपद्रव देखे जाते हैं। यह रोग शरत्काल से वसंत तक रोगी को भोगना पड़ता है।

(७) पुटपाक विपमज्वरान्तक लौह, श्रीजयमङ्गल रस, विषमज्वरान्तक लौह, त्रिपुरारि रस, त्रैलोक्यचिन्तामणि रस आदि औषध बृहत् भार्ग्यादि, दास्यादि, दार्व्यादि पाचन के अनुपान से प्रयोग करने पर अधिकांश क्षेत्रों में सुफल पाया गया है।

सान्निपातिक मैलेरिया ज्वर वा पार्णिसास् मैलेरिया ज्वर

आयुर्वेद-मत से इसको एक प्रकार का घोर सान्निपातिक विषमज्वर विशेष समझ कर चिकित्सा करने से सुफल पाया गया है। यह ज्वर प्रथम से ही सान्नि-पातिक लक्षणक्रान्त होने से अतिशय कष्टसाध्य एवं अधिकांश क्षेत्रो में असाध्य हो जाता है। आयुर्वेदोक्त अभिन्यास (जिसका असर मन वुद्धि तक हो ऐसा त्रिदोप) ज्वर की तरह यह भी प्रलाप, संज्ञाशून्यता, कुन्थन, चक्षु, कर्ण, नासिकादि इन्द्रियो की कर्म्मशक्तिका लोप, हिमाङ्गता, रक्त पेशाव, वाक् रोध, माथा घूमना, पसीना निकलना, विवर्णता, आच्छन्नता आदि भयङ्कर उपसर्ग उपस्थित होते हैं। यह ज्वर होते ही किसी अच्छे वैद्य का आश्रय लेना चाहिये। प्रथम से अच्छी चिकित्सा होने से इस भयङ्कर दुःसाध्य व्याधि से कदाचित् मुक्ति प्राप्त होती है। इस रोग से रोगी प्रायः २-३ दिन में ही प्राण त्याग कर जाता है।

सान्निपातिक मैलेरिया ज्वर की चिकित्सा

स्वच्छन्द नायक—इस रोग की १ अति उत्कृष्ट औषध है। निर्माण विधि—पारद, गन्धकलौह और रौप्य समभाग लेकर मयूर, मत्स्य, वराह, वकरा और भैंस के पित्त में भावना देवे। उसके वाद हुलहुल, निर्गुण्डी, तुलसी, श्वेत अपराजिता, श्वेत चीता की जड़, अदरख, लाल चीता की जड़, भङ्ग, हरीतकी, काकमाची के रस वा क्वाथ

में यथाक्रम से भावना देवे। उसके बाद उसे धूप में सुखाकर अन्धमूषा में वालुकायन्त्र द्वारा ४ प्रहर तक पाक करे। पात्र शीतल होने पर उतार कर २ रत्ती मात्रा में यह औषध आदी के रस और मधु के साथ घोटकर रोगी को खाने को देवे। उसके बाद गोल मरिच के चूर्ण के साथ सम्हालू के पत्तो का रस और दशमूल का क्वाथ पान करावे।

भैरवरस—पारा, गन्धक, हरिताल प्रत्येक १ भाग और मीठा विष ३ भाग, दारसुज १ भाग, कृष्णसर्पविष १ भाग, हिङ्गुल ८ भाग ये सब द्रव्य एकत्र जल में मर्दन कर मूंग प्रमाण वटिका बनावे। आदी के रस और मधु के साथ सेवन करने से इसके द्वारा सब प्रकार के सान्निपातिकज्वर आरोग्य होते हैं।

जीर्णज्वर-चिकित्सा

त्रैलोक्यचिन्तामणि रस—स्वर्ण ३ भाग, रौप्य २ भाग, अभ्र २ भाग, लौह ५ भाग, प्रवाल ३ भाग, मुक्ता ३ भाग ये सब द्रव्य घृतकुमारी के रस में मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे और छाया में सुखा ले। इसका अनुपान बकरी का दूध है। यह औषध सेवन से सब प्रकार के जीर्ण ज्वर और यक्ष्मा आरोग्य होते हैं। यह औषध दृष्टफल है, एवं बिना बिचारे इसका प्रयोग करे। यह वालक, वृद्ध, गर्भिणी सबके लिये बिना विचारे प्रयोग कर सकते हैं।

रसप्रभाकर—पारद, गन्धक, पारद भस्म, स्वर्ण, रौप्य, लौह, ताम्र, अभ्र, हरिताल सत्त्व, वङ्ग, मुक्ता, प्रवाल, सोनामाखी, ये द्रव्य लेकर निर्गुण्डी के पत्ते, पान, काकमाची, खेतपापड़ा, त्रिफला, करेला के पत्ते, दशमूल, पुनर्नवा, गिलोय, अडूसे की छाल, भागरा, कशेरू इनके रस में ३ दिन भावना देकर एक रत्ती परिमाण वटिका बनावे। अनुपान—पीपल का चूर्ण और पुराना गुड़। इसके द्वारा सब प्रकार के जीर्ण ज्वर आरोग्य होते है।

जीवानन्दाभ्र—अभ्र ४ तोला, जीरा २ तोला, कनक धतूरे के बीज २ तोला, एकत्र चूर्णकर अडूसा, कटेरी, आमलकी, मोथा और गिलोय इन प्रत्येक के एक पल परिमित रस वा क्वाथ मे पृथक् पृथक् मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण वटिका करे। यह औषध सेवन करने से सब प्रकार के विषमज्वर आरोग्य होते है।

वृहत् सर्वज्वरहर लौह—लौह १६ तोला, पारद २ तोला, गन्धक २ तोला, त्रिफला, त्रिकटु, विडङ्ग, मोथा, गजपीपल, पीपरामूल, हलदी, दारुहलदी,

और चीते की जड़ प्रत्येक १ तोला। ये सब एकत्र आदी के रस मे मर्दन करे। वटिका—२ रत्ती प्रमाण। अनुपान-आदी का रस।

रसराज—पारद १ भाग, सोनामाखी १ भाग, मैनशिल २ भाग, गन्धक ३ भाग, हरिताल १८ भाग, ताम्र ५ भाग, भिलावा ३ भाग। ये सब एकत्र चूर्ण कर सिज के निर्यास की भावना देवे। फिर उसे एक मिट्टी के भाण्ड मे रखकर सकोरे से भाण्ड का मुख वन्द कर उत्तम रूप से लेप देवे। फिर चूल्ही पर चढ़ाकर १२ घण्टे पाक करे। मात्रा—४ रत्ती। अनुपान—पान का रस।

जीर्णज्वरगजसिंह—सीसक, धूप, गन्धक, सोहागा, मीठा विष, हरिताल, पारद, ताम्र, प्रत्येक १ भाग ये द्रव्य वट के दूध मे मर्दन कर अन्धमूषा में पाक करे फिर भांगरे और आदी के रस मे मर्दन कर चना प्रमाण गोली वनावे। अनुपान-निर्गुण्डी के पत्तो का रस और मधु। यह सव प्रकार के जीर्णज्वरो का नाशक है।

जीर्णज्वरकुठार—पारद, गन्धक, वङ्ग, अभ्र प्रत्येक १ भाग, एकत्र जम्हीरी के रस में मर्दन कर सुखाले, उसके वाद चीते की जड़ के क्वाथ और घृत-कुमारी के रस द्वारा ७ वार भावना देकर एक बार गजपुट में पाक करे। उसके वाद चूर्ण करके रख दे। इसकी मात्रा दो रत्ती। अनुपान-पुराना गुड़ और पिसा हुआ जीरा।

अभिन्यासज्वर-चिकित्सा

अभिन्यास एक प्रकार का उत्कट सान्निपातिक ज्वर है। यह प्रायः असाध्य है, कदाचित् कोई ही रोगी इसके ग्रास से वचता है।

बृहत् वडवानल रस—पारद-गन्धक, अभ्र, मैनशिल, मीठाविष, दारमुज, काले साप का विष प्रत्येक १ तोला, जमालगोटा के वीज १५० ग्रहण करे। इसके वाद उन्हे एकत्र चूर्ण कर मत्स्य, महिप, मयूर, छाग के पित्त में भावना देकर शीतल जल मे मर्दन कर एक रत्ती प्रमाण वाटिका वनावे। उत्कट अभि-न्यासज्वर मे यह औषध प्रयोग कर अनेक क्षेत्रो में रोगो की आसन्न मृत्यु से रक्षा की गई है।

बृहत् सूचिकाभरण, सन्निपातानल रस, कुलवधूनस्य आदि औषध प्रयोग कर शीतक्रिया करने से अनेक क्षेत्रो में रोगी वच गये हैं। परन्तु यह औषध

खूब विवेचना पूर्वक प्रयोग करने से रोगी का सान्निपातिक भाव हट जायगा; रोगी शीतल द्रव्य के लिये तीव्र आकांक्षा प्रदर्शन करता रहेगा। इस समय रोगी के मस्तक पर शीतल जल की धारा देना, डाब का जल, काञ्जी, दही, मट्ठा, अङ्गूर का रस आदि पथ्य देना चाहिये।

हतौंजा ज्वर चिकित्सा

यह एक प्रकार का उत्कट सान्निपातिक ज्वर है। इस ज्वर में सन्निपातान्तक रस विशेष उपकारी है। इसके बनाने की रीति—पारद, गन्धक, हिङ्गुल, खर्पर, ताम्र और अम्लवेतस प्रत्येक समान भाग मे लेकर भांगरे के रस में भावना देकर ४ रत्ती परिमाण मे वटिका बनावे। आदी का रस और मधु के अनुपान से यह औपध प्रयोग करने से हतौजा नामक सन्निपात रोग विनष्ट होता है।

अर्द्धशरीरगत ज्वर

इस ज्वर मे शरीर के आधे भाग मे ज्वर होता है और आधा भाग शीतल रहता है जिस अङ्ग में ज्वर रहता है उस नासिका पुट से अर्द्धनारीश्वर रस का नस्य लेने से अर्द्धशरीरगत ज्वर निश्चय ही निवारित होता है।

अर्द्धनारीश्वर रस—पारद एक भाग, गन्धक २ भाग, विष १ भाग और गोलमरिच ४ भाग ये सब द्रव्य त्रिफला के क्वाथ मे ५ वार भावना देकर वटिका बनावे। जम्हीरी के रस के साथ मर्दन कर नस्य देवे।

सन्तत ज्वर (कफ)

यह ज्वर त्रिदोपज है। वातप्रधान सन्ततज्वर ७ दिन में, पित्तप्रधान सन्तत ज्वर १० दिन में और कफप्रधान सन्तत ज्वर १२ दिन में साङ्घातिक हो जाता है। इस ज्वर की चिकित्सा में दो वातों का विशेष लक्ष्य रखना चाहिये—(१) धातुपाक और (२) मलपाक, इस ज्वर मे धातुपाक होने से रोगी के वचने की आशा नहीं रहती, मलपाक होने से रोगी क्रमशः आरोग्य प्राप्त करता है। इस ज्वर को रोगी वहुत दिन तक भोगना है। इस ज्वर की चिकित्सा में चिकित्सक वहुत विवेचना के साथ अग्रसर होवे, एवं धातुपाक और मलपाक की ओर लक्ष्य रखकर औपध प्रयोग करे। जल्दी-जल्दी ज्वर का वेग घटाने के लिये उग्रवीर्य ओपधियों का प्रयोग न करे।

स्वच्छन्दभैरव—पारद, गन्धक, मीठा विष, जावित्री, पीपल समभाग से जल में मर्दन कर आधी रत्ती परिमित बटिका तैयार करे। सन्तत ज्वर की प्रथम अवस्था में यह औषध प्रयोग करने से विशेष सफलता होती है। अनुपान—आदी का रस, सेंधानमक और चीनी।

श्री मृत्युञ्जय रस—विष १, मरिच १ पीपल १ गन्धक १ सोहागा १ और हिङ्गुल २ भाग एकत्र जल में मर्दन कर मूंग के समान वटिका वनावे। अनुपान—आदी का रस और मधु। प्रायः प्रचलित यह सुलभ औषध सेवन कर वहुत अधिक उपकार पाया गया है।

ज्वरारिरस—हिङ्गुल गन्धक, पारद, ताम्र सीसक, अभ्र, सोहागे की खील, विट लवण और मैनसिल ये समभाग लेकर सौन्दाल के पत्तो के रस में १० दिन भावना देकर एक रत्ती परिमाण वटिका तैयार करे आदी के रस अनुपान से यह औषध सेवन करने से सन्ततज्वर मे बहुत उपकार होता है।

सर्वज्वरारि—स्वर्ण, रससिन्दूर, प्रवाल, वङ्ग, लौह, ताम्र, तेजपात, अजवाइन, सोंठ, सेंधानमक, मरिच, कुडा, खदिर, हलदी, दारुहल्दी, रसौत, सोनामाखी ये समभाग में लेकर जल में मर्दन कर २ रत्ती परिमाण वटिका वनावे। इसके सेवन से उग्र ज्वर एक दिन मे वन्द हो। यह औषध प्रयोग करके शीत क्रिया करे। डाव का जल, चीनी, वैगन, मट्ठा और अन्न पथ्य देवे।

सततकज्वर (आमाशयस्थकफकृतज्वरे) **चिकित्सा**—जो ज्वर दिन रात में दो वार हो उसे सततकज्वर कहते है। वृद्धाचार्यों ने इसको द्वैकालिक ज्वर कहा है। द्वैकालिक का केवल यह अर्थ है कि दिन में एक वार और रात में एकवार। केवल दिवस में भी दो वार एवं केवल रात में भी दो वार अर्थात् किसी तरह दो बार होना।

सर्वज्वरारि—पारा और गन्धक समभाग लेकर कज्जली करे, फिर उसमें सोंठ, पीपल, मरिच, जमालगोटा की छाल, वेर, चिरायता और मोथा, इनका चूर्ण पारद के समान भाग मे लेकर सव द्रव्य एकत्र मिलावे। फिर निर्गुण्डी के पत्ते और आदी के रस में भावना देकर एक रत्ती परिमाण वटिका वनावे। इस वटिका के सेवन के वाद रोगी का शरीर गर्म कपड़े से ढक दे। इस औषध के सेवन से सव प्रकार का ज्वर विनष्ट होता है। अनुपान—आदी का रस और मधु।

ज्वरकालकेतुरस—पारद, गन्धक, मीठा (विष), ताम्र, हरिताल, अभ्र प्रत्येक समभाग लेकर, सीज के रस मे घोटकर गजपुट मे पाक करे। मधु के साथ दो रत्ती मात्रा मे यह औषध सेवन करने से सब प्रकार का ज्वर निवारित होता है।

तृतीयकज्वर (इकतरा)

जो ज्वर एक दिवस अन्तर देकर आवे उसे तृतीयक ज्वर कहते हैं। त्र्याहिकारि रस–खर्पर, शङ्ख प्रत्येक १ भाग, तूतिया ½ भाग, ये एकत्र मिलाकर गोजिया, जयन्ती और वटशाक (वैंगन) के रस के साथ ७ दिन भावना देकर ४ रत्ती परिमाण वटिका बनावे। काले जीरे के चूर्ण के अनुपान से सेवन करने पर इसके द्वारा सब प्रकार का तृतीयक ज्वर विनष्ट होता है।

चातुर्थकज्वर (तिजारी)

जो ज्वर दो दिन बीच मे देकर आवे उसे चतुर्थक ज्वर कहते हैं। चातुर्थकारि रस–हरिताल, मैनशिल, तूतिया, शङ्खभस्म और गन्धक प्रत्येक समान भाग, घृतकुमारी के रस के साथ मिलाकर दो सकोरो के बीच रखकर गजपुट की आच देवे (पाक करे)। शीतल होने पर औषध निकाल कर घृतकुमारी के रस मे मर्दन कर दो रत्ती मात्रा मे वटिका बनाये। इसके सेवन से चातुर्थक ज्वर नष्ट होता है। प्रथम तक्र पीकर फिर घृत और मरिच के चूर्ण के साथ यह औषध सेवन करे।

वातबलासक ज्वर

इस ज्वर में थोड़ा थोड़ा शोथ देखा जाता है और शरीर में श्लेष्मा होने से सब अवयवों में जडता जान पड़ती है। थोड़ा थोड़ा शोथ (सूजन) देखकर कोई कोई उसे बेरी-बेरी मानते हैं, किन्तु यह ठीक नही है। वातश्लेष्मा ज्वर की चिकित्सा करने से यह ज्वर शीघ्र नष्ट होता है। आदी के रस, पान के रस और मधु के अनुपान से महालक्ष्मीविलास नामक औषध प्रयोग करने से इस ज्वर मे उपकार देखा जाता है। शोथ अधिक होने से स्वर्णपर्पटी अथवा रसपर्पटी, जीरा पिसा हुआ २ रत्ती और हींग के अनुपान से व्यवहार करने से सुफल होता है। त्रिपुरारि रस आर्दा के रस और मधु के साथ प्रयोग करने से यह दुःसाध्य वातबलासक ज्वर निश्चय दूर होता है।

प्रलेपक ज्वर

इस ज्वर मे रोगी के शरीर पर थोड़ा-थोड़ा पसीना और थोड़ा-थोड़ा ज्वर होता है, माथा भारी होता है और शीत जान पड़ता है। यह ज्वर यक्ष्मा रोगी को होता है। इस से शोष, धातुक्षय, रक्तहीनता आदि कठिनता से दूर होने वाले उपसर्ग उत्पन्न होते रहते हैं। श्रीजयमङ्गल रस प्रलेपक ज्वर की सर्वश्रेष्ठ औषध है। अनुपान—जीरे का चूर्ण और मधु। पुटपाकविषमज्वरान्तक लौह, त्रैलोक्यचिन्तामणि रस, विजय पर्पटी इस रोग की महौषध है।

सुवर्णमालतीरस—स्वर्ण १ भाग, मुक्ता २ भाग, हिङ्गुल ३ भाग, मरीच ४ भाग, खर्पर ८ भाग इनको मक्खन के साथ मर्दन करे। जब तक मक्खन की चिकनाई दूर न हो तब तक मर्दन करे फिर २ रत्ती परिमाण गोली बनावे। पीपल के चूर्ण और मधु के साथ मर्दनकर प्रयोग करने से दुःसाध्य प्रलेपकज्वर आरोग्य होता है।

शीतज्वर-चिकित्सा

शीतज्वरारि—शोधित हरताल और पारद सम भाग लेकर करेला के पत्तों के रस में मर्दन कर बालुकायन्त्र मे पाक करे। इसकी मात्रा २ रत्ती। अनुपान—पीपल का चूर्ण और मधु, तुलसीपत्र का रस और मधु, घृत और मधु। पथ्य-दूध, अन्न, मूंग का जूस और घृत। यह सब प्रकार के शीत ज्वरो का नाशक है।

हुताशन रस—पारद, खर्पर, हरिताल, तूतिया, सोहागा की खील और गन्धक प्रत्येक १ तोला और ताम्र ६ तोला एकत्र करेला के पत्तो के रस मे मर्दन कर वालुकायन्त्र मे पाक करे। उसके बाद उसके साथ ६ तोला गोल मरिच चूर्ण मिलावे, इस मिली हुई औषध की मात्रा २ रत्ती है। अनुपान-पान का रस और मधु। यह सब प्रकार के शीत-ज्वरो का नाशक है।

भूतभैरव रस—हरिताल और सीप समभाग ले, और दोनों की समष्टिका $\frac{1}{9}$ नवां भाग तूतिया ले। उन्हें एकत्र घृतकुमारी के रस में मर्दन कर गजपुट में पाक करे, पुट शीतल होने पर औषध चूर्ण कर १ रत्ती मात्रा मे प्रयोग करे। अनुपान-चीनी और मधु।

रात्रिज्वर-चिकित्सा

कटेरी, सोंठ और गिलोय के क्वाथ के साथ श्रीजयमङ्गल रस सेवन करने से सर्वप्रकार का रात्रिज्वर आरोग्य होता है।

चिन्तामणि रस—पारद, गन्धक, विष, लौह, धतूरे के बीज, प्रत्येक १ भाग ले, उसके बाद उसके साथ चीता, सोंठ, पीपल और मरिच प्रत्येक २ भाग मिलाकर आदी के रस और गोड़ा नीबू के रस में मर्दन कर वृहत् भार्ग्यादि क्वाथ के अनुपान से प्रयोग करने पर सब प्रकार के रात्रिज्वर आरोग्य होते हैं।

दाह-ज्वर-चिकित्सा

शूलपाणि—रस १ तोला, गन्धक १ तोला, ताम्र २ तोला, एकत्र नीबू के रस मे मर्दन कर गजपुट मे पाक करे। मात्रा-२ रत्ती। इसको पान के रस कें साथ प्रयोग करे। इसके द्वारा सब प्रकार का दाह ज्वर निवारित होता है।

रामेश्वर रस—रूपा, कांसा, तामा प्रत्येक १ तोला, गन्धक ३ तोला, इनको लाल कांटानट के रस में मर्दन कर ६ बार गजपुट में पाक करे। मात्रा-२ रत्ती। अनुपान—पान का रस और मधु। यह दाहज्वर-नाशक है।

सप्तधातुगत विषमज्वर चिकित्सा—

(१) रसधातुगत विषमज्वर-चिकित्सा—इस ज्वर मे कृष्णरस २ रत्ती, १ रत्ती हींग और २ रत्ती जीरा पीसा हुआ और मधु केअनुपान से व्यवहार करने पर सुफल पाया जाता है। इस ज्वर मे वमन और उपवास हितकर है।

रक्तधातुगत विषमज्वर-चिकित्सा

हिङ्गुलेश्वर रस—पटोल का रस, अड़ूसे के पत्तों का रस, पीपल चूर्ण, चीनी का सरवत, भीगे हुए त्रिफला का जल, अनन्तमूल और मुलहठी के क्वाथ और मधु के अनुपान से व्यवहार करने पर उपकार पाया जाता है।

नीम के पत्तों के रस मे शोधित हिङ्गुल २ रत्ती उक्त अनुपान के योग से और कृष्ण चतुर्मुख भीगे हुए त्रिफला के जल के अनुपान से सेवन करने पर सुफल मिलता है। किसी किसी क्षेत्र में रसमाणिक्य अमृतादि क्वाथ के साथ सेवन से विशेष उपकार होता है। इस रोग में माथे पर जल सीचना और रक्तमोक्षण हितकर है।

मांसधातुगत विषमज्वर-चिकित्सा—विरेचन अधिकार का सर्वाङ्ग-सुन्दर रस इस रोग की श्रेष्ठ औषध है। श्रीमृत्युञ्जयरस आदी का रस और मधु, त्रिनेत्र रस और वातारि रस वेल के पत्ते का रस और मधु, हरिताल भस्म कांटानट का रस और मधु के साथ सेवन करने से मांसगत विपम ज्वर निवारित होता है। इस रोग मे विरेचन हितकर है।

मेदगत विषमज्वर चिकित्सा—इसमें ताम्रभस्म आदी का रस और मधु के अनुपान से दो रत्ती मात्रा मे प्रयोग करने से अमोघ सुफल पाया जाता है। इसमें वमन, विरेचन और स्वेद का प्रयोग हितकर है।

अस्थिगत विषमज्वर चिकित्सा—इस रोग में श्रीजयमङ्गल रस उपसर्ग भेद से जीरा, पान, आदी, पीपल, वेलपत्ता, नाटार डागा, घृत और मधु के अनुपान से प्रयोग करे। हरितालभस्म गाय के घृत के अनुपान से प्रयोग करने से उपकार होता है। पञ्चामृतपर्पटी प्रयोग से अनेक क्षेत्रों में विशेप उपकार होते देखा गया है। यह रोग कष्टसाध्य है। इसमें तैलमर्दन और स्वेद प्रयोग हितकर है।

मज्जागत विषमज्वर-चिकित्सा—यह रोग उत्पन्न होते ही हरिताल-भस्म ½ रत्ती मात्रा में गाय के घी के अनुपान से प्रयोग करना अति हितकर है। विजयपर्पटी का प्रयोग इस में अति हितकर है। पारदभस्म का घी के अनुपान से प्रयोग भी शुभफल देता है। यह रोग अत्यन्त कृच्छ्रसाध्य है।

शुक्रगत विषमज्वर-चिकित्सा—इस ज्वर में रसतालक, गिलोय अथवा सतावर वा अश्वगन्ध चूर्ण वा विदारीकन्द वा आलकुशी वीज के चूर्ण वा गूलर के चूर्ण के अनुपान से प्रयोग करने पर विशेष हित होता है। हरितालभस्म, विजय-पर्पटी, पारद भस्म, त्रैलोक्यचिन्यामणि, स्वर्णभस्म और वज्रपर्पटी इस रोग मे सुफल देती है। यह अतिशय दुःसाध्य व्याधि है।

अन्तर्वेग ज्वर की चिकित्सा

ज्वराङ्कुश रस—पारद १ भाग, गन्धक २ भाग, हिङ्गुल ३ भाग, जमाल-गोटा के वीज ४ भाग, ये द्रव्य दन्तीमूल के क्वाथ में मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण वटिका वनावे। अनुपान—चीनी का जल। अन्तर्वेग ज्वर में नवज्वरेभाङ्कुश

नामक गुटिका सेवन करने से विशेष उपकार होता है। यह औषध सेवन कराकर छाछ, चीनी का शर्बत, डाब का जल, कांजी आदि पथ्य देते हैं।

हारिद्रिक विषमज्वर वा पीतज्वर

इस ज्वर में रोगी का शरीर एक दम हलदी के वर्ण का हो जाता है। मल, मूत्र, थूक इत्यादि सभी हल्दी के रंग के हो जाते हैं।

यह संक्रामक और दुःसाध्य है। इसका विशेष विवरण हमारी लिखित पुस्तक 'सरलनिदान' मे देखिये। इस ज्वर में 'नारायणचूर्ण' कुले खाडा (हारसिंगार) के पत्तों का रस, पुनर्नवा का रस, नीमके पत्तों का रस इनके साथ प्रयोग करे। ताम्रभस्म २ रत्ती मात्रा में आदी के रस और मधु के साथ प्रयोग करे। हरिताल भस्म गाय के घी के साथ प्रयोग करें अथवा रसतालक पटोलपत्र के साथ प्रयोग करे। ये सब अति हितकर हैं। गुडूच्यादि क्वाथ के साथ स्वर्णभस्म वा पुटपाक विषमज्वरान्तक लौह के प्रयोग से भी सुफल पाया जाता है। ताम्रपर्पटी इस रोग की एक श्रेष्ठ औषध है।

ग्रन्थिज ज्वर

यह एक प्रकार का बातश्लेष्मज ज्वर है। यह प्रायः बालकों को होता है। यह संक्रामक व्याधि है। इसमें शरीर के अनेक स्थानों की ग्रन्थियो पर पीड़ा युक्त सूजन होती है। इसका ज्वर अति प्रबल होता है। प्लीहा और यकृत बढ़ जाता है। एवं यह रोग अधिक दिन स्थायी होता है। यह ज्वर त्रिदोषयुक्त होता है, इससे क्षयरोग तक भी हो जाता है।

महालक्ष्मीविलास रस—आदी का रस, पान का रस और मधु मिलाकर सेवन करने से ग्रन्थिज ज्वर आरोग्य होता है। फूली हुई गांठों के ऊपर आदी का रस, अफीम, सहजना की छाल का रस और मुसब्बर (एलुआ) का प्रलेप हितकर है। रसतालक इस ज्वर की सर्व श्रेष्ठ औषध है। इसका अनुपान—आदी का रस, पान का रस और मधु। कस्तूरीभैरव रस और वसन्ततिलक रस भी उक्त अनुपान से प्रयोग करने पर सुफल पाया जायगा। रसमाणिक्य प्रयोग भी अनेक क्षेत्रो में इस व्याधि में बहुत लाभ किया है। इस रोग की प्रथम अवस्था में श्रीमृत्युञ्जयरस तुलसी पत्र का रस और आदी के रस के साथ प्रयोग करना हितकर है। सर्वाङ्गसुन्दर रस आदी के

रस और मधु के साथ प्रयोग करने से सुफल पाया गया है। इस रोग की जटिल अवस्था में पारदभस्म प्रयोग से विशेष सुफल पाया जाता है।

औपत्यक ज्वर

पहाड़ की तलहटी में जो लोग निवास करते हैं, वे अनेक समय झरने का गँदला जल भी पीते रहते हैं। यदि झरने का जल किसी प्रकार दूषित हो जाय, तो उसके पीने से पित्त विगड़ जाता है। किसी-किसी क्षेत्र में श्लेष्मा भी विकृत हो जाता है। औपत्यक ज्वर पित्त-कफ से उत्पन्न होता है। अत एव पित्त-श्लेष्मा जनित ज्वर में जिन ओषधियों के प्रयोग का उपदेश दिया गया है, इसमें भी उन्ही का प्रयोग करना विशेष लाभकारक होगा।

अर्कभस्म—इस रोग की श्रेष्ठ ओषध है। अनुपान–आदी का रस और मधु, पान का रस और मधु। एवं घृत और मधु के अनुपान से पूर्ववत् सेवन करे।

दुर्जलजेता रस—भी व्यवहार किया जा सकता है, अनुपान पूर्ववत्।

त्रिपुरारि रस—आदी के रस और मधु के अनुपान से अत्यन्त सुफल होता है।

एकज्वर

यह एक प्रकार का त्रिदोषज सान्निपातिक ज्वर है। इस रोग में ज्वर नहीं छोड़ता, कुछ घण्टो तक सिर्फ ज्वर का वेग कम हो जाता है। परन्तु फिर ज्वर का वेग वढ़ जाता है। इसमें रोगी नाना प्रकार के जटिल उपद्रवों से युक्त होता है। वमन, प्यास, वेगयुक्त नाड़ी, प्लीहा और यकृत वढ़ जाना, शरीर में दर्द, अस्थिरता, कोष्ठवद्धता, शिरःपीड़ा आदि उपसर्ग विद्यमान होते हैं। ज्वर छूटते समय रोगी को अत्यन्त पसीना आता है। आधुनिक चिकित्सकों के मत से यह मलेरिया ज्वर में गिना जाता है।

एकज्वर-चिकित्सा

प्रथम कुछ दिन श्रीमृत्युञ्जय रस वा हिङ्गुलेश्वर रस वा त्रिपुरारि रस वा स्वल्प लक्ष्मीविलास रस, आदी, पान और तुलसी पत्र के रस के साथ प्रयोग कर वीच-वीच मे कभी-कभी उत्कृष्ट मकरध्वज प्रयोग करे। जव देखे कि सम्पूर्ण रूप से आम रस का परिपाक हुआ है, तव नवज्वरसुरारि अथवा वृहत्

कस्तूरीभैरव वा ज्वराङ्कुश रस प्रयोग करे। यदि इनसे उपकार न हो तो ज्वरान्तक योग प्रयोग करने से निश्चय ज्वर छूट जायगा।

ज्वराङ्कुश रस—सोहागा, पारद, गन्धक प्रत्येक १ भाग, ताम्र भस्म २ भाग ये एकत्र खरल मे मर्दन कर उसके साथ मरिच चूर्ण, शङ्खभस्म, इमलीक्षार और सोनामाखी प्रत्येक १ भाग मिलाकर नीबू के रस मे मर्दन कर चने के प्रमाण वटिका बनावे। यह एकज्वर नाशक है।

नवज्वरमुरारि—पारद, गन्धक, मनःशिला एकत्र समभाग मे लेकर मर्दन करे। उसके बाद उसे कांकरौल के पत्तो के रस में मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान–कांटानट का रस और चीनी। यह एकज्वर नाशक है।

ज्वरान्तक योग—कान्तलौह चूर्ण ३ भाग, पारा १ भाग, गन्धक २ भाग और सोहागा १ भाग एकत्र नीम की छाल के क्वाथ में मर्दन कर गजपुट में पाक करे। उसके बाद उसमे मछली के पित्त की भावना देकर २ रत्ती मात्रा में वटिका बनावे। आदी के रस के अनुपान से यह औषध सब प्रकार के एकज्वर का नाशक है।

पचन जनित ज्वर वा विषाक्त ज्वर

आयुर्वेद मत से यह एक प्रकार का सान्निपातिक क्षतज ज्वर है। किसी प्रकार से जटिल रोग भोग काल में शरीर के किसी स्थान में चोट लग जाने से यह रोग पैदा होता है। शरीर में किसी प्रकार का विष प्रवेश करने से ऐसा ज्वर होता है। शरीर का कोई स्थान सड़ना आरम्भ होने पर भी यह दुःसाध्य ज्वर होता है। सड़ना (पचन) निवारित हुए विना यह ज्वर अच्छा नहीं होता। इस में रक्त-शोधक, पित्तनाशक 'औषध हितकर है। कृष्णरस, रसमाणिक्य, गोदन्त हरिताल भस्म, रसतालक इस ज्वर की सर्वश्रेष्ठ औषध है। विजयपर्पटी, हरिताल भस्म और क्षेत्र विशेष में रसपर्पटी व्यवहार से इस रोग मे विशेष लाभ पाया गया है।

वातज्वर

यह ज्वर सन्धि का आश्रय करके होता है, इसमे शरीर की गांठ-गांठ मे दर्द होता है, ज्वर का वेग अधिक होता है और अरुचि होती है। आयुर्वेद मत से यह वातश्लेष्मज उत्कट ज्वर विशेष है।

आनन्दभैरव रस—पारद, गन्धक, विष, प्रत्येक सम भाग, मरिच चूर्ण ८ भाग, सोहागे, की खील ४ भाग ये सब भांगरा और खट्टे अनार के रस में भावना देकर २ रत्ती प्रमाण वटिका वनावे। पान के रस और मधु के अनुपान से यह सब प्रकार का वातज्वर विनाश करता है।

वातविनाशिनी—हरिताल, गन्धक, पारद, अफीम, सोंठ, पीपल, मरिच, हिङ्गुल, सोहागे की खील एकत्र आदी के रस में मर्दन कर मूंग के बराबर वटी बनावे। अनुपान-आदी का रस और मधु।

लक्ष्मीविलास रस—कृष्ण अभ्र १ पल, पारद $\frac{1}{2}$ पल, गन्धक $\frac{1}{2}$ पल एवं बला, सतावर, नागबला, विदारीकन्द, काले धतूरे के बीज, समुद्रफल के बीज, गोखुरू के बीज, वृद्धदारक (विधारा) बीज, भङ्ग के बीज, जायफल, जावित्री और कपूर, प्रत्येक का चूर्ण २ तोला एवं स्वर्ण भस्म २ माशा। इन्हें पान के रस मे मर्दन कर चने के बराबर वटिका बनावे। अनुपान-आदी का रस, पान का रस और मधु। यह सब प्रकार के वात ज्वर का नाशक है।

श्लीपद जनित ज्वर

वातारि अभ्र—दशमूल, निर्गुण्डी, श्वेत निशोथ, पुनर्नवा, मनसासीज, चव्य, वसाक, चीता, विधारा, बला, ऋषभक, शालपर्णी, पाठा, सोदाल और लाल चित्रक, इनके रस में सहस्रपुटित अभ्र मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण वटिका करे। अनुपान—वेल पत्र तथा आदी का रस और मधु। यह श्लीपद जनित ज्वरनाशक है।

वातारि रस—पारद १ भाग, गन्धक २ भाग, हरीतकी १ भाग, आंवला १ भाग, वहेरा १ भाग, चीते की जड़ ४ भाग और गुग्गुल ५ भाग। एरण्ड के तेल के साथ मर्दन करे। वटिका ६ रत्ती प्रमाण। अनुपान—सोंठ और एरण्ड मूल का क्वाथ। यह श्लीपद जनित ज्वरनाशक है।

मोह ज्वर

यह एक प्रकार का सान्निपातिक ज्वर है। सान्निपातिक अन्त्र-ज्वर के साथ इसका बहुत सादृश्य है। निम्नलिखित ओषधियां इस ज्वर मे विशेष फलप्रद हैं।

मृतसञ्जीवनी वटिका—विष, पीपल, सोंठ, गोल मरिच, गन्धक, सोहागे की खील, ताम्र भस्म, धतूरे के बीज, हिङ्गुल ये सम भाग लेकर भङ्ग के पत्तों के रस में एक दिन मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण वटिका वनावे। आक की जड़ के काढ़े के

साथ सेवन करने से यह थोड़े ही समय में मोहज्वर नामक सान्निपातिक ज्वर विनष्ट करता है।

अग्निकुमार रस—पारद ४ तोला, गन्धक १ तोला, कज्जली कर एक दिन गोयालिया के पत्तो के रस मे मर्दन करे। उसके बाद उसके साथ २ तोला विष मिलाकर सब द्रव्यो को काच की शीशी में रखकर वालुकायन्त्र में १½ दिन पाक कर उसके साथ १½ तोला विष और १½ तोला पीपल का चूर्ण मिलाकर मर्दन करे। इसकी मात्रा १ रत्ती, अनुपान–आदी का रस और मधु। यह सान्निपातिक मोहज्वर और अन्यान्य नाना प्रकार की व्याधियों का नाशक है।

अपनी लिखी हुई ज्वरचिकित्सा नामक बृहत् पुस्तक में हमने सब प्रकार के ज्वरो की विस्तृत विवरण के साथ चिकित्साविधि लिखी है।

आक्षेप जनित ज्वर

यह अति दारुण सान्निपातिक ज्वर है। प्रथम से ही सुचिकित्सा होने से यह कदाचित् आरोग्य होता है।

सन्निपातानल रस—पारद, गन्धक, काले सांप का विप, दारुमुज और ताम्र प्रत्येक समभाग लेकर लाङ्गली (पृश्निपर्णी) की जड़, देवदाली की जड़, लाल चीते की जड़, भूमि आंवले की जड़, पञ्चपित्त और आदी के रस मे भावना देकर १ रत्ती प्रमाण वटिका वनावे। आदी के रस और मधु के साथ वह औषध सेवन से सब प्रकार का आक्षेप जनित ज्वर निवारित होता है। इस रोग में रोगी औषध सेवन में असमर्थ हो तो उसे बृहत् सूचिकाभरण रस ब्रह्मरन्ध्र भेद कर प्रयोग करने से उपकार होता है। सर्व प्रकार के सान्निपातिक ज्वर की चिकित्सा अत्यन्त कठिन है। इस चिकित्सा मे चिकित्सक विशेष विवेचना से कार्य करे।

सान्निपातिक ज्वर में विष प्रयोग के बाद विशेष विधि—सान्निपातिक ज्वर में रोगी धनुस्तम्भ, वाक्रोध, संज्ञाहीनता, आदि कठिन उपद्रव युक्त हो और सब प्रकार की चिकित्सा करके चिकित्सक रोग शान्त करने मे असमर्थ हो तो रोगी के आत्मीय स्वजनो की सम्मति लेकर उसकी मुमूर्षु अवस्था मे कृष्ण सर्प विप घटित औषध प्रयोग करे।

इस औपध के प्रयोग के बाद १½ घंटा बीतने पर रोगी साधारणतः संज्ञा पाने पर वारम्वार मस्तक हिलाता रहता है और क्रमशः रोगी का शरीर विशेष गरम

होता है। ऐसे लक्षण होने पर रोगी बच जाता है। यह न होने से रोगी के जीवन की आशा नहीं की जा सकती।

इसके वाद रोगी को एक शीतल जल से भरे हुए टब (नांद) के अन्दर वैठा देवे, टव का जल गरम होने पर गरम जल अलग कर शीतल जल भर देवे। यदि रोगी आहार चाहे तो चीनी मिश्री का सरबत, डाब का जल, पक्का केला खाने को देवे। रोगी को ज्ञान होने पर जव वह टव में से आहार्य प्रार्थना करे, तभी उसे टव में से उठाकर सूखे गमछा से उसका शरीर पोंछ देवे। यदि रोगी का शरीर तैलाक्त (चिकना) जान पड़े तो चावल का आटा शरीर पर मर्दन कर सारे अङ्ग पर कपूर और चंदन लेपन करे। रोगी की अवस्था विवेचना कर प्रतिदिन इस प्रकार शीतक्रिया करनी चाहिये। आठवे दिन रोगी को फिर रस चीनी के साथ पान करावे और उक्त रस रोगी के कान, नेत्र, नासिका और जिह्वा पर निषेक करे। इससे रोगी का वह रोग शान्त होगा। इसके वाद रोगी को प्रचुर परिमाण मे दही मिला हुआ अन्न भोजन करने को देवे। इससे रोगी क्रमशः स्वास्थ्य लाभ कर निश्चित आयु काल पर्यन्त जीवित रहेगा। शास्त्र मे कहा है कि सन्निपात रूप महाघोर मृत्यु सागर में जो रोगी निमज्जित हुआ है उसका जो चिकित्सक उद्धार करे, स्वयं ब्रह्मा भी उसके धर्म की इयत्ता नही कर सकते।

पृथिवी पर जितने प्रकार की व्याधियां है उनमें ज्वर ही श्रेष्ठ है। इसलिये वृद्ध वैद्यो ने इसको रोगों का राजा कहा है। वस्तुतः सब प्रकार के उपसर्गो से युक्त ज्वर की चिकित्सा आयत्त होने से चिकित्सक सब का पूज्य हो तो इसमे संदेह ही क्या है?

अष्टम अध्याय

ज्वरातिसार

यदि पित्तज्वर मे अतिसार देखा जाय और अतिसार में ज्वर आकर उपस्थित हो तो उसे ज्वरातिसार कहते हैं। ज्वर मे जो औषधियां प्रयोग करना कहा है, अतिसार में उनका प्रयोग करना उचित नहीं है।

ज्वरनाशक औषध अधिकांश क्षेत्रो मे विरेचक हैं। अतएव वे अतिसार को वढ़ानेवाली हैं। और अतिसार की दवाइयां धारक (संग्राही) होने से ज्वर को

बढ़ाने वाली हैं। इस कारण ज्वरातिसार में ज्वर विकार और अतिसार अधिकार की ओषधियों का प्रयोग न कर केवल ज्वरातिसार अधिकार की ओषधियां विवेचना पूर्वक व्यवहार करे।

ज्वरातिसार चिकित्सा

नीचे लिखी ओषधियां ज्वरातिसार नाशक हैं:—

(१) **कनकसुन्दर रस**—हिङ्गुल, मरिच, गन्धक, पीपल, सोहागे का फूला, विष और धतूरे के बीज ये समभाग लेकर, भिगोये हुए भङ्ग के पत्तो के जल मे मर्दन कर चना के प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान—मोथा का रस और मधु। इसके द्वारा ज्वरातिसार और अग्निमान्द्य समूल विनष्ट होता है।

(२) **मृतसञ्जीवनी वटिका**—पीपल १ भाग, मीठा विष १ भाग, हिङ्गुल २ भाग एकत्र जम्हीरी के रस मे घोटकर १ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान—शीतल जल। यह ज्वरातिसार, विसूचिका और सन्निपात नाशक है।

(३) **गगनसुन्दररस**—हिङ्गुल, सोहागा, गन्धक, समभाग लेकर आक के रसमें ३ दिन भावना देकर १ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनु पान—श्वेत धूना २ रत्ती और मधु अथवा बकरी का दूध। इसके सेवन से रक्तस्राव, आमशूल और मन्दाग्नि संयुक्त प्रवल ज्वरातिसार निवारित होता है।

(४) **प्राणेश्वररस**—पारद, गन्धक, अभ्र, सोहागे का फूला, देवदाली, अजवाइन और जीरा प्रत्येक ४ तोला, यवाखार, हींग, पांचो नमक मिलित, विडङ्ग, इन्द्रयव, धूना, चीता प्रत्येक दो तोला, ये सब द्रव्य जल मे मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण गोली वनावे। मधु के साथ सेवन से इसके द्वारा सब प्रकार का ज्वरातिसार निवारित होता है।

विशेष द्रष्टव्य—यदि रोगी दुर्बल न हो तो उपवास ही ज्वरातिसार की सर्व श्रेष्ठ औषध है। उपवास द्वारा अति सहज में दोष का परिपाक होता है। प्रथम दो-एक दिन उपवास और सम्पूर्ण विश्राम देने के बाद सामान्य औषध प्रयोग करने से रोगी अति सहज में रोग मुक्त होता है। परन्तु रसचिकित्सा में यह नियम नही घटता। रोग परीक्षा करके प्रथम से ही रसौषधि प्रयोग करने से फल अच्छा ही होता है।

—०००—

नवम अध्याय

अतिसार-चिकित्सा

अतिसार चिकित्सा आरम्भ करने के पूर्व चिकित्सक अतिसार की आमावस्था और पक्वावस्था का विषय अच्छी तरह जानकर चिकित्सा आरम्भ करे। क्योंकि आमातिसार मे धारक औपध और पक्वातिसार मे पाचक औषध प्रयोग नही की जाती। आमातिसार मे धारक औषध प्रयोग करने से नाना प्रकार के रोगों की उत्पत्ति होती है। अतिसार होते ही डाक्टर को बुलाकर रोग की आम और पक्वा-वस्था सम्यक् रूप से विवेचना किये विना इन्जेक्शन द्वारा अतिसार बन्द करने से परिणाम में रोगी की कितनी हानि होती है वह वर्णनातीत है किन्तु आमातिसार में यदि खूब अधिक परिणाम मे मल निकल कर रोगी का धातु और बल क्षीण हो तो आमावस्था मे भी धारक औपध प्रयोग करे। क्योंकि वल क्षय होने के कारण रोगी की मृत्यु हो सकती है।

आमातिसार के गुरुत्व के कारण अपक्व मल जल में डालने से डूब जायगा, और पक्वातिसार में पक्वमल जल मे डालने से तैरने लगेगा, अपक्व मल यदि अतिशय पतला हो तो जल मे गिराने से तैरने लगेगा और पक्व मल कठिन होने से और उसमें श्लेष्मा का दोप रहने से वह डूब जायगा। कफातिसार में कफ के भारीपन के कारण पक्वमल भी जल में डूब जाता है। आमातिसार में पेट में मरोड़, गुड़गुड़ शब्द होता है, मुख में लार पैदा होती है और थोड़ा-थोड़ा करके दुर्गन्ध युक्त मल निकलता है। अतिसार में बलवान रोगी के पक्ष में उप-वास ही श्रेष्ठ औषध है। उपवास द्वारा दोष का परिपाक और समता सम्पादित होती है।

अतिसार चिकित्सा

वातातिसार-चिकित्सा

आनन्दभैरवरस—हिङ्गुल, विष, त्रिकटु, सुहागे का फूला और गन्धक ये समभाग में लेकर जम्हीरी नीबू के रस में घोंटकर १ रत्ती परिमाण वटिका करके वेल, सोंठ के क्वाथ वा मोथा, दाडिम वा गन्धभादुल (प्रसारिणी) के रस के साथ प्रयोग करे, इससे वातातिसार विनष्ट होता है।

पित्तातिसार-चिकित्सा

कृणाद्यलौह—पीपल, सोठ, पाठा, पीपल, मरिच, आमला, बहेड़ा, हरीतकी, चीता, विडङ्ग, मोथा, वेल, लालचन्दन और सुगन्ध बाला प्रत्येक समभाग, सर्व समष्टि के समान लौह ग्रहण कर जल में मर्दन कर ४ रत्ती प्रमाण वटिका वनावे। जामन की छाल के रस के अनुपान से यह सब प्रकार के उपद्रवयुक्त पित्तातिसार-नाशक है।

वृहत् कनकसुन्दररस—पारा, गन्धक, मरिच, सोहागा भुना हुआ, काले धतूरे के वीज समभाग मे लेकर भारंगी के रस में दो प्रहर मर्दन कर उसके साथ एक भाग अभ्र मिलावे। उसके बाद २ रत्ती परिमाण मे वटिका बनाकर वकरी के दूध के अनुपान से सेवन करने पर सब प्रकार का पित्तातिसार आरोग्य होता है।

श्लेष्मातिसार-चिकित्सा

वृहत् गगनसुन्दररस—पारा, गन्धक, अभ्र, लौह, कौड़ी की भस्म, रौप्य, अतीस प्रत्येक समभाग लेकर धनिया, बेल, और सोठ के क्वाथ में भावना देकर १ रत्ती परिमाण वटिका बनावे। अतीस चूर्ण, बेल, सोठ का क्वाथ, मोथा का रस, कुडे की छाल का रस, अनार के पत्तों के रस के अनुपान से यह औषध प्रयोग करने से कफातिसार आरोग्य होता है।

आमातिसार-चिकित्सा

प्राणेश्वररस—पारा, गन्धक, अभ्र, सोहागे का फूला, सतावरी, अजवाइन, जीरा प्रत्येक ४ तोला, जवाखार, हीग, पञ्चलवण, विडङ्ग, इन्द्रयव, धूना और चीता प्रत्येक २ तोला। ये द्रव्य एकत्र लेकर उत्तम रूप से जल में मर्दन कर दो रत्ती परिमाण वटिका वनावे। प्रसारिणी के रस के अनुपान से यह औषध प्रयोग करने पर सव प्रकार का आमातिसार विनष्ट होता है।

जातीफल रस—पारद, गन्धक, अभ्र, रससिन्दूर, जायफल, इन्द्रयव, धतूरे के वीज, सुहागा भुना, त्रिकटु, मोथा, हरीतकी, आम की गुठली का बीज, बेल, सोंठ, शालवीज, अनार के फल का गूदा, ये सव द्रव्य समभाग लेकर भीगे हुए मग के जल में मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण वटी वनावे। कुड़े के मूल की छाल के क्वाथ के अनुपान से यह सव प्रकार के आमातिसार का नाशक है।

रक्तातिसार-चिकित्सा

कर्पूररस—हिङ्गुल, मोथा, इन्द्रजौ, जायफल, अफीम और कपूर प्रत्येक समभाग लेकर जल में मर्दन कर २ रत्ती की गोली बनावे। कुडे की छाल का रस, अनार के पत्तों के रस के अनुपान से यह औषध सेवन करने से सब प्रकारका उपसर्ग युक्त रक्तातिसार आरोग्य होता है।

अहिफेन वटिका—अफीम और पिण्ड खजूर एकत्र समभाग में मर्दन कर १ रत्ती मात्रा में प्रयोग करने से रक्तातिसार आरोग्य होता है। अनुपान—कुडे की छाल और अनारफल के छिलके का क्वाथ।

त्रिदोषज अतिसार-चिकित्सा

त्रिदोषज अतिसार मे रसपर्पटी, पञ्चामृतपर्पटी, अथवा विजयपर्पटी, युक्ति पूर्वक व्यवहार करने से अवश्य आरोग्य होता है। नीचे लिखी कुछ औषधियो से भी अवश्य सुफल होता है।

(१) **अतिसार वारणरस**—हिङ्गुल, कर्पूर, मोथा, इन्द्रजौ, समभाग लेकर चूर्ण करे। उसके बाद अफीम भिगोये हुए जल से भावना देकर एक रत्ती प्रमाण गोलियां बनावे। अनुपान—कुडे की छाल और अनार के फल की छाल का क्वाथ।

(२) पारद, ताम्र, गन्धक, प्रत्येक २ तोला, विष १ तोला, इमली ½ तोला ये द्रव्य कांजी द्वारा उत्तम रूप से मर्दन कर १ गोला बनावे उसके बाद उस गोलक मे ६ अङ्गुल गर्त कर पान के पत्र द्वारा वह गर्त पूर्ण कर सब गोलक पान से ढक दे, उसके बाद उस गोलक को गजपुट में पाक करे। पाक समाप्त होने पर उसके साथ १ तोला गोल मरिच और १ तोला पकी इमली मिलावे। उसके बाद १ रत्ती प्रमाण वटिका बनाकर बकरी के दूध के अनुपान से प्रयोग करे।

(३) **सर्वाङ्गसुन्दर रस**—पूर्वोक्त महागन्धक नामक औषध का पुटपाक न करने से सर्वाङ्गसुन्दर तैयार होता है। इसकी मात्रा २ रत्ती। अनुपान—कुड़े की छाल और अनार के फल की छाल का क्वाथ।

(४) **शिशुओं के**—उदरामय अतिसार, ज्वर, श्वास, कास आदि रोग में महागन्धक नामक औषध अमृत की तरह कार्यकरी है।

शोथातिसार

शोथातिसार में रसपर्पटी सर्व श्रेष्ठ औषध है। अनुपान जीरा पिसा हुआ २ रत्ती और मधु।

शोकज अतिसार चिकित्सा

शोकज अतिसार में वातातिसार की औषध प्रयोग करने से सुफल पाया जाता है। इस रोग मे पञ्चामृतपर्पटी प्रयोग से हमने अनेक क्षेत्रो मे सफलता होते देखी है। रसपर्पटी, हीग, जीरा पिसा हुआ और मधु के अनुपान से प्रयोग करने पर भी शोकातिसार में सुफल पाया गया है।

प्रवाहिका चिकित्सा

प्रवाहकुठार रस—पारद १ तोला, गन्धक १ तोला ग्रहण कर कज्जली करे। उसके बाद उसे आक के दूध में ३ दिन और मनसासीज (सेंहुड़) के दूध में ३ दिन मर्दन कर, पीली कौड़ी की भस्म २ तोला और शङ्ख भस्म २ तोला मिलाकर पूर्वोक्त रूप से फिर ३ दिन आकन्द और सीज के दूध मे मर्दन कर आदी और चीता के रस मे फिर मर्दन कर सुखावे। उसके बाद उसे गजपुट में पाक कर २ रत्ती मात्रा मे घृत और गोल मरिच के चूर्ण के अनुपान से प्रयोग करने पर सब प्रकार का प्रवाहिका रोग आरोग्य होता है।

दशम अध्याय

ग्रहणी चिकित्सा

ग्रहणी रोग में प्रथम अग्निदीपक औषध प्रयोग करे। दोष की सामता और निरामता की ओर लक्ष्य रख कर ग्रहणीगत दोष का परिपाक करके चिकित्सा करे।

वातज ग्रहणी-चिकित्सा

अग्निकुमार रस—पारद, गन्धक, विष, त्रिकटु, सोहागा भुना, लौह, वन अजवाइन, अफीम प्रत्येक सम भाग लेकर सर्व समष्टि के समान अभ्र लेवे। उसके बाद उसे चीते के क्वाथ में मर्दन कर मरिच प्रमाण वटिका बनावे। यह वातज ग्रहणी की श्रेष्ट औषध है।

ग्रहणीकपाट रस—लौह, पारद, हरिताल, सोनामाखी, सोहागा, प्रत्येक १ भाग, कौड़ी भस्म २½ भाग, गन्धक १ भाग एकत्र जम्हीरी के रस में मर्दन कर गजपुट मे पाक करे। उसके बाद चूर्ण कर २ रत्ती मात्रा में घृत और गोल मरिच चूर्ण वा प्रसारणी के रस के साथ प्रयोग करे। यह वातज ग्रहणी नाशक है।

पित्तज ग्रहणी की चिकित्सा

पीयूषवल्ली रसः—पारद, गन्धक, अभ्र, रौप्य, लौह, शङ्ख भस्म, सोहागें का फूला, हिङ्गु, कचूर, तालीसपत्र, मोथा, धनिया, जीरा, सेंधा, धाइ के फूल, अतीस, सोंठ, गृहधूम, हरीतकी, भिलावा, तेजपात, जायफल, लवङ्ग, गुडत्वक् (दारचीनी), इलायची, सुगन्धवाला, वेल, शुंठी, मेथी और भङ्ग सम भाग लेकर वकरी के दूध में मर्दन कर ४ रत्ती प्रमाण वटिका वनावे। अनुपान—वकरी का दुग्ध। यह पित्तज ग्रहणी नाशक है।

ग्रहणीशार्दूल रस—शोधित पारद और गन्धक की कज्जली २ तोला, स्वर्ण भस्म दो आने भर, लौंग, नीम के पत्ते, जायफल, जावित्री और छोटी इलायची प्रत्येक २ तोला एकत्र जल में मर्दन कर २ सीपियों में वन्द कर गजपुट मे पाक करे। ४ रत्ती मात्रा में यह औषध मोथा के रस और मधु के अनुपान से व्यवहार करे तो पित्तज ग्रहणी, सूतिका, आमशूल, श्वास, कास, क्षय आदि रोग आरोग्य होते हैं।

श्लेष्मज ग्रहणी रोग चिकित्सा

वज्रकपाट रस—पारद, गन्धक, अफीम, मोचरस, त्रिकटु, त्रिफला ये सव एकत्र चूर्णकर भङ्ग और भांगरे के रस में ७ दिन भावना देकर ३ रत्ती परिमाण वटिका वनावे। अनुपान–मधु। इसके द्वारा श्लेष्मज ग्रहणी आरोग्य होती है।

विजय वटिका—गन्धक १ भाग, पारा १ भाग, कुड़े की छाल की भस्म २ भाग, स्वर्ण, रजत, ताम्र प्रत्येक १ भाग एकत्र आदी के रस मे मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण वटिका वनावे। कुडे के क्वाथ अथवा वकरी के दूध के अनुपान से यह औषध श्लेष्मज ग्रहणी नाशक है।

संग्रह ग्रहणी-चिकित्सा

संग्रहणीकपाट—स्वर्ण, मुक्ता, पारद, गन्धक, सोहागा, अभ्र, कौडी भस्म, मीठा विष प्रत्येक १ तोला, शङ्ख भस्म ८ तोला, एकत्र अतीस के

क्काथ में भावना देकर सुखाकर गजपुट में २ प्रहर पाक करे उसके बाद पुट शीतल होने पर औषध निकाल कर लोह के पात्र में धतूरा, चीता और तालमूली (काली मूसली) के रस मे भावना देकर २ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। यह सब प्रकार की ग्रहणी का नाशक है। अनुपान—वातज ग्रहणी मे घृत और मरिच का चूर्ण, पित्तज ग्रहणी में मधु और पीपल चूर्ण, श्लेष्मज ग्रहणी में भांग का क्काथ अथवा घृत और त्रिकटु चूर्ण।

घटी यन्त्र नामक ग्रहणी-चिकित्सा

शम्बूकादि वटी—सीप की भस्म और सेंधानमक सम भाग लेकर मधु के साथ घोटकर ६ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। तक्र के अनुपान से यह औषध घटीयन्त्र नामक ग्रहणी नाशक है।

त्रिदोषज ग्रहणी-चिकित्सा

ताम्रयोग—पारद १ भाग, गन्धक २ भाग एकत्र कज्जली कर नीबू के रस में मर्दन कर उसके ऊपर ३ भाग शोधित नैपाली ताम्र के छोटे छोटे टुकडे डाले। ७ दिन में यह ताम्र गल जायगा, इसके बाद उसको फिर नीबू के रस में मर्दनकर जमीकन्द के भीतर गर्त कर उसमें उक्त द्रव्य भर कर ४ अङ्गुल प्रमाण मृत्तिका लेप देकर गजपुट मे पाक करे। इस तरह जो ताम्र भस्भ पाया जाय, वह ताम्र भस्म, त्रिफला का चूर्ण, विडङ्ग चूर्ण और त्रिकटु चूर्ण प्रत्येक १ रत्ती मात्रा लेकर घृत और मधु के साथ रोगी को खिलावे। यह सब प्रकार की दु:साध्य ग्रहणी रोग का नाशक है। प्रयोजन होने पर विडङ्ग को छोड़ अन्यान्य द्रव्यों की मात्रा प्रतिदिन एक रत्ती परिमाण में बढ़ाकर १२ रत्ती तक बढ़ावे। उसके बाद आरोग्य दर्शन होने पर फिर मात्रा घटा कर औषध सेवन समाप्त करे।

दुग्धवटी—पारद, गन्धक, मीठा विष, ताम्र, अभ्र, लौह, हरिताल, हिंगुल, दारुमुज और अफीम ये सम भाग लेकर दूध में मर्दन कर आधे जौ परिमाण वटिका बनावे। यह औपध सेवन करते समय रोगी नमक और जल बन्द कर केवल दूध पथ्य करे। इस औपध का अनुपान दुग्ध है। इससे दुर्निवार ग्रहणी, शोथ और विषमज्वर निवारित होता है। यह औषध दृष्टफल है।

अन्य प्रकार की दुग्धवटी—मीठा विप, अफीम प्रत्येक १२ भाग, कान्त-लौह ६ भाग, अभ्र ३० भाग, ये एकत्र दुग्ध में मर्दन कर २ रत्ती परिमाण वटिका बनाकर प्रातः काल दुग्ध के अनुपान से प्रयोग करे। यह औषध सेवन कर नमक और जल खाना-पीना वन्द रक्खे। यह सेवन करने से वहुत दिन की ग्रहणी, ग्रहणी संयुक्त शोथ, ज्वर आदि अनेक व्याधियां आरोग्य होती हैं।

जव नाना प्रकार की औषध व्यवहार करके भी किसी प्रकार ग्रहणी आरोग्य न की जासके, तव पर्पटी सेवन के नियम से रसपर्पटी, स्वर्णपर्पटी, ताम्रपर्पटी, लौहपर्पटी, विजयपर्पटी रोगी और रोग की अवस्थानुसार व्यवहार करने से तथाकथित असाध्य दुर्निवार ग्रहणी आरोग्य होती है। डाक्टरी चिकित्सा द्वारा त्यागे हुए इनटेस्टाईनैल टी-वी में ग्रहणी रोगाधिकारोक्त औषध व्यवहार से अनेक रोगी निर्दोप भाव से आरोग्य हुए हैं।

अनेक ग्रहणी रोग में ग्रहणी रोग भोगते-भोगते रोगी के पेट, आमाशय, पक्काशय और ग्रहणी में घाव हो जाता है। इस समय दुग्ध पथ्य कर उल्लिखित पर्पटी में से कोई एक युक्तिपूर्वक व्यवहार करने से अति उत्तम फल होता है। किसी चिकित्सा से यदि पेट की पीड़ा दूर न हो तो वह पर्पटी चिकित्सा से आरोग्य होती है। ग्रहणी रोगी की अन्तिम अवस्था में जब रोगी को क्षय, अरुचि, वमन, शोथ, जीर्णज्वर आदि अरिष्ट लक्षण प्रकाशित हों और रोगी के वचने की आशा न रहे तव नीचे लिखी औषध प्रयोग करने से मुमूर्षु रोगी भी जीवन लाभ करता है।

विजयपर्पटी—पारद, हीरक, स्वर्ण, रौप्य, मुक्ता, ताम्र, अभ्र समभाग में ये ग्रहण करें। उसके वाद मिलित द्रव्यों की कज्जली वनाकर पर्पटी पाक के नियम से पर्पटी तैयार करे। ज्वराधिकार में कथित पर्पटी सेवन के नियम से यह पर्पटी सेवन करने से सव प्रकार की असाध्य ग्रहणी, यक्ष्मा, अन्त्रक्षय, विपमज्वर, जीर्णज्वर और सव व्याधि विनष्ट होती है। यह दृष्टफल है।

एकादश अध्याय

अर्श (बवासीर)-चिकित्सा

जो औषधि और पथ्यादि वायु का अनुलोम, अग्नि की दीप्ति और बल की वृद्धि करती हो, अर्श रोगी को उन्हीं औषध और पथ्यादि की व्यवस्था करे। मलमूत्रादि का वेग रोकना, मैथुन, तेज सवारी पर यात्रा, उत्कट भाव से बैठना, एवं वायुवृद्धिकर अन्न-पानादि अर्शरोगी सर्वदा परित्याग करे।

वातोल्वण अर्श की चिकित्सा

अर्शकुठाररस—पारद १ तो०, गन्धक २ तो०, ताम्र ३ तो०, लौह ४ तो०, शुंठी २ तो०, दन्तीमूल २ तो०, पीलू बीज २ तो०, चीतामूल ३ तो०, जवाखार ५ तो०, सोहागा ५ तो०, सैंधव ६ तो०, ये द्रव्य ३२ तोला सीज के रस और ३२ तोला गोमूत्र में मर्दन कर मृदु अग्निसे पाक करे। औषध का जलीय अंश जल जाने पर ४ रत्ती मात्रा में वटिका बनाकर जमीकंद के भुर्ते और पुराने गुड़, अनार के रस अथवा छाछ के अनुपान से प्रयोग करे। यह वातज अर्शनाशक है।

पित्तज अर्श-चिकित्सा

तीक्ष्णमुखरस—अभ्र, स्वर्ण, ताम्र, तीक्ष्ण लौह, मुण्ड लौह, पारदभस्म, गन्धक, मण्डूर और सोनामाखी, प्रत्येक समान भाग में लेकर घृतकुमारी के रस में मर्दन कर तीन दिन तुष (भूसी) की अग्नि से पाक करे। औषध शीतल होने पर ४ रत्ती मात्रा चीनी के साथ प्रयोग करे। इससे सब प्रकार के पित्तज अर्श आरोग्य होते हैं।

श्लेष्मज अर्श चिकित्सा

पञ्चाननवटी—रससिन्दूर, अभ्र, लौह, ताम्र प्रत्येक १ तोला, भिलावा ५ तोला, इन सबको कुदरती जमीकंद के रस मे मर्दन कर ४ रत्ती परिमाण वटिका बनाकर घृतके अनुपान से औषध सेवन करने से सब प्रकार का अर्श दूर होता है।

शिलागन्धकवटिका—मैनशिल और गन्धक समभाग लेकर भृङ्गराज के रस में भावना देकर घृत और मधु के साथ मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। घृत और मधु के अनुपान से यह औषध श्लेष्मज अर्शनाशक है।

अर्कयोग—पारद १ भाग, गन्धक १ भाग, एकत्र कज्जली कर नीवू के रस में मर्दन करे। उसके वाद उसके ऊपर ३ भाग ताम्र डाले। ७ दिन वाद उसे फिर नीवू के रस में और जङ्गली जमीकन्द के रस में मर्दन कर एक दिन गजपुट मे पाक करे। दो रत्ती परिमाण यह औषध घृत और मधु के साथ सेवन करने से सव प्रकार का अर्श निवृत्त होता है।

रक्तज अर्श चिकित्सा

(१) रस चिकित्सा प्रथम खण्ड मे ताम्र प्रसङ्ग में कही हुई ताम्र भस्म २ रत्ती, कुड़े की और अनार की छाल के क्काथ के अनुपान से सेवन करने पर सव प्रकार का रक्तज अर्श निवृत्त होता है।

(२) **पञ्चानन रस**—पारद भस्म, अभ्र, लौह, ताम्र, गन्धक, प्रत्येक सम भाग लेकर समष्टि के समान शोधित भिलावे की मीगी लेकर पहले घी मे और फिर जमीकन्द के रस मे मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान-घृत, अनार का रस, लालचन्दन और मुलहठी के क्काथ, तिल कल्क और वकरी के दूध और देशी चीनी। इन औषधियों के साथ सेवन से सब प्रकार का रक्तज अर्श आरोग्य होता है।

(३) रसपर्पटी रक्तार्श की सर्वश्रेष्ठ औषध है। अधिक रक्तस्राव होकर एकदम वहुत रक्तहीनता उपस्थित होने पर विजयपर्पटी व्यवहार करने से क्षय और रक्तार्श निवृत्त होता है।

सब के प्रकार अर्श की नाशक कुछ औषधियां

अष्टाङ्गरस—पारद, गन्धक, मण्डूर, त्रिफला, चीता, त्रिकटु और भृङ्गराज ये समभाग में लेकर सेमर और गिलोय के रस मे भावना देकर ६ रत्ती प्रमाण वटिका वनावे। अनुपान-दोषानुसार छाछ, हरीतकी चूर्ण, गरम जल, पुराना गुड़, कुडे की छाल, अनार के फल के छिलके का क्वाथ, नागेश्वर फूल की रेणु इत्यादि।

रसगुडिका—रससिन्दूर १ भाग, विड़ङ्ग २ भाग, मरिच ३ भाग, अभ्र ३ भाग, ले एकत्र गङ्गा-पातड् (कचूर) के रस में मर्दन कर २ रत्ती परिमाण वटिका वनावे। पूर्वोक्त अनुपान के साथ व्यवहार करने से सव प्रकार का अर्श आरोग्य होता है।

कनकसुन्दर रस—पारद, सोनामाखी, जारित कान्तलौह, अभ्र, सीसक, स्वर्ण, गन्धक प्रत्येक १ भाग एकत्र ये द्रव्य मिलाकर मृदु अग्नि से विद्याधरयन्त्र मे पाक करे। शीतल होने पर उसके साथ एक भाग त्रिकटु चूर्ण मिलाकर १ रत्ती मात्रा से प्रयोग करे। यह सब प्रकार के अर्श और अनुपान भेद से अन्यान्य अनेक प्रकार के रोगो का नाशक है।

द्वादश अध्याय

भगन्दर चिकित्सा

वातिक शतपोनकसंज्ञक भगन्दर चिकित्सा

वारिताण्डवरस—विशुद्ध पारद १ भाग, गन्धक २ भाग एकत्र कज्जली कर घृतकुमारी के रस से मर्दन करे। फिर २ भाग शोधित ताम्रपत्र ग्रहण कर उक्त घृतकुमारी के रसमर्दित कज्जली द्वारा लेप प्रदान करे। अनन्तर एक मिट्टी के पात्र के नीचे का कुछ अश आरण्यकण्डो की राख से भरकर उक्त ताम्रपत्र उसके ऊपर रख दे, फिर वैसी ही राख से सब पात्र को चारो ओर से घेर दे। पात्र का मुख एक सकोरा से ढककर २ प्रहर तक चुल्ली के ऊपर तीव्र अग्नि से पाक करे। पात्र शीतल होने पर हांडी मे से औषध बाहर निकाल कर जम्हीरी के रस मे ७ वार अन्धमूषा मे रख गजपुट से पाक करे। इसकी मात्रा १ रत्ती है। अनुपान—घृत और मधु। यह औषध सेवन के अन्त मे तालमूली आधा तोला और लहसुन ½ तोला, कांजी के साथ पीस कर सेवन करे। यह औषध सेवन के समय दिन में सोना, मैथुन और शीतल द्रव्य सेवन त्याग कर स्वादिष्ट वस्तुओ का आहार करे। इसके द्वारा शतपोनक नामक दुःसाध्य भगन्दर आरोग्य होता है।

पैत्तिक उष्ट्रग्रीव नामक भगन्दर चिकित्सा

भगन्दरकुठार—पारद १ भाग, गन्धक २ भाग, एकत्र मर्दनपूर्वक कज्जली कर घृतकुमारी के रस द्वारा ३ दिन मर्दन कर २ भाग ताम्र और २ भाग लोह उसके साथ मिलावे, अनन्तर उसको एक हाड़ी मे रखकर सकोरे से ढक दे। उसके ऊपर भस्म रख कर एक चूल्हे पर २ प्रहर पाक करे। शीतल होने पर चूर्ण कर नीबू के रस में ७ भावना दे पुटपाक में दग्ध करे। यह एक रत्ती मात्रा मे

सेवन करने से पैत्तिक उष्ट्रग्रीव नामक भगन्दर आरोग्य होता है। अनुपान–घृत और मधु।

श्लैष्मिक परिस्रावि नामक भगन्दर चिकित्सा

भगन्दरकरिकेशरी—हिङ्गुल, गेरू, रसौत, मैनशिल, गूगल, पारद, कुङ्कुम, गन्धक, लौह, सेंधानमक, अतीस, चव्य, शरफोका, विडङ्ग, अजवाइन, गजपीपल, मरिच, आककी जड़, वरुण–मूल, श्वेत धूना, हरीतकी ये सब द्रव्य समभाग लेकर कटु तैल में मर्दन कर ६ रत्ती प्रमाण गोली बनावे। मधु के साथ सेवन करने से इसके द्वारा श्लैष्मिक परिस्रावि नामक भगन्दर विनष्ट होता है।

सान्निपातिक शम्बूकावर्त नामक भगन्दर

भास्कर योग—शोधित ताम्रपत्र ८ तोला, पारद ४ तोला, गन्धक ८ तोला एकत्र कज्जली कर जम्हीरी के रस में मर्दन करे, फिर अन्धमूषा मे उक्त तीनों द्रव्य बन्द कर ५ वार लघु पुट देवे। १ रत्ती मात्रा से यह औषध घृत और मधु के साथ सेवन करने से सब प्रकार का भगन्दर विनष्ट होता है। यह शम्बूकावर्त नाशक है।

शल्यज उन्मार्गी नामक भगन्दर चिकित्सा

व्रणराक्षस तैल—कटु तैल १½ छटाक लेकर फिर पारद, गन्धक, हरिताल, सिन्दूर, मैनशिल, लहसुन, विष और ताम्र प्रत्येक २ तोला उसके ऊपर डाले। उसके बाद इन द्रव्यों को उत्तम रूप से मर्दन कर सूर्य की धूप मे पाक करे। यह तैल प्रयोग करने से शल्यज उन्मार्गी नामक भगन्दर शीघ्र विनष्ट होता है।

त्रयोदश अध्याय

अग्निमान्द्यादि रोगाधिकार आमाजीर्ण चिकित्सा

आमाजीर्ण मे कफनाशक क्रिया हितकर है।

अग्निकुमार रस—पारा, गन्धक, सोहागे का फूला प्रत्येक १ भाग, विष, कौड़ीभस्म, शङ्खभस्म प्रत्येक ३ भाग, मरिच ८ भाग ये सब एकत्र पक्के जम्हीरी के रस में मर्दन कर ४ रत्ती प्रमाण गोली बनावे। इसके सेवन करने से आमाजीर्ण विनष्ट होता है। अनुपान–आदी का रस और मधु, नीबू का रस और चूने का जल इत्यादि।

रामबाणरस—पारद, गन्धक, विष, लौंग प्रत्येक १ भाग, मरिच २ भाग, जायफल ½ भाग, एकत्र कच्ची इमली के रस मे मर्दन कर उर्द प्रमाण गोली बनावे। अनुपान-आदी का रस और मधु। यह आमाजीर्णनाशक है।

क्षुधासागररस—त्रिकटु, त्रिफला, पञ्चनमक, तीन क्षार प्रत्येक १ भाग, मीठा विष दो भाग एकत्र जल में मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान-लवङ्ग चूर्ण और मधु वा आदी का रस और मधु।

तन्त्रनाथ गुडिका—पारद, गन्धक, मीठा विष, त्रिफला, त्रिकटु, जीरा प्रत्येक १ भाग, लौह, अभ्र, शङ्ख, कौड़ीभस्म प्रत्येक २ भाग, लवङ्गचूर्ण १४ भाग, ये एकत्र जम्हीरी नीबू के रस मे ७ दिन भावना दे २ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान-पान का रस और मधु। यह आमाजीर्ण आदि सब प्रकार की मन्दाग्नि का नाशक है।

अग्निरस—मरिच, मोथा, कुडा, वच प्रत्येक १ भाग, विष ४ भाग, पारद, गन्धक १-१ भाग एकत्र आदी के रस में मर्दन कर मूंग समान गोली बनावे। गरम जल अथवा आदी के रस के अनुपान से सेवन करने पर यह सब प्रकार के आमाजीर्ण का नाश करता है।

विदग्धाजीर्ण-चिकित्सा

भक्तविपाक वटी—सोनामाखी, पारद, गन्धक, हरिताल, मनःशिला, निसोत, दन्ती, मोथा, चीता, सोंठ, पीपल, मरिच, हरीतकी, अजवाइन, काला जीरा, हीग, कुटकी, सैंधव, वन अजवाइन (अजमोद), जायफल और जवाखार ये सब द्रव्य चूर्ण कर आदी के रस, हुड़हुड के रस, निर्गुण्डी के रस और तुलसी पत्र के रस में मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। शीतल जल के साथ सेवन करने से यह औषध विदग्धाजीर्ण नाशक है।

अग्निकर वटी—जारित ताम्र और पीपल चूर्ण सम भाग लेकर शीतल जल से मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। शीतल जल और हरीतकी चूर्ण के अनुपान से यह वटिका सेवन करने से विदग्धाजीर्ण आरोग्य होता है।

सर्वरोगान्तक वटी—पारा, गन्धक, मीठा विष, अजमोद, त्रिफला, सज्जीक्षार, जवाखार, चीते की जड़, सेंधानमक, जीरा, सोंचर नोन, विडङ्ग, सामुद्र-लवण, त्रिकटु प्रत्येक सम भाग लेकर शोधित कुचिला सब के समान लेकर

जम्हीरी के रस में मर्दन कर मरिच प्रमाण वटिका वनावे। अनुपान—हरीतकी चूर्ण, शुण्ठी चूर्ण और पुराना गुड़। यह सब प्रकार के अग्निमान्द्य का नाशक है। विदग्धाजीर्ण में पित्तशान्तकरी क्रिया हितकर है।

विष्टब्धाजीर्ण-चिकित्सा

इसमें वायुनाशक क्रिया हितकर है।

महाशङ्ख वटी—शङ्ख भस्म, पांचो नमक, इमली क्षार, त्रिकटु, हींग, विष, पारद, गन्धक, लौह, वङ्ग ये द्रव्य उत्तम रूप से मर्दन कर प्रथम आपां (चिचिढ़ा), चीतामूल के क्वाथ में भावना देवे। उसके वाद जम्हीरी, विजौरा नीवू, अम्लवेतस्, आमरूल (चौघतिया), इमली, वेर और करञ्ज के रस में इस भाव से भावना दे कि जिससे औषध में खट्टापन उत्पन्न हो। उसके वाद २ रत्ती मात्रा में वटिका वनावे और उष्ण जल के अनुपान से यह औषध सेवन करने से सब प्रकार का विष्टब्धाजीर्ण आरोग्य होता है।

अजीर्णकण्टक रस—पारद १ पल, गन्धक १ पल, हरीतकी २ पल, सोंठ, पीपल, मरिच, सैंधव प्रत्येक ३ पल, भङ्ग ४ पल, इन सबको कागजी नीवू के रस में ७ वार मर्दन कर ७ वार सुखाले। इसकी मात्रा-२ रत्ती। अनुपान-पान, गरम जल और सैंधव चूर्ण। यह सब प्रकार के विष्टब्धाजीर्ण का नाशक है।

रसशेषाजीर्ण चिकित्सा

क्रव्याद रस—पारद ८ तोला, गन्धक १६ तोला, ताम्र ४ तोला, लौह ४ तोला, सव का चूर्ण कर अग्नि पाक से गलावे और अण्डी के पत्ते पर ढाल कर पर्पटी का आकार करे। फिर उसका चूर्ण कर लेवे। फिर किसी लोहपात्र में पके जम्हीरी का रस १०० पल रखकर उसमें वह चूर्ण डाले और मृदु अग्नि की ज्वाला से पाककर सुखाले। अनन्तर पञ्चकोल, विजौरा नीवू और खैकल (अम्लवेंत) के रस में ७ वार भावना देवे। फिर उसके साथ सोहागा ८ तोला, विड लवण ४ तोला, मरिच ४ तोला मिलाकर चना की कांजी में ७ वार भावना दे। फिर ४ रत्ती परिमाण वटी प्रस्तुत करे। इस वटी को तक्र और सैन्धव के साथ सेवन करे। यह औषध सेवन से ६ घण्टे में सब जीर्ण हो जाता है। यह रसशेषाजीर्ण की एक उत्कृष्ट औषध है।

विसूचिका चिकित्सा

बृहच्छङ्ख वटी—सेंहुड़, आक, इमली की छाल, आपाड् (चिचिढ़ा), केला, तिलनाल, पलाश इनका क्षार प्रत्येक ८ तोला; पांचो नमक प्रत्येक ८ तोला, सज्जीखार, जवाखार और सोहागे का फूला मिलित ८ तोला ये सब द्रव्य सूक्ष्म चूर्ण कर एक पात्र मे रक्खे और ८ तोला परिमित शङ्ख के टुकड़े अग्नि में क्रम से ७ वार तपाकर ४ सेर नीबू के रस से ७ बार बुझावे, इस तरह बुझाने से शङ्ख द्रवीभूत होता है। अनन्तर सोठ का चूर्ण २ पल, मरिच का चूर्ण २ पल, पीपल १ पल, शोधित हीग आधा पल, पीपरामूल, चीता, अजवाइन, जीरा, जायफल और लवङ्ग प्रत्येक का चूर्ण ४ तोला, एवं पारद, गन्धक, विष, सोहागा भुना, मनःशिला प्रत्येक का चूर्ण २ तोला ले। फिर सब चूर्ण एकत्र मिलावे और आधा सेर खट्टी वस्तु में उसे मर्दित कर उर्द बराबर वटिका बनावे। यह विसूचिका रोग की अतीव उत्कृष्ट औषध है।

वीरभद्राभ्र—हजार अग्नि का अभ्र ४ तोला लेकर उसे ९० दिन चीते के रस मे भावना देकर आदी के रस मे मर्दनकर २ रत्ती की वटिका बनावे। इन्हे पान वा आदी के रस के साथ सेवन करे। यह भी विसूचिका रोग की उत्कृष्ट औषध है।

विध्वंसनामा रस—पारा, गन्धक, सोहागा प्रत्येक १ भाग लेकर एकत्र मर्दन कर ७ वार जायफल के क्वाथ की भावना देकर २ रत्ती परिमाण वटिका बनावे। चीनी के शर्वत के अनुपान से यह औषध सेवन करने से विसूचिका नष्ट होती है।

अलसक चिकित्सा

वज्रधर रस—पारद, गन्धक, ताम्र, अभ्र, यवक्षार, सोहागा, वरुण की छाल, वासक (अरूसा) की जड, अपामार्ग क्षार और सेंधानमक, प्रत्येक समभाग लेकर अच्छी तरह मर्दन करे। उसके बाद हाथीशुण्डा के रस और आमरूल (चौपतिया) के रस के साथ मर्दन कर पुटपाक करे। पात्र शीतल होने पर औषध चूर्ण कर १ रत्ती मात्रा मे औषध प्रयोग करे। अनुपान—आदी का रस और मधु।

दण्डालसक चिकित्सा

राजशेखर वटीः—पारद भस्म १ भाग, मीठा विष २ भाग, हरीतकी चूर्ण, गन्धक, त्रिकटु प्रत्येक १ भाग, ये एकत्र मिलाकर ७ बार पान के रस मे और कनक (धतूरे) के रस में मर्दन कर और ७ वार भावना देकर चना प्रमाण वटिका वनावे। और उन्हें छाया मे सुखावे। गरम जल के अनुपान से यह वटी दण्डालसकादि सव प्रकार के उदर रोग का नाशक है।

विलम्बिका चिकित्सा

वडवामुखी वटिका—ताम्रभस्म, लौह, अभ्र, विडङ्ग, ईशलाङ्गलीया, त्रिकटु, सुगन्ध वाला, नीम की छाल, हलदी और मीठा विष ये सव द्रव्य समभाग लेकर भृङ्गराज, कुचिला, वाला (सुगन्ध वाला) और आदी के रस मे मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण वटिका वनावे। आदी के रस के अनुपान से यह वटिका विलम्बिका रोग नाशक है।

विशेष द्रष्टव्यः—चिकित्सक सदा ही सर्वतो भाव से जठराग्नि की रक्षा करे, जठराग्नि रक्षित होने से कभी रोगी का किसी तरह अनिष्ट नही होता है। सौ दोष कुपित हो और रोगी चाहे सौ व्याधियो से क्यो न पीडित हो, परन्तु कायाग्नि रक्षित होने से ही जीवन रक्षित होगा। चिकित्सक समाग्नि की रक्षा करे, विषमाग्नि में वायु प्रशमक, तीक्ष्णाग्नि में पित्त प्रशमक और मन्दाग्नि में श्लेष्मा विशोधक कार्य करे।

त्रयोदश अध्याय

आभ्यन्तर कफोत्पन्न एवं पुरीषोत्पन्न क्रिमि चिकित्सा

क्रिमिनाशकरस—पारा, गन्धक, अभ्र, लौह, मैनशिल, धाई के फूल, त्रिफला, लोध, विडङ्ग, हलदी, दारुहल्दी, ये सब समभाग मे लेकर आदी के रस में ७ वार भावना दे। फिर चने प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान-त्रिफला का चूर्ण वा भीगे त्रिफला का जल और मधु। यह सव प्रकार के आभ्यन्तर क्रिमिनाशक है।

कीटमर्दरस—पारद १ भाग, गन्धक २ भाग, अजवाइन ४ भाग, विडंग ८ भाग, कुचिला १६ भाग, भारगी के वीज ३२ भाग, सब द्रव्य एकत्र चूर्ण

कर आधा तोला परिमाण मधु के साथ सेवन से क्रिमि रोग का विनाश होता है। अनुपान-मोथा (नागरमोथा) का रस। यह अतीव क्रिमिघ्न है।

क्रिमिमुद्गररस—पारद १ भाग, गन्धक २ भाग, अजवाइन ३ भाग, विडङ्ग ४ भाग, कुचिला ५ भाग, पलाश बीज ६ भाग, सबका चूर्ण एकत्र कर ६ रत्ती परिमाण सेवन करे। इसे मधु के साथ चाटकर मोथा का रस अनुपान करे। यह अग्निवर्द्धक और क्रिमिरोग तथा क्रिमि से उत्पन्न अन्यान्य रोगनाशक है।

क्रिमिधूलि-जलप्लवरस—पारद, गन्धक, बङ्ग शङ्खभस्म, प्रत्येक १ भाग, हरीतकी चूर्ण ४ भाग ये सब औषध एकत्र पाक कर पटोल के रस द्वारा मर्दन कर विनौले के समान वटिका बनावे। प्रातः इसमें तीन वटी सेवन कर ऊपर से शीतल जल पीवे। यह पित्तज क्रिमिरोग के लिये व्यवस्था है।

क्रिमिकाष्ठानलरस—पारद, गन्धक, बङ्ग, हरिताल, कौड़ी की भस्म, मैनशिल, कृष्णवर्ण काच (कालानमक), सोमराजी (बाकुची) के बीज, विडङ्ग, दन्तीवीज, जमालगोटा के वीज, शिलाजीत, सोहागा, चीते की जड़ प्रत्येक २ तोला, परिमाण लेकर सीज के क्षार द्वारा मर्दन कर उर्द बराबर वटिका तैयार करे। यह वातज, पित्तज, श्लेष्मज क्रिमि-विनाशक है।

विडङ्गलोह—पारद, गन्धक, मरिच, जायफल, लवङ्ग, पीपल, हरिताल, शुंठी, सोहागा प्रत्येक १ भाग, सब वस्तुओ के तुल्य विडङ्ग मिलाकर इन सबके समान लोह। इनको एकत्र कर जल द्वारा मर्दन कर १ मासे के प्रमाण गोली वनावे। अनुपान-विडङ्गचूर्ण अथवा चूने का जल और अनन्नास के पत्तों का रस।

रक्तजात क्रिमि की चिकित्सा

कुष्ठरोगाधिकार में कही हुई कुष्ठ रोग की चिकित्सा की तरह करे।

(१) हरिताल भस्म $\frac{१}{४}$ रत्ती मात्रा में गाय के घी के साथ प्रयोग करने से सब प्रकार का रक्तज क्रिमिरोग आरोग्य होता है।

(२) ताम्रभस्म आदी के रस और मधु अथवा गाय के घी और मधु के अनुपान से सेवन करने पर सब प्रकार के रक्तज क्रिमि आरोग्य होते हैं।

(३) पारद भस्म गव्य घृत के अनुपान से सेवन करने पर भी रक्तज क्रिमि आरोग्य होता है।

चतुर्दश अध्याय

पाण्डुरोग चिकित्सा

वातज पाण्डुरोग चिकित्सा

पाण्डुहारि चूर्ण—मोथा, वच, देवदारु, मानमूल, कुटकी, इन्द्र जौ, निसोत की जड़, कालाजीरा, चव्य, दारुहल्दी, त्रिफला, हलदी, दन्तीमूल, त्रिकटु और चीते की जड़ प्रत्येक २ तोला एवं ताम्र, लौह और अभ्र प्रत्येक १ पल, सर्व समष्टि का दूना मण्डूर, मण्डूर का ८ गुना गोमूत्र। सबसे पहले गोमूत्र में मण्डूर पाक करे, एवं पाक समाप्त होने पर उपर्युक्त द्रव्यादि मिलावे। मात्रा—दो आना भर। अनुपान—उष्ण जल। इसके सेवन से वातज पाण्डु, हलीमक और शोथ आदि नाना प्रकार के रोग शान्त होते हैं।

हंसमण्डूर—एक भाग सूक्ष्म मण्डूर आठगुने गोमूत्र के साथ पाक कर उसके साथ त्रिफला, त्रिकटु, मोथा, विडङ्ग, चव्य, चीते की जड़, दारुहल्दी, पीपरा-मूल, देवदारु, प्रत्येक एक एक भाग मिलावे, उसके बाद मण्डूर के समान गव्य घृत उक्त ओषधियों के साथ मिलाकर ६ मासे मात्रा मे तक्र के साथ सेवन करे। वह वातज पाण्डुनाशक है।

नवायस लौह—त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, विडंङ्ग और चीतामूल प्रत्येक १ भाग, लौह ९ भाग, एकत्र जल मे मर्दन कर ९ रत्ती प्रमाण वटिका वनावे। अनुपान—घृत और मधु, कुलेखाडा (तालमखाना) पत्तो का रस, नीम के पत्तो का रस, तक्र वा गोमूत्र के साथ पान करने से सब प्रकार का पाण्डुरोग विनष्ट होता है।

पित्तज पाण्डुरोग चिकित्सा

निशालौह—हलदी, दारुहल्दी, आमलकी, हरीतकी, वहेड़ा, कुटकी प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर सबके समान लौहभस्म उनके साथ मिलाकर १ माशे की वटी वनावे। घृत और मधु अनुपान से यह औषध पित्तज पाण्डु का नाश करती है।

दार्व्यादिलौह—दारुहल्दी, त्रिफला, त्रिकटु, विडङ्ग प्रत्येक समभाग और सबके समान लौह एकत्र मिलाकर ६ रत्ती प्रमाण वटी वनावे। अनुपान—घृत और मधु, यह पित्तज पाण्डुरोग विनष्ट करता है।

पित्तपाण्डुवरि गुटिका—पारद ४ भाग, गन्धक ४ भाग, लौह ८ भाग, चीता, मोथा, विडङ्ग, सोठ, पीपल, मरिच, आमलकी, हरीतकी, वहेड़ा, कुटजी प्रत्येक १ भाग ये द्रव्य एकत्र मर्दन कर ४ रत्ती की वटी वनावे। प्रातः समय पान के रस, नीम के पत्तो के रस और मधु के साथ १ वटी सेवन करने से पित्तज पाण्डुरोग आरोग्य होता है।

श्लेष्मज पाण्डुरोग चिकित्सा

लध्वानन्दरस—पारद, गन्धक, लौह, अभ्र, विप प्रत्येक १ भाग, मरिच ८ भाग, सोहागा भुना हुआ ४ भाग ये सव द्रव्य भृङ्गराज के रस में ७ वार और खट्टे अनार के रस मे ७ वार भावना देकर २ रत्ती प्रमाण गोली वनावे। सन्ध्या-काल मे पान के रस और मधु के साथ यह वटिका सेवन करने से कफज पाण्डुरोग निवारित होता है।

कासेश्वररस—पारा, गन्धक, हरीतकी, चीते की जड़ प्रत्येक १ भाग, मोथा, इलायची, तेजपात प्रत्येक १½ भाग त्रिलटु, पीपरामूल, विप, नया केशर, एरण्डमूल प्रत्येक १ भाग और सव द्रव्य के समान पुराना गुड के साथ ये द्रव्य उत्तम रूप से मर्दित कर धतूरे के रस में भावना दे। उसके वाद वैर की गुठली के समान गोली वनावे। शहद के साथ रात को सेवन करे। इसके द्वारा श्लेष्मज पाण्डुरोग आरोग्य होता है।

त्रिदोषज पाण्डुरोग चिकित्सा

प्राणवल्लभरस—पारद, गन्धक, एवं कुङ्कुम, लौह, ताम्र, कौडी की भस्म, तूतिया, हीग, त्रिफला, सीज की जड़, जयपाल, दन्ती की जड़, निसोत प्रत्येक १ तोला मात्रा में लेकर बकरी के दूध में मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण गोली वनावे। अनुपान-मधु वा शीतल जल। इसके द्वारा अति प्रवल प्रतापी दुर्निवार पाण्डुरोग आरोग्य होता है।

त्रैलोक्यसुन्दररस—पारद १ भाग, अभ्र ६ भाग, लौहभस्म ८ भाग, एवं त्रिकटु, त्रिफला, गन्धक, तालमूली (मूषली), मोचरस, गिलोय का सत, प्रत्येक ५ भाग ये सव द्रव्य एकत्र कर १० दिन में २० बार भावना देवे। फिर सह-जना और चीतामूल के रस मे पृथक् २ कर ८ बार भावना देकर १ माशे परिमाण

वटिका बनावे। अनुपान–चीनी और मधु। इसके सेवन से पाण्डु, शोथ, क्षय और उपद्रव सहित ज्वरातिसार शीघ्र विनष्ट होता है।

पाण्डुजनित शोथ–चिकित्सा

पाण्डुघनपङ्कशोषण रस—पारदभस्म, ताम्रभस्म, गन्धक और सीठा विष प्रत्येक १ भाग ये सब द्रव्य चीतामूल के रस में मर्दन कर मृदु अग्नि से पाक कर २ रत्ती मात्रा में प्रयोग करे। अनुपान–कुलेखाडा (तालमखाना) के पत्तों का रस, पुनर्नवा का रस और मधु। यह पाण्डुजनित शोथनाशक है।

पुनर्नवा मण्डूर—शोधित मण्डूर ५ पल, पाकार्थ गोमूत्र ऽ५ सेर एकत्र कर पकावे, आसन्न पाक होने पर पुनर्नवा, निसोत, सोंठ, मरिच, पीपल, देवदारु, विडङ्ग, आमला, कुड़े की छाल, चीते की जड़, हलदी, बहेड़ा, हर्र, चव्य, दन्तीमूल, दारुहल्दी, मोथा, पीपरामूल, इन्द्रजौ, कुटकी प्रत्येक का चूर्ण १ तोला मिलाकर आलोडन कर उतार ले। मात्रा–४ मासे। इसके सेवन से पाण्डु शोथ आदि अनेक प्रकार के रोग नष्ट होते हैं।

पञ्चाननवटी—अभ्र, गूगल, गन्धक, ताम्र और पारद प्रत्येक समभाग, सबके समान जयपाल के बीज चूर्ण एकत्र कर २ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। इसके सेवन से पाण्डु और शोथ रोग विनष्ट होता है। अनुपान–घल घसिया (द्रोणपुष्पी) का रस।

कामला चिकित्सा

त्रियोनि—एक भाग कज्जली नीबू के रस के साथ मिलाकर ४ भाग सूक्ष्म ताम्र पत्र पर उसे लेपन करे और धूप में सुखावे। फिर दो सकोरों में वे ताम्र पत्र रखकर उनके नीचे–ऊपर गन्धक और चारों ओर नकछिकनी देकर सकोरों के ऊपर मिट्टी लेप देवे। शुष्क होने पर ६ घण्टा गजपुट में पाक करे। शीतल होने पर औषध चूर्ण करे। यह १ रत्ती मात्रा में गुड़ और हर्र के चूर्ण के साथ मिलाकर सेवन से कामला, शोथ और पाण्डुरोग विनष्ट होता है।

लौहभस्म—सब प्रकार की रक्तहीनता, पाण्डु, कामला, हलीमक, कुम्भ-कामला आदि रोगों में लोहभस्म अतीव हितकर है। दो रत्ती परिमाण वारितर लौहभस्म घृत और मधु के साथ प्रयोग करने से सब प्रकार का दुःसाध्य कामला रोग आरोग्य होता है। अनुपान–पुनर्नवाष्टक पाचन।

हलीमक चिकित्सा

चन्द्रसूर्यात्मकरस—पारद, गन्धक, लौह, अभ्र प्रत्येक १ भाग, सोहागा और कौड़ीभस्म प्रत्येक ½ भाग, गोखुरू बीज १ भाग इस तरह सब द्रव्य लेकर बाष्पयन्त्र से भावित करे। इसके बाद परवर, पित्तपापड़ा, भारंगी, विदारीकन्द, सतावरी, गिलोय, अडूसा, दन्ती, काकमाची, इन्द्रायन, पुनर्नवा, कशेरु, शालिञ्च शाक, द्रोणपुष्पी प्रत्येक के रस से भावना देकर १ रत्ती परिमाण वटिका बनावे। अनुपान—गिलोय, अरूसा और त्रिफला का क्वाथ और मधु। यह हलीमक नाशक है।

कुम्भकामला चिकित्सा

(१) **धात्रीलौह**—आमला, लौहभस्म, शुंठी, पीपल, मरिच, हलदी, एकत्र समभाग में मर्दन कर ८ रत्ती मात्रा में घृत और मधु के अनुपान से सेवन करे। यह दुःसाध्य कामला-नाशक है।

(२) हरिताल भस्म ¼ चौथाई रत्ती परिमाण में गव्यघृत और मधु के अनुपान से सेवन करने पर दुःसाध्य कुम्भकामला रोग निश्चय आराम होता है।

(३) विजय-पर्पटी व्यवहार से भी अधिक उपकार पाया जाता है।

पाण्डु, कामला और हलीमकरोग में नीचे लिखे अनुपान प्रशस्त हैं—

(१) हरीतकी चूर्ण, गोमूत्र, गिलोय का रस, आमले का चूर्ण, त्रिफला का क्वाथ, पुनर्नवारस, दारुहलदी घिसी हुई, हलदी का चूर्ण, विडङ्गचूर्ण, मोथा का रस, चीनी घी, मधु, गोल मरिच का चूर्ण, कुले खाड़ा (तालमखाना) का रस, अडूसे के पत्तों का रस, नीम के पत्तों का रस, निसोथ का चूर्ण, त्रिकटु चूर्ण, मुलहठी, चिरायता और खैर का क्वाथ।

पञ्चदश अध्याय

उदावर्त और आनाह चिकित्सा

उदावर्त चिकित्सा

वृहत् इच्छाभेदीरस—शोधित पारद, सोहागा, मरिच, गन्धक सब द्रव्य समान भाग, गन्धक का दूना निसोत और अतीस और ९ गुना जमालगोटा का चूर्ण एकत्र कर खरल में आक के पत्तों के रस में २ घड़ी मर्दन करे। फिर

आरण्यकण्डों की मृदु अग्नि से पाक कर १ रत्ती प्रमाण वटी वनाकर शीतल जल के साथ सेवन करे। जव तक गरम जल न पियेगा तब तक दस्त वन्द न होंगे। पथ्य-दधि और अन्न। यह सव प्रकार के उदावर्त और आमगुल्मादि विविध पीड़ा का शान्तिकारक है।

आनाह चिकित्सा

वैद्यनाथ वटिका—हर्रे, सोंठ, पीपल, मरिच, रससिन्दूर ये सब प्रत्येक १ भाग, जयपाल २ भाग, इनको खानकुनी (मण्डूकपर्णी) और आमरूल (चाङ्गेरी=चौपतिया) के रस में मर्दन कर १ रत्ती परिमाण वटिका वनावे। यह सव प्रकार के उदावर्त, गुल्म और कुष्ठादि विविधरोगों की नाशक है। अनुपान-चीनी का जल।

नाराचरस—पारद, गन्धक, मरिच प्रत्येक एक भाग, सोहागा, पीपल, सोंठ प्रत्येक २ भाग सवके समान लघु दन्तीवीज। ये सब सेंहुड़ के दूध में तीन दिन मर्दन कर नारियल के मध्यभाग में स्थापनपूर्वक प्रवल अग्नि में पाक करे। फिर औषध निकालकर २ रत्ती प्रमाण वटिका करे। इस औषध द्वारा नाभि पर प्रलेप देने पर भी विरेचन होता है। यह प्रवल आनाहनाशक है।

वारिशोषण रस—गन्धक २४ भाग, वङ्गभस्म १२ भाग, पारद ६ भाग, कृष्णाभ्र १४ भाग, लौह ८ भाग, ताम्र ९ भाग, स्वर्ण २ भाग, रौप्य ७ भाग, हीरा १३ भाग, सोनामाखी १६ भाग, हीराकस १८ भाग, तूतिया ६ भाग, हरिताल, ४ भाग, मैनसिल ३ भाग, शिलाजतु ५ भाग, मोथा १ भाग, सोहागा २ भाग, ये सव द्रव्य एकत्र चूर्ण कर जम्हीरी के रस द्वारा ७ वार भावना देकर उसके द्वारा गुटिका तैयार करे। फिर गुटिकाओ के २ भाग कर २ मिट्टी के पात्रो में रखकर दूसरे पात्रो से ढक दे, फिर उनका मुख वंद कर धूप में सुखावे। फिर एक हांडी के नीचे वालू रखकर उस बालू पर दोनो मूषा स्थापन करे फिर उनका ऊपरी भाग वालू से भर दे फिर हांडी का मुख सकोरे से ढक दे फिर चूल्हे पर हांडी रखकर १ अहोरात्र अग्नि से पाक करे। शीतल होने पर चूर्ण कर वकुल (मौलसिरी) के वीजो के क्वाथ, त्रिफला के क्वाथ, वृद्धदारक वीज के क्वाथ, अपराजितामूल का रस और मत्स्यपित्त द्वारा पृथक् पृथक् रूप से ७-७ भावना दे और २ रत्ती प्रमाण वटी वनावे। अनुपान—त्रिफला और त्रिकटु का क्वाथ। यह उदावर्त, प्लीहादि विविध रोगनाशक है।

—ooo—

षोडश अध्याय

शूलरोग चिकित्सा

वातजशूल चिकित्सा

पञ्चात्मकरस—रससिन्दूर, अभ्र, अम्लवेतस, ताम्र, गन्धक, विष, त्रिफला इन सब का चूर्णकर समान भाग ले, फिर जयन्ती, सुण्डी, वृहती, गिलोय, भारंगी, जामन की छाल, नीलकमल, प्रत्येक के रस द्वारा पृथक् २ भावना दे। उसके साथ मिलित सब द्रव्यो का आधा भाग पांचो नमक मिलाकर आदी के रस के साथ एक दिन पीस कर चने बराबर गोली बनावे। प्रतिदिन प्रातः, मध्याह्न और रात के समय इसकी ३ वटी सेवन कर उर्द, ईख, पिष्ठी, गुरुपाकी अन्न और गाय का दूध सेवन करे। यह वातज-शूल नाशक है।

शूलराज लौह—कान्तलौह २ तोला, अभ्र १ तो०, चीनी, मधु, घृत प्रत्येक ८ तोला एकत्र कर लोहदण्ड द्वारा मर्दन कर विडङ्ग, चव्य और चीतामूल का चूर्ण प्रत्येक १ तोला उसके साथ मिलावे। ४ रत्ती मात्रा मे प्रातः शीतल जल से सेवन करे। इसके सेवन से विविध शूल, अम्लपित्त, अर्श, ग्रहणी, प्रमेह और विसूचिका रोग नष्ट होता है।

पित्तज शूल चिकित्सा

सप्तामृत लौह—मुलहठी, त्रिफला प्रत्येक एक-एक भाग, लौह चूर्ण ४ भाग, ये सब उपयुक्त परिमाण मे घृत और मधु के साथ मर्दन कर एक आना भर मात्रा में गाय के दूध के साथ सेवन करने से शूल और अम्लपित्त आदि रोग नष्ट होता है।

त्रिफला लौह—तीक्ष्ण लौह चूर्ण और त्रिफला चूर्ण सम भाग से लेकर दूध मे मर्दन कर सेवन करने से पित्तजशूल रोग मे विशेष फल पाया जाता है।

त्रिनेत्ररस—पारद १ भाग, ताम्र ३ भाग, गन्धक ९ भाग एकत्र अम्लरस मे मर्दन कर पुटपाक में भस्म करे। मात्रा—१ रत्ती। अनुपान—आदी का रस, सेंधानमक, अण्डी का तेल, मधु, हीग और जीरे का चूर्ण। इसके सेवन से सब प्रकार का शूलरोग विनष्ट होता है।

बृहत् त्रिनेत्र रस—हरिण के सींग का चूर्ण, जारित स्वर्ण, पारद एवं ताम्र सम भाग में लेकर ४ प्रहर आदी के रस मे मर्दन कर मूषाबद्ध करके पुटपाक करे। मात्रा--१ माषा। अनुपान—घृत और मधु। यह पित्तज शूलनाशक है।

श्लेष्मज-शूल चिकित्सा

अग्निमुख—पारद, सोनामाखी, ताम्र, काला अभ्र, गन्धक, हरिताल, मनःशिला, सैन्धव, मीठा विष, हींग, चीते की जड़, वन आदी, कचनार की छाल, रक्तनटे शाक (रक्त मारिष), निर्गुण्डी, जलपीपल, अरूसा और कुचिला ये सब द्रव्य समभाग में लेकर भङ्ग और जयन्ती के रस के साथ मर्दन कर कुक्कुट पुट मे पाक करे। अनुपान—घृत और सोंठ का चूर्ण अथवा हींग, सौवर्चल नमक और उष्ण जल। मात्रा--६ रत्ती। यह श्लेष्मज शूल नाशक है।

शङ्खादि चूर्ण—शङ्ख भस्म, सैन्धव, सोचर नोन, विड नोन, सांभरनोन उद्भिदलवण, सोहागे का फूल, जायफल, सतावर, अजवायन, त्रिकटु, हींग, ये सव द्रव्य प्रत्येक ८ तोला लेकर एकत्र चूर्ण करे। मात्रा—६ रत्ती। अनुपान—आदी का रस और मधु। इसके सेवन से श्लेष्मज शूल शीघ्र विनष्ट होता है।

त्रिदोषज शूल चिकित्सा

सर्वाङ्गसुन्दर रस—शोधित अभ्र, पारद और गन्धक, प्रत्येक सम भाग, ये सब एकत्र काली मूसली के रस के साथ मर्दन कर गोला बनावे। उस गोले को एक कुप्पी में रक्खे और खड़िया द्वारा उसका मुख बन्द कर उस कुप्पी को कपरौटी करे और धूप में सुखावे फिर उस कूपिका को मिट्टी में दवा कर पुट देवे। पाक हो जाने पर कूपिका के मुख में लगी हुई खड़िया सहित कूपिका की दवा का चूर्ण करे और उसके साथ जवाखार, सज्जीखार, सोहागा, पांचो नमक, त्रिकटु, त्रिफला, हीग, गूगल, इन्द्रजौ कौच, चीते की जड़, अजवाइन, अजमोद, सव समभाग ले मिलावे,। मात्रा—६ रत्ती। प्रातः सेवनीय। फिर उष्ण जल अनुपान करे। प्रतिदिन १ वार सेवन करे। यह त्रिदोपज शूल नाशक है।

धात्री लौह—आमले का चूर्ण ८ पल, लौह चूर्ण ४ पल, मुलहठी चूर्ण २ पल, सव एकत्र कर आमले के क्वाथ मे भावना दे। भावना के लिये आमला

१४ पल, जल ११२ पल और शेष २८ पल। मात्रा--६ रत्ती। घृत और मधु के अनुपान से सेवन करे। इसके सेवन से त्रिदोषज शूल विनष्ट होता है।

परिणाम शूल चिकित्सा

वातिक परिणाम शूल की चिकित्सा

त्रिगुणाख्य रस--सोहागा, हरिण का सींग, स्वर्ण, गन्धक, रससिन्दूर सब सम भाग लेकर आदी के रस मे मर्दन कर पुटपाक मे दग्ध करे। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—घृत और मधु। फिर सेंधानमक, जीरा और हीग का चूर्ण सम परिमाण लेकर घृत और मधु के साथ लेहन करे। इसके सेवन से वातिक परिणाम शूल शीघ्र निवृत्त होता है।

शूलगजकेशरी—पारद १ भाग, गन्धक २ भाग एकत्र कज्जली करे। फिर जम्हीरी नीबू के रस मे मर्दन कर उसके द्वारा ६ तोले ताम्रपुट के भीतरी भाग को लिप्त करे। फिर एक मिट्टी के भाण्ड मे ८ तोला नमक रख कर उसके ऊपर वह ताम्र सम्पुट स्थापन करे और उसके ऊपरी भाग पर ८ तोला नमक देकर मुख रुद्ध करे एवं गजपुट में पाक करे। अनन्तर ताम्रपुट निकाल कर चूर्ण कर एक पात्र में स्थापन करे। २ रत्ती परिमाण में यह औषध पान के रस के साथ सेवन करे। इसको सेवन कर हींग, सोठ, जीरा, बच, मरिच, इनके सम परिमित चूर्ण को मिलाकर १ तोला गरम जल के साथ सेवन करे। यह वातिक परिणाम शूल के लिये ब्रह्मास्त्र है।

पैत्तिक परिणामशूल चिकित्सा

त्रिपुरभैरव—पारद ४ भाग और गन्धक ८ भाग लेकर कज्जली कर नीबू के रस में मर्दित करे और उसके द्वारा १२ भाग तामे के पत्र प्रलिप्त करे। मात्रा--२ रत्ती। अनुपान-घृत और मधु। इसके सेवन से पैत्तिक परिणाम शूल शान्त होता है।

वृहत् विद्याधराभ्र—पारद, गन्धक, विडङ्ग, मोथा, त्रिफला, त्रिकटु, निसोत, दन्ती, चीता, मूपाकर्णी, पीपरामूल प्रत्येक २ तोला ग्रहण करे। कृष्ण-अभ्र चूर्ण ८ तोला, लौह ३२ तोला, घृत और मधु के साथ मर्दन कर बेर प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान--गोदुग्ध अथवा नारिकेल जल। इसका प्रातः सेवन करने से असाध्य वातज और पित्तज परिणाम शूल विनष्ट होता है।

श्लैष्मिक परिणामशूल चिकित्सा

शूलान्तक रस—त्रिकटु, त्रिफला, चीता, मोथा, निसोत प्रत्येक १ तोला, कज्जली १ तोला, लौह, अभ्र और विडङ्ग प्रत्येक २ तोला इन सबका चूर्ण त्रिफला के क्वाथ में मर्दन कर ६ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान--काञ्जी। यह श्लैष्मिक परिणाम शूल निवारक है।

त्रिदोषज परिणाम शूल-चिकित्सा

शूलकेशरी—पारद १ भाग, गन्धक २ भाग, एकत्र एक प्रहर मर्दन कर उसके साथ ३ भाग ताम्रभस्म मिलाकर पुट मे बंद करे। एक भाण्ड मे ऊपर नीचे नमक रखकर उसमे औषधपूर्ण मूषा स्थापन पूर्वक गजपुट मे पाक करे। यह औषध २ रत्ती मात्रा मे पान के रस के साथ सेवन करने के बाद ऊपर से हीग, सोंठ, वच और मरिच का चूर्ण १ तोला मात्रा में गरम जल के साथ सेवन करे। इसके द्वारा असाध्य त्रिदोषज शूल भी विनष्ट होता है।

उदयभास्कररस—पारद १ तोला, गन्धक ४ तोला एकत्र कज्जली कर नीबू के रस में १२ घण्टा खरल में मर्दन कर कल्क तैयार करे। २ तोला सूक्ष्म ताम्रपत्र और पूर्वोक्त कज्जली कल्क नीबू के रस में डुवा कर खरल में स्थापनपूर्वक तेज धूप में रख दे। फिर गोला सा बनाकर मूषा रुद्ध करे फिर कुक्कुटपुट मे तीन वार पुट दे। मात्रा--२ रत्ती। अनुपान—पान का रस। यह त्रिदोषज परिणाम शूल का नाश करता है।

अन्नद्रवशूल-चिकित्सा

शूलगजेन्द्रकेशरी—पारा ८ तोला, गन्धक १६ तोला, हरिताल २४ तोला, एकत्र ३ दिन मर्दन कर कज्जली करे, फिर ८ तोला ताम्रपत्र का पुट तैयार कर उनके वीच मे वह कज्जली रक्खे, फिर एक पात्र में वह ताम्रपुट स्थापन कर उसके ऊपर और नीचे सेधानमक पीस कर पात्र भर दे। पात्र का मुख वंद कर मिट्टी लेप कर दे। सूख जाने पर गजपुट में पाक करे। पाक समाप्त होने पर पुट सहित औषध चूर्ण कर कपड़े से छान ले एवं सेधा नमक के भीतर औषध रख दे। २ रत्ती की मात्रा में हरीतकी चूर्ण आदी के रस के साथ सेवन से अन्नद्रव शूल आरोग्य होता है।

शूलवज्र—अभ्र, ताम्र, लौह प्रत्येक ८ तोला एकत्र मर्दन कर १२ पल दूध और १२ पल घी के साथ पाक करे, जब आसन्न पाक हो तब विडङ्ग, त्रिफला, चीते की जड़, त्रिकटु प्रत्येक का चूर्ण ८ तोला उसमे मिलावे और साफ मिट्टी के वर्तन में रखदे। मात्रा-२ रत्ती से आरम्भ कर क्रम से १० रत्ती तक बढ़ावे। आरोग्य दर्शन होने पर औषध की मात्रा कम कर औषध समाप्त करे। अनुपान—घृत और मधु अथवा वारुणीमद्य। इसके सेवन के अन्त में दुग्ध और नारियल का जल अनुपान करे। यह अन्न द्रव आदि शूल शीघ्र विनष्ट करता है।

आमशूल-चिकित्सा

ताम्राष्टक—हीग, त्रिकटु, मुलहठी, सोंचर नोन, इमली का क्षार और ताम्र भस्म ये ८ द्रव्य सम भाग में लेकर एकत्र उत्तम रूप से मर्दन कर गरम जल के साथ पीवे। इसके सेवन से आमशूल अति शीघ्र विनष्ट होता है।

बडवानल रस—हरिताल, सोनामाखी, स्वर्ण, मनःशिला, कान्त लौह, गन्धक, ताम्र, पारद, प्रत्येक सम भाग, सब के समान अजवाइन, अजवाइन के चूर्ण के सहित सब चूर्ण सम त्रिकटु-ये सब द्रव्य एकत्र मर्दन कर हिङ्गु मिले हुए जल द्वारा ७ दिन सतावार और जयन्ती, काकमाची, निर्गुण्डी और आदी के रस मे १-१ दिन भावना दे और मरिच के समान वटिका कर छाया में सुखावे। यह उष्ण जल के साथ सेवन करने से असाध्य उपसर्ग युक्त आमशूल शीघ्र दूर करता है।

पार्श्वशूल चिकित्सा

शूलहरण योग—हरीतकी, त्रिकटु, कुचिला, हींग, सेंधानमक, एवं गन्धक सम परिमाण में लेकर जल द्वारा मर्दन कर छोटे वेर बराबर गोली बनावे। अनुपान-गरम जल या गरम दूध। यह सब प्रकार के शूल का नाशक है।

शूलनाशिनी—शोधित विषमुष्टि (कुचिला) १० तोला और गोल मरिच १ तोला, एकत्र जल में मर्दन कर ६ रत्ती प्रमाण गोली बनावे। गरम जल के साथ सेवन करे तो पार्श्वशूल को नष्ट करता है।

कुक्षि शूल-चिकित्सा

क्षार ताम्र—पारद १ भाग, गन्धक २ भाग एकत्र मिलाकर उसके द्वारा पारद के समान ताम्र पत्र प्रलिप्त करे। उसके बाद सैन्धव, जवाखार, सज्जीखार

और सोहागा, के साथ कपड़े में बांध कर उसके ऊपर मिट्टी का लेप देवे। सूखने पर पुट पाक कर ताम्र पत्र चूर्ण करे। फिर धतूरे का रस, चीते की जड़ का क्वाथ, आदी के रस और त्रिकटु के क्वाथ के साथ ३ दिन मर्दन करे। फिर उसके साथ सब द्रव्यों का १/१६ सोलहवां भाग मीठा विष मिलावे। मात्रा २ रत्ती, अनुपान—गरम जल। यह कुक्षिशूल शीघ्र विनष्ट करता है।

हृच्छूल चिकित्सा

मणिकाञ्चनयोग—रससिन्दूर १ तोला, अर्जुन छाल २ तोला, हरिण के सींग की भस्म ३ तोला एकत्र शीतल जल में मर्दन कर ६ रत्ती प्रमाण वटी बनाकर घृत और मधु के अनुपान से प्रयोग करने पर सब तरह का हृच्छूल निवृत्त होता है।

वस्तिशूल चिकित्सा

क्षार वटी—मीठा विष १ भाग, अभ्र भस्म २ भाग, शङ्ख भस्म ४ भाग, इमली क्षार ८ भाग, ताम्रभस्म १६ भाग और त्रिकटु सब समष्टि के समान। इन द्रव्यों में तुलसी, भृङ्गराज, बिजौरा और आदी के रस की भावना देकर वटिका बनावे। मात्रा-१ रत्ती। अनुपान—गरम जल। यह वस्तिशूल विनष्ट करता है।

मूत्रशूल-चिकित्सा

शूलगजेन्द्र—रससिन्दूर १ भाग, हींग १ भाग, ब्रह्मक्षार (पलाशक्षार) २ भाग, कुचिला ३ भाग एकत्र वरुण-छाल और गोखरू के क्वाथ में भावना देकर ६ रत्ती परिमाण वटिका बनावे। गरम जल के अनुपान से यह वटिका सेवन करे। इससे सब प्रकार का शूल निवृत्त होता है।

शूल चिकित्सा में अनुपान

वातजशूल के अनुपान—शुण्ठी और एरण्डमूल का क्वाथ, हींग, सेंधा नमक, काञ्जी, बेल की जड़, जौ और नीबू के जड़ का क्वाथ, अजवाइन चूर्ण, अतीस का चूर्ण, जवाखार, वारुणी मद्य, सोचरनोन, कालाजीरा, और पकी इमली।

पित्तजशूल के अनुपान—पुराना गुड़, घृत, पटोल और नीम की छाल का क्वाथ, आमलकी चूर्ण, विदारीकंद का रस, गूलर और मुनक्का का क्वाथ, तृण पञ्चमूल का क्वाथ, सतावर का रस, मुलहठी का चूर्ण, त्रिफला और सोन्दाल (अमलतास) का क्वाथ, कुटकी चूर्ण और हरिण के सींग का भस्म।

कफजशूल का अनुपान—पञ्चकोल का क्वाथ, हरीतकी का चूर्ण, बच चूर्ण, जवाखार और दशमूल का क्वाथ, सोठचूर्ण और हींग, शङ्खभस्म और गोमूत्र।

आमशूल का अनुपान—अजवाइन का चूर्ण, मोथा चूर्ण, हरीतकी चूर्ण, सोठ चूर्ण।

परिणामशूल का अनुपान—घृत-मधु, सतावर का रस, हरीतकी, मुलहठी, पीपल और गिलोय का क्वाथ, मोथा का रस, हींग, सेंधानमक, जीरे का चूर्ण, जम्हीरी नीबू का रस, सोठ, एरण्डमूल का क्वाथ, हरिण के सीग की भस्म आदि युक्तिपूर्वक प्रयोग करे।
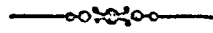
सप्तदश अध्याय

गुल्म-चिकित्सा

वातज गुल्म चिकित्सा

गुल्मकालानलरस—पारद, गन्धक, हरिताल, ताम्र, सोहागा प्रत्येक चूर्ण २ तोला, यवक्षार १० तोला, मोथा, त्रिकटु, गजपीपल, हरीतकी, वच, कुड़ा प्रत्येक १ तोला, ये सब वस्तुएं एकत्र मर्दन कर पित्तपापड़ा, मोथा, सोठ, आपां (चिचिढ़ा) एवं आकनादि (पाठा) प्रत्येक के रस द्वारा ७-७ भावना देकर चूर्ण करे। हरीतकी चूर्ण अथवा क्वाथ के साथ ४ रत्ती परिमाण यह औषध सेवन करने से सब तरह का गुल्म विशेपतः वातज गुल्म नष्ट होता है।

महानाराच रस—पारद, सोहागा, मरिच, प्रत्येक १ भाग, गन्धक, पीपल, सोठ प्रत्येक २ भाग, दन्तीवीज ९ भाग, ये सब एकत्र मर्दन कर २ रत्ती परिमाण वटिका बनावे। अनुपान-उष्ण जल। यह वातज गुल्म नाशक है।

पित्तज गुल्म चिकित्सा

[illegible] रस—पारद, गन्धक, ताम्र प्रत्येक समभाग लेकर शाक (सागौन) [illegible] के पत्ते के रस के साथ मर्दन कर मूपा में वन्द कर गजपुट मे पांच बार पाक करे। इसके बाद इसके साथ सम परिमाण में जयपाल-चूर्ण मिलाकर [illegible] मात्रा में प्रयोग करें। अनुपान-दाख और हरीतकी का क्वाथ। वह सब [illegible] के पित्तज गुल्म का नाशक है।

गुल्मनाशिनी गुडिका—गन्धक, सोठ, मरिच, चीता, प्रत्येक २ भाग, पारद, सोहागे की खील एवं जयपाल प्रत्येक १ भाग, ये सब एकत्र जल में मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। इससे पित्तज गुल्म निवृत्त होता है। अनुपान—चीनी का सर्वत।

श्लेष्मज-गुल्म चिकित्सा

विद्याधर रस—पारद, गन्धक, हरिताल, सोनामाखी, स्वर्ण, मैनशिल प्रत्येक समभाग। पिप्पली के क्वाथ और सेहुड़ के दूध से एक दिन मर्दन करे। मात्रा-४ रत्ती। अनुपान—गोमूत्र अथवा गोदुग्ध।

प्राणवल्लभ रस—लोह, ताम्र, कौड़ी, तूतिया, हींग, त्रिफला, सेहुड़ की जड़ का क्षार, जवाखार, जयपाल, सोहागा, निसोत मूल प्रत्येक ८ तोला परिमाण लेकर बकरी के दूध में मर्दन करे। २ रत्ती परिमाण वटिका बनावे। अनुपान—जल वा मधु। इसके द्वारा कफज गुल्म शीघ्र विनष्ट होता है।

त्रिदोषज गुल्म-चिकित्सा

गुल्मनाशक चूर्ण—पारद, गन्धक १-१ भाग, सैन्धव २ भाग, सोहागा २ भाग, तूतिया ४ भाग, कौड़ी ५ भाग, शङ्ख ६ भाग ये द्रव्य चीते की जड़ के क्वाथ, करञ्ज के रस और आदी के रस के साथ १-१ बार मर्दन कर ३ बार पुटपाक करे। मात्रा-२ रत्ती। अनुपान—मरिच का चूर्ण और मधु। यह सब प्रकार के गुल्मो का नाशक है।

गुल्म रोग चिकित्सा का अनुपान

(१) **वातजगुल्म में**—नीचे लिखे अनुपान युक्तिपूर्वक प्रयोग करे। कमला नीबू का रस, हीग, दाड़िम का रस, सैंधानमक, कांजी, पुराना मद्य, लहसुन का रस, दशमूल का क्वाथ, कुलथी का क्वाथ और एरण्ड का तेल।

(२) **पित्तज गुल्म में**—नीचे लिखे अनुपान प्रयोग करे। घृत-मधु, आमला का चूर्ण, त्रिफला का जल, धनियां, पटोल का क्वाथ, निसोत का चूर्ण, कुटकी चूर्ण, दन्ती चूर्ण, नीम की छाल का क्वाथ, नारंगी का छिलका, दाख और हरीतकी का क्वाथ, मुलहठी का क्वाथ और दुग्ध।

(३) नीचे लिखी वस्तुएं कफज गुल्म नाशक है—सोठ और एरण्डमूल का क्वाथ, अजवाइन का चूर्ण, गोमूत्र, हरीतकी चूर्ण, त्रिकटु, चीते की जड़ का चूर्ण, जवाखार।

(४) **रक्तगुल्म का अनुपान**—आमलकी का रस, गोल मरिच का चूर्ण, ऊंटनी का दूध, पीपल का चूर्ण, अडूसे के पत्तो का रस, पलाश का क्षार, घण्टा पाढ़ल का क्षार, जवाखार, हीग, त्रिकटु और सेहुड़ का दूध।

अग्निकुमार रस—जयपाल, पारद, गन्धक, आवला, हरीतकी, वहेड़ा, सोठ, पीपल और मरिच ये ९ द्रव्य प्रत्येक समभाग लेकर १६ भाग गोमूत्रके साथ ३ दिन मर्दन कर वेर प्रमाण वटिका वनावे। गरम जल के अनुपान से यह वटिका सेवन करने से सब प्रकार के गुल्म आरोग्य होते है।

काङ्कायन गुटिका—शठी (कचूर), कुडा, दन्तीमूल, चीतामूल, अड़हुल की जड़, सोंठ, वच, निसोत की जड़, प्रत्येक ८ तोला, हीग २४ तोला, जवाखार १६ तोला, अमलवेत १६ तोला, अजवाइन, सफेद जीरा, मरिच, धनिया, प्रत्येक २ तोला, कालाजीरा, अजवाइन प्रत्येक ४ तोला। ये सव चूर्ण एकत्र कर नीवू के रस में मर्दन कर ४ रत्ती परिमाण गोली वनावे। अनुपान-उष्ण जल, मुद्गादि यूष, घृत और दूध आदि। यह त्रिदोषजगुल्म की परीक्षित औषध है।

महागुल्मकालानल रस—गन्धक, हरिताल, ताम्र, तीक्ष्ण लोह प्रत्येक १ भाग लेकर घृतकुमारी के रस में मर्दन कर गजपुट मे पाक करे। मात्रा-२ रत्ती। अनुपान-सोठ का क्काथ। यह सव प्रकार के गुल्म का नाशक है।

रक्तजगुल्म चिकित्सा

रक्तगुल्मकुठार—पारद, गन्धक, ताम्र, कांस्य, सोहागा, हरिताल प्रत्येक समभाग लेकर जल मे मर्दन कर २ रत्ती मात्रा में वटी वनावे। त्रिफला के क्काथ के अनुपान से यह रक्त गुल्मनाशक है।

सर्वेश्वर रस—स्वर्ण १ भाग, ताम्र १० भाग, त्रिकटु, त्रिफला, लौह प्रत्येक $\frac{1}{2}$ भाग, विष $\frac{1}{6}$ भाग, ये सब एकत्र जल मे मर्दन कर २ रत्ती की वटिका वनावे। ऊंटनी के दूध के अनुपान से यह रक्तज गुल्मनाशक है।

रक्तोदरकुठार—पारद, तूतिया, जयपाल, पीपल, सोन्दाल (अमलतास) मज्जा प्रत्येक १ भाग, इनको सेहुड़ के दूध में मर्दन कर १ रत्ती की वटिका बनावे। यह दस्तावर और रक्तगुल्मनाशक है। अनुपान-इमली का रस। पथ्य-दही और अन्न। इस औषध के सेवन करने से उद्वेग उपस्थित होने पर दधिभोजन करने से आरोग्य होता है।

अष्टादश अध्याय

शोथ चिकित्सा

वातज शोथ चिकित्सा

शोथाङ्कुशरस—पारद, गन्धक, लौह, ताम्र, सीसा, अभ्र, प्रत्येक समभाग लेकर एकत्र मिलावे उसके बाद निर्गुण्डी, हापरमाली, कैथ की छाल, इमली की छाल, पुनर्नवा, वेल की छाल और कसेरू इनके रस में भावना देकर बेर प्रमाण गोली वनावे। अनुपान-दशमूल का क्वाथ, पुनर्नवा रस, सोंठ और एरण्डमूल का क्वाथ, गोमूत्र, वेलपत्र का रस, कोष्ठवद्धता हो तो एरण्ड का तेल भी दूध के साथ प्रयोग करे।

वातजशोथ में—जीरा पिसा हुआ और हींग के अनुपान से रसपर्पटी एक उत्कृष्ट औषध है।

पित्तजशोथ चिकित्सा

सर्वशोथारि—हिङ्गुल, जयपाल, मरिच, सोहागा भुना, पीपल समभाग लेकर जल में मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण वटी वनावे। अनुपान-घृत। यह पित्तज शोथनाशक है। किन्तु रोगी अत्यन्त दुर्वल हो तो यह औषध प्रयोग करना उचित नही है।

शोथकालानल रस—चीतामूल, इन्द्रयव, गजपीपल, सैन्धव, पीपल, लवङ्ग, जायफल, सोहागा, लौह, अभ्र, गन्धक और पारद, ये समभाग लेकर जल मे मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण वटी वनावे। अनुपान-कुलेखाड़ा (ताल-मखाना) का रस। यह पित्तज शोथनाशक है।

श्लेष्मज शोथ चिकित्सा

पञ्चामृत रस—पारद, गन्धक, सोहागा, विष, मरिच प्रत्येक १ भाग, ये सव एकत्र चूर्णकर जल में मर्दन करे। वटी—१ रत्ती। अनुपान—आदी का रस। यह श्लेष्मज शोथनाशक है।

त्रिकट्वादि लौह—त्रिकटु, त्रिफला, दन्तीमूल, आपां (चिचिढा), विडङ्ग, चीतामूल, मोथा, शुष्कमूली और पुनर्नवा इनका चूर्ण समभाग लेकर सर्व चूर्ण समष्टि के समान लौह ग्रहण करे। उसके वाद उसे जल में मर्दन कर १ माशा

प्रमाण वटी बनावे। अनुपान-पुनर्नवा और सोंठ का क्वाथ। यह श्लेष्मज शोथ नाशक है।

त्रिदोषजशोथ-चिकित्सा

त्रिनेत्राख्यरस—पारद, गन्धक, सोहागा, ताम्र, लौह ये समभाग में लेकर आदी के रस से मर्दन करे, उसके बाद दो रत्ती मात्रा से एरण्ड और आपां श्वेत (चिचिड़ा) के रस से मर्दन कर प्रयोग करे। यह त्रिदोषज शोथ नाशक है।

अग्निमान्द्य और ग्रहणी जनित शोथ-चिकित्सा

दुग्धवटी—हिङ्गुल, धतूरा वीज और बिष समभाग एकत्र धतूरे के रस में एक प्रहर मर्दन करे। मूंग समान वटिका वनावे। अनुपान—दुग्ध। पथ्य—दुग्ध और अन्न, लवण और जल निषिद्ध। इसके सेवन से नाना प्रकार के शोथादि शान्त होते हैं।

(२) **दुग्धवटी**—विष १२ रत्ती, अभ्र ६० रत्ती, लौह ५ रत्ती और अफीम १२ रत्ती इन द्रव्यो को एकत्र दुग्ध से मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण वटिका वनावे। यह गोदुग्ध के साथ सेव्य है। इसके सेवन के दिनो मे दुग्ध और अन्न के अतिरिक्त अन्य कोई द्रव्य न भोजन करे। इसके सेवन से ग्रहणी, अग्निमान्द्य, शोथ आदि रोग नष्ट होते हैं।

दधि वटी—ईट का चूर्ण, गृहधूम (धूमसा) और हलदी, इनके द्वारा शोधित पारद और भृङ्गराज के रस मे शोधित गन्धक १-१ तोला लेकर एकत्र कज्जली करे। तदनन्तर तूतिया, विष, हरिताल, खर्पर, ताम्र, एलवालुक (एलुआ), सोनामाखी और कान्तलौह प्रत्येक ४ माशा परिमाण लेकर कज्जली के साथ मिला कर निर्गुण्डी के पत्ते, लता फटकी = माल कागुनी (अनन्ता, ज्योतिष्मती), अपराजिता, जयन्ती और लाल चीते की जड़, इन द्रव्यो के रस मे भावना देकर। सरसों प्रमाण वटिका वनावे। उष्ण जल के साथ ७ वटी सेवन करे।

अनुपान—१ यव कज्जली और १ यव पीपल का चूर्ण। यह शोथ संयुक्त ग्रहणी और ज्वरादि रोग में प्रयोज्य है। कास लक्षण वर्तमान रहने से कदापि यह औषध प्रयोग न करे।

पथ्य-दधि और चीनी। रोगी की उम्र और रोग की अवस्था समझ कर स्नान की व्यवस्था करे किन्तु लवण और जल की व्यवस्था कदापि न करे।

तक्र वटी--पारद और गन्धक १ माशा, विष २ माशा, ताम्र ४ माशा, पीपल चूर्ण और मण्डूर १ तोला, ये द्रव्य एकत्र मर्दन कर काले जीरे के क्वाथ में ७ दिन भावना देकर २ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान-तक्र।

पथ्य--तक्र और अन्न। जल और लवण निषिद्ध। इसके सेवन से शोथ, पाण्डु, ग्रहणी और मन्दाग्नि निवृत्त होती है।

क्षीर वटी--हिङ्गुल २ तोला, विष, अफीम, लवङ्ग, जायफल और धतूरे के बीज प्रत्येक १ तोला, इन द्रव्यों को एकत्र भङ्ग के रस से (अथवा भीजी भङ्ग के जल में) मर्दन कर मूँग प्रमाण गोली बनावे।

अनुपान--शोथ में दुग्ध और ग्रहणी में भङ्ग का क्वाथ। पथ्य-दुग्ध और अन्न। जल और लवण वर्जनीय। अदम्य पिपासा होने पर नारियल का जल पान करे। इसके सेवन से शोथ, ग्रहणी, अतिसार और जीर्ण ज्वर निवृत्त होता है। चोट के लगने से सूजन हो तो स्वेद (वफारा) और प्रलेप की व्यवस्था करे। विषज शोथ से त्रिदोषजनित शोथ की चिकित्सा करे। इसमे हरिताल भस्म $\frac{1}{8}$ रत्ती पुनर्नवाष्टक पाचन के साथ प्रयोग करे।

शोथरोग में अनुपान

वातजशोथ में—सोंठ का चूर्ण, पुनर्नवा और एरण्डमूल के रस, दशमूल के क्वाथ, मान (मानकंद) चूर्ण, गोमूत्र, बेल के पत्तों का रस और गोल मरिच का चूर्ण।

पित्तज शोथ में—कुले खाड़ा (तालमखाना) के पत्तो का रस, परवर का रस, त्रिफला का क्वाथ, कुटकी चूर्ण, निसोतचूर्ण, शालपर्णी, मोथा, सुगन्धवाला और सोंठ का क्वाथ।

श्लेष्मजशोथ में—सेहुड़ का दूध, पुनर्नवा का रस, गोमूत्र, पीपलचूर्ण, हरीतकी चूर्ण, सोन्दाल (अमलतास) का रस, देवदारु और शुंठी का क्वाथ। चिरायता और देवदारु चूर्ण। एवं सूखी मूली का क्वाथ।

ऊनविंश अध्याय

वृद्धिरोग चिकित्सा

वातजवृद्धि-चिकित्सा

भक्तोत्तरीय चूर्ण—अभ्र, गन्धक, पीपल, पांचोनमक, जवाखार, सज्जीखार, सोहागा, त्रिफला, हरिताल, मैनशिल, पारद, अजमोद, अजवाइन, सतावरि, जीरा, हींग, मेंथी, चीतामूल, चव्य, वच, दन्तीमूल, निसोत, मोथा, शिलाजतु, लौह, रसौत, नीम के बीज (निबौली), पटोलपत्र और विधारा बीज, प्रत्येक २४ तोला, शोधित धतूरे के बीज १०० ये सब एकत्र चूर्ण कर ले। इसे भोजन के पीछे सेवन करे। मात्रा--१ आना भर (१/१६ तोला)। अनुपान-उष्ण जल। यह वातज वृद्धिरोग की एक अतीव उत्कृष्ट औषध है।

पित्तज वृद्धि चिकित्सा

सिन्दूररस—लौह, अभ्र, रससिन्दूर समभाग से लेकर घृतकुमारी के रस में मर्दन करे। १ रत्ती प्रमाण वटी बनावे। अनुपान--पुनर्नवा का क्वाथ। यह पित्तजवृद्धि नाशक है।

शोथजवृद्धि चिकित्सा

अर्यमामृताभ्र--दशमूल, निर्गुण्डी, श्वेत आक, निसोत, पुनर्नवा, सेंहुड़, चव्य, अडूसा, विधारा, वेड़ेला, (वला), गोरक्ष (ऋषभक), शालपर्णी, पाठा, सोन्दाल (अमलतास) और लालचीता, इनके रस में सहस्रपुटित अभ्रक मर्दन कर ४ रत्ती परिमाण वटिका वनावे। अनुपान-आदी का रस और मधु।

रक्तजवृद्धि-चिकित्सा

रसराजेन्द्र--हिङ्गुलोत्थ पारा और कसेरू के रस में शोधित गन्धक प्रत्येक १ तोला, स्वर्ण और रौप्य प्रत्येक ४ माशा, एवं सीसा २ माशा, ये सब एकत्र कर अडूसा, काकमाची, चीता, निर्गुण्डी, कुडा, स्थलपद्म और पद्म इनके क्वाथ में ७ वार पृथक् पृथक् भावना देकर १ रत्ती प्रमाण वटिका वनावे। अनुपान-गिलोय का रस और मधु। यह सब प्रकार की रक्तजवृद्धि को शीघ्र दूर करता है।

मेदज वृद्धिरोग-चिकित्सा

वृद्धिवाधिका वटिका—पारद, गन्धक, लौह, वङ्ग, ताम्र, कांसा, हरिताल, तूतिया, शङ्खभस्म, कौड़ीभस्म, त्रिकटु, त्रिफला, चव्य, विडङ्ग, विधारा बीज, शटी (कचूर), पीपलमूल, पाठा, हवुषा (हाऊबेर), वच, इलायची, देवदारु और पांचों लवण प्रत्येक समभाग लेकर हरीतकी के क्वाथ में मर्दन करे। १ माशा प्रमाण गोली वनावे। अनुपान-उष्ण जल। मात्रा-२ रत्ती। इसके द्वारा असाध्य मेदजवृद्धि आरोग्य होती है।

मूत्रज वृद्धिरोग-चिकित्सा

सैन्धवादि गुडिका—सैन्धव, गुड, रेणुका, जीरा, त्रिफला, भिलावे, विडङ्ग, सोंठ, चीता, गिलोय, भारंगी, वच, चोरक देवदारु, नील का पेड़, अतीस, अजमोद अजवाइन, पीपरामूल, मोथा चव्य, पीपल, शठी (कचूर), लाल चन्दन, श्वेत चन्दन, कट्फल (कायफल), सोमराजी (वाकुची), वेल, सोंठ, दन्ती, सतावर, कुटकी, अजगन्धा, अश्वगन्धा, गजपीपल, मरिच, त्रिजातक, लवङ्ग, सहजना, जातीफल, छार छवीला, जावित्री प्रत्येक २ तोला। गुग्गुल और लोह प्रत्येक १ सेर, शिलाजतु ऽ॥ आधा सेर ये सव द्रव्य एकत्र चूर्ण कर सव के समान चीनी उसमे मिला कर जल में मर्दन कर के बटी वनावे। मात्रा—६ रत्ती। अनुपान—उष्ण जल और दूध। यह मूत्रज वृद्धि आदि नाना रोग नष्ट करती है।

अन्त्रज वृद्धिरोग-चिकित्सा

वातारि रस—पारद १ भाग, गन्धक २ भाग, त्रिफला मिलित ३ भाग, चीतामूल ४ भाग, गुग्गुल ५ भाग ये सव एरण्ड तैल में मर्दन कर ६ रत्ती प्रमाण वटी वनावे। अनुपान—सोंठ और एरण्डमूल का क्वाथ। औषध सेवन के अन्त में पीठ पर अण्डी का तेल मलवाकर स्वेद प्रदान करे। विरेचन होने पर स्निग्ध और उष्ण द्रव्य भोजन करावे। यह सव प्रकार के अन्त्रज वृद्धिरोग को शीघ्र विनष्ट करता है।

वृद्धिरोग के अनुपान

वातज वृद्धिरोग में—एरण्ड तैल, आदी का रस और मधु, गोमूत्र और रास्नादि पाचन।

पित्तज वृद्धिरोग में—पुनर्नवा का रस वा क्वाथ, रक्त चन्दन, मुलहठी का क्वाथ, घृत मधु और पञ्चवल्कल (वट, पीपल, गूलर, पाकर और सौलश्री) का क्वाथ।

कफज वृद्धिरोग में—त्रिकटु चूर्ण, जवाखार चूर्ण, त्रिफला का क्वाथ, गोमूत्र सिद्ध हरीतकी चूर्ण, निर्गुण्डी के पत्तों का रस और तुलसी पत्र का रस।

विंशतितम अध्याय

अम्लपित्त-चिकित्सा

वातज अम्लपित्त-चिकित्सा

क्षुधावती गुडिका—अजवाइन, त्रिकटु, गन्धक, पारद, अभ्र, गिलोय, चव्य, त्रिफला, जीरा सफेद और स्याह, पुनर्नवा, निसोत की जड़, दन्ती-मूल, वच, घेटू-कोल (घन्टा पाड़ल) मूल, अनन्तमूल, श्यामालता और डग्न कुनि (शंखपुष्पी) मूल प्रत्येक २ तोला, एवं मण्डूर ४ तोला, ये सब द्रव्य एकत्र आदी के रस में मर्दन कर गुडिका बनावे। अनुपान--काञ्जी। प्रतिदिन १ वटी सेवन करे। इसके सेवन से प्लीहा, वातज अम्लपित्त, परिणामशूल, आनाह और आमवात आदि रोग शीघ्र विनष्ट होते है। एवं तेज, बल और अग्नि बढ़ती है।

अन्य प्रकार की क्षुधावती गुडिका—गन्धक, लौह, पारद, अभ्र, त्रिफला, त्रिकटु, सतावरि, अजवाइन, वच, चव्य, जीरा सफेद व काला, प्रत्येक ८ तोला, घेटू कोल मूल (घण्टा कर्ण), पीपरा मूल, पुनर्नवा, मान, इन्द्रजो, डानकुनि मूल, (शंखपुष्पी) कसेरू, कमल, गिलोय, दन्तीमूल, निसोत, हुलहुल की जड़, आपां (चिचिढ़ा) मूल, लालचन्दन, भृङ्गराज, खुलकुड़ी, (मण्डूकपर्णी) और पटोल प्रत्येक ४ तोला, ये सब द्रव्य आदी के रस में मर्दन कर बेर की गुठली के समान गोली बनावे। अनुपान—काञ्जी। प्रतिदिन प्रातः १ वटी सेवन से वातज अम्लपित्त आदि अनेक रोग नष्ट होते है। इसके सेवन के समय मधुर द्रव्य विशेष कर दुग्ध और चीनी वर्जित करे।

पित्तज अम्लपित्त-चिकित्सा

भास्करामृत अभ्र—अरूसा की छाल, कशेरू, गिलोय, नीम छाल, खेत पापड़ा, मोथा, भृङ्गराज, श्वेत पुनर्नवा, बला, भटकटैरी और सतावरी

प्रत्येक १ पल रस में मर्दित सहस्र पुटित अभ्र, सतावरि के रस मे १२ वार भावना देकर २ रत्ती प्रमाण गोली वनावे, इसके सेवन करने से अम्लपित्तशूल, अन्न-द्रवशूल और तृष्णा आदि रोग शान्त होते हैं।

लीलाविलास—पारद, गन्धक, लौह, ताम्र और अभ्र ये ५ द्रव्य समान भाग लेकर आमले और वहेडे के रस मे ३ दिन थोड़ा-थोड़ा मर्दन करने के वाद भृङ्गराज के रस में मर्दन करे। मात्रा—२ रत्ती। यह मधु, दुग्ध, कुम्हडे का जल और आमलकी का रस अथवा चीनी के साथ सेव्य है। इसके सेवन से अम्लपित्त, शूल युक्त वमन और हृत्-प्रदाह निवृत होता है।

कफज अम्लपित्त चिकित्सा

पञ्चानन गुडिका:—पारद और गन्धक ४ तोला, लेकर कज्जली करे, उसके द्वारा १ पल परिमित ताम्रपत्र चारों ओर से लिप्त करे। तदनन्तर वह ताम्रपत्र मूषावद्ध कर गजपुट में पाक करे। इससे ताम्र भस्म होती है। यह ताम्र चूर्ण १ पल, पारद, गन्धक, लौह, अभ्र, यमानी, शुलफा, त्रिकटु, त्रिफला, निसोत, चव्य, दन्तीमूल, आपां (चिचिढ़ा) मूल, चीतामूल और हाड़ जोड़ा का मूल, प्रत्येक ½ पल, ये द्रव्य आदी के रस मे मर्दन कर उर्द प्रमाण वटिका वनावे। इसके सेवन से अम्लपित्त रोग नष्ट होता है।

अम्लपित्तान्तक रस—रससिन्दूर, ताम्र, अभ्र और लोह प्रत्येक १ भाग, हरीतकी चूर्ण ३ भाग ये सव समभाग में मर्दन कर उर्द बराबर वटिका वनावे। मधु के साथ सेवन करे। इसके सेवन से कफज अम्लपित्त रोग शान्त होता है।

द्वन्द्वज अम्लपित्त-चिकित्सा

वृहत् क्षुधावती वटी—अभ्र २ पल, लौह १ पल, मण्डूर ½ पल, ये सव एकत्र कर डान कुनि (शंखपुष्पी), श्वेत हुड़हुड़ इनके रस से स्थालीपाक करे, सतावरि, भीमराज, कशेरू और कांटानट के रस में द्वितीय स्थालीपाक एवं त्रिफला और नागरमोथा के रस में तृतीय स्थालीपाक कर फिर उन द्रव्यो का चूर्ण करे। पारद, गन्धक २-२ तोला, ये दोनों द्रव्य उत्तम रूप से मर्दन कर कज्जली करले उसके बाद पूर्वोक्त अभ्रादि चूर्ण, यह कज्जली और वच, चव्य, अजवाइन, जीरा, काला जीरा, सतावरि, त्रिकटु, मोथा, विडङ्ग, पीपरामूल, आपां (चिचिढ़ा) मूल,

चितामूल, निसोत, हुड़हुड़, सान, भृङ्गराज, घेंटू कोल, (घण्टापाढ़र), खान कुनिमूल (मंडूकपर्णी), कशेरु और कालिया कड़ामूल प्रत्येक ४ तो०, त्रिफला मिलित १½ पल ये सब द्रव्य लौहपात्र में ३ वार भावना देकर और सिल पर पीसकर वेर की गुठली के समान वटिका वनावे। इसे कांजी के साथ सेवन करे। इसके सेवन के समय मधुर द्रव्य, विशेषतः दुग्ध और नारिकेल भोजन निषिद्ध है। इसके सेवन से अम्लपित्त, परिणाम शूल, पाण्डु, गुल्म, यक्ष्मा, सब प्रकार का कास, अरुचि, मन्दाग्नि और प्लीहा आदि नाना प्रकार के रोग नष्ट होते हैं।

अम्लपित्तरोग चिकित्सा का अनुपान

वातप्रधान अम्लपित्त चिकित्सा में—पीपल का चूर्ण और मधु, जम्हीरी नीवू का रस, हींग, त्रिफला चूर्ण, जीरा चूर्ण और सैंधव चूर्ण।

पित्तप्रधान अम्लपित्त चिकित्सा में—वासक (अरूसा) रस, पलता (परवर) का रस, गिलोय का रस, सतावर का रस, चीनी, धनिये का क्वाथ, क्षेत्र पापड़ेका रस, भांगरे का रस, चीते का क्वाथ, दारुहल्दी का क्वाथ, कुम्हडे का रस।

श्लेष्मा प्रधान अम्लपित्त चिकित्सा में—नीम की छाल का क्वाथ, मुलहठी का चूर्ण, गूगल, पीतशाल और जवासे का क्वाथ, मोथा का रस, कटेरी का क्वाथ, हरीतकी और दाख का क्वाथ, आमले का रस, निसोथ का चूर्ण, जौ का चूर्ण, पीपल और हरीतकी का क्वाथ, सोठ और पटोल का क्वाथ, अरूसे का क्वाथ।

एकविंशतितम अध्याय

प्लीहा और यकृतरोग चिकित्सा

ज्वर चिकित्सा वर्णन करते समय ज्वर के उपसर्ग स्वरूप प्लीहा और यकृत रोग की चिकित्सा विधि लिखी गई है। इस अध्याय मे दोषानुसार पृथग्भाव से प्लीहा और यकृत चिकित्सा विधि लिखी जाती है।

वातिक प्लीहा की चिकित्सा—(१) समुद्र में उत्पन्न सीप की भस्म ६ माशा, पीपल का चूर्ण ३ माशा, दूध ऽ।≈ एकत्र सेवन करने से वातिक प्लीहा विनष्ट होती है।

(२) शङ्ख नाभिभस्म ½ तोला नीबू के रस के साथ सेवन से भी प्लीहा विनष्ट होती है।

(३) **वासुकीभूषण रस**—पारा, गन्धक, वङ्ग, ताम्र ये सब समभाग लेकर आकन्द (आक) के रस में ३ घण्टे मर्दन कर मिट्टी लेपन कर पुटपाक करे। फिर वासक (अरूसा) के रस की भावना देकर २ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान-सैन्धव चूर्ण। यह भी वातिक प्लीहा नाशक है।

पैत्तिक प्लीहा चिकित्सा

(१) गन्धक, हरिताल, सोनामाखी, ताम्र, मैनशिल और पारद प्रत्येक समभाग में मिलाकर पीपल के क्वाथ और सेंहुड़ के दूध मे एक दिन भावना देकर २ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान-मधु और गाय का दूध। यह पैत्तिक प्लीहानाशक है।

(२) **चित्रकादि लौह**—चीता मूल, सोंठ, वासक (अरूसा) मूल, गिलोय, शालिपर्णी, ताल जटा की भस्म, आपा (चिचिढ़ा) मूल भस्म और पुराना मान, प्रत्येक का चूर्ण ६ तोला, लोह, अभ्र, पीपलचूर्ण, ताम्र, जवाखार, पांचों नमक, प्रत्येक का चूर्ण २ तोला, गोमूत्र १५ सेर। मृदु अग्नि से पाक करे। मात्रा—१ माशा। अनुपान-सेमर के फूलो का वासी क्वाथ और राई का चूर्ण। यह पैत्तिक प्लीहा का शीघ्र विनाश करता है।

श्लैष्मिक प्लीहा-चिकित्सा

प्लीहाशार्दूल रस—पारद, गन्धक, त्रिकटु प्रत्येक समभाग, इन तीनों के समान ताम्रभस्म एवं मैनशिल, कौडीभस्म, तूतिया, हीग, लौह, जयन्ती, रोहीतक (रोहेड़ा), जवाखार, सोहागा, सेंधानमक, विडलवण, चीता और जयपाल, ये द्रव्य पारद के समान। इनको निसोत, चीता, पीपल और आदी के रस में पृथक् २ तीन दिन भावना देकर १ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान-पीपल चूर्ण और मधु। इसके द्वारा शीघ्र कफज प्लीहा विनष्ट होती है।

रक्तजप्लीहा-चिकित्सा

(१) हरितालभस्म ¼ रत्ती, गाय के घी के साथ सेवन करने से रक्तज प्लीहा विनष्ट होती है।

(२) ताम्रभस्म–२ रत्ती परिमाण, आदी के रस और मधु के साथ सेवन करने से रक्तज प्लीहा आरोग्य होती है।

(३) विजयपर्पटी, हींग और पीपलचूर्ण के अनुपान से सेवन करने पर रक्तज प्लीहा आरोग्य होती है।

यकृत चिकित्सा

(१) प्लीहा रोग चिकित्सा मे जिन औषधियो का उपदेश हुआ है, यकृत रोग चिकित्सा में भी उन्ही औषधो का विवेचना पूर्वक प्रयोग करने से सुफल पाया जाता है।

(२) यकृत मे ताम्रभस्म २ रत्तीं मात्रा मे विडङ्ग और पीपल चूर्ण अथवा आदी के रस के साथ अथवा तालमखाने के पत्तो के रस के साथ सेवन करने से अतिदुर्निवार यकृत आराम होता है।

(३) महाशङ्ख द्रावक, वृहत् लोकनाथ रस, हरितालभस्म, हरितालसत्व, यकृदरि लौह, महामृत्युञ्जय लौह, ताम्र, लौह, हरिताल घटित औषध सेवन से यकृत मे अच्छा फल होता है।

प्लीहा और यकृत चिकित्सा में अनुपान

चीतामूल चूर्ण, जवाखार चूर्ण, अजवाइन चूर्ण, विडङ्ग चूर्ण, हरिद्र चूर्ण, आक के पत्तो का रस, पीपल चूर्ण, हरीतकी चूर्ण, लहसुन, बेड़ेला (वला), गोमूत्र, पुराना गुड़, सहजना का क्वाथ, सेमर फूल का वासी क्वाथ, श्वेत सरसो का चूर्ण, आपां (चिचिढ़ा) मूल का रस, सरफोका की जड़ पिसी हुई, हींग, पके आम का रस, रुहेड़िया की छाल का क्वाथ, गिलोय का रस, कुलेखाड़ा (तालमखाना) का रस, पपीते का रस आदि अनुपान युक्तिपूर्वक व्यवहार करे।

—०ः०—

द्वाविंशतितम अध्याय

कालरा (हैजा) चिकित्सा

कालरा रोग का कारण और व्यवस्था वर्णन करना इस पुस्तक का आलोच्य विषय नहीं है। हमारी लिखित 'सरल निदान' नामक पुस्तक में यह विशदभाव से वर्णित हुआ है। इस अध्याय में कालरा रोग की विभिन्न अवस्था में

कौन-कौन औषध किस प्रकार प्रयोग करने से रोगी आसन्न मृत्यु के ग्रास से बच सकता है, केवल यही संक्षेप रूप से लिखते हैं। अधिकांश क्षेत्रों में कालरा चिकित्सा के लिये लोग वैद्य को नही बुलाते। साधारण लोगों की यह धारणा है कि आयुर्वेद मत में कालरा की चिकित्सा नही है किन्तु यह धारणा भ्रमपूर्ण है। आयुर्वेद मत में कालरारोग की अति चमत्कारपूर्ण सुचिकित्सा है। उपयुक्त आलोचना, प्रयोग और प्रचार के अभाव से आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति दिन-दिन पीछे पड़ती जाती है। आयुर्वेदीय चिकित्सक वृन्द यदि मिलकर चेष्टा करें तो भारतवर्ष मे कालरा चिकित्सा क्षेत्र मे भी आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति ही प्रवर्तित हो जाय।

विड्भेदलक्षण कालरा की चिकित्सा

यदि हैजे में दस्त अधिक हों तो नीचे लिखी औषधें प्रयोग करें।

(१) **कर्पूररस**—इसके वनाने की विधि रक्तातीसार चिकित्सा में लिखी है। वहा देखिये। इसे भिगोये हुए कपूर के जल के अनुपान से सेवन करे।

अभयनृसिंह रस—हिङ्गुल, विष, त्रिकटु, जीरा, सोहागे का फूला, गन्धक, अभ्र, पारद प्रत्येक समान भाग, सबके समान अफीम, ये सब द्रव्य नीबू के रस में मर्दित कर १ रत्ती प्रमाण वटी वनावे। अनुपान-भुने जीरे का चूर्ण, मधु और कपूर भीगा जल।

वमन प्रधान कालरा की चिकित्सा

इस रोग में नीचे लिखी औषधें हितकर है—

(१) **वमनामृतयोग**—गन्धक, कमलगट्टा, नारंगी का छिलका, मुलहठी, शिलाजतु, रुद्राक्ष, सोहागे की खील, हिरण की सींग, सफेद चन्दन, कपूरकचरी और गोरोचन ये सव द्रव्य समभाग लेकर विल्वमूल के क्वाथ मे ३ दिन मर्दन कर ७ रत्ती परिमाण वटिका बनावे। अनुपान-डाव का जल, मुलहठी का चूर्ण, नारंगी का छिल्का, अथवा खीरा के वीज पिसे हुए।

(२) **वृषध्वजरस**--शोधित पारा, गन्धक, लौह, मुलहठी, चन्दन, आमला, छोटी इलायची, लवङ्ग, सोहागा, पीपल और जटामांसी, ये सब द्रव्य समभाग; शालपर्णी और ईख के रस में पृथक् पथक् ७ दिन भावना देकर बकरी के दूध में ३ घण्टा मर्दन करे। अनुपान-शालपर्णी का रस।

रक्तभेद और वमनयुक्त कालरा की चिकित्सा

नीचे लिखी औषधियां रक्तभेद और वमन युक्त कालरा मे हितकर है ।

(१) रसेन्द्रयोग--रससिन्दूर, अफीम, पिण्ड खजूर, जायफल, मोथा, लालचन्दन, पीपल, मुलहठी ये सब समभाग मे लेकर जल मे मर्दन कर ४ रत्ती की वटिका बनावे। दूर्वा के रस के अनुपान से प्रयोग करने पर खूनी दस्त और वमन युक्त हैजे से बहुत सफलता होती है ।

(२) मकरध्वज ½ रत्ती, अनार के रस और मधु के साथ प्रयोग करने से इस अवस्था मे उपकार होता है ।

(३) कर्पूर रस, सर्वाङ्गसुन्दररस, महागन्धक, पीयूषवल्ली रस आदि औषध इस अवस्था में कुडे की छाल और अनार के फल की छाल के क्वाथ के साथ प्रयोग से उपकार होता है ।

(४) वृषध्वज रस और वमनामृत योग, डाब का जल, भिगोये हुये कपूर का जल, मोथा का रस, अनार का रस, लालचन्दन और मुलहठी के क्वाथ के साथ प्रयोग करने से विशेष सफलता होती है ।

(५) महाशङ्खवटी, अग्नितुण्डी रस आदि औषध, कमला नीबू के पिसे हुए छिलके का क्वाथ, जायफल पिसा, खीरा के बीज पिसे, स्तनदुग्ध, शालिपर्णी का रस अभाव में क्वाथ के साथ प्रयोग करने से एवं कुडे के क्वाथ, अनार के रस वा फल के त्वक् के क्वाथ, कपूर भिगोया जल आदि के अनुपान से प्रयोग करने से सफलता होती है ।

ज्वर संयुक्त कालरा की चिकित्सा

नीचे लिखी औषधें ज्वर संयुक्त हैजे मे हितकारी हैं ।

(१) वृहत् कस्तूरीभैरव रस, आदी का रस और मधु के अनुपान से प्रयोग करने पर विशेष सुफल पाया जाता है ।

(२) वृहत् चन्द्रोदय मकरध्वज—स्वर्णसिन्दूर और कपूर प्रत्येक ८ तोला, जायफल, मरिच, लवङ्ग प्रत्येक ३२ संख्या, कस्तूरी ½ तोला, इन्हें जल मे मर्दन कर ४ रत्ती प्रमाण वटी बनावे। पान के रस और मधु के अनुपान से यह वटिका प्रयोग करने से ज्वर संयुक्त कालरा मे प्रभूत उपकार पाया गया है। परन्तु यह औषध विशेष विवेचनापूर्वक प्रयोग करे ।

दस्त और कै के उपसर्ग से युक्त हैजे की चिकित्सा

नीचे लिखी ओषधियां दस्त और कै के उपद्रव से युक्त हैजे में विशेष उपकारी हैं।

(१) अग्नितुण्डीरस—पारद, विष, गन्धक, अजवाइन, आमला, हर्र, बहेड़ा, सज्जीक्षार, यवाक्षार, चीते की जड़, सेंधानमक, जीरा, सोचर नोन, विडङ्ग, काकनालोन, सोंठ, पीपल, गोल मरिच, प्रत्येक समभाग लेकर समष्टि के समान शोधित कुचिला लेवे। उसके बाद मिलित द्रव्यों को गोंडा नीबू के रस में अच्छी तरह मर्दन कर २ रत्ती परिमाण वटिका बनावे। कपूर भीगा जल अथवा कच्चा नारियल के जल के साथ यह औषध प्रयोग करने से वमन और भेद (दस्त) युक्त हैजा में आरोग्य होता है।

(२) **महोदधि रस**—विष, रससिन्दूर १-१ भाग, जायफल २ भाग, सोहागा २ भाग, पीपल १ भाग, सोंठ ६ भाग, कौडीभस्म ६ भाग, लवङ्ग ५ भाग एकत्र जल में मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण वटी बनावे। अनुपान–डाब (नारियल कच्चा) का जल अभाव से शीतल जल, उल्लिखित दो औषधें क्रम से १-१ घण्टा के अन्तर से प्रयोग करने पर दस्त और कै से युक्त कालरा आरोग्य होता है।

आक्षेप संयुक्त कालरा चिकित्सा

सन्निपात ज्वर चिकित्सा प्रसङ्ग में कहा हुआ चतुर्भुज रस कुडे के चूर्ण और मधु के साथ प्रयोग करने से आक्षेप संयुक्त कालरा रोग आरोग्य होता है।

दस्त और वमन रहित हैजे की चिकित्सा

(१) इस जाति का कालरा अत्यन्त मारक है अतएव यह मालूम होते ही अच्छी चिकित्सा करनी आवश्यक है। यह रोग उत्पन्न होते ही रसचिकित्सा प्रथमखण्ड में ताम्रभस्म २ रत्ती मात्रा में आदी के रस और मधु के साथ प्रयोग करने से सुफल होगा।

(२) इस रोग में अचानक शरीर ठण्डा पड़ जाना, बोल बंद हो जाना आदि कठिन उपसर्ग उपस्थित हो जाने से विवेचनापूर्वक वृहत् कस्तूरीभैरव, वृहत् सूचिकाभरण रस आदि सन्निपात ज्वर रोगाधिकार में कही ओषधियां प्रयोग करे।

पक्षाघात संयुक्त कालरा चिकित्सा

(१) **ताम्रकेश्वर रस**—रससिन्दूर, हरिताल प्रत्येक १ भाग, भङ्ग १ भाग, गुड़ के साथ मर्दन कर ३ मासे परिमाण गोली वनावे। आदी के रस और मधु के अनुपान से यह औषध उपयोग करने से पक्षाघात संयुक्त कालरा आरोग्य होता है। पूर्वोक्त ताम्रभस्म से भी इस रोग मे वहुत उपकार होता है।

कालरा रोग में उपसर्ग की चिकित्सा

(१) **वमन में**—वमनामृत योग, वृषध्वज रस, डाव का जल, खीरा के वीज पिसे हुए, अनार का रस, आमले का रस, गिलोय का रस, मोथा का रस, वडी इलायची पिसी हुई, आम और जामन के पत्तो का औटाया हुआ जल, आदि किसी एक के साथ प्रयोग करने से वमन बंद हो जायगा।

(२) **हिचकी में—पिप्पलयादि लौह**–पिप्पली, आमला, दाख, वेर के वीज की मीगी, मुलहठी, चीनी, विडङ्ग, कुडा प्रत्येक समभाग में लेकर समष्टि के समान लोहा ग्रहण कर जल मे मर्दन कर ५ रत्ती परिमाण बटिका वनावे। अनुपान–पीपल का चूर्ण, मधु, गरम जल, तुलसी का क्वाथ, वासक (अडूसा) का क्वाथ, विजौरे नीबू के रस, सेंधानमक, मुलहठी के चूर्ण आदि के अनुपान से प्रयोग करने पर हैजेवाले रोगी की हिचकी वंद होती है।

(३) **श्वास में**—श्वासकुठार रस प्रयोग करने से अति सुफल पाया जाता है। अनुपान—कुड़े का चूर्ण और मधु।

(४) **संज्ञालोप में**—इस अवस्था मे वृहत् कस्तूरीभैरव के प्रयोग से विशेष सुफल पाया जाता है। और अन्तिम अवस्था में वृहत् सूचिकाभरण रस प्रयोग करे। औषध की क्रिया आरम्भ होने के वाद शीत क्रिया करने से रोगी आरोग्य होता है।

(५) **शीताङ्ग में**—वृहत् कस्तूरीभैरव प्रयोग से विशेष सुफल पाया जाता है। अनुपान–आदी का रस और मधु, वृहत् चन्द्रोदय मकरध्वज, सिद्ध मकरध्वज, चतुर्भुज रस आदि औषध, मृतसञ्जीवनी सुरा और मृगमद आसव, अनुपान में प्रयोग करने पर रोगी आसन्न मृत्यु से वच सकता है।

(६) **पिपासा में**—महोदधि रस अथवा कुमुदेश्वर रस प्रयोग करने से विशेष सुफल पाया जाता है। अनुपान–आम की छाल का क्वाथ, पीपल चूर्ण

और मधु अथवा षडङ्गपानीय। कुमुदेश्वर रस और महोदधि रस के बनाने की विधि तृष्णारोगाधिकार में लिखी है।

(७) **मूत्ररोध में**—वज्रक्षार वा श्वेत चूर्ण नामक औषध, पाथर कुचि (पथरचूर) के पत्तों के रस और मधु अथवा स्थलपद्म (भार्गी) का रस, ईख की चीनी के साथ प्रयोग करने से लाभ होता है। यदि इससे पेशाब न उतरे तो वरुण की छाल और गोखुरू के क्वाथ के साथ पाषाणभेदी रस प्रयोग करे। इससे अति कृच्छ्रसाध्य कठिन मूत्ररोध निवृत्त होता है। कन्दूरी वृक्ष की जड़ के रस में और तृणपञ्चमूल (कुश, कास, शर, दर्भ, इक्षु) के क्वाथ में शोरा एक आना और घी में भुनी हीग २ रत्ती डालकर प्रयोग करने से मूत्र रूकना और पेट फूलना निवृत्त होता है। ककड़ी के बीज पिसे हुए और ईख की चीनी के अनुपान में रस सिन्दूर १ रत्ती मात्रा में प्रयोग करने से अतिदारुण मूत्रनिरोध आरोग्य होता है।

(८) **शूलवेदना में**—(क) मकरध्वज १ रत्ती, शोधित कुचिला एक आना भर, गोलमरिच का चूर्ण दो रत्ती एकत्र मर्दन कर गरम जल के साथ प्रयोग करने से अतिदारुण शूल वेदना आरोग्य होती है।

(ख) घृत में भुनी हीग २ रत्ती, विड लवण एक आना भर गरम जल के साथ प्रयोग करने से कालरा की शूल वेदना आरोग्य होती है।

(ग) ताम्रभस्म २ रत्ती, घृत और मधु अथवा आदी का रस और मधु अथवा गरम जल वा नीबू के रस के साथ प्रयोग करने से दारुण शूल वेदना आरोग्य होती है।

(९) **पसीने में**—प्रवाल भस्म २ रत्ती, मुलहठी के चूर्ण और मधु के साथ सेवन कराकर अबीर और सोंठ चूर्ण मर्दन करने से रोगी निश्चित रूप से आरोग्य होता है।

(१०) **नाड़ीलोप में**—बृहत् कस्तूरीभैरव रस, चतुर्भुज रस, बृहत् चन्द्रोदय मकरध्वज, सिद्ध मकरध्वज और सबके अन्त में बृहत् सूचिकाभरण प्रयोग करे।

(११) **खल्लीरोग में**—इस अवस्था में बृहत् वातचिन्तामणि कुड़े का चूर्ण और मधु के साथ प्रयोग करने से बहुत उपकार होता है। रसराज रस, वात-

नाशिनी, महालक्ष्मीविलासरस आदि औषध विवेचनापूर्वक प्रयोग करना उचित है। वातव्याधि अधिकार के कुछ तैल भी विवेचनापूर्वक प्रयोग करने से सुफल होता है।

श्वेतचूर्ण—सोरा ४ तोला, फिटकिरी २ तोला, सैन्धव १ तोला उत्तमरूप से सूक्ष्म चूर्ण करे फिर लोहे की कढ़ाई मे रखकर अग्नितापसे गलावे। हलके हाथ से ऊपर का मैल उतार दे, फिर कांसे के पात्र मे ढाल कर अन्य कासे के पात्र द्वारा ढककर रख दे।

त्रयोविंश अध्याय

उदररोग चिकित्सा

वायुजनित उदररोग चिकित्सा

त्रैलोक्यसुन्दररस—पारद, गन्धक, अभ्र, सैन्धव, मीठा विष, कालाजीरा, विडङ्ग, गिलोय का सत, चीते की जड़, वड़ी इलायची, जवाखार प्रत्येक आधा भाग ये द्रव्य निर्गुण्डी के रस और जम्हीरी नीबू के रस के साथ मर्दन कर २ रत्ती मात्रा की वटी बनावे। घृत के साथ मर्दन कर यह औषध सेवन करे।

त्रैलोक्यडुम्बुररस—पारा २ भाग, गन्धक ४ भाग, अभ्र, चीता, विडङ्ग, गिलोय का सत, सीसा, कालाजीरा, त्रिकटु, सैन्धव, जवाखार प्रत्येक १ भाग ये सव तुलसीपत्र और विजौरा नीवू के रस मे मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण वटी बनावे। उसके वाद घृत के साथ मर्दनकर प्रयोग करे। यह वातोदर नाशक है। अनुपान—हींग २ रत्ती, जीरा पिसा हुआ २ रत्ती और मधु।

वायुजनित उदररोग में अनुपान—हीग, जीरा चूर्ण, गरम दूध और एरण्डतैल, चीतामूल चूर्ण, गोमूत्र, दशमूल का क्वाथ और एरण्डतैल, सैन्धवलवण चूर्ण, जम्हीरी नीवू का रस इत्यादि।

पित्तजनित उदररोग की चिकित्सा

इच्छाभेदीरस—सोंठ, मरिच, पारद, गन्धक, सोहागा प्रत्येक १ भाग, जयपाल २ भाग ये सव एकत्र जल मे मर्दन कर २ रत्ती परिमाण वटी बनावे। अनुपान—चीनी का जल। जितने चुल्लू चीनी का जल पान करे उतने ही दस्त हों, यह पित्तजउदररोग नाशक है।

उदयमार्तण्ड रस—पारद २ भाग, गन्धक और ताम्रपत्र प्रत्येक ८ भाग एकत्र जम्हीरी के रस से मर्दन करे। उसके बाद उक्त द्रव्य उक्त रस में डुबाकर धूप में रख दे। ताम्र द्रवीभूत होने पर जिमीकंद के रस में मर्दन कर गजपुट में पाककर २ रत्ती मात्रा में घृत और मधुसहित प्रयोग करे। यह पित्तजनित सब प्रकार के उदररोग का नाशक है।

पित्तजनित उदररोग में अनुपान—घृत और मधु, चीनी का शर्बत, दूध, निसोत चूर्ण, सोन्दाल (अमलतास) की मज्जा, त्रिफला का चूर्ण इत्यादि।

कफजनित उदररोग की चिकित्सा

उदरान्तक रस—अभ्र, लौह, पारद, गन्धक, मैनशिल, हरिताल, ताम्र, त्रिकटु, चीते की जड़, कुडा, काली मूसली, मीठाविष, अजवाइन ये सब सम भाग नीवू के रस में मर्दन कर दो रत्ती प्रमाण वटी बनावे। मधु के साथ यह वटी सेवन करने से श्लेष्माजनित सब प्रकार के उदररोग नष्ट होते हैं।

महावह्नि रस—पारद, गन्धक, प्रत्येक ८ भाग, हलदी, त्रिफला, मैनशिल प्रत्येक २ भाग, निसोत, जयपाल, चीता प्रत्येक ३ भाग, त्रिकटु, दन्ती और जीरा प्रत्येक ७ भाग इनका चूर्ण करे। जयन्ती, सेंहुड़ का दूध, भांगरा, चीता और अण्डी के तेल में ७ वार भावना देकर ४ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। गरम जल के साथ एक वटिका सेवन करने से सब प्रकार के उदररोग नष्ट होते हैं। यह औषध सेवन कर शीतल जलपान न करे। इस औषध के सेवन करने से विरेचन होने पर तक्र संयुक्त अन्न भोजन करे।

त्रिदोषजनित उदररोग की चिकित्सा

नाराचरस—ताम्र, पारद, गन्धक, जमालगोटा के वीज, त्रिफला, त्रिकटु, सज्जीखार, जवाखार, सोहागा ये सब समान भाग ले मर्दन कर ४ रत्ती परिमाण उष्ण जल के साथ प्रयोग करे। यह त्रिदोपजनित उदररोग की अति उत्कृष्ट औषध है।

वङ्गेश्वररस—पारद और वङ्ग प्रत्येक १ भाग, ताम्र और गन्धक प्रत्येक ४ भाग इन सवको एकत्र कर आक के दूध के साथ पीसे और मृदु अग्नि से पुट देवे। मात्रा—२ रत्ती। औषध सेवन के अन्त में घृतयुक्त आक का चूर्ण सेवन करे। यह त्रिदोषजनित उदररोग को समूल नष्ट करता है।

ताम्र प्रयोग—तामे को भस्म कर दो रत्ती मात्रा में आदी के रस और मधु के साथ प्रातः प्रयोग करे। इसके द्वारा त्रिदोषजनित उदररोग विनष्ट होता है।

जलोदर-चिकित्सा

जलोदरारिरस—पीपल, मरिच, हलदी का चूर्ण और ताम्र सम भाग लेकर इन्हें सेहुड़ के दूध मे मर्दन कर सब चूर्ण के समान जयपाल का चूर्ण उसमें मिलावे। मात्रा-१ माशा। इसके सेवन से विरेचन होकर सब तरह का जलोदर शीघ्र नष्ट होता है।

उदरारि रस—पारद, तूतिया, जयपाल के बीज और पीपल सम भाग लेकर सोन्दाल (अमलतास) फल की मज्जा और सेंहुड़ के दूध में मर्दन करे। ४ रत्ती परिमाण वटिका बनावे। अनुपान—इमली का रस। यह सब तरह के जलोदर की एक परीक्षित औषध है।

प्लीहोदर-चिकित्सा

रोहितकाद्य लौह—रोहितक छाल, त्रिकटु, त्रिफला और त्रिमद (विडङ्ग, मोथा, चित्रक) प्रत्येक समभाग; सब के समान लौह। ये सब एकत्र मधु के साथ लौहपात्र में मर्दन कर ले। मात्रा-६ रत्ती। अनुपान-गोमूत्र, पिसा हुआ लहसन और पीपल चूर्ण।

प्लीहारिरस—पारद, गन्धक, विष, त्रिकटु, त्रिफला प्रत्येक १ तोला, जयपाल ५ तोला, ये सब पलाश वृक्ष के रस मे मर्दन करके १ रत्ती परिमाण वटिका बनावे। अनुपान-आदी का रस। यह प्लीहोदर रोगी को सेवन कराने से प्रत्येक क्षेत्र मे सुफल पाया गया है।

पिप्पल्याद्यलौह—पीपरामूल, चीता, अभ्र, त्रिकटु, त्रिफला, त्रिमद, कर्पूर और सैन्धव इनका चूर्ण समभाग। सब चूर्ण के समान लौह चूर्ण। इनको जल मे मर्दन करके छः रत्ती परिमाण वटिका बनावे। अनुपान—रोहितक और हरीतकी का क्वाथ।

शङ्खद्रावक—शङ्खचूर्ण, जवाखार, सज्जीखार, सोहागा, पाचो नमक, फिटकिरी और नौसादर ये सब कांच की कूपी मे रखकर वारुणीयन्त्र मे चुवा ले।

महाशङ्खद्रावक—इमली की छाल, पीपर की छाल, सेंहुड की छाल, आक की छाल, आपाङ्ग (चिचिढ़ा) इनका पृथक् २ क्षार जल तैयार करे और उसमें से

नमक निकाल ले, फिर सोहागा, जवाखार, सज्जीखार, पांचो नमक, हीग, हरिताल, लवङ्ग, नौसादर, जायफल, गोदन्ती हरिताल, सोनामाखी, गन्धवोल, विष, समुद्रफेन, सोरा, फिटिकिरी, शङ्खचूर्ण, शङ्खनाभिचूर्ण, प्रस्तरचूर्ण (पत्थर का चूना), मैनशिल, हीराकसीस, ये सव समभाग चूर्णकर वेत के रस की भावना देकर काच की कूपी में स्थापना करे। फिर ७ दिन वस्त्र से ढककर गरम जगह मे रक्खे। फिर मन्द अग्नि से वारुणीयन्त्र से पाक कर सत्त्व पातन करे। वह द्रवांश किसी काच के पात्र में पातित कर रख देवे। मात्रा—१ रत्ती। अनुपान—पान का रस। इसके द्वारा अति असाध्य प्लीहोदर भी शान्त होता है।

महाद्रावक रस—सोनामाखी, कांस्यमाखी, सेंधानमक, रसौत, समुद्रफेन, सज्जीखार, दारुमुज (शंखिया) ये सव द्रव्य प्रत्येक १ भाग, सोहागा ७ भाग, नौसादर ३॥ भाग, फिटकिरी ३॥ भाग, जवाखार १४ भाग, धातुकासीस, पद्मकासीस मिलित १४ भाग, ये सब द्रव्य समभाग चूर्णित कर कपरौटी किये हुए काच के पात्र में रखकर वकयन्त्र में क्रम से अग्नि की तेज वृद्धि करे और यथाविधि सावधानी से पाक कर उसका अर्क निकाल ले। मात्रा—८ रत्ती वा ७—८ बूंद। अनुपान—सोठ वा लवण का चूर्ण। इसके द्वारा कठिन प्लीहोदर भी शीघ्र आरोग्य होता है।

मलसञ्चय जनित उदर रोग की चिकित्सा

इच्छाभेदी रस—पारद १, गन्धक २, मरिच ३, सोहागा ४, सोंठ ५, हरीतकी ६, जयपाल ७ भाग एकत्र जल में मर्दन कर २ रत्ती परिमाण वटिका बनावे। अनुपान—उष्ण जल। यह सब प्रकार के मलसञ्चय जनित उदर रोग का नाशक है।

क्षत जनित उदर रोग चिकित्सा

क्षत जनित उदर रोग में विजयपर्पटी वा स्वर्णपर्पटी वा अभाव में रसपर्पटी प्रयोग से भी अति सुफल पाया जाता है। हरिताल भस्म प्रयोग से भी आशातीत सफलता होती है।

चतुर्विंश अध्याय

पाकाशय के क्षत की चिकित्सा

(गैस्ट्रिक आलसार)

अनेक कारणो से बहुत दिन तक अजीर्ण रोग भोगने से रोगी के पाकाशय मे क्षत हो जाता है। इस क्षेत्र मे नीचे लिखी औषधे विशेष फलप्रद हैं।

(१) शूल चिकित्सा प्रसङ्ग में कथित त्रिनेत्ररस घृत और मधु के अनुपान से सेवन करने पर पाकाशय का क्षत निवृत्त होता है।

(२) पर्पटी सेवन के नियम से विजयपर्पटी सेवन करने से पाकाशय का क्षत निरोग होता है। वज्रपर्पटी विशेष रूप से सुफल देती है। परन्तु यह विशेष विवेचना कर प्रयोग करना चाहिये।

(३) शोधित गन्धक $\frac{1}{4}$ तोला से $\frac{1}{2}$ तोले तक घृत और मधु के साथ अथवा गरम दूध के साथ सेवन करने से पाकाशय का क्षत निवृत्त होता है।

(४) गोदन्ती हरिताल भस्म $\frac{1}{4}$ रत्ती मात्रा मे घृत के अनुपान से प्रयोग करने से पाकाशय का क्षत निवृत्त होता है।

रसेन्द्र चूर्ण—स्वर्ण, पारद, गन्धक, हरिताल, दारमुज (शंखिया), ताम्र, समभाग ले एकत्र चूर्ण कर वालुकायन्त्र से गजपुट मे ४ प्रहर पाक करे। पात्र शीतल होने पर उतार कर उसके तले मे लगी हुई औषध चूर्ण कर $\frac{1}{2}$ रत्ती मात्रा मे घृत और मधु के साथ प्रयोग करे। यह सब प्रकार के पाकाशय-क्षत का निवारक, अग्निवर्धक और ज्वर निवारक है।

पित्तशिला चिकित्सा

(गलस्टोन)

पित्तशिला में नीचे लिखी औषधें हितकर हैं—

(१) अश्मरी रोगाधिकार में कहा हुआ पाषाणभेदी रस, त्रिविक्रम रस, शूलरोगाधिकार में कहा हुआ त्रिनेत्र रस, इस रोग मे प्रयोग करने से आरोग्यकर होता है। अनुपान—बृहत् वरुणादि कषाय, कुलथी की दाल का क्वाथ, पुनर्नवा रस, पाथर कुची (पाषाणभेद) का रस जवाखार का चूर्ण और हींग।

(२) ताम्र भस्म २ रत्ती मात्रा, तालमखाने (कुलेखाड़ा) के रस और मधु के साथ प्रयोग करने से सब प्रकार की पित्तशिला निश्चय आराम होती है।

(३) अति विशुद्ध वारितर लौहभस्म २ रत्ती मात्रा मे मधु के साथ मर्दन कर प्रयोग करे फिर तृणपञ्चमूल का क्वाथ अनुपान के लिये प्रयोग करे। यह सब प्रकार की पित्तशिला का नाशक है।

(४) विशुद्ध शिलाजीत एक आना भर मधु के साथ मर्दन कर वीरतरादि गण क्वाथ के अनुपान से प्रयोग करने पर सब प्रकार की पित्तशिला आरोग्य होती है।

(५) ताम्रपर्पटी, लौहपर्पटी और पञ्चामृतपर्पटी प्रयोग से पित्तशिला मे अति सुफल पाया जाता है।

(६) विशुद्ध हरिताल भस्म $\frac{1}{8}$ रत्ती मात्रा मे घृत के अनुपान से प्रयोग करने पर पित्तशिला आरोग्य होती है। अनुपान—कुलथी का क्वाथ।

(७) (क) पित्तशिला की घोर पीड़ा नष्ट करने के लिये वातारि रस कुड़ा, गोखुरू, वरुण की छाल, पाषाणभेद, सोठ और एरण्डमूल के क्वाथ के साथ प्रयोग करे। (ख) मकरध्वज १ रत्ती और शुद्ध कुचिला ४ रत्ती एकत्र मिलाकर वरुण छाल, कुलथी, कुडा, सोंठ और गोखरू के क्वाथ के साथ प्रयोग करे।

—०००—

पञ्चविंश अध्याय

मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा

वातज मूत्रकृच्छ्र में-वरुणादि लौह—वरुण की छाल १६ तोला, आमला १५ तोला, धाय के फूल ८ तोला, हरीतकी ४ तोला, शालिपर्णी, लौह, अभ्र प्रत्येक २ तोला, इन सब का एकत्र चूर्ण कर प्रातः ४ रत्ती मात्रा सेवन करे। अनुपान-शुण्ठी, गिलोय, अश्वगन्धा, आमला, गोखुरु इनका क्वाथ। यह वातज मूत्रकृच्छ्र नाशक है।

पित्तज मूत्रकृच्छ्र में-त्रिनेत्र रसः—वङ्ग, पारद, गन्धक ये द्रव्य सम भाग में ग्रहण कर दूर्वा, मुलहठी, गोखुरू और सेमल के रस में एक दिन लोह-पात्र में मर्दन करे। फिर उसे मूषावद्ध कर भूधरयन्त्र में पाक करे, शीतल होने

पर उतार कर, पूर्वोक्त दूर्वा, मुलहठी, गोखुरू और सेमर के क्वाथ में भावना दे। उसके बाद ३ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। फिर दूर्वा, मुलहठी और सेमर के क्वाथ में और दूध में खीर बनाकर सेवन करावे। प्रातः शीतल जल पान करने को देवे। यह पित्तजमूत्रकृच्छ्र का विनाश करता है।

कफज मूत्रकृच्छ्र में-मूत्रकृच्छ्रान्तक रस—रससिन्दूर, हरिताल, तूतिया, समभाग ले इन्हें एक दिन शतावरी के रस मे मर्दन कर सरसो के तैल में तीन घण्टा पाक करे। मात्रा—४ रत्ती। औषध सेवन के अन्त मे, तुलसी, तिल कल्क, वेल मूल की छाल-इनका क्वाथ, काञ्जी, सुरा वा हुड़हुड़ का रस पान करने को देवे।

त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्र में—(१) ताम्रपर्पटी, हीग, घृत और मधु के अनुपान से सेवन करने पर त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्र आरोग्य होता है। (२) वारितर लौह भस्म ५ रत्ती मात्रा मे मधु के साथ मिलाकर सेवन करने से सब प्रकार का दुःसाध्य मूत्रकृच्छ्र आरोग्य होता है। (३) कज्जली और जवाखार समपरिमाण में लेकर चीनी और तक्र के साथ मिलाकर सेवन करने से सब प्रकार का मूत्रकृच्छ्र आरोग्य होता है।

अभिघातज मूत्रकृच्छ्र में—रससिन्दूर १ रत्ती मात्रा में मधु के साथ मिलाकर प्रयोग करे। उसके बाद सोठ, गिलोय, अश्वगंध, गोखरू और आमले का क्वाथ अनुपान रूप से प्रयोग करे। इसके द्वारा सब प्रकार का अभिघातज मूत्रकृच्छ्र आरोग्य होता है।

पुरीषज मूत्रकृच्छ्र में-वातारि रस—पारद १ भाग, गन्धक २ भाग, एकत्र मर्दन कर कज्जली करे, प्रथमतः गुग्गुलु ५ भाग एरण्ड तैल में मर्दन कर उसके साथ पूर्वोक्त कज्जली और त्रिफला-चूर्ण ३ भाग और चीतामूल चूर्ण ४ भाग मिलावे और उसे, एरण्डतैल द्वारा फिर मर्दन करके १ माशा परिमाण वटिका बनावे। अनुपान-सोंठ और एरण्डमूल का क्वाथ। औषध सेवनान्त में रोगी के पीठ पर एरण्डतैल मलकर स्वेद प्रदान करे। विरेचन होने पर स्निग्ध और उष्ण द्रव्य भोजन करावे।

पथरी से उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र में-पाषाणभेदीरस—पारद १ भाग, गन्धक २ भाग एकत्र मर्दन कर उसमें अगस्त्य के पत्ते, पुनर्नवा, अड़ूसा और

अपराजिता के रस द्वारा पृथक् पृथक् ३ दिन भावना देवे। सूख जाने पर उसे मूत्रावद्ध कर पाक करे। मात्रा–२ रत्ती। अनुपान—कुलथी के क्वाथ के साथ इन्द्रायन के वीज और भुई आमला की जड़ पीसकर सेवन करे।

शुक्रज मूत्रकृच्छ्र में–(१) पाषाणभेदक रस—पारद १ भाग, गन्धक २ भाग, एकत्र श्वेत पुनर्नवा के रस के साथ मर्दनकर मूषारुद्ध करे और यथाविधि गजपुट मे पाक करे। मात्रा–१ माशा से २ माशा तक। अनुपान—गाम्भारीमूल और गोखरू का क्वाथ। इसके द्वारा शुक्रजमूत्रकृच्छ्र शीघ्र विनष्ट होता है।

(२) **योगेन्द्ररस**—रससिन्दूर १ तोला, स्वर्ण, लौह, अभ्र, मुक्ता और वङ्ग प्रत्येक ½ तोला, ये सव घृतकुमारी के रस में भावना देकर धान्य राशि मे ३ दिन रख कर २ रत्ती प्रमाण वटिका वनावे। अनुपान—त्रिफला का जल वा चीनी और शतावरी का रस।

(३) शिलाजतु, सोनामाखी, इलायची और हींग एकत्र समभाग में चूर्ण कर ४ रत्ती मात्रा में गुनगुने दूध और गुड़ के साथ सेवन करने से शुक्रज मूत्र-कृच्छ्र वज्राहत घृक्ष की तरह नष्ट होता है।

(४) केवल मात्र शोधित शिलाजतु, १ तोला मधु के साथ चाटने से शुक्रज मूत्रकृच्छ्र आरोग्य होता है।

शर्कराज मूत्रकृच्छ्र में–तारकेश्वर रस—पारद, गन्धक, लौह, वङ्ग, अभ्र, जवाखार, जवाखार, गोखुरू वीज और हरीतकी समभाग में लेकर एकत्र मर्दन कर, कुम्हडे के जल, तृणपञ्चमूल के क्वाथ और गोखुरू के रस में भावना देवे। उसके वाद २ रत्ती प्रमाण वटिका वनावे। अनुपान—गूलर का चूर्ण और मधु।

रक्तज मूत्रकृच्छ्र में–मूत्रकृच्छ्रहार—विदारीकन्द, गोखुरू, मुलहठी, नागेश्वर प्रत्येक आधा तोला। पाक का जल ऽ१॥ डेढ़ सेर शेष ऽ।=डेढ़ पाव। प्रक्षेप मधु ४ माशा। इस क्वाथ के साथ रससिन्दूर सेवन से सप्ताह मे रक्तज मूत्रकृच्छ्र विनष्ट होता है। तृणपञ्चमूल के क्वाथ के साथ सेवन से भी यह आरोग्य होता है।

मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा में अनुपान

वातज मूत्रकृच्छ्र में—सोठ, गिलोय, अश्वगन्धा और गोखुरूका क्वाथ, पुनर्नवा का रस, कुलथी का क्वाथ, दशमूल का क्वाथ, सोठ और एरण्ड की जड़ का

क्वाथ, शालिपर्णी का रस, पाषाणभेदी का रस, शतमूली का रस, वच और लालचन्दन क्वाथ विवेचना पूर्वक प्रयोग करे।

पित्तज मूत्रकृच्छ्र में—किसमिस का क्वाथ, विदारीकन्द, ईख का रस, तृणपञ्चमूल का क्वाथ, आमले का रस और गुड़, आमले का रस और दारुहलदी का चूर्ण, ककड़ी के बीज पिसे हुए, मुलहठी, पाषाणभेद का रस, गोखुरू और वरुण छाल का क्वाथ, हरीतकी, गोखुरू, सोन्दाल (अमलतास), जवासा और पाषाणभेदी का क्वाथ विवेचना पूर्वक प्रयोग करे।

कफज मूत्रकृच्छ्र में—इलायची का चूर्ण और गोमूत्र, केले की जड़ का रस, अथवा सुरा, गोखुरू का क्वाथ, कुड़ा, गोखुरू, वरुण की छाल और पाषाण भेद का क्वाथ।

त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्र में—ईषदुष्ण दुग्ध और गुड़ और इन्द्र जौ का क्वाथ।

पुरीषज मूत्रकृच्छ्र में—गोखुरू का क्वाथ और जवाखार का चूर्ण।

शुक्रज मूत्रकृच्छ्र में—घृत मिला हुआ दूध, इलायची का चूर्ण और हींग।

सर्व प्रकार के मूत्रकृच्छ्र में—श्वेत वेडेला (बला) की जड़ का क्वाथ जवाखार और चीनी समभाग में, कटेरी का रस मधु के साथ, गोरक्ष शालपर्णी का क्वाथ सैंधव मिलाकर त्रिफला पीसा हुई और शीतल जल।

षड्विंश अध्याय

मूत्राघात-चिकित्सा

वातकुण्डलिका में-तारकेश्वर रस—रससिन्दूर, अभ्र, गन्धक, तीनों समभाग मे लेकर मधु मे मिलाकर १ माशा परिमाण वटी वनावे। अनुपान—गूलर के फल का चूर्ण और मधु। यह वातकुण्डलिका नाशक है।

अष्ठीला में-त्रिविक्रम रस—शोधित ताम्र मे समपरिमाण बकरी का दूध मिलाकर एकत्र पाक करे। जव दूध निःशेष हो जाय तव उस ताम्र के समान कज्जली एकत्रित कर निर्गुण्डी के रस में मर्दन करे और ३ घण्टा बालुकायन्त्र मे पाक करे। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान-जम्हीरीनीबू की जड़ का चूर्ण और जल। यह अष्ठीला रोग की एक परीक्षित औषध है।

वातवस्ति में-लघुलोकेश्वर रस—विशुद्ध पारा १ भाग, गन्धक ४ भाग, एकत्र मर्दन कर कौड़ी मे भरकर, पारद का ¼ चौथाई सोहागा, दूध द्वारा पीसकर उसके द्वारा कौडी का मुख वंद कर दे फिर वह कौड़ी मूषा में रख कर कपरौटी कर सन्धिस्थान अच्छी तरह वन्द कर पुटपाक मे दग्ध करे। शीतल होने पर चूर्ण कर ४ रत्ती परिमाण औषध और मरिच का चूर्ण, जातीमूल का चूर्ण और जायफल का चूर्ण प्रत्येक ४ रत्ती एकत्र कर बकरी के दूध और चीनी के साथ पान करने से वातवस्ति विनष्ट होती है।

मूत्रातीत में-पाषाणभेदी रस—इसके वनाने और प्रयोग करने की विधि अश्मरीजन्य मूत्रकृच्छ्र मे मूत्रकृच्छ्र रोगाधिकार में देखिये।

मूत्रजठर में—वज्रक्षार, हींग, अगस्त्य के पत्तों का रस और मधु के साथ सेवन करे। वातारिरस-सोंठ और एरण्ड मूल के साथ सेवन करे।

मूत्रोत्सङ्ग में—योगेन्द्र रस, चिन्तामणि, चतुर्मुख, त्रिनेत्र रस, त्रिविक्रम रस, तृणपञ्चमूल के क्वाथ के साथ प्रयोग करने से शुभ फल प्राप्त होता है।

मूत्रग्रन्थि में—लघुलोकेश्वर, त्रिविक्रम रस और वातारि रस की व्यवस्था करे।

मूत्रक्षय में—वरुणाद्यलोह, योगेन्द्र रस, चिन्तामणि, चतुर्मुख आदि औषध वरुणादिगण वा तृणपञ्चमूल के क्वाथ के साथ प्रयोग करे।

मूत्रशुक्र में—शिलाजतु दो रत्ती मात्रा में तृणपञ्चमूल के क्वाथ के साथ वा पाचन के साथ सेवन करे।

उष्णवात में—त्रिनेत्र रस प्रयोग करने से सुफल पाया जाता है।

मूत्रसाद में—त्रिविक्रम रस, योगेन्द्र रस, चिन्तामणि रस, वरुणाद्य लौह, मूत्रकृच्छ्रान्तक रस, पित्त और कफनाशक अनुपान से प्रयोग करे।

विड्विघात में—वातारि रस दुग्ध और एरण्ड तैल के अनुपान से प्रयोग करने पर विड्विघात आरोग्य होता है। इसके साथ त्रिनेत्र रस वरुणादिगण के क्वाथ के साथ प्रयोग करे।

वस्तिकुण्डल में—प्रथम वातारिरस प्रयोग करे, अनुपान-सोंठ और एरण्डमूल का क्वाथ। उसके वाद योगेन्द्र रस दे, अनुपान-तृणपञ्चमूल का क्वाथ। उसके वाद शिलाजतु एक आना मात्रा में चीनी और दशमूल के क्वाथ के

अनुपान से प्रयोग करे। उसके बाद त्रिविक्रम रस प्रयोग करे। रोगी दुर्बल न हो तो ताम्र भस्म दो रत्ती, घृत और मधु अथवा वरुणछाल और गोखुरू के क्वाथ से प्रयोग करे। वस्ति का मुख कफ से घिर जाने पर पाषाणभेदी रस, त्रिनेत्राख्य रस, ताम्रभस्म, शिलाजतु और जवाखार, बृहत् वरुणादि क्वाथ के साथ प्रयोग करे।

मूत्राघात में अनुपान

तृणपञ्चमूल का क्वाथ—गोयालि लता के मूल का क्वाथ, वीरतरादिगण का क्वाथ, वरुणादिगण का क्वाथ, बकरी का मूत्र, भेड का मूत्र, 'कटेरी का रस, भिगोये कुङ्कुम का जल, धनिया और गोखुरू का क्वाथ, श्वेत चन्दन घिसा हुआ और चीनी, सतावर का रस, त्रिफला और सेंधानमक मिली हुई काञ्जी, जवाखार और चीनी मिला हुआ कुम्हडे का रस।

सप्तविंश अध्याय

अश्मरी (पथरी)-चिकित्सा

वातज अश्मरी में—पाषाणवज्ररस—शोधित पारा १ भाग, गन्धक, २ भाग, श्वेत पुनर्नवा के रस मे १ दिन खल मे मर्दन कर भूधरयन्त्र मे पाक करे। शीतल होने पर निकाल कर गुड़ के साथ वटी बनावे। अनुपान—इन्द्रायन की जड़ और कुलथी का क्वाथ। मात्रा-२ रत्ती।

पित्तज अश्मरी में—त्रिविक्रम रस प्रयोग करने से विशेष सुफल पाया जाता है। अनुपान-बृहद्वरुणादि कषाय।

कफज अश्मरी में-पाषाणभिन्नरस—पारद ८ तोला, गन्धक १६ तोला, शिलाजतु ८ तोला, ये सब एकत्र कर यथाक्रम से श्वेत पुनर्नवा, अरूसा और श्वेत अपराजिता के रस में एकदिन मर्दन कर सुखाकर भाण्ड में बंद करे और दोलायन्त्र में स्वेद प्रदान करे। मात्रा-२ रत्ती। अनुपान-कुलथी का क्वाथ।

शुक्राश्मरी में—विशुद्ध शिलाजतु एक आना भर शुण्ठ्यादि क्वाथ के साथ प्रयोग करने से शुक्राश्मरी आरोग्य होती है।

अश्मरी चिकित्सा में अनुपान

हल्दी का चूर्ण, गुड़, काञ्जी, कड़वी ककड़ी की जड़, मधु और चीनी, सोंठ, वरुण की छाल और गोखरू का क्वाथ, वृहद् वरुणादि पाचन, वीरतरादि गण का क्वाथ, तृणपञ्च मूल पाचन, जवाखार, हीग, ऊषकादि गण का चूर्ण, इत्यादि द्रव्य विवेचनापूर्वक प्रयोग करे।

अष्टाविंश अध्याय

प्रमेह-चिकित्सा

श्लेष्मज दश प्रकार के प्रमेह की चिकित्सा

(१) **उदकमेह में-विडङ्गादि लौह**—विडङ्ग, मोथा, त्रिफला, पीपल; सोंठ, जीरा और कालाजीरा प्रत्येक समभाग, सब के समान लौह एकत्र मर्दन करे। इससे उदकमेह आरोग्य होता है। अनुपान—हरीतकी, कायफल, मोथा और लोध का क्वाथ। मात्रा—४ रत्ती।

(२) **इक्षुमेह में-वङ्गेश्वर रस**—रससिन्दूर १ तोला और बङ्गभस्म १ तोला, एकत्र मधु के साथ मर्दन कर ४ रत्ती परिमाण वटिका बनावे। अनुपान-पाठा, विडङ्ग, अर्जुन छाल और धामना का क्वाथ और मधु इक्षुमेह नाशक है।

(३) **सान्द्रमेह में-मेघनाद रस**—रससिन्दूर, कान्त लौह, अभ्र, शिलाजतु, सोनामाखी, मनःशिला, त्रिकटु, त्रिफला, सफेद आक, जीरा, कपास के वीज और हलदी का चूर्ण ये द्रव्य, समभाग में एकत्र कर चीते के रस मे ३० वार भावना देकर ६ रत्ती परिमित वटिका बनावे। अनुपान-हलदी, दारुहल्दी, तगरपादुका और विडङ्ग का क्वाथ। यह सान्द्रमेहनाशक है।

(४) **सुरामेह में-हरिशङ्कर रस**—रससिन्दूर और अभ्र समभाग मे लेकर आमले के रस में ७ दिन भावना दे। मात्रा-४ रत्ती, अनुपान—कदम्ब, शाल, अर्जुन और अजवाइन का क्वाथ।

(५) **पिष्टमेह में-इन्द्रवटी**—रससिन्दूर, वङ्ग, अर्जुन की छाल इन्हें समभाग में लेकर सेमर मूल के रस मे मर्दन कर ६ रत्ती प्रमाण वटिका वनावे। अनुपान—दारु हलदी, खदिर, धव और विडङ्ग का क्वाथ।

(६) **शुक्रमेह में-मेहकेशरी**—वङ्ग, सुवर्ण, कान्तलौह, पारद, मुक्ता, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात और नागकेशर ये सब द्रव्य समभाग में चूर्ण कर घृतकुमारी के रस में भावना देकर २ रत्ती परिमित वटिका बनावे। अनुपान—देवदारु, कुडा, अर्जुन और चन्दन का क्वाथ।

(७) **सिकतामेह में-प्रमेहसेतु**—पारद १, वङ्ग २ और गन्धक ६ भाग एकत्र कूपीपक्व करने से प्रमेहसेतु तैयार होता है। यह सिकतामेह नाशक है। अनुपान—दारु हलदी, त्रिफला, गणियारी और पाठा का क्वाथ।

(८) **शीतमेह में-आनन्दभैरव रस**—वङ्ग, स्वर्णभस्म, रससिन्दूर इनको समभाग लेकर मधु के साथ मर्दन करे। मात्रा-२ रत्ती। अनुपान—पाठा, दूर्वा और गोखुरू का क्वाथ। यह शीतमेह नाशक है।

(९) **शनैर्मेह में-पञ्चानन रस**—पारद, गन्धक, लौह, अभ्र, प्रत्येक १ तोला, वङ्ग ८ तोला ये सब एकत्र मधु के साथ मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान—अजवाइन, खस, हरीतकी और गिलोय का क्वाथ।

(१०) **लालामेह में-वृहत् हरिशङ्कर रस**—पारद, गन्धक, लौह, स्वर्ण, वङ्ग और स्वर्णमाक्षिक ये द्रव्य सम भाग एकत्र करके आमले के रस में ७ दिन भावना दे। मात्रा-२ रत्ती। यह लालामेह निवारक है। अनुपान—जामन की छाल, हरीतकी, चीता और छातिम छाल का क्वाथ।

पित्तज छ प्रकार के प्रमेह रोग की चिकित्सा

(१) **क्षारमेह में-वङ्गावलेह**—वङ्गभस्म ४ रत्ती मधु के साथ लेहन कर फिर गुड़ १ तोला और गन्धक ¼ तोला एकत्र कर भक्षण करे। अथवा गिलोय का सत ½ तोला और चीनी १ तोला, एकत्र कर सेवन करे। यह वङ्गावलेह क्षारमेह की एक उत्कृष्ट औषध है। अनुपान-लोध, सुगन्धवाला, दारुहल्दी, धाइ के फूलों का क्वाथ।

(२) **नीलमेह में-विद्यावागीश रस**—रससिन्दूर, अभ्र, सीसक, स्वर्ण, प्रत्येक एक भाग, महानिम्ब चूर्ण ४ भाग, ये सब द्रव्य एकत्र कर १ माशा परिमाण में मधु के साथ लेहन करे। अनुपान-पटोल, नीम की छाल, आमला और गिलोय का क्वाथ। वृहत् हरिशङ्कर रस का इस रोग में प्रयोग करने से अच्छा फल पाया जाता है।

(३) **मसीमेह में-चन्द्रप्रभावटी**—रससिन्दूर, अभ्र, लौह, सीसा, वङ्ग, इलायची, लवङ्ग, जावित्री, जायफल, सौयाफूल (महुआ का फूल), मुलहठी, आमला, चीनी, कपूर, खैरसार, सतावर, कटेरी, अम्लवेत ये सब द्रव्य समभाग लेकर विषलाङ्गली के रस द्वारा १ दिन भावना देकर बेर की गुठली के समान वटिका बनावे। मात्रा—४ रत्ती। अनुपान-मोथा, हरीतकी, पदमाख और कुडा की क्वाथ।

(४) **हरिद्रामेह में-चन्द्रकला रस**—इलायची, कपूर, शिलाजतु, आंवला, जायफल, नागेश्वर, सेमर मूसला, रससिन्दूर, वङ्ग और लौहभस्म प्रत्येक समभाग। भावनार्थ-गिलोय और सेमर का क्वाथ। मात्रा—१ माशा। अनुपान-खश, मोथा, आमला और हरीतकी का क्वाथ।

(५) **माञ्जिष्टमेह में-मेहान्तक रस**—गन्धक, लौह, रौप्य, वङ्ग, अभ्र प्रत्येक ३ भाग, स्वर्ण अर्द्ध भाग और सबके समान काली मूसली का चूर्ण, एकत्र जल में मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान-खस, लोध, लाल चन्दन और अर्जुन छाल का क्वाथ। यह माञ्जिष्ठ मेहनाशक है।

(६) **रक्तमेह में-योगीश्वर रस**—रससिन्दूर, अभ्र, वङ्ग प्रत्येक सम भाग, महानिम्ब (वकायन) के बीजो का चूर्ण ३ भाग ये सब एकत्र जल में मर्दन कर ६ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान—नीम छाल, अर्जुन छाल, आमला छाल और हरिद्रा का क्वाथ।

वातज ४ प्रकार के प्रमेह की चिकित्सा

(१) **वसामेह में-मेहकुलान्तकरस**—वङ्ग, अभ्र, पारद, गन्धक, चिरायता, पीपलामूल, त्रिकटु, त्रिफला, निसोत, रसौत, विडङ्ग, मोथा, वेल, सोठ, गोखुरू के वीज, अनार के वीज प्रत्येक १ तोला, शिलाजतु १ तोला ये सब ककडी के रस मे मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। यह वसामेह विध्वंसी है। अनुपान-गणियारी (अरनी) का क्वाथ।

(२) **मज्जामेह में-मेहकुञ्जरकेशरी**—पारद, गन्धक, लौह, अभ्र, सीसा, वङ्ग, स्वर्ण, हीरा, मुक्ता सब समभाग एकत्र कर सतावरि के रस में मर्दन कर एक गोला बनावे। इसे धूप मे सुखाकर शराव सम्पुट कर उनका सन्धिस्थल मिट्टी से लिप्त कर दे, इसके बाद इसे गढ़े में गोवर की अग्नि से १२ घण्टा

पुटपाक करे। इसके एक मास सेवन से ही मज्जामेह विनष्ट होता है। अनुपान—शीशम का क्राथ।

(३) **क्षौद्रमेह में-वेदविद्यावटी**—(१) पारद, अभ्र, कान्तलौह, सीसा प्रत्येक समभाग से लेकर ब्राह्मी के रस मे १ दिन मर्दन कर वालुकायन्त्र में पाक करे। फिर औषध निकालकर अभ्र, शिलाजतु, सोनामाखी, मण्डूर वैक्रान्त, हीराकस, प्रत्येक पारद के समान एवं मोथा, लालचन्दन, पुन्नाग, नारियल की जड़, कैथ, हलदी, दारुहल्दी, प्रत्येक द्रव्य समष्ठि के तुल्य लेकर जम्हीरी के रस मे मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान—आमलकी और गिलोय का रस और मधु।

(२) **बृहद् वङ्गेश्वर रस**—वङ्ग, पारद, गन्धक, रूपा, कपूर, अभ्र, प्रत्येक २ तोला, स्वर्ण और मुक्ता प्रत्येक ४ माशा ये सब द्रव्य कसेरु के रस में भावना देकर २ रत्ती प्रमाण वटिका बगावे। अनुपान—कच्ची हलदी का रस और मधु।

(४) **हस्तिमेह में-वङ्गाष्टक**—पारद, गन्धक, रौप्य, लौह, खर्पर, अभ्र और ताम्र प्रत्येक समभाग, सर्व समान बङ्ग। ये सब एकत्र मर्दन कर गजपुट मे पाक करे। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—आमलकी रस, हरिद्रा चूर्ण और मधु। यह हस्तिमेह नाशक है।

द्वन्द्वज प्रमेह-चिकित्सा

वातपित्तज प्रमेह में-भीमपराक्रम—प्रथमतः एक कराह में सीसा अग्नि ज्वाला पर चढ़ावे, गल जाने पर उसमे थोड़ी-थोड़ी इमली की छाल की भस्म डालकर लगातार करछी से चलाता रहे। फिर भस्मीभूत होने पर, वह सीसा १ भाग, और पारद १ भाग एकत्र मर्दन कर मिलावे। एक तिल भर से मात्रा आरम्भ कर क्रमशः इसकी मात्रा बढ़ाकर सेवन करे। यह बातज और पित्तज प्रमेह नाशक है। अनुपान—विडङ्ग, दारुहलदी, खदिर, खश और गुवाक का क्राथ।

वातकफज प्रमेह में-मेहारि—पारद २ भाग, गन्धक १ भाग, एकत्र मर्दन कर कज्जली करे, वह कज्जली काले धतूरे के रस के साथ एक दिन मर्दन कर एक कूपी में रक्खे, कूपी का मुंह अभ्र के टुकड़े से ढक दे। कूपी के ऊपर सात कपरौटी (कपरमिट्टी) कर ३ दिन सुखावे, और नमक से भरे हुए भाण्ड मे स्थापित कर १२ घण्टे पाक करे। शीतल होने पर कूपी तोड़ कर उसमें से रस संग्रह करे। वह रस २ भाग, अभ्र १ भाग और लोह १ भाग एकत्र मर्दन करे।

यह औषध ६ रत्ती मात्रा में मधु, चीनी और गिलोय के रस अथवा मधु और पीपल के चूर्ण के साथ सेवन से वातश्लेष्मज प्रमेह समूल नष्ट होता है। अनुपान—हरीतकी, कट्फल (कायफल), मोथा, लोध, खस और लालचन्दन का क्वाथ, गिलोय का रस, हरिद्रा का चूर्ण, पीपल का चूर्ण इत्यादि।

पित्तश्लेष्मज प्रमेह में-मेहबद्धरस—जारित पारद, जारित कान्तलौह, जारित मुण्डलौह, शिलाजतु, शोधित स्वर्णमाक्षिक, मैनशिल, त्रिकटु, त्रिफला, अङ्कोल वीज, कैथ का चूर्ण, हलदी का चूर्ण प्रत्येक समभाग, ये सब द्रव्य ३० बार भांगरे की भावना देकर सुखावे। यह मेहवद्ध नामक औषध १ माशा मात्रा में मधु के साथ चाटने से पित्तश्लेष्मज प्रमेह विनष्ट होता है।

त्रिदोषज प्रमेह-चिकित्सा

निम्नलिखित ओषधियां त्रिदोषज प्रमेह मे हितकर हैं—

(१) **उदयभास्कर रस**—पारद, गन्धक, लौह, अभ्र, सोहागा, शिलाजतु, अम्लवेत, कट्फल (कायफल) और वङ्ग, प्रत्येक एक एक भाग, पञ्चमूत्र (गाय, वकरी, भेड़, भैंस और गधी का मूत्र) के साथ ३ दिन मर्दन करे। फिर जम्हीरी के रस के साथ ४ दिन एवं जटामासी और गोखुरू के क्वाथ के साथ २१ दिन मर्दन करके मूषा में वन्द करे और कुक्कुटपुट में पाक करे। शीतल होने पर यथाक्रम से उसमें घृतकुमारी, चीते की जड़, त्रिकटु, जायफल, स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी), कुचिला, नखी, अम्लवेतस इनकी भावना देकर एक एक दिन मर्दन करे। मात्रा—३ रत्ती। अनुपान—गिलोय का रस और मधु।

(२) **मेहमर्दन रस**—अभ्र के साथ ७ वार मर्दित सीसे की भस्म चूर्ण कर उसके साथ समभाग कान्तलौह मिलावे। फिर गोमूत्र और शिलाजीत के साथ मर्दन कर सुखाकर चूर्ण करे। यह औषध सीसे के पात्र मे रख देवे। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—आमले का रस।

(३) **रामबाण रस**—वङ्ग के साथ मर्दित रौप्य १ भाग और सीसे के साथ मर्दित स्वर्ण १ भाग और जारित पारद २ भाग, एकत्र आलकुशी मूल के रस के साथ तीन दिन मर्दन कर सुखावे। फिर उसके साथ सोनामाखी, वैक्रान्त और राजावर्तभस्म प्रत्येक समष्टि के समान भाग मे मिलाकर उत्तमरूप से मर्दन करे। फिर तुष पुट मे ६ वार पाक करे। फिर आलकुशी वीज और वबूल के

क्वाथ मे तीन बार भावना दे। यह तीन रत्ती मात्रा में गिलोय के सत के साथ मिलाकर सेवन करे।

(४) **उमाशम्भु रस**—पारद और अभ्र समान भाग, तूतिया दोनों के समान। ये सब जम्हीरी के रस के साथ तीन दिन मर्दन कर मूषारुद्ध करे और यथाक्रम से ७ बार पुटपाक करे। फिर उसमे बिजौरा, मोथा और बहेड़े के क्वाथ की ४ वार, अर्जुन छाल के क्वाथ की २ वार एवं मुलहठी, चीनी, केतकी, जीरा, रम्भा, खजूर और तेजपात का रस प्रत्येक की ३ भावना दे। इस तरह रस तैयार होने पर उसे तीन रत्ती मात्रा से प्रयोग करे। अनुपान—सतावरि का रस और मधु।

प्रमेह चिकित्सा में अनुपान

मधुमेह में—सुपारी और बबूल का क्वाथ। जलमेह में—पालिधा-मदार का क्वाथ। इक्षुमेह मे—जयन्ती का क्वाथ। सुरामेह में—नीम का क्वाथ। सिकता-मेह मे—चीते का क्वाथ। शनैर्मेह मे—खदिर का क्वाथ। पिष्टमेह में हलदी और दारुहलदी का क्वाथ। सान्द्रमेह मे—छातिम की छाल का क्वाथ। शनैर्मेह मे—त्रिफला और गिलोय का क्वाथ। लाला मेह में—त्रिफला और सौन्दाल (अमलास) का क्वाथ। शुक्रमेह मे—दूर्वा, शैवाल, केवटी मोथा, करञ्ज और कशेरू का कषाय, अर्जुन और चन्दन का कषाय। नीलमेह मे—पीपर का कषाय। हरिद्रामेह मे—सौन्दाल (अमलास) का क्वाथ। शुक्रमेह में—न्यग्रोधादि गण का क्वाथ। क्षारमेह मे—त्रिफला का क्वाथ। माञ्जिष्ठमेह मे—लालचन्दन का क्वाथ। सब प्रकार के प्रमेह मे—गिलोय का रस, सतावर का रस, कच्ची हलदी का रस, गेंदा के पत्तों का रस, कच्चा दूध, हिञ्च का रस, ढाक के फूलो का रस और सेमर का रस।

प्रमेह-पिडिका की चिकित्सा

(१) पारद भस्म और वङ्गभस्म एकत्र समभाग मे मिलाकर १ रत्ती मात्रा मे मधु के साथ प्रयोग करने से सब प्रकार की प्रमेह पिडिका आरोग्य होती है। क्षत वेशी होने से हरिताल भस्म प्रयोग करे।

ऊनत्रिंश अध्याय

सोमरोग-चिकित्सा

नीचे लिखी औषधियां सोमरोग चिकित्सा में विवेचना पूर्वक प्रयोग करें।

(१) **तालकेश्वर रस**—हरिताल, पारद, गन्धक, लौह, अभ्र, वङ्ग ये सब द्रव्य समभाग में लेकर मधु मे मर्दन कर ४ रत्ती परिमाण औषध मधु के साथ सेवन कर फिर पके गूलर का चूर्ण अनुपान करे।

(२) **हेमनाथ रस**—पारा, गन्धक, स्वर्ण, सोनामाखी प्रत्येक १ तोला, लौह, कपूर, वङ्ग और प्रवाल प्रत्येक ½ तोला; अफीम के जल, मोचा (सेमर वा केला) के रस और गूलर के रस मे ७ वार भावना देकर ३ रत्ती प्रमाण वटिका वनावे। अनुपान—जामन के वीज का चूर्ण, गूलर का रस और मधु।

(३) **सोमनाथ रस**—जारित लौह २ तोला, पारद, गन्धक, इलायची, तेजपात, हलदी, दारुहलदी, जामन, खस, गोखुरू, विडङ्ग, जीरा, पाठा, आमला, अनार, सोहागा, चन्दन, गूगल, लोध, शाल, अर्जुन और रसौत प्रत्येक १ तोला; ये सव द्रव्य वकरी के दूध में पीस कर २ रत्ती प्रमाण वटिका वनावे।

(४) **सोमेश्वर रस**—शाल वृक्ष का सार, अर्जुन छाल, लोध, कदम्ब, अगर, चन्दन, गणियारी, हलदी, दारु हलदी, आमला, अनार, गोखुरू, जामुन, खश और गूगल प्रत्येक आधा पल। पारद, गन्धक, धनिया, मोथा, इलायची, तेजपात, अभ्र, लौह, रसौत, पाठा, विडङ्ग, सोहागा और जीरा प्रत्येक ८ तोला, घी के साथ मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण वटिका वनावे। अनुपान—अरूसा के पत्तों का क्वाथ और गूलर का चूर्ण।

(५) **वसन्तकुसुमाकर रस**—वैक्रान्त १ भाग, स्वर्ण, अभ्र, मुक्ता और प्रवाल प्रत्येक २ भाग, वङ्ग ३ भाग, रससिन्दूर ४ भाग। इन सबको जम्हीरी नीवू के रस, गाय के दूध, खश के क्वाथ, अडूसा की छाल और ईख के रस में ७ वार भावना देकर २ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान—आमलकी और गूलर का रस और मधु।

(६) **चन्द्रकान्ति रस**—शोधित पारद, गन्धक, अभ्र, रौप्य, हरिताल, कांसा, लौह, सोनामाखी, स्वर्ण, प्रत्येक समभाग। इन द्रव्यों के समान वङ्ग, एकत्र

मर्दित कर, आम की छाल के क्वाथ, आमले का रस, कुलथी का क्वाथ, लज्जावती का रस, वट की वरोह का रस, सेमल की जड़ का रस प्रत्येक की ३-३ भावना देवे। फिर जायफल, लवङ्ग, दारुचीनी, मोथा, इलायची और जावित्री ये सब द्रव्य समभाग मे पूर्वोक्त द्रव्य के समान लेकर चूर्ण कर एकत्र मिलावे। मात्रा-२ रत्ती। अनुपान—आमला और केला की जड़ का रस।

सोमरोग चिकित्सा का अनुपान

आमले का रस, गूलर का रस, जामन के वीज का चूर्ण, केले की जड का रस, केले के फूल का क्वाथ, विदारीकन्द का रस, मोथा का रस, पाठा का क्वाथ, वाश के पत्तों का क्वाथ, भसीडे का रस, त्रिफला का क्वाथ, जौ का क्वाथ, ताल और खजूर के वृक्ष की जड़ का रस, नोना की छाल का रस, तेला कुचा (कुन्दुरु) मूल का रस, पञ्चवल्कल (वट, पीपर, गूलर, पाकर और वेत) का क्वाथ, कशेरू के पत्तो का रस।

त्रिंश अध्याय

उपदंश रोग-चिकित्सा

वातज उपदंश में—रसताल, घृत और मधु के अनुपान से एक जौ मात्रा में प्रयोग करे।

पित्तज उपदंश में—रसमाणिक्य, घृत और मधु के अनुपान से २ रत्ती मात्रा में प्रयोग करे।

कफज उपदंश में—हरतालभस्म, गाय का घी और हलदी का चूर्ण के अनुपान से प्रयोग करे।

त्रिदोषज उपदंश में—कृष्णरस, दो रत्तीं मात्रा में गाय के घी और मधु के साथ मर्दित कर प्रयोग करे।

रक्तज उपदंश में-वरादि गुग्गुलु—आमलकी, हरीतकी, वहेड़ा, अर्जुन, पीपर, खैर, विजयसार इन द्रव्यों का चूर्ण समभाग मे लेकर इनकी समष्टि के समान गुग्गुलु मिलावे। उसके बाद सब द्रव्यों को एकत्र जल में मर्दन कर ½ तोला मात्रा में वटिका वनावे। गरम दूध से यह वटी सेवन करने से सब प्रकार का उपदंश निवृत्त होता है।

नीचे लिखे प्रलेप (मलहर) उपदंश रोग में हितकर हैं—

(१) सौराष्ट्री मृत्तिका, गेरू, तूतिया, हीराकस, सैन्धव, लोध, रसौत, हरिताल, मनःशिला, रेणुक और इलायची समभाग में चूर्ण कर मधु के साथ मर्दन कर प्रलेप करने से सब प्रकार का उपदंश आरोग्य होता है।

(२) हरिताल और मनःशिला पुट में दग्ध कर प्रलेप करने से उपदंश आरोग्य होता है।

(३) त्रिफला और रसौत एकत्र खरल कर प्रलेप करने से उपदंश आरोग्य होता है।

(४) भार्गी की जड़, अपामार्ग की जड़, सफेद चन्दन और मनःशिला, एकत्र पीसकर मधु मिलाकर प्रलेप करने से उपदंश आरोग्य होता है।

दूषित योनि जनित फिरंग रोग-चिकित्सा

वातज फिरङ्ग में-रसगुग्गुलु—पातन यन्त्र में शोधित पारद २०० रत्ती, चीनी २०० रत्ती, शोधित महिषाक्ष गुग्गुलु ४०० रत्ती, घृत १०० रत्ती, ये सब एकत्र अच्छी तरह मर्दन कर २० गोली बनावे। यह प्रथम से ३ दिवस प्रतिदिन ३-३ करके और चौथे दिवस से प्रतिदिन १-१ गोली सेवन करे। १४ दिन में सब औषध समाप्त होगी। इस औषध के सेवन काल में पर्पटी सेवन के सब नियम पालन करे।

पित्तज फिरङ्ग में-भैरव रस—पारद १०० रत्ती, चीनी २०० रत्ती, ये दोनों द्रव्य लोहे के पात्र में नीम के दण्डे से ३ घण्टे मर्दन कर उसमें १०० रत्ती श्वेत खैर (कत्था) मिलाकर काजल की तरह एकदिल कर २० गोली बनावे। गोलियां गेहूँ के आटे के साथ रख दे। जब देखे कि उपदंश विषके कारण शरीर मे सर्वत्र फुंसी निकल आई है तब यह औषध सेवन कराना आरम्भ करे। इसकी सेवन विधि रसगुग्गुलु के समान है। १४ दिन में सब गोली पूर्ण कर दे। पथ्यापथ्य-रसगुग्गुलु के समान।

कफज फिरङ्ग में-रसशेखर रस—पारद २ रत्ती, अफीम १२ रत्ती ये दोनो द्रव्य लोहपात्र में नीम के दण्डे से तुलसी के रस में घोंटकर उसके साथ हिङ्गुल दो रत्ती मिलाकर फिर तुलसी के रस में घोटे। फिर जावित्री, जायफल, खुरासानी अजवाइन और अकरकरा प्रत्येक दो रत्ती, इन सबसे द्विगुण सफेद कत्था

उसके साथ मिलाकर तुलसी के रस मे घोंटकर चने के समान गोली बनावे। प्रतिदिन सायंकाल दो गोली सेवन करे। मिर्च, खटाई, तेल, मिठाई परहेज करे।

त्रिदोषज फिरङ्ग रोग में-रसकर्पूर—मैदा की एक छोटी लोई सी बनाकर उसमे ४ रत्ती पारद रखकर मुख इस प्रकार बंद करे कि भीतर पारा दिखाई न पड़े और ऊपर भी पारा न रहे। फिर उसके ऊपर लवङ्ग का चूर्ण लपेट कर ऐसी होशियारी से निगल जाय कि दाँत न लगे। इसके सेवन के बाद पान खाय। इसके सेवन काल मे शाक, खटाई, अथक परिश्रम, धूप सेवन, मार्ग चलना और स्त्रीसङ्ग त्याग करे।

सप्तामृता वटी—पारद ½ तोला, कत्था ½ तोला, अकरकरा १ तोला, मधु १½ तोला, एकत्र मर्दन कर ७ गोली बनावे। प्रातः १ गोली जल के साथ खाय। ७ दिन तक नमक, खटाई न खाय।

धूम प्रयोग—पारा २ तोला, गन्धक २ तोला, कज्जली कर विडङ्ग चूर्ण २ तोले के साथ एकत्र कर मिलावे। फिर ७ गोली बनाकर एक-एक गोली प्रतिदिन (चिलम मे रखकर) धूम प्रयोग करे अथवा धूनी दे। ७ दिन में उपकार पाया जाता है।

ब्रध्न (बद) चिकित्सा

ब्रध्न मे वातारि रस, वरादि गुग्गुलु, भैरवरस, रसतालक, रसशेखर रस आदि औषध प्रयोग करे।

लिङ्गार्श-चिकित्सा

मनःशिलादि प्रलेप—मैनशिल, तूतिया, शिलाजीत, नीला सुरमा, रसौत और हरिताल समभाग मे लेकर घृत मे मर्दन कर प्रलेप कर देने से लिङ्गार्श आरोग्य होता है।

गनोरिया (सुजाक) वा विषाक्त प्रमेह चिकित्सा

नीचे लिखी औषधियां विषाक्त प्रमेहनाशक है:—

(१) **वङ्ग रत्न**—लौहभस्म, वङ्गभस्म, पारदभस्म, शिलाजतु समभाग में एकत्र मर्दन कर गोखुरू, वरुण, श्वेत चन्दन, कुडा, कच्ची हलदी, घृत कुमारी और बबूल की छाल के क्वाथ मे भावना देकर ४ रत्ती प्रमाण गोली बनावे। कच्ची

हलदी के रस और मधु के साथ इस औषध के सेवन से उत्कट गनोरिया आरोग्य होता है।

रसराज रस—अभ्र, लौह, स्वर्ण वङ्ग, शिलाजतु, स्वर्णसिन्दूर, सोनागेरु, जवाखार प्रत्येक समभाग लेकर गोखुरू और वरुण छाल के क्वाथ में ७ दिन भावना देकर ४ रत्ती परिमाण वटी बनावे। अनुपान—हलदी का चूर्ण और मधु। यह सब प्रकार के दूषित प्रमेह वा सुजाक का नाशक है।

स्वर्णवङ्ग बनाने की विधि—लोहे या मिट्टी के पात्र में कुछ वङ्ग अग्नि ताप से गलाकर उसमें वङ्ग के समान पारा डाल दे, दोनो के मिल जाने पर उनके साथ नौसादर और गन्धक का चूर्ण पारद के समान परिमाण में मिलाकर मर्दन करे। फिर सूक्ष्म वस्त्र और कीच द्वारा लिप्त एक काच की शीशी में यह सब चूर्ण मिलाकर वालुकायंत्र में १२ घण्टे पाक करे।

वङ्गभस्म—पारद १ भाग, गन्धक २ भाग और शोधित वङ्गचूर्ण ३ भाग, इनकी कज्जली कर घृतकुमारी के रस में अति उत्तमरूप से मर्दन करे। उसके बाद उसका गोला बनाकर अण्डी के पत्तों में बाँध कर ३ दिन धान्य-राशि में रख देवे। ३ दिन बाद निकालकर फिर घृतकुमारी के रस में मर्दन कर तीन बार गजपुट में पाक करे। इससे अति सुन्दर वङ्गभस्म मिलेगी। इस भाव से भस्मीकृत वङ्ग २ रत्ती मात्रा में हलदी के चूर्ण और मधु के साथ देने से सब प्रकार का विषाक्त प्रमेह वा गनोरिया आरोग्य होता है।

सब प्रकार के गनोरिया नाशक औषधियों में वङ्ग ही श्रेष्ठ है। उपर्युक्त प्रणाली से जस्ता और सीसाभस्म तैयार कर प्रयोग करने से विषाक्तप्रमेह, बहुमूत्र और बीसों प्रकार के प्रमेह आरोग्य होते हैं। उनके साथ विशुद्ध लौहभस्म प्रयोग करने से और भी अधिक फल पाया जायगा।

शूकदोष-चिकित्सा

उपदंश और व्रणरोग चिकित्सा में जो औषधियां कही गई है शूकदोष चिकित्सा में वे ही औषधियां रोग और दोष की अवस्था विचार कर प्रयोग करे। इसमें पञ्चवल्कल के क्वाथ से क्षतस्थान धोकर शोधित आंवला सार गन्धक और गाय के घी के साथ मर्दन कर प्रलेप करे। त्रिफला के साथ रसौत का प्रलेप करने से सब प्रकार का शूकदोष आरोग्य होता है।

एकत्रिंश अध्याय

रक्तपित्त चिकित्सा

वातप्रधान रक्तपित्त में-अर्केश्वर—मारित ताम्र, अभ्र, वङ्ग और सोनामाखी इनको गिलोय के रस में २१ वार भावना देकर पुट देवे। अनुपान—अरूसा और विदारीकन्द का रस। मात्रा-४ रत्ती। इसके द्वारा वातप्रधान रक्तपित्त समूल विनष्ट होता है।

सुधानिधि रस—पारद, गन्धक, सोनामाखी, लौहचूर्ण समभाग में लेकर त्रिफला के क्वाथ में मर्दन कर मूषा में रख भूधरयंत्र से पाक करे। मात्रा-१रत्ती। अनुपान—त्रिफला का क्वाथ। रक्तपित्त की शान्ति के लिये रात को लौह पात्र में गाय का दूध औटाकर पान करावे।

पित्तप्रधान रक्तपित्त में-रक्तपित्तान्तकलौह—जारित अभ्र, लौह, सोनामाखी, हरिताल और गन्धक समभाग लेकर मुलहठी, दाख और गिलोय के रस में १ दिन मर्दन करके १ माशा परिमाण में चीनी और मधु के साथ सेवन करने से पित्तप्रधान रक्तपित्त आरोग्य होता है। मात्रा-२ रत्ती।

शर्कराद्यलौह—चीनी, तिल, त्रिकटु, त्रिफला, त्रिमद इनके समान लौह भस्म एकत्र मिलाकर एक आना मात्रा मे अडूसे के रस और मधु के अनुपान से सेवन करे।

कफप्रधान रक्तपित्त में-कपर्द्दक रस—शोधित पारद कपास के फूल के रस में १ दिन मर्दन कर कौड़ी में भर दे। फिर अन्धमूषा मे पाक कर निकाल कर चूर्ण करे और दूनी मरिच का चूर्ण उसके साथ मिलावे। मात्रा-१ रत्ती। अनुपान—घृत और गूलर का रस।

रसामृतरस—पारद १ भाग, पारद का दूना गन्धक, सोनामाखी, शिलाजीत, चन्दन, गिलोय, दाख, महुये का फूल, धनियां, कुडे की छाल, इन्द्रजौ, धाय के फूल, नीम के पत्ते और मुलहठी प्रत्येक १ भाग। इन्हें मधु और चीनी के साथ विधिपूर्वक मर्दन कर धारोष्ण दूध के साथ आधा तोला प्रातःकाल सेवन करे।

सर्वप्रकार के रक्तपित्त का नाशक-चन्द्रकला रस—पारद और ताम्रभस्म प्रत्येक १ तोला, एकत्र २ दिन मर्दन कर वालुकायन्त्र में पाक करे। फिर दोनों

द्रव्यों के समान परिमाण गन्धक उसमे मिलाकर मर्दनकर कज्जली करे, फिर उसमें मोथा, दाडिम, दूर्वा, केतकी जटा, बेडेला, (वला), घृतकुमारी, चेत्र पापड़ा, राम शीतला या आराम शीतला और सतावर प्रत्येक के रस में पृथक् पृथक् १ दिन भावना देवे। फिर कुडा की मूल, गिलोय का सत्त्व, चेत्र पापड़ा, खश, पीपल और सिंघाड़े और अनन्तमूल इन द्रव्यों का चूर्ण १-१ भाग उसमे मिलाकर द्राक्षादि कषाय में ७ वार भावना देकर चने के प्रमाण वटिका बनावे।

रक्तपित्त चिकित्सा के अनुपान

अरूसा के पत्तों का रस, आमले का रस, काली जामन का रस, कुकरोंदा का रस, गेंदा के पत्तों का रस, खोड़ का रस, गिलोय का रस, पटोल पत्र का रस, गूलर का रस, कूष्माण्ड का रस और दूर्वा का रस। किसमिस, हरीतकी, लाल चन्दन, मुलहठी, प्रियङ्गु, खश, लोध, धनिये, गिलोय, खेतपापड़ा, दाख, वट का वरोह, नीलकमल, खजूर, पीपल, जामन, आम और अर्जुन की छाल का क्वाथ।

द्वात्रिंश अध्याय

यक्ष्मा चिकित्सा

वायु प्रधान यक्ष्मा में-राजमृगाङ्क रस—रससिन्दूर ३ तोला, स्वर्ण १ तोला, ताम्र १२ तोला, शिलाजतु, हरिताल प्रत्येक २ तोला। ये सब एकत्र मर्दन कर बड़ी बड़ी कौड़ियों में भर दे। फिर बकरी के दूध में सुहागा पीसकर उसके द्वारा कौड़ियो का मुख बन्द कर मिट्टी के वर्तन में स्थापित और बन्दकर लेप कर दें। फिर सूखने पर गजपुट में पाक करे। मात्रा-४ रत्ती। अनुपान— पीपल चूर्ण और मधु अथवा मरिच चूर्ण और घृत।

शङ्खेश्वर रस—शङ्ख नाभि ४ माशा, कौड़ी १६ माशा, नीला तूतिया २ माशा और गन्धक, सीसे की भस्म, पारद भस्म और सोहागा प्रत्येक २ माशा ये सब एकत्र मर्दन कर कौड़ी मे भर कर गजपुट में पाक करे। मात्रा-४ रत्ती। अनुपान-घृत और मधु।

मृगाङ्कपोट्टली रस—१६ निष्क शङ्ख नाभि, गाय के दूध के साथ पीसकर उसके द्वारा मूषा बनाकर उसमें आधा निष्क जारित पारद और ३ निष्क

गन्धक चूर्ण निक्षेप करे। एवं मुख बन्द कर कपड़मिट्टी कर प्रलेप कर देवे। सूखने पर गजपुट में पाक करे, पाक हो जाने पर वह औषध मूषा सहित चूर्ण कर १ रत्ती मात्रा में पीपल चूर्ण और मधु के अनुपान से सेवन करे।

पञ्चामृत रस—पारद भस्म, अभ्र भस्म, लौहभस्म, शिलाजतु, मीठाविष, जारित ताम्र एवं गिलोय और त्रिफला के क्वाथ में शोधित गुग्गुलु प्रत्येक सम भाग, ये सब एकत्र मिलाकर २ रत्ती मात्रा में पीपल चूर्ण और मधु के अनुपान से सेवन करे।

लोकेश्वर रस—पारदभस्म १ भाग, स्वर्णभस्म $\frac{1}{4}$ भाग, गन्धक २ भाग ये सब एकत्र चीतामूल के क्वाथ में मर्दन कर कौड़ी के अन्दर भर दे, और सोहागे द्वारा कौड़ी का मुख बन्द करे, फिर एक भाण्ड के मध्य देश में चूर्ण लेपन कर उसमें कौड़ियां रख दे और मिट्टी द्वारा उसका मुख बन्द कर सुखा ले। फिर पुटपाक कर दे, शीतल होने पर औषध चूर्ण करे। मात्रा-४ रत्ती। अनुपान-घृत और मरिच चूर्ण। २१ दिन तक इस अनुपान से औषध सेवन करे और नमक छोड़कर केवल घृत और दधि के साथ अन्न भोजन करे।

पित्त प्रधान यक्ष्मा में-वैद्यनाथ रस—शङ्ख नाभि भस्म ४ माशा, कौड़ी भस्म १६ माशा, नीलाथोथा, हरिताल, गन्धक, सोहागा, रौप्य और सीसक प्रत्येक २ तोला, पारद १ तोला, ये सब एकत्र मर्दन कर गन्धक चूर्ण और मण्डूर से कल्पित और लेपित मूषा में बन्द कर पुट देवे। यह चूर्ण और मरिच चूर्ण प्रत्येक ३ रत्ती एकत्र मिलाकर मधु के साथ चाटे।

राजावर्त रस—राजावर्त, रससिन्दूर, ताम्रभस्म और मुलहठी समभाग में एकत्र कर घी के साथ पाक करे। यह औषध घृत-मधु और चीनी के साथ सेवन करे। मात्रा-अग्निबल के अनुसार $\frac{1}{4}$ तोला से आधे तोले तक।

जयकेशरी—त्रिकटु, त्रिफला, इलायची, जायफल, लवङ्ग प्रत्येक १ तोला, लौह और रससिन्दूर प्रत्येक ४$\frac{1}{2}$ तोला। बकरी के दूध के साथ पीसले। मात्रा-२ रत्ती। अनुपान—घृत और मधु अथवा केवल मधु।

रजतादि लौह—रौप्यभस्म और अभ्र प्रत्येक १ भाग, त्रिकटु और त्रिफला प्रत्येक २ भाग, लौह ८ भाग, ये सब द्रव्य एकत्र कर प्रातः मक्खन और घृत के साथ चाटे। मात्रा-४ रत्ती।

बृहत् काञ्चनाभ्र रस—स्वर्ण, रससिन्दूर, मुक्ता, लौह, अभ्र, प्रवाल, वैक्रान्त, रौप्य, ताम्र, वङ्ग, कस्तूरी, लवङ्ग, जावित्री और सैन्धव प्रत्येक २ तोला एकत्र मर्दन कर घृतकुमारी और भृङ्गराज के रस एवं वकरी के दूध में ३ दिन भावना देकर ४ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान—अरूसे का रस, पीपल चूर्ण और मधु।

कफ प्रधान यक्ष्मा में-महामृगाङ्क रस—स्वर्णभस्म १ भाग, रससिन्दूर २ भाग, मुक्ताभस्म २ भाग, गन्धक ४ भाग, सोनामाखी ५ भाग, रौप्यभस्म ४ भाग, प्रवाल ७ भाग, सोहागे की खील २ भाग ये सब विजौरा नीबू के रस में ३ दिन मर्दन कर मूषा में रख लवणयन्त्र से १२ घण्टा पाक करे। शीतल होने पर समस्त चूर्ण का $\frac{१}{६४}$ चौसठवां भाग हीरा भस्म मिलावे। अनुपान—मरिच का चूर्ण और घृत।

कनकसुन्दर रस—पारद १ भाग, स्वर्ण $\frac{१}{४}$ भाग, मनःशिला, गन्धक, तूतिया, सोनामाखी, हरिताल, विष और सोहागा, ये सब पारद के समान प्रदान करे। जयन्ती, भीमराज, पाठा, अडूसा, अगस्ति, ईशलाङ्गली और चीते के रस में पृथक् पृथक् भावना देकर सुखाकर फिर आदी के रस में ७ वार भावना देकर वटिका बनावे। मात्रा-२ रत्ती। अनुपान-मरिच चूर्ण और घृत अथवा पीपल चूर्ण और मधु।

अग्निरस—पारद १ भाग, गन्धक २ भाग एकत्र कज्जली करे। इन दोनों के समान विशुद्ध तीक्ष्ण लोह चूर्ण उसमे मिलाकर घृतकुमारी के रस में मर्दन कर गोला सा बनाकार ताम्र पात्र मे रक्खे और एरण्डपत्र द्वारा उस ताम्र पात्र को ढक कर २ प्रहर धूप में सुखावे। जब गरम हो जावे तब उसे ८ दिन धान्य राशि में दवा कर रक्खे, फिर उसे निकाल चूर्ण कर छान ले। फिर त्रिकटु, त्रिफला, इलायची, जायफल, लवङ्ग का चूर्ण प्रत्येक १ भाग उक्त चूर्ण के साथ उत्तम रूप से मिलावे। मात्रा-१ आना भर। अनुपान-अरूसा के पत्तों का रस और मधु।

सर्वाङ्गसुन्दर रस—पारा १ भाग, गन्धक १ भाग, मुक्ता, प्रवाल, शङ्ख-भस्म प्रत्येक $\frac{१}{२}$ भाग, स्वर्णभस्म १ भाग, ये सब द्रव्य कागजी नीबू के रस में मर्दनकर गोला वनाकर वद्धमूषा में तीव्र अग्नि से गजपुट में पाक करे। शीतल होने पर लौह १ भाग और लोहे का आधा हिङ्गुल मिलावे, मात्रा-२ रत्ती। अनुपान—पीपल चूर्ण और मधु अथवा आदी का रस और मधु।

वज्रपर्पटी—खर्पर स्वत्व २ तोला, जारितस्वर्ण ६ माशा, पारद २४ माशा, गन्धक ३२ माशा, प्रवाल और मुक्ताभस्म प्रत्येक ६ माशा, लौहभस्म ८ माशा, सीसे की भस्म १२ माशा एवं ताम्रभस्म १६ माशा, ये सब द्रव्य आमरूल (चाङ्गेरी) के रस के साथ मर्दन कर चूर्ण करे। फिर उसके साथ नील वड़ी, अभ्रभस्म, अयस्कान्तभस्म और हरिताल प्रत्येक ८ माशा, आंकोड़, काङ्गुनी के वीज और नीला थोथा प्रत्येक १६ माशा, सोहागा ३२ माशा और कौड़ीभस्म ८० माशा ये सव एकत्र मिलाकर क्रमशः ८ सेर जम्हीरी के रस में मर्दन करे। फिर भूसी १२८ सेर और जंगली कण्डे १००० पल द्वारा पाक करे। सेवनार्थ औषध २ माशे लेकर उसका चतुर्थांश परिमित गन्धक और मरिच उसके साथ मिलावे। इसे मधु के साथ मिलाकर पान पर लेप कर प्रयोग करे। औषध सेवन के एक घड़ी वाद से प्रतिप्रहर एक १ वार पथ्य भोजन करने को देवे। यह केवल १ दिन सेवन कर ४८ दिन तक सुपथ्यभोजी होकर तदुपरान्त इच्छानुसार भोजन करे।

पञ्चामृत पर्पटी—स्वर्ण १ तोला, रौप्य २ तोला, ताम्र ३ तोला, अभ्रभस्म ४ तोला, कान्तलौह ५ तोला एवं सीसक और वङ्ग प्रत्येक $\frac{1}{2}$ तोला, ये सब द्रव्य एकत्र द्रवीभूत करे। शीतल होने पर वालुका की तरह चूर्ण करे। गन्धक, मैनशिल और हरिताल प्रत्येक ८ तोला ये सब खल में डालकर अम्लवर्ग के साथ मर्दन करे और स्वर्णमाखी, नीलाञ्जन, हरिताल, मैनशिल और गन्धक चूर्ण सहित प्रत्येक वार मिलाकर वीस वार पुट देवे। इन सब धातुओं का दूना पारद और पारद का दूना गन्धक एकत्र कज्जली करे। फिर रसपर्पटी पाक की तरह पाक करे। शीतल होने पर वह पर्पटी चूर्ण कर वस्त्र में छान कर चुल्ली लगे हुये लौह की कढ़ाई में पलट कर द्रावित करे। फिर उसमें समपरिमित हरिताल, मैनशिला और गन्धक और $\frac{1}{2}$ पल मीठा विष उसके साथ मिलाकर इस तरह जारित करे कि वह राख न हो जाय। पूर्वोक्त हरितालादि पदार्थ जीर्ण होने पर उन्हे कपड़े मे छान ले। डहर करञ्ज, पट्कोल (षड्पण=पीपर, पीपरामूल, चव्य, चीता, सोंठ, मरिच), कटेरी और सहजना की जड़ ये सव द्रव्य ५ पल, १६ गुने जल में सिद्ध कर सोलहवां भाग शेष रहने पर उतारकर छान ले, फिर इस क्वाथ द्वारा ७ वार भावना दे। फिर कुचिला और निर्गुण्डी के रस में भावना देवे। फिर पात्र में रखकर वेर के काष्ठ की अग्नि से कुछ देर सिद्धकर रख देवे। यह १ रत्ती परिमाण, त्रिकटु और घृत के साथ

मिलाकर चाटे। इसके सेवन काल में तैल, सरसों, वेल, खटाई, कैथ, मुर्गे का मांस, भंटा त्याग दे।

व्यवाय शोष में—वसन्तकुसुमाकर रस प्रयोग करे। अनुपान—घृत मधु और चीनी।

शोकजशोष में—मकरध्वज रस प्रयोग करे। अनुपान—दूध।

मकरध्वज रस—शोधित सूक्ष्म स्वर्ण पत्र १ पल, पारद ८ पल, गन्धक २४ पल ये सब लाल रंग कपास के फूल और घृतकुमारी के रस मे मर्दन कर वृहत् चन्द्रोदय मकरध्वज तैयार करने की प्रणाली से पाक करे। बोतल के ऊपर लगा हुआ रस १ तोला, लौंग, मरिच, जायफल प्रत्येक ४ तोला, कस्तूरी ६ माशा ये सब एकत्र मर्दन कर २ से ४ रत्ती पर्यन्त मात्रा में प्रयोग करे।

व्यायाम शोष में—रत्नगर्भपोट्टली रस, पीपल चूर्ण और मधु अथवा घृत और गोलमरिच चूर्ण के अनुपान से प्रयोग करे। वृहत् काञ्चनाभ्र, महा मृगाङ्क रस, सर्वाङ्गसुन्दर रस आदि औषध भी इसमें हितकर है।

जराशोष में-कमलाविलास रस—लौह, अभ्र, गन्धक, पारद, स्वर्ण, हीरक, ये सब द्रव्य समभाग लेकर घृतकुमारी के रस मे मर्दन कर उसे एरण्ड के पत्ते द्वारा दृढ़ रूप से बाध कर ३ दिन धान्य राशि के भीतर रखकर फिर उसका चूर्ण कर त्रिफला के चूर्ण के साथ २ रत्ती मात्रा में सेवन करे।

अध्वशोष जनित शोष में—मांसरस के अनुपान से मृगाङ्क रस प्रयोग करे। स्वर्णभस्म इसमें विशेष उपकारी है।

व्रणशोष में—हरितालभस्म और पारदभस्म गव्य घृत के अनुपान से प्रयोग करने पर सुफल पाया गया है। इसमें वसन्तकुसुमाकर-रस, मकरध्वज-रस, महामृगाङ्क, वृहत् काञ्चनाभ्र आदि औषध प्रयोग करे।

उरःक्षत में—रजतादि लौह, शिलाजत्वादि लौह, राजमृगाङ्क, काञ्चनाभ्र रस आदि औषध लाक्षा चूर्ण, दुग्ध और मधु के साथ प्रयोग करे।

यक्ष्मा रोग में उपसर्ग की चिकित्सा

(१) **स्वरभङ्ग में**—त्र्यम्बकाभ्र-कस्तूरी, छोटी इलायची, लवङ्ग और वंश लोचन के चूर्ण के अनुपान से प्रयोग करे।

(२) **शूल वेदना में**—शूलराजलौह और त्रिनेत्र-रस आदी के रस और मधु के साथ प्रयोग करे।

(३) **स्कन्ध और पार्श्व दोनों के सङ्कोच में**—मकरध्वज रस, वृहत् काञ्चनाभ्र, दशमूल के क्वाथ के अनुपान से प्रयोग करे। इसमें लघुचन्दनादि और वृहत् चन्दनादि तैल की मालिश भी अति हितकर है।

(४) **ज्वर में**—वज्र पर्पटी, हरिताल भस्म, महामृगाङ्क, राजमृगाङ्क, वसन्त कुसुमाकर रस, श्रीजयमङ्गल रस, त्रैलोक्यचिन्तामणि, विषमज्वरान्तक लौह, रत्नगर्भपोट्टली रस आदि औषध, कटेरी और अरूसा की छाल के क्वाथ के साथ प्रयोग करे।

(५) **दाह में**—सर्वाङ्गसुन्दर रस, रक्तचन्दन, मुलहठी, सतावरी, खश, नीलकमल, पीपल के क्वाथ के साथ प्रयोग करे। महोदधि रस, कुमुदेश्वर रस और ताम्र भस्म, गिलोय के रस और मधु के अनुपान से प्रयोग करे।

(६) **अतिसार में**—विजय पर्पटी मोथा के रस के साथ प्रयोग करे।

विजयपर्पटी—पारद, हीरा, स्वर्ण, रौप्य, मुक्ता, ताम्र, अभ्र, प्रत्येक १ भाग और गन्धक ७ भाग एकत्र मर्दन कर यथाविधान पर्पटी तैयार करे।

(७) **रक्त निकलने में**—शोधित हिंगुल २ रत्ती मात्रा में पान के रस और मधु के साथ प्रयोग करे। रक्तपित्तान्तक रस वा हरिताल-भस्म, अरूसा के पत्तों के रस के साथ, प्रयोग करने से सब प्रकार का रक्त निकलना बन्द होता है।

(८) **अरुचि में-सुलोचनाभ्र**—अभ्रभस्म १ पल, कान्तलौह १ पल और चव्य, बेर के बीज की गुठली (मींगी), खश, दाडिम, आंवला, आमरूल (चाङ्गेरी), छोलङ्ग नीबू, प्रत्येक १० पल एकत्र मर्दन कर २ रत्ती मात्रा में सेवन करे। अनुपान-सोंठ का चूर्ण और गुड़।

(९) **शिरः परिपूर्णता में** (माथा भारी रहने पर)—स्वर्णघटित महालक्ष्मीविलास रस, दशमूल के क्वाथ के साथ प्रयोग करे।

(१) **कास में-वृहच्चन्द्रोदय रस**—पारद १ तोला, गन्धक १ तोला, अभ्र २ तोला, कपूर ½ तोला, स्वर्ण १ तोला, ताम्र १ तोला, लौह २ तोला, बीजताड़क के बीज, जीरा, विदारीकन्द, सतावरि, कुलेखाड़ा (तालमखाना) के बीज, वेडेला (वला) मूल, आलकुशी बीज, गोरक्ष शालपर्णी, जावित्री,

जायफल, लवङ्ग, भङ्ग के वीज, श्वेत राल, प्रत्येक ½ तोला, ये सब द्रव्य मधु के साथ मर्दन कर ४ रत्ती प्रमाण वटिका वनाकर पीपल चूर्ण और मधु के अनुपान से सेवन करे।

(१०) **बसन्ततिलकरस**—स्वर्ण १ तोला, अभ्र २ तोला, लौह ३ तोला, बङ्ग, मुक्ता, प्रवाल प्रत्येक २ तोला, ये सब द्रव्य गोखुरू, अरूसा और ईख के रस में मर्दन कर वालुकायन्त्र में ७ प्रहर पाक करे, फिर औषध निकालकर उसे कस्तूरी ४ तोला और कपूर ४ तोला द्वारा भावित कर मर्दन करे।

(११) **उत्कासिका में-बृहत् रसेन्द्रगुडिका**—पारद, गन्धक, अभ्र, लौह, ताम्र, हरिताल, विष, मैनशिल, जवाखार, सज्जीखार, सोहागा, धतूरे के वीज और मरिच, ये प्रत्येक २ तोला परिमाण लेकर जयन्ती, चीता, मान, घेंटुकोल (घण्टापाढल), थुलकुडि (मण्डूकपर्णी), भङ्ग के पत्ते, कसेरू, भांगरा, आदी, निर्गुण्डी प्रत्येक के २० तोला परिमित रस मे पृथक् २ भावना देकर मटर प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान-आदी का रस।

बृहत् शृङ्गाराभ्र—पारद, गन्धक, सोहागा, नागेश्वर, कपूर, जावित्री, लौग, तेजपात, धतूरे के वीज, प्रत्येक २ तोला, शोधित कृष्णाभ्र चूर्ण ८ तोला, तालीश पत्र, मोथा, जटामासी, कुडा, धाय के फूल, गुडत्वक् (दालचीनी), इलायची, त्रिफला, त्रिकटु और गजपीपल, ये प्रत्येक ४ तोला एकत्र कर पीपल के क्वाथ में मर्दन करे। अनुपान-अरूसा का रस और मधु।

यक्ष्मा चिकित्सा का अनुपान

नवनीत, घृत, मांसरस, लाक्षारस, अरूसा का रस, पीपल चूर्ण, आमले का रस, लोध, शालपर्णी, अर्जुन की छाल का रस, मुलहठी और किसमिस का क्वाथ, वंशलोचन का चूर्ण, कस्तूरी का चूर्ण, इलायची का चूर्ण, अनार का रस, आलकुशी बीज चूर्ण, ताल की मिश्री, तालीशपत्र, भङ्ग का चूर्ण, लहसुन का रस, दशमूल का क्वाथ, अश्वगन्धा, गिलोय, बेडेला (वला), सुगन्धवाला, मुलहठी, सतावर, काकड़ाशृङ्गी, कुडा, जायफल और गोल मरिच का चूर्ण, आदी का रस और मधु।

हमारी लिखित 'यक्ष्माचिकित्सा' नामक वृहत् पुस्तक में यक्ष्मा रोग के विषय का विशदभाव से वर्णन है; उसे देखें।

त्रयस्त्रिंश अध्याय

कासरोग चिकित्सा

वातज कास में-भूताङ्कुश रस—पारद १ भाग, गन्धक १ भाग, ताम्रभस्म ३ भाग, मरिच चूर्ण ५ भाग, अभ्रभस्म ४ भाग, मीठा विष १ भाग और भूताङ्कुश (गो जुबान या अपामार्ग या सरसो श्वेत) १ भाग ये सब द्रव्य अम्लरस के साथ ३ घण्टा मर्दन कर सुखावे। मात्रा–१ आना भर। अनुपान—वहेडे का चूर्ण और मधु।

पित्तजकास में-स्वयमग्निरस—त्रिकटु, त्रिफला, वड़ी इलायची, जायफल, लवङ्ग, इन सब का चूर्ण प्रत्येक समभाग और जारित पारद १ भाग एकत्र मधु के साथ मिलाकर १ आना मात्रा में दिन में एक वार सेवन करे।

कफजकास में—वृहत् शृङ्गाराभ्र, यक्ष्मा चिकित्सा में इसका प्रयोग और बनाने की विधि देखिये।

क्षतजकास में—रसेन्द्रगुडिका, यक्ष्मा चिकित्सा में इसका प्रयोग और बनानेकी विधि देखिये।

क्षयजकास में-सार्वभौम रस—शृङ्गाराभ्र में स्वर्ण, लौह २ माशा मिलाकर सार्वभौम रस तैयार करे। शृङ्गाराभ्र के बनाने और प्रयोग की विधि यक्ष्मा चिकित्सा में देखिये।

लक्ष्मीविलास रस—वङ्ग, ताम्र, लौह, कांसा, पारद, गन्धक और हरिताल प्रत्येक ८ तोला, खर्पर ४ तोला, एकत्र कर कसेरु के रस में और कुलथी के क्वाथ में ३ दिन भावना दे। फिर उसके साथ इलायची, जायफल, तेजपात, लवङ्ग, जीरा, त्रिकटु, त्रिफला, तगरपादुका, गुडत्वक् (दालचीनी) और वंशलोचन प्रत्येक ८ तोला परिमाण में मिलाकर कसेरु के रस और कुलथी के क्वाथ मे मर्दन कर चना प्रमाण वटिका वनावे।

तरुणानन्दरस—रस, गन्धक प्रत्येक २ कर्ष मर्दन कर कज्जली करे। फिर वेल की जड़, गणियारी (अरनी), सोनापाठा की छाल, गाम्भारी, पटोल, वेड़ेला (वला), मोथा, पुनर्नवा, आमला, वृहती (भट कटेरी), अडूसे के पत्ते, विदारीकन्द, सतावर, प्रत्येक के एक एक कर्ष रस द्वारा पृथक्-पृथक्

रूप से मर्दन कर पुनः १० तोला परिमाण अडूसे के रस द्वारा मर्दन कर उसके साथ ४ कर्ष अभ्र, १ कर्ष कपूर, जावित्री, जायफल, जटामांसी, तालीशपत्र, इलायची और लवङ्ग प्रत्येक १ माशा मिलाकर विदारीकन्द के रस के साथ मर्दन कर २ रत्ती मात्रा में अडूसे के रस और मधु के अनुपान से प्रयोग करे।

जराकास में—बृहत् शृङ्गाराभ्र, बृहत् चन्द्रामृत रस, बृहत् रसेन्द्रगुडिका, कमलाविलासरस आदि जरा-क्षय नाशक औषधियां, मांसरस, दूध और घृत के अनुपान से व्यवस्था करे।

त्रिदोषज कास में-कासंहारभैरव—पारद, गन्धक, ताम्र, अभ्र, शङ्खभस्म, सोहागे की खील, लौह, मरिच, कुडा, तालीशपत्र, जायफल और लवङ्ग प्रत्येक का चूर्ण २ तोला एकत्र कर थूलकुडि (मण्डूकपर्णी), कसेरू, निर्गुण्डी, काकमाची, घलघसिया (द्रोणपुष्पी), शालपर्णी, गीसा (ग्रीष्म सुन्दरक), भार्गी, हरीतकी और अडूसा प्रत्येक के पत्तों के रस में भावना देकर ५ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान—अरूसा, सोंठ और कटेरी का क्वाथ।

नित्योदयरस—पारद २ तोला, गन्धक २ तोला, एकत्र कज्जली करके विल्वमूल, अरनी, सोनापाठा की छाल, पाढ़ल, गाम्भारी, बला, मोथा, पुनर्नवा, आमला बृहती, (बड़ी कटेरी), अरूसा के पत्ते, विदारीकन्द, सतावरि प्रत्येक के एक-एक कर्ष रस द्वारा, पृथक् रूप से मर्दन कर, उसके साथ रौप्य, सोनामाखी, कृष्णाभ्र प्रत्येक ½ तोला, कपूर ४ तोला, जावित्री, जायफल जटामांसी, तालीशपत्र, इलायची, लवङ्ग ये सब प्रत्येक २ तोला मिलाकर अडूसे के रस द्वारा पीसकर धूप मे सुखावे फिर विदारीकन्द के रस द्वारा मर्दन करके २ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान—पीपल का चूर्ण और मधु।

कास चिकित्सा के अनुपान

बातज कास में—दशमूल का क्वाथ, मांसरस, सोंठ, पीपल, गिलोय, काकड़ाश्रृङ्गी, भार्गी और जवासे का क्वाथ और रास्ना का रस, केकड़ा का झोल, शिङ्गीमास का झोल और आलकुशी वीज का यूष, पुराना गुड़ और तिल का तैल।

पित्तज कास में—त्रिफला चूर्ण, बला, बृहती (बड़ी कटेरी), अरूसा, कटेरी और दाख इनका क्वाथ, कवलगट्टा का चूर्ण, पीपल चूर्ण, चीनी, पिण्डखजूर

और खीलों का चूर्ण, गाय के घी और मधु के साथ; मांसरस, मुलहठी, ईख के रस, सतावरि का रस, चन्दन सफेद, कुंई, दाख और अर्जुन छाल का चूर्ण।

कफज कास में—अरूसा, कटेरी, पीपल, कट्फल (कायफर), सोंठ, काकडाश्रृङ्गी, भार्गी, मरिच, कालाजीरा, निर्गुंडी, अजवाइन, चीते की जड़ इनका चूर्ण वा क्वाथ और वंशलोचन चूर्ण, जवाखार चूर्ण, चव्य, चीते की जड़ और पीपलमूल चूर्ण, कुडे का चूर्ण, वच, सूखी मूली का चूर्ण और कुलथी का यूष।

कासान्तक धूम—(१) मैनशिल, हरिताल, मुलहठी, जटामांसी, मूली, हिंगोट के फल की छाल वा मीगी ये सब द्रव्य बकरी के मूत्र में पीसकर उस कल्क के द्वारा एक कपड़ा लिप्त कर धूप में सुखाकर बत्ती बनावे। फिर सकोरे मे बेर की लकड़ी के कोयले रख कर, उस पर वह बत्ती रक्खे और एक छेद वाला सकोरा ऊपर से ढक दे। उस छिद्र में एक नल प्रविष्ट कर देवे। जब नल से धुआं निकलने लगे तब उस धूम को नासिका द्वारा ग्रहण करे और धूम्रपान के अनन्तर गुड़ मिला हुआ दुग्ध पान करे। तीन दिन ऐसा धूम्रपान करने से सर्वदोषोद्भव कास विनष्ट होता है।

(२) मनःशिला जल में घिसकर कुछ बेर के पत्तों पर लेप कर धूप में सुखा ले। उन बेर के पत्तो का धुआं ग्रहण कर दुग्ध पान करने से सब प्रकार की खांसी दूर होती है।

(३) आक की जड़ की छाल और मनःशिला समभाग, मिलित त्रिकटु दोनों का आधा भाग। इनका चूर्ण अग्नि पर डालकर उसका धूम्र पान करे। फिर ताम्बूल भक्षण और दुग्ध वा जल पान करे, इससे पांच तरह की खासी शान्त होती है।

(४) मरिच, मनःशिला और आकन्द (आक) का छिलका एकत्र मिलाकर उसके द्वारा बेगुन का छिलका भावित करे। फिर उसके सूखने पर अग्नि मे दग्ध करके यथाविधि उसका धूम्र ग्रहण करने से सब प्रकार की खांसी दूर होती है।

चतुस्त्रिंश अध्याय

श्वास चिकित्सा

महाश्वास में-पिप्पल्याद्य लौह—पिप्पली, आमला, दाख, बेर की गुठली की मींगीं, मुलहठी, चीनी, विडङ्ग, पुष्करमूल, प्रत्येक का चूर्ण १ तोला, लौह ८ तोला, जल से मर्दन कर ५ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान—कुडा और भार्गी का क्वाथ।

ऊर्ध्वश्वास में-सूर्यावर्त रस—पारद १ भाग, गन्धक १ भाग, एकत्र घृतकुमारी के रस में १ प्रहर घोंट कर उसके द्वारा २ भाग परिमित ताम्रपत्र लिप्त कर १ दिन वालुकायन्त्र में पाक करे, फिर उस ताम्रको निकाल कर चूर्ण करे। मात्रा-२ रत्ती। अनुपान—त्रिकटु, इन्द्रायण की जड़ और देवदारु का क्वाथ और चीनी।

छिन्नश्वास में-श्वासकासचिन्तामणि—पारद, सोनामाखी और स्वर्ण प्रत्येक १ भाग, मुक्ता ½ भाग, गन्धक २ भाग, अभ्र २ भाग, लौह ४ भाग, ये सब द्रव्य एकत्र मर्दन कर कटेरी का रस, बकरी का दूध, मुलहठी के रस और पान के रस द्वारा पृथक्-पृथक् ७-७ भावना देकर २ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान—पीपल चूर्ण और मधु।

तमक श्वास में-लौहपर्पटी रस—पारद २ भाग, गन्धक २ भाग और लौह भस्म १ भाग एकत्र मर्दन कर पर्पटी पाक विधान से पाक करे। फिर उसका चूर्ण कर भार्गी, मुण्डिरी, अगस्तिया के पत्ते, त्रिफला, जयन्ती, निर्गुण्डी, त्रिकटु, अरूसा, घृतकुमारी, आदी प्रत्येक के रस द्वारा ७ भावना देकर ताम्र के बने हुए खर्पर में गन्ध दूर होने तक पुट में पाक करे। मात्रा-१ माशा। अनुपान-पीपल चूर्ण और तुलसी क्वाथ। इसके सेवन के समय मे खटाई, तैल, बैंगन, कूष्माण्ड और केला का भक्षण और स्त्रीसंसर्ग त्याग करे।

प्रतमक श्वास में-ताम्रपर्पटी—लौहपर्पटी रस में लौह के बदले ताम्र प्रदान पूर्वक पर्पटीपाक विधानानुसार पाक करे। प्रयोग विधि-लौहपर्पटी की तरह।

क्षुद्र श्वास में-श्वासकुठार रस—सोहागा, पारद, गन्धक, विष, मनःशिला, त्रिकटु ये द्रव्य सम परिमाण में लेकर जल द्वारा मर्दन कर ३ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान—उष्ण जल वा कटेरी का क्वाथ।

श्वास चिकित्सा के अनुपान—घृत और गोल मरिच का चूर्ण, कुडे का चूर्ण, वहेडे का चूर्ण, हिंगु, विडङ्ग चूर्ण, दशमूल का क्वाथ, त्रिकटु चूर्ण, गिलोय, भार्गी, कटेरी और तुलसी का क्वाथ, पुराना गुड़ और सरसों का तैल, कुलथी का क्वाथ, मयूरपुच्छ भस्म, पीपल चूर्ण और मधु, कांकडाश्रृङ्गी चूर्ण और जवाखार।

पञ्चत्रिंश अध्याय

हिक्कारोग-चिकित्सा

अन्नजा हिक्का में-नीलकण्ठ रस—पारद, ताम्र, लौह, गन्धक, मीठाविष, प्रत्येक १ भाग, रेणुका, मोथा, शालिञ्चशाक, नागकेशर और चीतामूल, प्रत्येक ३ भाग, समष्टि का दूना गुड़ मिलाकर मर्दन कर वेर की गुठली की मीगी के बराबर वटिका बनावे। अनुपान—गरम दूध और जल।

यमला हिक्का में-हिक्कानाशक रस—ताम्र भस्म, पारद, गन्धक प्रत्येक १-१ भाग, एकत्र मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण मात्रा मे वहेड़े का चूर्ण और मधु के साथ सेवन करने से यमला हिक्का आरोग्य होती है।

क्षुद्रा हिक्का में-शिलाप्लुत रस—पाठा और इन्द्रायन का चूर्ण १ भाण्ड मे रखकर ऊपर मनःशिला चूर्ण डाल कर फिर उसके ऊपर शोधित पारद स्थापन कर पारद के ऊपर फिर मनःशिला चूर्ण और उसके ऊपर मूली चूर्ण देवे। फिर भाण्ड का मुख बन्द कर ८ प्रहर मृदु अग्नि से पाक करे। पूर्वोक्त द्रव्यो का परिमाण यथा—पारद १ भाग, मनःशिला $\frac{1}{2}$ भाग एवं पाठा और इन्द्रायन का चूर्ण मनःशिला के अर्द्धांश परिमाण देवे। मात्रा-२ रत्ती। अनुपान—रास्ना, वृहती (वड़ी कटेरी), चीतामूल और मूंग का क्वाथ।

गम्भीरा हिक्का में-डामरेश्वराभ्र—मारित कृष्णाभ्र १ पल। भावनार्थ-भार्गी १ पल, जल १६ पल, जव १ पल क्वाथ रहे तब धतूरे के पत्तों का रस,

गिलोय का रस, अड़ूसे के पत्तों का रस, काले कसौन्दी के पत्तों का रस, प्रत्येक के १ पल स्वरस मे, अभाव में क्वाथ में, चव्य, चीता, पीपरामूल, प्रत्येक के १ पल स्वरस में, अभाव में क्वाथ में एक-एक वार भावना दे। मात्रा-१ से ६ रत्ती पर्यन्त। अनुपान—मधु।

महा हिक्का में-प्रवाल योग—प्रवाल भस्म, शङ्ख भस्म, त्रिफला चूर्ण, पीपल चूर्ण और सोना गेरू ये सम परिमाण लेकर मिलावे। मात्रा-१ आना भर। अनुपान—घृत और मधु। यह महा हिक्का नाशक है।

हिक्का चिकित्सा का अनुपान—इलायची चूर्ण और चीनी, गोल मरिच और घृत, मयूर पुच्छ भस्म और पीपल चूर्ण, केले की जड़ का रस, और चीनी, वहेडे का चूर्ण और मधु। जवाखार चूर्ण, कुडे का चूर्ण, रास्ना, भट कटेरी, चीते की जड़ और मूंग का क्वाथ, सोठ के चूर्ण के साथ सिद्ध बकरी का दूध, जम्हीरी नीबू का रस और सोचर नोन, रेणुक और पीपल का क्वाथ एवं हींग।

हिक्का में धूमपान—मनःशिला, गाय का सीग, कुडा, धूना (राल), कुश, उर्द और हींग इनका धूम्रपान हिक्का रोग में हितकर है।

षट्त्रिंश अध्याय

स्वरभेद चिकित्सा

वातज स्वरभेद में-भैरव रस—पारद, गन्धक, विष, सोहागा, मरिच, चव्य और चीता ये सब द्रव्य समभाग लेकर आदी के रस में मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान-गरम जल।

पित्तज स्वरभेद में-त्र्यम्बकाभ्र—जारित काला अभ्र १ पल, भावनार्थ-कटेरी, वेड़ेला (बला), गोखुरू, घृतकुमारी, पीपरामूल, भृङ्गराज (अरूसा), वेर के पत्ते, आमला, हलदी और गिलोय। प्रत्येक का १ पल रस लेना चाहिये। वटिका १ रत्ती प्रमाण बनावे। अनुपान—अरूसे का रस और मधु।

कफज स्वरभेद में-सूर्यरस—पारद, गन्धक, ताम्र, अभ्र, पीपल, सोंठ, मरिच, मोथा और मीठा विष प्रत्येक समभाग एकत्र मिलावे। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—मधु।

सान्निपातिक स्वरभेद में-नीलकण्ठ रस—पारद, ताम्र, लौह, गन्धक, मीठा विष, प्रत्येक १ भाग, रेणुका, मोथा, गण्डीर, नागकेशर, ये सब द्रव्य मर्दन कर वेर की गुठली के समान गोली वनावे। अनुपान-ब्राह्मीशाक का रस और मधु।

क्षयजनित स्वरभेद में-पर्पटी रस—पारद १ भाग, गन्धक २ भाग, एकत्र कज्जली कर भांगरे के रस में मर्दन करे। फिर मिलित पारद और गन्धक का $\frac{1}{8}$ परिमाण में जारित ताम्र और लौह भस्म लेकर उक्त कज्जली के साथ एकत्र लोहे के पात्र में पाक करे एवं एक लोहे के दण्ड द्वारा वार-वार चलावे, गलकर अच्छी तरह मिल जाने पर पर्पटी पाक की तरह पाक करे। फिर उस पर्पटी को खरल में चूर्ण कर निर्गुण्डी के पत्तों के रस में एक दिन भावना दे। फिर जयन्ती, त्रिफला, घृतकुमारी, अडूसा, भार्गी, त्रिकटु, भृङ्गराज, चीते की जड़ और मुण्डी के रस मे ७ दिन भावना देकर कोयलो की अग्नि पर सुखा ले। मात्रा—४ रत्ती। अनुपान—हरीतकी, सोंठ और गिलोय का क्वाथ। यह नाना प्रकार के रोगो की नाशक एक महौषध है।

मेहजनित स्वरभङ्ग में—ताम्रभस्म २ रत्ती आदी का रस और मधु के साथ प्रयोग करे।

स्वरभङ्ग चिकित्सा का अनुपान

ब्राह्मीशाक का रस, सोठ का चूर्ण और चीनी, वंसलोचन चूर्ण, छोटी इलायची का चूर्ण, पीपल और हर्र का चूर्ण, कटेरी का क्वाथ, दशमूल का क्वाथ, तालीस पत्र का चूर्ण, हलदी का चूर्ण और कुडे का चूर्ण।

अरोचक चिकित्सा

वातज अरोचक में—सुधानिधि रस प्रयोग, इसकी बनाने की विधि यक्ष्मा चिकित्सा मे देखिये।

पित्तज अरोचक में—सुलोचनाभ्र आदि, विधि यक्ष्मा चिकित्सा मे देखिये।

श्लेष्मज अरोचक में—ताम्र भस्म १ रत्ती मात्रा मे आदी के रस और मधु के साथ प्रयोग करे।

त्रिदोषज अरोचक में—सर्वरोगान्तक वटी दाडिम के रस वा वातावी नीवू के रस वा पुरानी भिगोई हुई इमली के जल के साथ सेवन करे। बनाने की विधि अग्निमान्द्य अधिकार में देखिये।

आगन्तुक अरोचक में-रसेन्द्रयोग—रससिन्दूर, पकी हुई इमली, गुड़, मरिच, किसमिस, जीरा, पीपल, जम्हीरी नीबू, अम्लवेतस इन सब द्रव्यों को समान भाग मे लेकर एकत्र मर्दन कर सेवन करे। मात्रा—दो आना भर।

अरोचक रोग चिकित्सा के अनुपान

नीवू का रस, आमले का रस, अनार का रस, पुरानी इमली का रस, अजवाइन का चूर्ण, दाख का रस, अम्लवेतस का रस, जीरे का चूर्ण, ईख का गुड़, आमरूल (चाङ्गेरी) का रस, छाछ, गोल मरिच का चूर्ण, आदी का रस और सैन्धवचूर्ण, इलायची का चूर्ण, दारुचीनी का चूर्ण, पीपल का चूर्ण, हरीतकी चूर्ण, काले जीरे का चूर्ण, आमलकी और धनिये का क्काथ, चन्दन, खस और सुगन्ध वाला का क्वाथ, गाय की दही और त्रिकटु चूर्ण।

सप्तत्रिंश अध्याय

वमनरोग-चिकित्सा

वातज वमन में—जीरा और धनिये के क्काथ के साथ पारद भस्म अभाव में मकरध्वज का प्रयोग करे।

पित्तज वमन में—ताम्रभस्म २ रत्ती मात्रा में हरीतकी और कटेरी के क्वाथ के साथ प्रयोग करे।

कफज वमन में—पारदभस्म अभाव मे मकरध्वज, त्रिकटुचूर्ण के अनुपान से प्रयोग करे।

त्रिदोषज वमन में—विशुद्ध रससिन्दूर, गिलोय के क्वाथ और मधु के साथ प्रयोग करे।

क्रिमिज वमन में—ताम्रभस्म २ रत्ती मात्रा में विडङ्ग चूर्ण और मधु के साथ मर्दन कर प्रयोग करे।

वमन चिकित्सा में अनुपान

वातज वमन में—छेना का जल (फटे दूध का जल), दूध मिला जल, घृत और सैंधव संयुक्त आँवला और मूंग का यूष, गोल मरिच का चूर्ण, बेल की छाल का क्वाथ और काले जीरे का चूर्ण।

पित्तज वमन में—गिलोय, त्रिफला, नीम की छाल और पटोल का क्वाथ, श्वेतचन्दन का क्वाथ, हरीतकी चूर्ण, जामुन और आम के पत्तों का सिद्ध जल और धनिये का क्वाथ, धान के खीलो का चूर्ण, चीनी और मधु, आमले का चूर्ण वा रस, पित्तपापड़े का क्वाथ, घृतकुमारी का रस, निसोत का चूर्ण, लालचन्दन और मुलहठी का क्वाथ।

कफज वमन में—विडङ्ग, त्रिफला और अतीस का चूर्ण, नागरमोथा का चूर्ण, बकायन का चूर्ण, सोंठ का चूर्ण, पीपर वृक्ष की छाल की भस्म, नीम की छाल का रस, गिलोय का रस, त्रिकटु चूर्ण, हरीतकी चूर्ण।
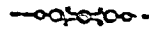
अष्टत्रिंश अध्याय

तृष्णा रोग-चिकित्सा

वातज तृष्णा में—महोदधि रस, यक्ष्मा चिकित्सा में देखिये।

पित्तज तृष्णा में—कुमुदेश्वर रस, यक्ष्मा चिकित्सा में देखिये। अनुपान—शारिवादि गण का क्वाथ यथा-शारिवा (अनन्तमूल), मुलहठी, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, पदमाख, गाम्भारी फल, पद्म और खजूर।

कफज तृष्णा में—ताम्र भस्म २ रत्ती मात्रा में नीम की छाल के उष्ण क्वाथ के साथ पान करने से कफज तृष्णा आरोग्य होती है।

क्षतज तृष्णा में—शोधित हिङ्गुल २ रत्ती मात्रा मे बकरी और हरिण के ताजा रक्त के अनुपान से प्रयोग करे। मांसरस भी इस रोग में अच्छा अनुपान है।

क्षयज तृष्णा में—स्वर्ण भस्म २ रत्ती मात्रा में मांसरस, जल मिला हुआ दूध वा जल मिश्रित मधु के साथ प्रयोग करे।

आमज तृष्णा में—बेल, सोंठ और वच के चूर्ण के साथ रससिन्दूर २ रत्ती मात्रा में प्रयोग करे।

सर्वतृष्णा हर योग—गन्धक, लौहभस्म, हरिताल, सोनामाखी प्रत्येक १ भाग, इनको एकत्र घृतकुमारी के रस में मर्दन कर एक ताल पकावे। उसके बाद उसको धूप में सुखाकर गजपुट में पाक करे। मात्रा–२ रत्ती। अनुपान—भिगोये हुये खील का जल और मधु।

तृष्णारोग-चिकित्सा में अनुपान

वातजतृष्णा में—बृहत् पञ्चमूल का ईषदुष्ण कषाय।

पित्तजतृष्णा में—तृणपञ्चमूल का क्वाथ, षडङ्गपानीय, काकोल्यादि, उत्पलादि और शारिवादि गण के क्वाथ के साथ सेवन करे।

कफजतृष्णा में—पञ्चकोल के क्वाथ और नीम की छाल के क्वाथ।

क्षतजतृष्णा में—छाग रक्त और हरिण के रक्त अथवा उनके मांसरस के साथ।

क्षयजतृष्णा में—मांसरस, मधुमिश्रित जल और दुग्ध मिश्रित जल।

आमजतृष्णा में—पञ्चकोल के क्वाथ, वच के चूर्ण, बेल, सोंठ चूर्ण, मोथा चूर्ण।

ऊनचत्वारिंश अध्याय

दाहरोग-चिकित्सा

मद्यपानज दाह में—ताम्र भस्म २ रत्ती मात्रा में चन्दनादि क्वाथ के साथ प्रयोग करे।

रक्तजदाह में—हरिताल भस्म तृणपञ्चमूल के क्वाथ के साथ प्रयोग करे।

पित्तजदाह में-दाहान्तक रस—पारद ५ भाग, ताम्रपत्र १ भाग और गन्धक ५ भाग। प्रथम पारा और गन्धक जम्हीरी के रस में अच्छी तरह मर्दन कर फिर पान के रस की भावना देकर उसके द्वारा ताम्रपत्र प्रलेपित करे। फिर उसे भूधरयन्त्र में पुट देवे। भस्मरूप हो जाने पर औषध उद्धृत करे। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—आदी का रस और त्रिकटु चूर्ण।

रक्तपूर्ण कोष्ठजदाह में-चन्द्रोदयरस—रससिन्दूर, अभ्र, स्वर्ण, मुक्ता, सोनामाखी, रौप्य, वङ्ग प्रत्येक १ भाग, ये सब एकत्र कर त्रिफला, गिलोय, सतावर

और श्वेतचन्दन के क्वाथ में भावना देकर १ रत्ती परिमाण वटी वना कर छाया में सुखावे। अनुपान—सतावर का रस और मधु।

क्षतजदाह में—हरिताल भस्म $\frac{1}{8}$ रत्ती मात्रा में, लाक्षा, अर्जुन की छाल, चन्दन, मुलहठी, सतावरि और खश के क्वाथ के साथ प्रयोग करे।

मर्माभिघातजदाह में—रससिन्दूर १ रत्ती मात्रा मे चन्दनादि क्वाथ के साथ प्रयोग करे।

तृष्णानिरोध जनित दाह में—दाहान्तक रस प्रयोग करे।

दाह चिकित्सा में अनुपान

चन्दन, पित्तपापड़ा, खश, सुगन्ध वाला, मोथा, पद्म, मृणाल, सौंफ, धनिये, पदमाख, आमला, वट, पीपलवृक्ष, गूलर, शतावर, तृणपञ्चमूल और शालपर्णी का क्वाथ युक्तिपूर्वक व्यवहार करे।

—oo:o:oo—

चत्वारिंश अध्याय

हृद्रोग-चिकित्सा

वातज हृद्रोग में-कल्याणसुन्दर रस—रससिन्दूर, अभ्र, रौप्य, ताम्र, स्वर्ण और हिङ्गुल प्रत्येक समभाग लेकर चीते के रस में एक दिन मर्दन कर एवं हाथी शुंडा के रस मे ७ बार भावना देकर १ रत्ती परिमाण वटिका बनावे। अनुपान-ईषदुष्ण जल।

विश्वेश्वर रस—स्वर्ण, अभ्र, लौह, वङ्ग, पारद, गन्धक और बैक्रान्त प्रत्येक १ तोला परिमाण में लेकर कपूर के जल में भावना देकर १ रत्ती प्रमाण वटिका वनावे। अनुपान-अर्जुन छाल का चूर्ण और मधु।

पित्तज हृद्रोग में-चिन्तामणिरस--पारद, गन्धक, अभ्र, लौह, वङ्ग, शिलाजतु प्रत्येक १ तोला, स्वर्ण $\frac{1}{4}$ तोला और रौप्य $\frac{1}{2}$ तोला। सब एकत्र कर चीते के रस, भृङ्गराज के रस और अर्जुन छाल के क्वाथ मे ७ बार भावना देकर १ रत्ती प्रमाण वटिका वनाकर छाया मे सुखावे। अनुपान-गेहूँ का क्वाथ।

पञ्चाननरस--पारद और गन्धक एकत्र कज्जली कर आमला, दाख, मुलहठी और खजूर के रस मे एक-एक दिन मर्दन करके २ रत्ती प्रमाण वटिका वनावे। अनुपान-आमले का चूर्ण और चीनी।

नागार्जुनाभ्र—सहस्रपुट द्वारा भस्मीकृत वज्राभ्र, अर्जुन छाल के क्वाथ में भावना देकर ४ रत्ती प्रमाण वटिका वनावे। अनुपान-पीपल चूर्ण और मधु।

श्लेष्मज हृद्रोग में-प्रभाकर वटी—सोनामाखी, लौह, अभ्र, वंशलोचन और शिलाजतु प्रत्येक सम भाग में लेकर अर्जुन छाल के क्वाथ में भावना देकर ४ रत्ती प्रमाण वटिका वनावे। अनुपान-अडूसे के पत्तों का रस और मधु।

त्रिदोषज हृद्रोग में-शङ्करवटी—पारद ४ भाग, गन्धक ८ भाग, लौह ३ भाग, सीसा २ भाग, ये सब एकत्र कर यथाक्रम से काकमाची, चीता, आदी, जयन्ती, अडूसा, वेल और अर्जुन के स्वरस मे भावना देकर २ रत्ती प्रमाण वटिका वनावे। अनुपान-गुनगुना जल।

क्रिमिज हृद्रोग में—हृदयार्णव रस, शङ्करवटी और कल्याणसुन्दर रस प्रयोग करे। अनुपान-विडङ्ग चूर्ण, सोमराजी (वाकुची) वीज का चूर्ण और मधु।

हृद्रोग चिकित्सा का अनुपान

वेडेला (वला), अर्जुन छाल और गोरख (ऋषभक), शालपर्णी का क्वाथ, कुड़े का चूर्ण, विडङ्ग चूर्ण, मृगशृङ्गभस्म, अनार का रस, मुलहठी का चूर्ण, अश्वगन्धा, सतावर, आलकुशी वीज का चूर्ण, दाख और शालपर्णी का क्वाथ, वच चूर्ण, रास्ना, शठी (कचूर) और कुडे का चूर्ण।

एकचत्वारिंश अध्याय

कार्श्य चिकित्सा

निम्नलिखित दोनों औषधें कार्श्यरोग मे हितकर हैं।

अमृतार्णव रस—जारित पारद १ भाग, स्वर्णभस्म १ भाग, गिलोय का सत ४ भाग, ये सब द्रव्य चीनी, मधु और घृत के साथ मिलाकर १ दिन मर्दन कर ४ रत्ती मात्रा में वटिका वनावे। अनुपान-अश्वगन्ध मूल का चूर्ण और गाय का दूध। यह कृशता नाशक है।

पूर्णचन्द्र रस—जारित पारद, अभ्र, लौह, शिलाजतु, विडङ्ग, सोनामाखी, मधु और घृत प्रत्येक समभाग में लेकर मर्दन करे। मात्रा-४ रत्ती। अनुपान-सेमर के फूलों का चूर्ण २ तोला और मधु। यह कार्श्यरोग की एक उत्कृष्ट

औषध है। इस औषध के सेवनकाल में दिन-रात में खूब सोवे और छाग शिशु का मांस भक्षण करे।

स्थौल्य चिकित्सा

नीचे लिखी औषधियाँ स्थौल्य निवारक हैं।

वड़वाग्नि रस—पारद, गन्धक, ताम्र और हरिताल समभाग में लेकर आदी के रस में मर्दन कर २ रत्ती मात्रा मे वटिका बनावे। अनुपान-आदी का रस और मधु।

त्र्यूषणाद्य लौह—त्रिकटु, भङ्ग, चव्य, चीते की जड़, विड लवण, उद्भिज लवण, सोमराजी, (वाकुची), सैन्धव और सोंचर लवण ये समभाग मे लेकर समष्टि के समान लौहभस्म ग्रहण कर घृत और मधु के साथ मर्दन कर एक माशा परिमाण वटिका बनावे। अनुपान-मधु।

वडवाग्नि लौह—रससिन्दूर, हरिताल, लौह और ताम्र, एकत्र आक के पत्ते के रस में मर्दन कर दो रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान-मधु।

स्थौल्य चिकित्सा में अनुपान—मूली का रस, गुग्गुल, मधु, कुलथी का क्वाथ गिलोय और त्रिफला का क्वाथ, चीते की जड़ का चूर्ण, हिङ्गु, एरण्डमूल का चूर्ण, अरनी का रस, सोंठ का चूर्ण, जवाखार, विडङ्ग चूर्ण, निसोत का चूर्ण, अजवाइन का चूर्ण और सहजना की छाल का रस।
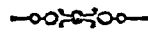
द्विचत्वारिंश अध्याय

मूर्च्छा-रोग चिकित्सा

निम्नलिखित ओषधियां मूर्च्छा रोग में हितकर हैं।

(१) विशुद्ध रससिन्दूर, पीपल चूर्ण और मधु के साथ प्रयोग करने से सब प्रकार की मूर्च्छा दूर होती है।

(२) ताम्र भस्म २ रत्ती मात्रा में खश और नागेश्वर पीसकर बला और मधु के साथ प्रयोग करने से अति दारुण मूर्च्छा रोग आरोग्य होता है।

(३) ½ रत्ती मात्रा में भैंस के घी के साथ हरिताल भस्म सेवन करने से सब प्रकार का मूर्च्छा रोग आरोग्य होता है।

भ्रम रोग-चिकित्सा

नीचे लिखी औषधियां भ्रम रोग में अति हितकर हैं।

(१) २ रत्ती मात्रा में ताम्रभस्म, गाय के घी के साथ मर्दन कर सेवन करे उसके वाद पुनर्नवा का क्काथ सेवन करे। यह सब प्रकार के भ्रमरोग का नाशक है।

(२) विशुद्ध शिलाजतु एक आना भर लेकर त्रिफला चूर्ण और मधु के साथ सेवन करने से घोर भ्रमरोग आरोग्य होता है।

(३) **लघ्वानन्द रस**—इस रोग की एक अति उत्कृष्ट औषध है।

लघ्वानन्दरस बनाने की विधि—पारद, गन्धक, लौह, अभ्र, विष प्रत्येक १ तोला, मरिच चूर्ण ८ तोला, सोहागे की खील ४ तोला, एकत्र मिलाकर भीमराज (भांगरा) और अनार के क्काथ में ७ वार भावना देकर २ रत्ती प्रमाण वटिका वनावे। अनुपान-त्रिफला का क्काथ, घृत संयुक्त जवासे का क्काथ, धारोष्ण दुग्ध, आदी का रस और गुड।

निद्रा और तन्द्रा की चिकित्सा

घोड़े की लाला (लार), सैन्धव लवण, मनःशिला, पीपल और मधु एकत्र अच्छी तरह पीस कर अञ्जन देने से निद्रा और तन्द्रा निवृत्त होती है।

संन्यास चिकित्सा

मूर्च्छान्तक रस—रससिन्दूर, सोनामाखी, स्वर्ण, शिलाजतु और लौह ये समभाग में लेकर सतावर और विदारीकन्द के रस मे भावना देकर २ रत्ती प्रमाण वटी वनावे। अनुपान—त्रिफला का जल और शतावर का रस।

मदात्यय रोग चिकित्सा

नीचे लिखे दो योग मदात्यय मे हितकर हैं।

(१) **रसेन्द्रसार**—रससिन्दूर, अभ्र, लौह, मुक्ता, स्वर्ण, प्रत्येक सम भाग लेकर घृतकुमारी, शतावर और आमले के रस में मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान-दुग्ध और चीनी।

(२) रससिन्दूर, चव्य, सोंचर लवण, धनिया, सोंठ और अजवाइन, समभाग चूर्ण कर दो आने भर दवा मद्य के साथ में सेवन करने से मदात्यय आराम होता है।

त्रिचत्वारिंश अध्याय

उन्माद-चिकित्सा

वातिक उन्माद में-उन्मादभञ्जनरस—त्रिकटु, त्रिफला, गजपीपल, विडङ्ग, देवदारु, चिरायता, कुटकी, कटेरी, मुलहठी, इन्द्रजौ, चीतामूल, बेड़ेला (वला), पीपरामूल, खश, सहंजना के बीज, निसोथमूल, इन्द्रायन की जड़, वङ्ग, रौप्य, अभ्र, प्रवाल प्रत्येक समभाग। सबके समान लौह भस्म ले जल मे मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण वटी बनावे। अनुपान-तालशाखा का रस और मधु।

पैत्तिक उन्माद में-उन्मादगजकेशरी—पारद, गन्धक, मैनशिल, धतूरे के वीज समभाग में लेकर वच के क्वाथ और रास्ना के क्वाथ में ७-७ दिन भावना देकर चूर्ण करे। मात्रा—१ आना भर। अनुपान-घृत।

कफज उन्माद में—तालभस्म २ रत्ती मात्रा मरिच चूर्ण और धतूरे के बीजो के चूर्ण के साथ प्रयोग करे।

त्रिदोषज उन्माद में-चतुर्भुजरस—रससिन्दूर २ भाग, स्वर्ण, मैनशिल, कस्तूरी, हरिताल प्रत्येक १ भाग, समस्त द्रव्य एक दिन घृतकुमारी के रस में मर्दन कर एक गोला बनावे। फिर वह गोलक एरण्ड पत्र द्वारा लपेट कर ३ दिन धान्यराशि में रक्खें। रोग की अवस्थानुसार एक-एक वटी त्रिफला चूर्ण और मधु के साथ भक्षण करे। मात्रा-२ रत्ती।

मानस दुःखज उन्माद में-बृहत् चिन्तामणि—स्वर्ण ३ भाग, रौप्य, अभ्र प्रत्येक २ भाग, लौह ५ भाग, प्रवाल, मुक्ता प्रत्येक ३ भाग, रस सिन्दूर ७ भाग, घृतकुमारी के रस में मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान-ब्राह्मी शाक का रस और मधु।

विषज उन्माद में—हरितालभस्म, गाय के घी के अनुपान से प्रयोग करे।

भूतोन्माद में-भूताङ्कुश रस—पारद, लौह, रौप्य, ताम्र और मुक्ता, प्रत्येक १ तोला, हीरा २ माशा, हरिताल, गन्धक, मैनशिल, तूतिया, शिलाजतु, खर्पर, स्रोत और पाचो नमक प्रत्येक १ तोला। ये सब द्रव्य भृङ्गराज, दन्ती और सेंहुड़ के दूध में मर्दन कर पिण्डाकार करे और गजपुट में पाक करे। मात्रा-२ रत्ती, अनुपान-आदी का रस।

उन्माद चिकित्सा का अनुपान—ब्राह्मी शाक का रस, वच का चूर्ण, कूष्माण्ड बीज का चूर्ण, शंखपुष्पी का चूर्ण, कुडे का चूर्ण, धतूरे के बीजो का चूर्ण, चन्द्रमूल चूर्ण, तालशाखा का रस, पुराना घृत, शतावरी का रस और मधु।

अपस्मार (मृगी) चिकित्सा

वातिक अपस्मार में-वातकुलान्तक—कस्तूरी, हरीतकी, नागकेशर, बहेड़ा, पारद, गन्धक, जायफल, इलायची, लवङ्ग प्रत्येक २ तोले जल में मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण वटी तैयार करे। अनुपान—तालशाखा का रस और मधु।

पैत्तिक अपस्मार में-सूतकप्रत्यय नामक रस—स्वर्ण, रौप्य, ताम्र, स्रोतोञ्जन (सफेद सुरमा) और गन्धक, हरिताल और मनःशिला के साथ पारद समभाग में मर्दन कर गन्धक के तैल मे पाक करे। मात्रा-२ रत्ती अनुपान—ब्राह्मी शाक का रस।

कफज अपस्मार में-इन्द्रब्रह्मवटी—रससिन्दूर, अभ्र, लौह, रौप्य, सोनामाखी, विष और पद्मकेशर प्रत्येक समभाग मे लेकर, सेंहुड़, चीता, भेरेण्डा (एरण्ड), वच, सोंठ, जमीकंद और निर्गुण्डी इनके रस में १-१ दिन भावना दे। फिर पुट में पाक कर उसके साथ सम परिमाण मे गन्धक चूर्ण मिलाकर प्रियङ्गु के तैल और सरसों के तैल के साथ पाक करे। चने प्रमाण गोली बनाकर आदी के रस के साथ सेवन करे।

त्रिदोषज अपस्मार में—पारदभस्म २ रत्ती परिमाण, वच, शङ्खपुष्पी, ब्राह्मीशाक, कूड़ा और इलायची इनके क्वाथ के साथ प्रयोग करे।

अपस्मार चिकित्सा में अनुपान—धारोष्ण दुग्ध और शतावर का का अर्क, ब्राह्मी का रस और मधु, तिल तैल और पिसा हुआ लहसुन, सहजना की छाल का चूर्ण, श्वेत सरसो का चूर्ण, वच का चूर्ण, मुलहठी और कूष्माण्ड का रस।

चतुश्चत्वारिंश अध्याय

वातव्याधि चिकित्सा

नीचे लिखी औषधियां विविध प्रकार के वायु विकार जनित रोगो की नाशक हैं।

अनिलारि रस—पारद १ भाग, गन्धक २ भाग, एरण्डमूल और निर्गुण्डी के रस में १ दिन मर्दन कर ताम्रपात्र मे बंद कर मिट्टी द्वारा प्रलेप कर देवे और वालुका यन्त्र मे आरण्य उपलों की अग्नि से पाक करे। शीतल होने पर उतार कर निर्गुण्डी, एरण्डमूल और चीते के रस में ७ बार यत्न पूर्वक भावना देकर ३ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान--सैन्धव मिश्रित एरण्ड तैल अथवा घृत और मरिच चूर्ण।

वातबिध्वंसन रस—पारद १ भाग, अभ्र २ भाग, कांसा ३ भाग, माक्षिक ४ भाग, गन्धक ५ भाग, हरिताल ६ भाग, पारद और गन्धक एकत्र कज्जली करे और ये सब एकत्र करके एरण्ड तैल से ७ दिन भावना दे। फिर नीबू के रस में मर्दन कर एक गोला बनावे। वह गोलक तिल के कल्क से १ अङ्गुल मोटा प्रलेप देकर ढक दे। फिर धूप में सुखाकर १२ प्रहर बालुकायन्त्र में पाक करे। मात्रा-२ रत्ती।

सर्वेश्वररस—पारद, लोह, हिङ्गुल, ताम्र और अभ्र प्रत्येक २ तोला, गन्धक २ पल, ताम्र और त्रिकटु प्रत्येक १ पल ये सब द्रव्य एकत्र नीबू के रस के साथ मर्दन करके उसमें स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी), आक और सेहुड़ का दूध, अरूसा, कनेर और कुचिला के रस की ७ बार भावना देवे। फिर पिण्डाकार करके वालुकायन्त्र मे २ दिन पाक करे, पाक के अन्त में पीपल का चूर्ण २ तोला और मीठा विष ४ माशा उसके साथ मिलावे। मात्रा-१-१ रत्ती।

अर्केश्वररस--पारद १ भाग, गन्धक २ भाग एकत्र मर्दन करके तपे हुए चक्राकार ताम्रपत्र द्वारा उन्हें ढक दे और उसे भस्म से ढक देवे। और पुटपाक करके उस ताम्रपत्र पर लगा हुआ पारद संग्रह करे। फिर वह पारद चूर्ण कर आक के रस और चीते की जड़ और त्रिफला के क्वाथ में १० बार भावना देकर पुटपाक करे। मात्रा-२ रत्ती। अनुपान-त्रिफला का क्वाथ।

गन्धाश्मगर्भरस—पारद १ भाग और गन्धक ८ भाग, एकत्र मर्दन कर चीते की जड़ के क्वाथ के साथ लौहपात्र में मृदु अग्नि की ज्वाला से पाक

करे। फिर उसके साथ १ भाग मीठा विष मिलावे। मात्रा–२ रत्ती। अनुपान–घृत और मरिच का चूर्ण।

सर्ववातारि—गन्धक १ भाग, हरिताल २ भाग, मैनशिल ४ भाग, सोनामाखी ८ भाग एवं पारद १६ भाग। ये सब एकत्र ७ दिन तक मर्दन कर उसके साथ समष्टि का आठवा भाग रक्त दारमुज (शंखिया) मिलावे। और कुचिला के क्वाथ के साथ मर्दन कर गोला बनावे। सूखने पर २ दिन उसे वालुका यन्त्र में पाक करे शीतल होने पर चूर्ण कर सम परिमित हिंग्वष्टक चूर्ण उसके साथ मिलावे। फिर विजौरा नीबू का रस, सोंठ का क्वाथ और चीते की जड़ के क्वाथ के साथ ७ वार भावना देवे। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान–घृत और मरिच चूर्ण।

चिन्तामणि रस—रससिन्दूर और शोधित अभ्र प्रत्येक २ तोला, लौह १ तोला, स्वर्ण ½ तोला, घृतकुमारी के रस में मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। यह अति उत्कृष्ट औषध है। अनुपान–त्रिफला।

चतुर्मुख रस—पारद, गन्धक, लौह, अभ्र, प्रत्येक एक भाग, स्वर्ण ¼ भाग, यह सब घृतकुमारी के रस में मर्दन कर एरण्ड पत्र द्वारा बांधकर ३ दिन धान्यराशि में रक्खे। फिर निकाल कर १ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान–त्रिफला का जल और मधु।

लक्ष्मीविलास रस—कृष्णाभ्र १ पल, पारद और गन्धक दोनों ½ पल, एवं वेड़ेला (वला), शालपर्णी, शतावर, विदारीकंद, काले धतूरे के बीज, हिज्जल बीज, गोखुरू के बीज, विधारे के बीज, भङ्ग के बीज, जायफल, जावित्री, कपूर, प्रत्येक चूर्ण २ तोला, एवं स्वर्णभस्म २ माशा पान के रस में मर्दन कर चने के बराबर वटी बनावे। अनुपान–आदी का रस, बेल के पत्तों का रस और मधु।

कुब्जविनोद रस—पारद, गन्धक, हरीतकी, हरिताल, विष, कुटकी, त्रिकटु, गन्धवोल और जयपाल, प्रत्येक समभाग। भांगरे के रस, सेंहुड़ के रस और आक के पत्तों के रस में मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण वटी बनावे। अनुपान–रास्ना सप्तक का क्वाथ।

तालकेश्वर रस—रससिन्दूर, शोधित हरिताल १–१ भाग, भङ्ग ८ भाग, इन सबों के चूर्ण का दूना गुड़, एकत्र मिलाकर ½ तोला परिमित वटिका बनावे। प्रातः औषध–सेवनोपरान्त छाया में बैठे। अनुपान–गर्म दुग्ध।

सर्वाङ्गसुन्दर रस—पारद, अभ्र, ताम्र, लौह, हिङ्गुल और गन्धक प्रत्येक २ तोला, ये सब एकत्र सप्तपर्ण की छाल के क्वाथ, पाठा के रस, सेंहुड़ के अर्क, अडूसे के क्वाथ, एरण्डमूल के क्वाथ में मर्दन कर इसके साथ कुचिला का चूर्ण २ तोला मिलाकर एक गोला बनाकर। उसे दो प्रहर वालुका यन्त्र में पाक करे। मात्रा–२ रत्ती।

त्रैलोक्यचिन्तामणि रस—हीरा, स्वर्ण, मौक्तिक और लौह प्रत्येक १ भाग, अभ्र और रससिन्दूर प्रत्येक ४ भाग ये सब एकत्र कर लोह वा पत्थर के खल मे घृतकुमारी के रस मे मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान–त्रिफला का क्वाथ और मधु।

वातगजाङ्कुश—पारद, जारित लौह, सोनामाखी, गन्धक, हरिताल, हरीतकी, कांकडाश्रृङ्गी, विष, त्रिकटु, अरणी, सोहागे की खील, प्रत्येक द्रव्य समभाग में लेकर मुण्डी और निर्गुण्डी के रस से एक एक दिन मर्दन करके २ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। पीपल चूर्ण और मञ्जीठ के क्वाथ मे १–१ वटी मर्दन कर सेवन करे।

बृहत् वातगजाङ्कुश—पारद, अभ्र, तीक्ष्ण लौह, ताम्र, गन्धक, स्वर्ण, सोंठ, वला, धनिया, कट्फल (कायफल), हरीतकी, विष, कांकडाश्रृङ्गी, पीपल, मरिच, सोहागा की खील प्रत्येक समभाग, ये सब द्रव्य मुण्डी और निर्गुण्डी के रस में एकत्र १ दिन मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे।

महावातगजाङ्कुश रस—शोधित अभ्र, लौह, ताम्र, पारद, हरिताल, गन्धक, भार्गी, सोठ, श्वेत वला, धनिया, कट्फल (कायफल), हरीतकी और विप ये सब द्रव्य समभाग मे एकत्र कर पीपल के क्वाथ मे मर्दन कर ½ तोला परिमित वटी वनावे। अनुपान–पीपल और मजीठ का क्वाथ।

वातव्याधि चिकित्सा का अनुपान

दशमूल पाचन, रास्ना, बला, सोठ और एरण्डमूल का क्वाथ, लहसुन का रस, कुड़े का चूर्ण, आलकुशी के वीजो का चूर्ण, अश्वगंधा चूर्ण, अरनी का रस, आक का रस, वरुण की छाल का रस, उड़द का क्वाथ, जीरे का चूर्ण, हीग, तिल तैल इत्यादि युक्तिपूर्वक प्रयोग करे।

पञ्चचत्वारिंश अध्याय

पित्तरोग चिकित्सा

नीचे लिखी ओषधियां पित्तरोगनाशक हैं--

(१) **पित्तान्तक रस**—जावित्री, जटामांसी, जायफल, कुड़ा, तालीशपत्र, सोनामाखी, लौह, अभ्र, मनःशिला प्रत्येक समभाग। सबके समान जारित रौप्य जल में मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान-गिलोय का रस और ईख की चीनी।

(२) **महापित्तान्तक रस**—पित्तान्तक रस में सोनामाखी के बदले स्वर्ण देने से महापित्तान्तक रस कहा जाता है। अनुपान-शतावर और विदारीकन्द का रस।

(३) **गुडूच्यादि लौह**—गिलोय का सत, त्रिफला, त्रिकटु, त्रिमद प्रत्येक १ तोला, लौह १० तोला, ये सब द्रव्य एकत्र जल में मर्दन कर ६ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान-धनिया और पटोल का क्वाथ।

(४) ताम्र भस्म २ रत्ती मात्रा में भैंस के घी के साथ प्रयोग करने से सब तरह का पित्त रोग विनष्ट होता है।

(५) हरिताल भस्म $\frac{1}{8}$ रत्ती मात्रा में महिषी घृत के साथ प्रयोग करने से सब तरह का पित्त रोग विनष्ट होता है।

(६) रौप्य भस्म २ रत्ती मात्रा में गिलोय के रस के साथ प्रयोग करने से सब प्रकार की पित्तज व्याधि आरोग्य होती है।

पित्तजनित रोग चिकित्सा में अनुपान

श्वेत और लाल चन्दन घिसा हुआ, खश का चूर्ण, शतावर का रस, विदारीकन्द का रस, नागरमोथा का रस, दूब का रस, सब प्रकार के कमल के बीज, पत्र, पुष्प और मूल का रस, अरूसे का रस, गिलोय का रस, चीनी आदि अनुपान युक्तिपूर्वक प्रयोग करे।

कफरोग चिकित्सा

(१) **कफकेतु रस**—सोहागे की खील, पीपल, शंख भस्म और वत्सनाभ विष, ये सब द्रव्य समभाग में चूर्ण कर आदी के रस में ३ दिन भावना देकर १ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान—आदी का रस।

(२) **कफचिन्तामणि रस**—हिङ्गुल, इन्द्रजौ, सोहागे की खील, भङ्ग के बीज, मरिच प्रत्येक १ भाग, रससिन्दूर २ भाग। आदी के रस में १ प्रहर मर्दन कर चना प्रमाण गोली बनावे।

(३) **महालक्ष्मीविलास रस**—अभ्र ८ तोला, गन्धक ४ तोला, वङ्ग २ तोला, पारद १ तोला, हरिताल १ तोला, ताम्र भस्म ½ तोला, कपूर, जावित्री, जायफल प्रत्येक १ तोला, बीजताड़क (विधारा) के बीज, धतूरे के बीज प्रत्येक २ तोला, स्वर्ण ½ तोला, ये सब एकत्र पान के रस में मर्दन करके २ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान-आदी का रस और मधु।

(४) **महाश्लेष्मकालानल रस**—हिङ्गुल से निकाला हुआ पारद, गन्धक, मैनशिल, सोहागे की खील, ताम्र, वङ्ग, अभ्र, सोनामाखी, हरिताल, धतूरे के बीज, सेंधानमक, कुडा, हींग, पीपल, कायफल, दन्तीबीज, सोमराजी (वाकुची), सोनालुफल, निसोत प्रत्येक समभाग, सेहुड़ के रस में मर्दन कर मटर प्रमाण वटिका बनावे। अनुपान-आदी, तुलसी का रस और मधु।

(५) रसतालक १ जौ मात्रा में आदी के रस और मधु के साथ प्रयोग करने से सब प्रकार का श्लेष्मा रोग आरोग्य होता है।

कफरोग चिकित्सा में अनुपान

मधु, हरिद्राचूर्ण, आदी का रस, पीपलचूर्ण, तुलसी पत्तों का रस, वच चूर्ण, कुडे का चूर्ण, हरीतकी चूर्ण, दाख, कायफलादि, बड़ी कटेरी और चीते की जड़ का क्वाथ।
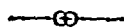
षट्चत्वारिंश अध्याय

ऊरुस्तम्भ चिकित्सा

नीचे लिखी औषधियां ऊरुस्तम्भ रोग में हितकर हैं।

(१) **गुञ्जाभद्र रस**—पारद १॥ तोला, गन्धक ६ तोला, श्वेत कौंच के बीज ३ तोला, जयन्ती बीज, नीम के बीज और जमालगोटा के बीज प्रत्येक आधा तोला ये सब जयन्ती, जम्हीरी नीबू, धतूरा और काकमाची के रस में १ दिन भावना देकर ४ रत्ती प्रमाण वटिका बनावे। हींग और सैन्धव लवण के अनुपान से सेवन करे।

(२) हरिताल भस्म ¼ रत्ती मात्रा में रास्नादि क्वाथ के साथ प्रयोग करे।

(३) रसतालक १ जौ भर मात्रा में पीपल चूर्ण और सोंठ चूर्ण एवं मधु के साथ प्रयोग करे।

ऊरुस्तम्भ चिकित्सा का अनुपान

चीतामूल चूर्ण, हरीतकी चूर्ण, पीपलचूर्ण, रास्नादि क्वाथ, कुटकी चूर्ण, गोमूत्र, सोंठ चूर्ण, दशमूल का क्वाथ, त्रिफला चूर्ण, पीपरामूल चूर्ण, रास्ना का रस, एरण्डमूल का क्वाथ, पुनर्नवा का रस, गिलोय का रस आदि अनुपान-युक्तिपूर्वक प्रयोग करे।

आमवात चिकित्सा

वातज आमवात में-वातारि रस—गरम दूध वा गरम जल और अण्डी के तैल के साथ प्रयोग करने से अतीव सुफल होता है।

पित्तज आमवात में-आमवातारिवटी—पारद, गन्धक, लौह, अभ्र, तूतिया, सोहागा, सैन्धव प्रत्येक समभाग, सब का दूना गुग्गुलु, गुग्गुल की चौथाई निसोत की जड़ की छाल का चूर्ण और निसोत की छाल के चूर्ण के समान चीते की जड़ का चूर्ण घृत में मर्दन करके २ माशा प्रमाण वटिका बनावे।

कफज आमवात में-आमवातेश्वर—शोधित गन्धक और ताम्र प्रत्येक ४ तोला, शुद्ध पारद २ तोला, लौह २ तोला, इन सब द्रव्यों को एरण्डमूल के रस में भावना दे। फिर चूर्ण करके पञ्चकोल के क्वाथ में २० वार भावना देकर गिलोय के रस में १० वार भावना दे, फिर इसके साथ सब के समान सोहागे की खील का चूर्ण, उसका आधा (प्रत्येक ६ तोला) विडलवण और मरिच का चूर्ण मिलाकर तिन्तिड़ी क्षार और दन्ती, पारद के तुल्य (२ तोला) एवं त्रिकटु, त्रिफला, लवङ्ग प्रत्येक १ तोला मिलाकर बटी बनावे। अनुपान-आदी का रस और मधु। मात्रा-१ आना भर। यह कफज आमवात की श्रेष्ठ औषध है।

सान्निपातिक आमवात में-वृकोदर वटिका—पारद, गन्धक, तीक्ष्ण लौह, अभ्र, सोनामाखी, एवं षट्कोल (षड्षण), जीरा, कालाजीरा, सौवर्चल नमक, सेंधानमक, विडङ्ग, हरीतकी, अम्लवेतस, प्रत्येक समभाग एकत्र जम्हीरी रस के साथ मर्दन कर वेर की गुठली के समान वटिका बनावे। अनुपान-आदी का रस और पीपल चूर्ण। मात्रा-२ रत्ती।

आमवात चिकित्सा के अनुपान

पञ्चकोल चूर्ण, दशमूल का क्वाथ, निसोत का चूर्ण, लहसुन का रस, निर्गुण्डी का रस, सोठ का चूर्ण, हरीतकी चूर्ण, एरण्डतैल, पुनर्नवा का रस, सेंधानमक का चूर्ण, अजवाइन का चूर्ण, गुग्गुल का चूर्ण, प्रसारिणी का रस, रास्ना का रस आदि का अनुपान प्रयोग करे।

वातरक्त चिकित्सा

वायु प्रधान वातरक्त में—पर्पटी रस और रसतालक घृत और गोल मरिच चूर्ण के साथ प्रयोग करे।

पित्त प्रधान वातरक्त में—त्रिनेत्र रस, घृत और मधु के अनुपान से प्रयोग करे।

कफ प्रधान वातरक्त में—उदयभास्कररस और शूलगजकेशरी प्रयोग करे।

रक्त प्रधान वातरक्त में—हरिताल भस्म सर्वश्रेष्ठ औषध है। मात्रा—$\frac{१}{८}$ रत्ती से $\frac{१}{४}$ रत्ती तक। अनुपान-गाय का घी।

हरिताल भस्म सेवन विधि—हरिताल भस्म खाने के बाद रोगी प्रथम थोड़ा-थोड़ा कर प्रतिदिन आधा पाव से एक पाव तक गाय का घृत खावे। अन्न व्यञ्जनादि, लुचई रोटी, परोठा, हलुआ आदि के साथ उक्त घृत खावे, जितना सह्य हो उतना दूध पी सकते है। हरिताल भस्म सेवन के समय मांस, मछली निषिद्ध है। कोष्ठवद्धता होने पर कभी-कभी आवश्यकतानुसार जुलाब लेना चाहिये।

त्रिदोषज वातरक्त में-महातालेश्वर रस—हरितालभस्म और उसके समान गन्धक एकत्र कर दोनो के समान ताम्रभस्म मिलाकर बालुका यन्त्र मे पाक करें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान-गिलोय का रस। यह त्रिदोषज बातरक्त की परीक्षित औषध है। हरितालभस्म वनाने की विधि रसचिकित्सा प्रथम खण्ड मे देखिये।

वातरक्त चिकित्सा के अनुपान

गिलोय का रस, अडूसे का रस, शतावर का रस, एरण्डमूल का रस, पान का रस, त्रिफला चूर्ण, कुटकी चूर्ण, निसोत का चूर्ण, कोकिलाक्षी का रस, हरीतकी चूर्ण, गोमूत्र, गोक्षुर, नीम की छाल का रस, मुलहठी का क्वाथ, खश का चूर्ण, श्वेत चन्दन घिसा हुआ, हल्दी, दारुहल्दी, मोथा और आमले का क्वाथ, गुग्गुलु और घृत।

इति रसचिकित्सा का द्वितीय खण्ड समाप्त।

तृतीय खण्ड

शीतपित्त, उदर्द और कोठ

शीतपित्त में-श्लेष्मपित्तान्तकरस—रससिन्दूर, ताम्र, लोह, गन्धक, सोहागा, चिरायता, चीता, इन्द्रयव, रास्ना, गुरुच और पद्मकाष्ठ समभाग एक साथ मिलाकर एक दिन खेतपापड़ा के रस मे मर्दन कर २ रत्ती की गोली बना ले। अनुपान—हर्रा, पीपल, सोंठ का चूर्ण एवं गन्ने के रस का गुड़।

गुडूच्यादिलौह—गुरुच का शक्कर, त्रिफला, त्रिकटु, त्रिमद प्रत्येक १ तोला, लोहा १० तोला, जल में मर्दन कर ६ रत्ती की गोली बनावे। अनुपान-धनिया और परवल के पत्तों का क्काथ।

पित्तान्तकरस—जावित्री, जटामासी, जायफल, कुड़ा, तालिशपत्र, लौह, सोनामाखी, अभ्रक और मनःशिला बरावर भाग, सबके बरावर चांदी, इनको जल मे घोंटकर २ रत्ती गोली बनावे।

वीरेश्वररस—रससिन्दूर, ताम्र, लौह, हरिताल, गन्धक, कैथ फल, मेढ़ासिंगी, वच, सोंठ, भारंगी, हर्रा, सुगन्धवाला और धनिया एकत्र परवल के पत्ते के रस में घोंट कर ४ रत्ती परिमाण की गोली बनावे। अनुपान—धनिया और परवल के पत्तो का क्काथ।

बृहत् हरिद्राखण्ड—हल्दी चूर्ण आधा सेर, निसोथ चूर्ण ४ पल, हर्रे का चूर्ण ४ पल, चीनी ५ सेर। दारुहल्दी, मोथा, जवाइन, वन जवाइन, चीता, कुटकी, कालाजीरा, पीपल, सोंठ, गुडत्वक् (दालचीनी), इलायची, तेजपत्ता, विडङ्ग, गुरुच, अडूसा के मूल की छाल, कुडा, हर्रा, वहेड़ा, आँवला, चव्य, धनिया, लौह और अभ्रक प्रत्येक १ तोला लेकर मृदु अग्नि में पाक करे। इसे आधा तोला मात्रा में जल के साथ सेवन करना चाहिये।

स्पर्शवात में-रसादिगुडिका—पारद ८ भाग, कुचिला १० भाग, गन्धक १२ भाग, सोंठ, पीपल, गोलमिर्च, हर्रा, बहेड़ा, आवला, भेलुए की मुटि,

चीता, मोथा, वच, अश्वगन्धा, रेणुक, विष, कुडा, पीपल की जड़ और नागेश्वर प्रत्येक १ भाग एवं गुड़ २० भाग। इन्हें एक साथ मर्दन कर वेर के समान गोली बनावे।

वातपित्तान्तकरस—निर्माण विधि अम्लपित्ताधिकार में द्रष्टव्य है।

उदर्द और कोठरोग में—पूर्वोक्त बृहत हरिद्राखण्ड, कुष्ठकालानल रस आदि औषध प्रयोज्य हैं।

कुष्ठकालानलरस—पारद, गन्धक, सोहागा, ताम्र और लौह समभाग एवं नीम की पत्ती, फूल, फल, मूल और छाल का चूर्ण बराबर भाग एक साथ मिलाकर त्रिफला और सोन्दाल के क्वाथ में पृथक् २ भावना देकर ४ रत्ती की गोली बनावें।

यवक्षार और सेंधानमक कड़ुए तेल में मिलाकर शरीर में मर्दन करने से शीतपित्त आरोग्य होता है।

आंवला और नीमपत्ती बराबर भाग से पीस कर घी के साथ सेवन करने से शीतपित्त, उदर्द और कोठ आदि रोग प्रशमित होते है।

दूब और हलदी एक साथ पीस कर प्रलेप करने से भी शीतपित्तादि रोग दूर होते हैं।

त्रिफला ३ भाग, गुग्गुल ५ भाग और पीपल १ भाग इन सब द्रव्यों को एक साथ पीस कर १ माशा परिमाण की गोली बनावे। इसके सेवन से शीतपित्त और उदर्दादि रोग विनष्ट होते हैं।

शीतपित्त रोग का अनुपान—कच्ची हलदी का रस, गुरुच का रस, नीमछाल का चूर्ण एवं अम्लपित्ताधिकार मे वर्णित अनुपानो को अवस्थानुसार समझ कर व्यवहार करना चाहिए।

गलगण्ड और गण्डमाला

गलदेश में क्षुद्र या वड़े आकार का लम्बमान जो शोथ उत्पन्न होता है उसे 'गलगण्ड' कहते हैं। कक्ष, स्कन्ध, ग्रीवा, गल और वक्ष देश मे बेर या आंवले के समान अनेक संख्या में जो गण्ड उत्पन्न होते हैं उन्हें 'गण्डमाला' कहते हैं।

चिकित्सा—इन दोनों रोगो की चिकित्सा विधि एक ही तरह है।

वातजगलगण्ड में-वातारि रस—पारद १ भाग गन्धक २ भाग एक साथ कज्जली करे। पहले शोधित गुग्गुलु ५ भाग, एरण्ड तेल के साथ मर्दन कर

उसके साथ उल्लिखित कज्जली एवं त्रिफला चूर्ण ३ भाग और चीतामूल चूर्ण ४ भाग मिश्रित कर फिर एरण्ड तेल के साथ मर्दन करे। मात्रा–१ माशा। अनुपान—सोंठ और एरण्डमूल का क्वाथ अथवा दशमूल क्वाथ।

कफजगलगण्ड में—पारद और गन्धक के सहयोग से भस्मीकृत एवं अमृतीकृत ताम्रभस्म २ रत्ती मात्रा में प्रयोग करें। अनुपान—सोंठ, वरुण छाल, हर्रा और कांचनार छाल का क्वाथ।

मेदोजगलगण्ड में–(१) त्रिनेत्ररस—हरिन के सींग का चूर्ण, स्वर्ण भस्म, ताम्रभस्म और पारदभस्म समभाग एक साथ मिलाकर एक दिवस अदरक के रस में मर्दन कर मूषारुद्ध करके गजपुट में पाक करे। मात्रा–१ रत्ती। अनुपान–दशमूल का क्वाथ।

(२) **वाडवाग्नि रस**—शोधित पारद, ताम्रभस्म, हरिताल और गन्धबोल समभाग एकत्र कर आकन्द (आक) की लेई के साथ एक दिन मर्दन कर मधु में मर्दन करे और १ रत्ती की गोली बनावे। अनुपान—अदरक का रस या दशमूल का क्वाथ।

(३) **कांचनार गुग्गुलु**—कांचनार छाल ५ पल, सोंठ, पीपल और गोल मिर्च प्रत्येक १ पल, हर्रा, आँवला और बहेड़ा प्रत्येक आधा पल, वरुणछाल २ तोला, तेजपत्ता, इलायची और दारुचीनी प्रत्येक आधा तोला एक साथ चूर्ण कर उसमें सर्वचूर्ण समान गुग्गुल अच्छी तरह मिलावे। मात्रा–¼ तोला से आधा तोला। अनुपान—त्रिफला, वरुणछाल, सोंठ और एरण्डमूल का छाल।

(४) पूर्वलिखित प्रक्रिया से भस्मीकृत ताम्र २ रत्ती मात्रा में, अपामार्ग क्षार, मूली का क्षार, श्वेतपुनर्नवा क्षार, वरुण छाल का रस एवं राखालशसा (इन्द्रायण) मूल का रस और तिक्त कद्दू के रस के साथ सेवन करने से गलगण्डादि आरोग्य होते हैं।

(५) स्वर्णभस्म २ रत्ती मात्रा में विषम भाग मिलित घी और मधु के साथ सेवन करके दूध के साथ पञ्चतिक्त क्वाथ का अनुपान करे।

(६) २ तोला कज्जली, गुग्गुल और एरण्ड तेल के साथ सेव्य है।

(७) **मन्थानभैरवरस**—पारदभस्म (अभाव में रससिन्दूर), ताम्रभस्म, हींग, पुष्करमूल (अभाव में कुड़ी), सेंधानमक, गन्धक, हरिताल और कुटकी

इनके चूर्ण समभाग एकत्र कर क्रमानुसार एक-एक दिन पुनर्नवा, देवदारु, निसिन्दा (निर्गुण्डी), कांटानट और कड़वी कद्दू के रस में मर्दन कर ४ रत्ती की गोली तैयार करे। अनुपान-गुरुच का रस या क्वाथ। इसके सेवन से गण्डमाला दूर हो जाती है।

अपची चिकित्सा

जब गण्डमाला के कुछ गण्ड पकने लगते हैं, कुछ अदृश्य हो जाते हैं एवं कुछ नये की उत्पत्ति होने लगती है, तब ऐसी अवस्था में उन्हें 'अपची' कहते हैं।

(१) **चिकित्सा**—सम्पूर्णरूप से निरामिषाशी और घृताशी होकर उपयुक्त समय तक हरितालभस्म सेवन करने से अपची आरोग्य होती है। मात्रा—$\frac{१}{१०}$ रत्ती।

(२) ताम्रभस्म—मात्रा-२ रत्ती। अनुपान-अदरक रस और मधु।

(३) कांचनार गुग्गुलु—अनुपान-दशमूल का क्वाथ।

(४) स्वर्णभस्म—मात्रा-२ रत्ती। अनुपान-गुग्गुल और एरण्ड तेल।

मुक्ताभस्म उल्लिखित नियमानुसार सेवन करने पर भी अच्छा फल मिलता है।

(५) **माणिक्यरस**—हरिताल १ पल, गन्धक १ पल, मनःशिल आधा पल, पारद, सीसक, ताम्र, अभ्रक, लौह, प्रत्येक १ तोला लेकर एक साथ बड़ वृक्ष की दूध में मर्दन कर तीन दिन नीम के क्वाथ में भावना देकर धूप में सुखावे फिर उसके साथ गुरुच, सुगन्धवाला, हिन्ताल, आलकुशी, नीलझिन्टी, सहिजन, सुरामांसी, जीरा, निसिन्दा (निर्गुण्डी), करवी, प्रत्येक का चूर्ण आधा तोला मिलाकर एक दृढ़ सकोरे में बन्द कर गीली मिट्टी लगाये हुए कपड़े के टुकड़े द्वारा बाँध दे। सूख जाने पर दो प्रहर तक निर्धूम अग्नि में पाक करे। मात्रा-२ रत्ती। अनुपान-घी और मधु।

(६) महामृगाङ्क, राजमृगाङ्क, रत्नगर्भपोट्टली रस और प्रवाल योग आदि औषधें भी अपची रोग में अतिशय फलप्रद होती हैं। अनुपान-दूध और मधु।

महामृगाङ्क—स्वर्ण १ भाग, रससिन्दूर २, मुक्ता २, गन्धक ४, सोनामाखी ५, रौप्य ४, प्रवाल ७ और सोहागा की खई २ भाग एक साथ लेकर तीन दिन नीबू के रस में मर्दन कर गोला बनावे, फिर तेज धूप में सुखावे। फिर उस गोले को मूषारुद्ध करके लवण यंत्र में ४ प्रहर तक पकावे। ठण्डा होने पर

उसके साथ मिलित चूर्ण का १/६४ भाग हीरा (अभाव में १/१६ भाग वैक्रान्त) मिलाकर मर्दन कर ले। मात्रा–२ रत्ती।

राजमृगाङ्क—रससिन्दूर ३ तोला, स्वर्ण १ तोला, ताम्र १ तोला, शिलाजीत, हरिताल, गन्धक प्रत्येक २ तोला एकत्र घोट कर बड़े आकार की कुछ कौड़ियों के भीतर भर दें। बकरी के दूध में सोहागा को पीसकर उससे कौड़ी का मुख बन्द कर मिट्टी के हांडी में रखकर उसके ऊपर सकोरा रखकर मिट्टी का लेप कर दे। सूख जाने पर गजपुट में पाक करके चूर्ण कर ले।

रत्नगर्भपोट्टली रस—रससिन्दूर, हीरक, स्वर्ण, रौप्य, सीसक, लौह, ताम्र, मुक्ता, सोनामाखी, प्रवाल, शंखभस्म और तूतिया समान भाग में एकत्र कर ७ दिन तक चीतां के रस में मर्दन कर चूर्ण करके कौड़ी के भीतर रख दें। आकन्द (आक) के रस (लासा) से सोहागा पीसकर उससे कौड़ी का मुख बन्द कर, मिट्टी की हाडी मे रखकर यथाविधि मिट्टी लगा कर गजपुट मे पाक करे। ठण्ढा होने पर कौड़ी के साथ औषध चूर्ण करके यथाक्रम से ७ वार निसिन्दा (निर्गुण्डी) के रस में, ७ वार अदरक के रस में और २१ बार चीतामूल के रस मे भावना देकर ४ रत्ती परिमाण की गोली बनावे।

प्रवाल योग—निर्माण विधि मेरी लिखी हुई 'यक्ष्मा चिकित्सा' नामक पुस्तक में दी गयी है।

ग्रन्थि चिकित्सा

सन्धिस्थल में गोलाकार शोथ उत्पन्न होने पर उसे 'ग्रन्थि' कहते हैं।

चिकित्सा—

वातारिरस—निर्माणविधि गलगण्ड और गण्डमाला के अध्याय में द्रष्टव्य है। अनुपान–सोंठ और एरण्डमूल का क्वाथ अथवा दशमूल का क्वाथ।

योगराजगुग्गुलु—चीतामूल, पीपलीमूल, अजवाइन, कालाजीरा, विडङ्ग, वनअजवाइन, जीरा, देवदारु, चव्य, इलायची, सेंधानमक, रास्ना, गोखुरु, धनिया, त्रिफला, मोथा, त्रिकटु, गुडत्वक् (दालचीनी), खसखस, यवक्षार, तालिशपत्र और तेजपत्ता प्रत्येक समभाग, सर्व चूर्ण सम गुग्गुल। प्रथम घी के साथ गुग्गुल मर्दन करे बाद में चूर्ण मिलाकर फिर घी के साथ मर्दन करे। मात्रा–आधा तोला, अनुपान—रास्नापञ्चक का क्वाथ।

(३) **अमृतभल्लातक**—यथाविधि शोधित भल्लातक बीज ४ सेर और गुरुच ४ सेर कूट कर ६४ सेर जल में पकावे, जब १६ सेर रह जाय तब उतार ले। उक्त क्वाथ मे घृत २ सेर, दूध १६ सेर और चीनी २ सेर घोल कर धीमी अग्नि मे पाक करे। लेहवत् गाढ़ा होने पर चूल्हे से उतार कर उसमें बेल कच्चे की मज्जा शुष्क, अतीस, गुरुच, सोमराजी (वाकुची), चाकुन्दे बीज, नीम, हर्रा, वहेड़ा, आंवला, मंजिष्ठा, गोलमिर्च, सोंठ, पीपल, अजवाइन, सेंधानमक, मोथा, दारचीनी, इलायची, नागकेशर, खेतपापड़ा, तेजपत्ता, सुगन्धवाला, खसखस, सफेद चन्दन, गोक्षुरबीज, शटी (कचूर) और लाल चन्दन प्रत्येक का चूर्ण ४ तोला प्रक्षेप कर उसे चलावे। ठण्ढा होने पर २ सेर मधु मिलावे। मात्रा–२ तोला। अनुपान—चीनीका जल।

(३) **राजमृगाङ्क**—निर्माण विधि 'अपची' अध्याय में देखिये। अनुपान–अश्वगन्धा चूर्ण २ आना भर और गरम दूध।

(४) स्वर्णभस्म २ रत्ती मात्रा मे घी और मधु के साथ सेवन करे, इसके वाद दशमूल का क्वाथ पीवे। यह वातज ग्रन्थि की उत्कृष्ट औषध है।

पैत्तिकग्रन्थि—

(१) **प्रवालयोग**—पञ्चमूल के क्वाथ के साथ सेव्य है।

(२) **कांचनारगुग्गुलु**—निर्माणविधि गलगण्ड अध्याय मे द्रष्टव्य है। अनुपान—वरुण छाल का क्वाथ।

(३) **माणिक्य रस**—अनुपान–रक्तचन्दन और मुलहठी का क्वाथ।

(४) **राजमृगाङ्क रस**—निर्माण विधि 'अपची' अध्याय में द्रष्टव्य है। अनुपान—घी और मधु के बाद सेमर मूल का चूर्ण भक्षण करे।

(५) स्वर्णभस्म, मुक्ताभस्म अथवा चूनाभस्म पञ्चतिक्त घी के साथ सेवन करने पर भी अच्छा फल मिलता है।

श्लैष्मिक ग्रन्थि—

(१) **ताम्रभस्म**—मात्रा–१–२ रत्ती, अनुपान—अदरक रस और मधु।

(२) **स्वर्णभस्म**—अनुपान–निसिन्दा (निर्गुण्डी) पत्ते का रस और मधु।

(३) **महालक्ष्मीविलास**—अभ्रक ८ तोला, गन्धक, पारद, वङ्ग प्रत्येक २ तोला, रौप्य १ तोला, ताम्र ½ तोला, कपूर, जावित्री, जायफल, विद्धदक बीज,

धतूरे का वीज और स्वर्ण प्रत्येक १/२ तोला एक साथ पान के रस में मर्दन कर २ रत्ती की गोली वनावे। अनुपान–लहसुन का रस और मधु।

(४) **वृहत् सिंहनादगुग्गुलु**—हर्रा, आवला, बहेड़ा प्रत्येक ४ सेर, पोट्टलीवद्ध गुग्गुल १ सेर, जल ९६ सेर, शेष २४ सेर। गुग्गुलु वाहर निकाल कर ८ पल परिमित कटु तेल में पीस कर उक्त क्वाथ के साथ पाक करे। पाक के समय त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, विडङ्ग, देवदारु, गुरुच, चीताभूल, तेउड़ी (निसोथ), दन्तीमूल, चव्य, कोचई, मान, पारद और गन्धक प्रत्येक ४ तोला, जयपाल वीज १०००, इनको अच्छी तरह से चूर्ण कर उसमें डालकर अच्छी तरह मिलावे। मात्रा—१ आना से २ आना भर। अनुपान–दूध।

(५) **प्रवालयोग**—अनुपान–एरण्डमूल का रस या क्वाथ।

(६) **कांचनार गुग्गुलु**—अनुपान–दशमूल का क्वाथ।

(७) **रौद्ररस**—पारद, गन्धक १–१ भाग एकत्र पान के रस, कांटानट के रस, पुनर्नवा के रस, गोमूत्र और पीपल के क्वाथ में अलग–अलग मर्दन कर मूषा में वन्द कर लघुपुट में पाक करे। मात्रा–१ रत्ती। अनुपान–श्वेतपुनर्नवा का रस।

अर्बुद चिकित्सा

(१) **हरितालभस्म**—मात्रा–१/१६ रत्ती। अनुपान–गव्य घृत अथवा गुडूच्यादि (गुरुच, धनिया, मोथा, लालचन्दन, खसखस और सोंठ) क्वाथ।

(२) **ताम्रभस्म**—मात्रा–२ रत्ती। अनुपान–अदरक रस और मधु।

(३) **स्वर्ण और मुक्ताभस्म**—अनुपान–घृत और मधु।

(४) **प्रवालयोग**—अनुपान–अनन्तमूल का क्वाथ।

(५) **पारदभस्म**—२ रत्ती मात्रा में गव्य घृत के साथ सेवन कर महारास्नादि क्वाथ का अनुपान करे।

(६) **विजयपर्पटी**—भृङ्गराज रस में शोधित गन्धक (भृङ्गराज रस में ७ वार या ३ बार भावना देकर धूप में सुखाकर चूर्ण करे। इस प्रकार शोधित गन्धक) ८ तोला, पारद ४ तोला, चांदी २ तोला, स्वर्ण १ तोला, वैक्रान्त आधा तोला एकत्र मर्दन कर कज्जली करे। वाद में नियमानुसार पर्पटी तैयार करे। पर्पटी सेवनविधि के अनुसार मधु और दूध के साथ सेवन करे।

(७) **स्वर्णपर्पटो**—पारद ८ तोला, स्वर्ण १ तोला एकत्र अच्छी तरह मर्दन कर उसके साथ गन्धक ८ तोला मिलाकर लोहे के वर्त्तन में कज्जली तैयार करे। बाद मे यथाविधि पर्पटी बना कर पर्पटी विधि के अनुसार सेवन करे। २ रत्ती से आरम्भ कर मात्रा बढ़ानी चाहिये।

(८) **वातारिरस**—अनुपान-सोंठ और एरण्डमूल का क्वाथ।'

(९) राजमृगाङ्क रस, प्रवाल योग और हिरण्यगर्भपोट्टलीरस, पंचतिक्त घृत गुग्गुलु के अनुपान से सेवन करने पर अच्छा फल मिलता है।

हिरण्यगर्भपोट्टलीरस—पारद १ भाग, स्वर्ण २ भाग, मुक्ता ४ भाग, कांसा ६ भाग, गन्धक ३ भाग, कौड़ीभस्म और सोहागा पारद का चतुर्थांश। एक साथ नीबू के रस मे मर्दन कर पुटपाक करे। मात्रा-२ रत्ती।

(१०) **रौद्ररस**—समभाग मे गृहीत पारद और गन्धक की कज्जली वनाकर पान, कांटानट शाक, श्वेत पुनर्नवा रस, गोमूत्र और पीपल चूर्ण के साथ मर्दन कर लघुपुट में पाक कर ले। मात्रा-२ रत्ती। अनुपान-श्वेतपुनर्नवा का रस और मधु।

(१) **ताम्रभस्म**—मात्रा-२ रत्ती। अनुपान-अदरक रस और मधु।

(२) **वाडवाग्निरस**—मात्रा—२ रत्ती। अनुपान-अदरक रस या दशमूल का क्वाथ। निर्माण विधि गलगण्ड अध्याय में द्रष्टव्य है।

(३) **लोहारिष्ट**—सोलहगुना जल में सालसारादिगण का क्वाथ प्रस्तुत कर चतुर्थांश शेष रहने पर उतार कर छान ले एवं मधु मिश्रित कर रख दे। कुछ दिनो के वाद क्वाथ में जब बुलबुले उठने लगें तव उसमें पिप्पल्यादिगण का चूर्ण मिश्रित करे। बाद में एक घृताभ्यक्त भाण्ड के भीतरी भाग को मधु संयुक्त पीपल चूर्ण द्वारा प्रलिप्त कर उसके अन्दर उसे रखे। बाद में कान्तलोह के पतले पत्रों को खदिर लकड़ी की अग्नि मे तपा कर बार बार उसमें बुझावे। तत्पश्चात् उक्त पत्रों को भाण्ड के भीतर रखकर-भाण्ड के मुख को सकोरे से बन्द कर जौ की राशि के वीच में गाड़कर रखे। लोह के पत्रो के नष्ट हो जाने पर अरिष्ट को छान ले। यह उत्कृष्ट रसायन है।

(४) **शिलाजीत**—शिलाजीत १ तोला, बङ्ग १ तोला, कज्जली १ तोला एकत्र कर पान, सेमर का मूल, शतमूली (शतावरी), आँवला, कच्ची हल्दी और

भूमिकुष्माण्ड (विदारीकन्द) के रस में यथाक्रम से भावना देकर ४ रत्ती परिमाण की गोली बनावे। अनुपान—सालसारादिगण (साल, असन, खदिर, श्वेतखदिर, तमाल, सुपारी, भूर्जपत्र, मेढासिङ्गी, तिनिस, चन्दन, लालचन्दन, शिंशपा (सीसम), शिरीष, पियासाल, धव, अर्जुन, ताल, सागोन, करोंदा, डहर करोंदा, लतासाल, अगुरु, कालीय काष्ठ का क्वाथ)।

कुछ मुष्टियोग—साईवीज, मूलीवीज, शणवीज, जौ और सरसों इन सब द्रव्यों को खट्टी दही के साथ पीस कर प्रलेप लगाने से ग्रन्थि और गलगण्ड विलीन हो जाते हैं।

मूली और हल्दी का क्षार शङ्खचूर्ण के साथ मिलाकर प्रलेप देने से अर्बुद विनष्ट होता है।

सज्जीक्षार, मूली का क्षार और शंखचूर्ण एक साथ मिलाकर प्रलेप देने से ग्रन्थि और अर्बुद विलीन हो जाते है।

गन्धक, मैनशिल, सीसकभस्म और सोंठ चूर्ण समभाग एक साथ लेकर कृकलास (गिर्गिट) का रक्त मिलाकर प्रलेप देने से अर्बुद विनष्ट होता है।

केले के फूल का भस्म, भूसी और शंखचूर्ण, इनके समपरिमित चूर्ण के साथ कृकलास (गिर्गिट) का रक्त मिलाकर प्रलेप देने से अर्बुद नष्ट होता है।

हलदी, लोध, लालचन्दन, झूल (गृह धूम) और मनःशिला समभाग में लेकर मधु के साथ मर्दन कर प्रलेप करने से मेदोज अर्बुद विनष्ट होता है।

श्लीपद चिकित्सा

चक्रेश्वर रस—ताम्र, गन्धक १-१ भाग और पारद २ भाग एक साथ नटे शाग, पान, आकनादि (पाठा) लता और पुनर्नवा के रस एवं गोमूत्र के साथ ३ दिन मर्दन कर १ दिन चक्रयन्त्र मे पाक कर ले। खदिर और पद्मकाष्ठ का चूर्ण, गोमूत्र एवं मधु के अनुपान से यह चक्रेश्वर रस सेवन करने से दुःसाध्य श्लीपद आरोग्य होता है।

नीचे भाग में अग्नि, मध्य भाग में रस और वाहर की ओर वृहत् पुट वाले गड्ढे को चक्रयन्त्र कहते है।

नित्यानन्द रस—पारद, गन्धक, ताम्र, कांसा, वङ्ग, हरिताल, तूतिया, शङ्खभस्म, कौड़ीभस्म, त्रिकटु, त्रिफला, लोहा, विडङ्ग, पञ्चलवण, चव्य, पीपलामूल,

हबुषा (हाऊवेर), वच, शटी (कचूर), आकनादि (पाठा), देवदारु, इलायची, विद्धड़क, तेउड़ी (निसोथ) मूल, चीतामूल, दन्तीमूल, समभाग में एकत्र कर हरीतकी के क्वाथ में घोट कर ५ रत्ती की गोली बनावे और उसे शीतल जल के साथ सेवन करे।

कामदेव रस—पारद, गन्धक, ताम्र, काचमणि और सीसक प्रत्येक १ भाग, पीपल, तेउड़ी (निसोथ), सोंठ, धनिया और हर्रा प्रत्येक २ भाग, हींग, कोचई, जवाइन प्रत्येक $\frac{1}{8}$ भाग, एकत्र चूर्णकर आधे माशे की गोली बनावे। अनुपान—श्लैष्मिक श्लीपद में सोंठ और सेधानमक, वातिक श्लीपद में दही के साथ सेवन करे।

श्लीपदारिलोह—हर्रा, आंवला और बहेड़ा चूर्ण प्रत्येक ६ तोला, कान्त-लोह चूर्ण २ तोला, शिलाजीत २ तोला एकत्र लेकर त्रिफला के क्वाथ में भावना देकर ४ रत्ती की गोली तैयार करे। अनुपान–उष्ण जल।

बातरक्तान्तकरस—पारद, गन्धक, लौह, अभ्रक, हरिताल, मैनशिल, शिलाजीत, गुग्गुल, विडङ्ग, त्रिकटु, त्रिफला, पुनर्नवा, समुद्रफेन, चीता, देवदारु, दारुहल्दी, श्वेत अपराजिता सम परिमाण में एकत्र खरल कर ६ रत्ती मात्रा मे सेवन करे। अनुपान—घृत।

वातारिरस—निर्माण विधि गलगण्ड अध्याय में देखिये। अनुपान–सोंठ और एरण्डमूल का क्वाथ।

पर्पटीरस—१ भाग पारद और २ भाग गन्धक की कज्जली भीमराज के रस में मर्दन कर उसके साथ पारद का चौथाई भाग तांबा और लौहभस्म मिला कर लोहे के वर्त्तन मे पकावे; पाककाल मे लोहे की छड़ी से उसे बार बार हिलावे। बाद में पर्पटीनिर्माण बिधि के अनुसार पर्पटी प्रस्तुत करे। एवं चूर्ण कर निसिन्दा (निर्गुण्डी) के पत्ते के रस मे भावना देवे। तत्पश्चात् जयन्ती, त्रिफला, घृतकुमारी (घीकुवार), अरूसा, वामनहाटी (भारंगी), त्रिकटु, भृङ्गराज, चीता मूल और मुण्डिरी के रस मे ७ दिन भावना देकर अङ्गारागिन मे सुखा ले। मात्रा—४ रत्ती। एरण्ड तेल के साथ सेवन करे।

पारदभस्म—दो रत्ती मात्रा मे एरण्डमूल के रस के साथ सेवन करने से श्लीपद आरोग्य होता है।

कणादिचूर्ण—पीपल, वच, देवदारु, पुनर्नवा, वेल की छाल, प्रत्येक सम भाग, सर्वसम विद्धङ्क बीज, एकत्र चूर्ण कर २ रत्ती मात्रा में रससिन्दूर के साथ प्रयोग करने पर श्लीपद आरोग्य होता है।

चीतामूल, सफेद सरसों और सहिजन की छाल समभाग लेकर गोमूत्र के साथ पीसकर लेप देने पर श्लीपद दूर होता है।

वैंची वृक्ष की परगाछा का मूल घी के साथ पीसकर सेवन करने से एवं जंघे पर धारण करने से भी श्लीपद रोग आरोग्य होता है।

शाखोट (साखू) छाल का क्वाथ गोमूत्र के साथ पान करने से मेदोरोग और श्लीपद दूर होता है।

श्लीपदरोग में एरण्ड तेल से हर्रे को तल कर गोमूत्र के साथ सेवन करे। गुरुच का स्वरस या क्वाथ सरसों तेल के साथ सेवन करने से अच्छा फल मिलता है।

स्फुटित और दाहयुक्त श्लीपद में मैनफल, मोम, सामुद्रलवण समभाग, भैंस के मक्खन के साथ पीसकर प्रलेप लगावे।

नीवू वृक्ष की छाल और खदिर एक साथ पीसकर मधु और गोमूत्र के साथ सेवन करने पर भी विशेष उपकार होता है। मात्रा—१ तोला।

विद्रधि चिकित्सा

वातज विद्रधि—

कज्जलीयोग—२-१० रत्ती की मात्रा में कज्जली वरुणादिगण के क्वाथ या दशमूल के क्वाथ के साथ सेवन करे।

वातारिरस—निर्माण विधि गलगण्ड के अध्याय में देखिये। अनुपान—दशमूल का क्वाथ।

माणिक्यरस—अनुपान—गुरुच का रस और मधु।

पित्तज विद्रधिः—

शोधित हिङ्गुल—२ रत्ती की मात्रा में परवर के पत्ते का रस और मधु के साथ सेवन करे।

ताम्रभस्म—२ रत्ती की मात्रा में त्रिफला के क्वाथ के साथ सेवन करे।

कज्जलीयोग—२ से १० रत्ती की मात्रा मे हर्रा, आंवला, वहेड़ा, परवल का पत्ता, गुरुच, मुलहठी, कुटकी और अनन्तमूल के क्वाथ के साथ सेवन करे।

कफज विद्रधि—ताम्रभस्म-मात्रा-२ रत्ती। अनुपान-अदरक और तुलसी पत्ते का रस और मधु।

मकरध्वज—१ रत्ती की मात्रा में नीम के पत्ते के रस और मधु के साथ मर्दन कर सेवन करे।

महालक्ष्मीविलास—दशमूल पाचन के साथ सेवन करे। निर्माणविधि—अभ्रक ८ तोला, पारद, गन्धक, कपूर, जावित्री, जायफल, प्रत्येक ४ तोला, विद्धड़्क वीज, धतूरा वीज, भंग का वीज, भूमिकुष्माण्ड (विदारीकन्द) मूल, शतमूली (शतावर), गोरक्षचाकले मूल, बला मूल, गोक्षुरबीज, हिज्जल बीज प्रत्येक २ तोला-पान के रस मे मर्दन कर २ रत्ती की गोली तैयार करे।

शोधित दग्ध हरिताल—१ जौ की मात्रा मे त्रिफला के क्वाथ और गुग्गुलु के साथ सेवन करे।

सान्निपातिक विद्रधि—

हरिताल भस्म—मात्रा $\frac{१}{६}$ रत्ती। गव्यघृत के साथ सेवन कर मजिष्ठादि पाचन का अनुपान करे।

महालक्ष्मीविलास—दशमूल पाचन के साथ सेवन करे।

माणिक्यरस—घृत और मधु के साथ सेवन करके अमृतादि पाचन का अनुपान करे।

ताम्रभस्म—मात्रा-२ रत्ती। अनुपान—अदरक रस और मधु के साथ चाटकर वाद में कैथ आदि का क्वाथ अनुपान करे।

रक्तप्रकोपज विद्रधि—

शोधित दग्ध हरिताल—अनन्तमूल के क्वाथ के साथ सेवन करे।

माणिक्यरस—त्रिफला, अनन्तमूल, गुरुच, दारुहरिद्रा, परवल का पत्ता, हर्रा, कुटकी और चिरायता के क्वाथ के साथ सेवन करे।

ताम्रभस्म—अदरक रस और मधु के साथ सेवन दरे, बाद मे त्रिफला का क्वाथ अनुपान करे।

शोधित हिङ्गुल—२ रत्ती की मात्रा में परवल के पत्ते का रस और मधु के साथ सेवन कर वाद में अमृतादि पाचन अनुपान करे।

आर्त्तव विद्रधि—

(१) **वातारिरस**—निर्माण विधि गलगण्ड अधिकार में द्रष्टव्य है। अनुपान-देवदार्वादि (देवदारु, वच, कुड़ा, पीपल, सोंठ, चिरायता, मोथा, कैथ, कुटकी, धनिया, हर्रा, गजपीपल, कण्टकारी, गोक्षुर, दुरालभा (जवासा), बृहती (बड़ी कटेरी), गुरुच, आतइच (अतीस), काकड़ाश्रृङ्गी, कालाजीरा) क्वाथ में हींग और सेंधानमक मिलाकर सेवन करे।

रसपर्पटी—

रोग की वृद्धि अवस्था में—रसपर्पटी पीसा हुआ जीरा और मधु के अनुपान से सेवन करे।

रोग अधिक पुराना होने पर ही ताम्रपर्पटी पर्पटी सेवन विधि के अनुसार हिङ्गु और पिसे हुए जीरे के अनुपान से सेवन करे।

माणिक्यरस—घृत और मधु के अनुपान से सेवन करे। बाद में सूतिका दशमूल पाचन का अनुपान करे।

स्तनविद्रधि—

कज्जली—दशमूल क्वाथ के साथ सेवन करे।

शोधित हिङ्गुल—हल्दी आदि के क्वाथ के साथ सेवन करे। मात्रा-२ रत्ती।

माणिक्यरस—वचादि के क्वाथ के साथ सेवन करे। मात्रा-२ रत्ती।

मकरध्वज—१ रत्ती। गुरुच, परवल का पत्ता, नीम की छाल, अनन्तमूल और लालचन्दन के क्वाथ के साथ सेवन करे।

अन्तर्विद्रधि-चिकित्सा

शरीर के विभिन्न अङ्गो में होने वाली अन्तर्विद्रधि रोग की चिकित्सा प्रणाली-

गुह्य अन्तर्विद्रधि—

आदित्यरस—मात्रा १ से २ रत्ती तक। अनुपान-अदरक रस और मधु। निर्माण विधि रसचिकित्सा के द्वितीय खण्ड में देखिये।

रसपर्पटी—हींग और पिसे हुए जीरे के साथ सेवन करे।

माणिक्यरस—एरण्डमूल के रस और मधु के साथ सेवन करे।

वातारिरस—सोंठ और एरण्डमूल के क्वाथ के साथ सेवन करे। निर्माण विधि गलगण्ड अधिकार में देखिये।

ताम्रभस्म—२ रत्ती की मात्रा में लेकर पुनर्नवा, देवदारु, सोंठ और दशमूल के पाचन में गुग्गुलु का प्रक्षेप देकर उसके साथ सेवन करे। एरण्डतैल के अनुपान से भी सेवन किया जा सकता है।

वस्तिदेश में अन्तर्विद्रधि—

रसतालक—एक उत्कृष्ट और परीक्षित औषध है। अनुपान—तृणपञ्चमूल का क्वाथ। निर्माण विधि-शोधित पारद, गन्धक, हरिताल और लाल दारमूज (लाल संखिया) एक साथ अच्छी तरह से मर्दन कर एक काच की कूपी के भीतर रख कर रससिन्दूर के पकाने की विधि के अनुसार बालुकायन्त्र में ४ प्रहर पाक करे। वोतल के तलदेश मे जमे हुए रसतालक को निकाल कर व्यवहार करना चाहिये। मात्रा-१ रत्ती।

कज्जलीयोग—शतावर्यादि के क्वाथ के साथ सेवन करे।

रौद्ररस—निर्माणविधि अर्बुद अध्याय में देखिये। हरीतक्यादि के कषाय के साथ सेवन करे।

नाभि में अन्तर्विद्रधि—

(१) **ताम्रभस्म**—२ रत्ती, हींग १ रत्ती, अदरक रस और मधु के साथ सेवन करे।

(२) **रसपर्पटी**—उपयुक्त मात्रा में पर्पटी सेवन की विधि के अनुसार पिसा हुआ जीरा और मधु के साथ मर्दन कर सेवन करे।

कुक्षि में अन्तर्विद्रधि—

वातारिरस—एरण्ड मूल के रस के साथ सेवन करे। निर्माणविधि गलगण्ड अधिकार में देखिये।

ताम्रभस्म—मात्रा-२ रत्ती। अनुपान—सहिजन की छाल का रस और हींग।

वृहत् वातचिन्तामणि—स्वर्ण ३ भाग, रौप्य २ भाग, अभ्रक २ भाग, लोह ५ भाग, प्रवाल ३ भाग, मुक्ता ३ भाग, रससिन्दूर ७ भाग एकत्र घृतकुमारी के रस में मर्दन कर २ रत्ती की गोली वनावे। अनुपान—दशमूल का क्वाथ।

वंक्षण (कुचकी) में अन्तर्विद्रधि—

वातारिरस—सोंठ और एरण्डमूल के क्वाथ के साथ सेवन करे। निर्माण-विधि गलगण्ड अधिकार मे देखिये।

वातगजेन्द्रसिंह—दशमूल के क्वाथ के साथ सेवन करे। निर्माणविधि-अभ्रक, लोह, रस, गन्धक, ताम्र, सीसा, सोहागा, विष, सेंधानमक, लौंग, हिंगु और जायफल प्रत्येक १ तोला, गुडत्वक् (दालचीनी), तेजपत्ता, इलायची, त्रिफला और जीरा प्रत्येक आधा तोला एकत्र घृतकुमारी के रस में मर्दनकर २ रत्ती की गोली बनावे।

माणिक्यरस—लघु पञ्चमूल, वृहत् पंचमूल, सोंठ, पुनर्नवा और देवदारु के क्वाथ के साथ सेवन करे।

वृक्क में अन्तर्विद्रधि—

पाषाणभेदीरस—पारद १ भाग, गन्धक २ भाग, एकत्र बकफूल के पत्ते, सफेद पुनर्नवा, अरूसा और सफेद अपराजिता प्रत्येक के रसों में ३ दिन तक मर्दनकर सुखा ले। फिर मूषारुद्ध कर इसे पकावे। मात्रा—२ रत्ती। कुड़ा, गोक्षुर, वरुणछाल और एरण्डमूल के क्वाथ के साथ सेवन करे।

रसतालक—१ जौ मात्रा में दशमूल के क्वाथ के साथ सेवन करे।

ताम्रभस्म—२ रत्ती मात्रा मे सहिजन छाल के रस के साथ सेवन करे।

रौद्ररस—निर्माणविधि अर्वुद अधिकार में देखिये। पुनर्नवा के रस के साथ सेवन करे।

प्लीहा में अन्तर्विद्रधि—

रसपर्पटी—पिसा हुआ जीरा, हींग के साथ यथाविधि सेवन करे।

ताम्रपर्पटी—निर्माण विधि रस चिकित्सा के द्वितीय खण्ड में देखिये। हीग और पिसे हुए जीरे के साथ सेवन करे।

हरितालभस्म—निर्माण विधि रस चिकित्सा के प्रथम खण्ड में देखिये। अदरक रस और गरम गव्य घृत के अनुपान से १/१६ रत्ती मात्रा में प्रयोग करे।

रौद्ररस—सफेद पुनर्नवा के रस और मधु के साथ प्रयोग करे।

हृदय में अन्तर्विद्रधि—

नागार्जुनाभ्र—अनुपान-वेदाना का रस और मधु।

सहस्रपुटित वज्राभ्र क्रमशः ७ दिन अर्जुन की छाल के क्वाथ के साथ मर्दनकर छाया मे सुखाकर २ रत्ती की गोली वनावे।

हरिताल भस्म—$\frac{1}{16}$ रत्ती। अनुपान-गव्य घृत।

प्रभाकर वटिका—सोनामाखी, लौह, अभ्रक, वंशलोचन, शिलालीत प्रत्येक समभाग, अर्जुन छाल के क्वाथ में भावना देकर ४ रत्ती की गोली वनावे और छाया मे सुखावे। अनुपान-आंवले का रस।

वातारिरस—निर्माण विधि गलगण्ड अध्याय में देखिये। अनुपान-दशमूल का क्वाथ।

महाकालेश्वर—लोह, वङ्ग, ताम्र, अभ्रक, पारद, गन्धक, सोनामाखी, हिंगुल, विष, जायफल, लौंग, गुडत्वक् (दालचीनी), इलायची, नागेश्वर, धतूरे का बीज और जयपाल बीज प्रत्येक १ तोला, गोलमिर्च ३ तोला, भंग की पत्ती के रस में २१ वार लोह दण्ड द्वारा मर्दन कर १ रत्ती की गोली वनावे। अनुपान-अर्जुन छाल का रस।

रौद्ररस—अनुपान-सहिजन छाल का रस। निर्माण विधि अगले प्रकरण में देखिये।

यकृत में अन्तर्विद्रधि—

सोमनाथ ताम्र—निर्माण विधि रस चिकित्सा के प्रथम खण्ड मे देखिये। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान-अदरक रस और मधु।

हरिताल भस्म—$\frac{1}{16}$ रत्ती, अनुपान-गव्य घृत।

रसतालक—मात्रा—१ जौ। अनुपान—सफेद पुनर्नवा का रस और मधु।

कृष्णचतुर्मुख—पारद, गन्धक, लोह, अभ्रक प्रत्येक १ तोला, सोना २ माशा, घृतकुमारी के रस मे मर्दन कर एरण्ड के पत्ते मे लपेट कर ३ दिन धान्यराशि के भीतर गाड़ कर रखे। बाद में बाहर निकाल कर २ रत्ती की गोली वनावे। अनुपान-वहेड़ा चूर्ण और मधु।

हिंगुलयोग—२ रत्ती मात्रा में शोधित हिंगुल कूलेखाड़ा (तालमखाना) के रस और मधु के साथ सेवन करे।

कुष्ठरोग (कोढ) चिकित्सा

प्रथम दोष के प्रकोप के अनुसार वातोल्वण कुष्ठ मे घृतपान, श्लेष्मोल्वण कुष्ठ में वमन, पित्तोल्वण कुष्ठ में प्रलेप, परिषेक और रक्तमोक्षण आदि क्रियाओं की व्यवस्था कर लगातार चिकित्सा का अवलम्बन करना चाहिए।

कुष्ठरोग में रस प्रयोग—

(१) **सर्वेश्वर**—अभ्रक, ताम्र और गन्धक प्रत्येक ८ तोला, लोह और पारद प्रत्येक २ तोला, सीज की लेई, आकन्द (आक) की लेई, एरण्डमूल, जमीरी नीवू और खसखस के रस या क्वाथ से मर्दन कर वालुकायन्त्र मे ३ दिन पाक कर उसके साथ पीपल चूर्ण २ तोला और मीठा विष ८ माशा मिश्रित करे। मात्रा—१ रत्ती। यह स्पर्श ज्ञानरहित कुष्ठ मे उपकारी है।

(२) **सुप्तान्तकरस**—समपरिमित पारद और गन्धक की कज्जली २ भाग, सरसों तेल में सिद्ध और जारित ताम्र १ भाग एकत्र कर उसमें सोंठ, गोलमिर्च, पीपल, भेलवा, विडङ्ग, वच, हर्रा और मीठाविष प्रत्येक १ भाग मिश्रित कर भेलवा के रस के साथ मर्दन करे और मधु मिलाकर २ रत्ती मात्रा में व्यवहार करे। इससे दीर्घकालोत्पन्न सुप्त कुष्ठ आरोग्य होता है।

(३) **प्रतापलंकेश्वर**—समपरिमाण में पारद, गन्धक सोहागा, ताम्र, कुडा, लोह और पीपलचूर्ण एकत्र कांचन (धतूरा) के पत्ते के साथ मर्दन कर २ रत्ती परिमाण की गोली वनावे। इससे विपादिका नामक कुष्ठ आरोग्य होता है।

(४) **तालेश्वर**—हरिताल २ पल, पारद और गन्धक प्रत्येक आधा पल, ताम्रभस्म और लौहभस्म प्रत्येक आधा पल, एकत्र कर सुषुनिशाक के रस के साथ पीस कर फिर आँवले के रस, सुषुनिरस, पुनर्नवारस और चीता के पत्ते के रस के साथ ५ वार मर्दन कर मूषारुद्ध कर भूधरयन्त्र में पाक करे।

एक रत्ती की मात्रा में यह औषध घी के साथ सेवन करने पर सव प्रकार के कुष्ठरोग दूर हो जाते हैं।

(५) **महातालेश्वर**—लोह ४ भाग, रससिन्दूर ६ भाग, गन्धक जारित ताम्र ८ भाग, एकत्र जामुन के रस में मर्दन कर गजपुट में पकाकर ½ भाग मीठा विष मिलाकर १ माशे की मात्रा में व्यवहार करे। वमन-विरेचनादि द्वारा देह

संशोधन कर इस औषध को त्रिकटुचूर्ण या घी और मधु के साथ सेवन करना चाहिए।

(६) **कनकसुन्दररस**—स्वर्णभस्म १ भाग, ताम्रभस्म १ भाग और गन्धक २ भाग एकत्र मर्दन कर गोली बनावे, फिर गजपुट में पाक करे। तत्पश्चात् उसके साथ सोंठ, पीपल, गोलमिर्च, भेलवा, विडङ्ग, पारद, कुकरोंधा, देवदारु प्रत्येक १ भाग एवं मीठा विष आधा भाग मिलाकर बकरी के मूत्र में मर्दन कर १ रत्ती मात्रा की गोली निर्माण करे। घी और गोलमिर्च के चूर्ण के साथ इसे व्यवहार करना चाहिए। वातश्लेष्म प्रधान कुष्ठ और चर्मरोग में यह विशेष कार्यकारी होता है।

(७) **विश्वहितरस**—रस और गन्धक के संयोग से जारित ताम्र, लाख, हरिताल प्रत्येक १ पल तीन दिवस मर्दन करके रोगी के बलानुसार ३ से ६ रत्ती मात्रा में घी और गोलमिर्च के चूर्ण के साथ प्रयोग करे।

(८) **कुष्ठकुठाररस**—सम परिमाण पारद और गन्धक की कज्जली ४ तोला, रक्तचन्दन और कूंचमूल के रस में भावना दे। तत्पश्चात् उसके साथ वच, आंवला, पीपल, सरसों, विडङ्ग प्रत्येक २ तोला, मीठाविष आधा तोला, सफेद जीरा १ तोला, ताम्र ४ तोला, सोंठ ४ तोला मिलाकर भृङ्गराज रस के साथ स्निग्ध हण्डी में पाक करे। पाक समाप्त हो जाने पर उसमें कुडा, सोठ, भेलवा, हर्रा, आंवला, बहेड़ा और सेंधा नमक का प्रक्षेप देकर चने के आकार की गोली बनावे। इसके प्रयोग से सब प्रकार के कुष्ठ विनष्ट होते हैं।

(९) **वज्रशेखर रस**—१ भाग पारद, २ भाग गन्धक की कज्जली, अपराजिता, मूर्वा, गन्धनाकुली, शंखपुष्पी, गोजिया, स्वर्णक्षीरी, नीलवृक्ष, पलास, रुदन्ती, अम्लवेतस और काकमाची के रस में मर्दन कर भूसी और गोबर के कण्डे की अग्नि में पर्पटी की तरह पाक करे। तत्पश्चात् उसके साथ २ भाग अभ्रभस्म और $\frac{1}{4}$ भाग स्वर्णमाक्षिक मिश्रित कर शतमूली (शतावर), मुण्डिरी, हस्तिकर्णपलाश, गिलोय, विछुटी, मूर्वा और भूमिकुष्माण्ड (विदारीकन्द) के रस के साथ मर्दन कर उसमें घी मिला दे। उसके बाद उसे दशमूल के क्वाथ के साथ अवलेह की भांति पाक करे। पाक समाप्त होने पर उसमें पारद के बराबर इलायची, तेजपत्ता, दारुचीनी, भेलवा, सोंठ, पीपर, गोलमिर्च और मुलेठी का

चूर्ण प्रक्षेप देकर स्निग्ध भाण्ड में रख दें। वमन-विरेचनादि द्वारा शुद्ध होकर मंजिष्ठादि क्वाथ के साथ इसे १ माशे की मात्रा में सेवन करना चाहिए।

(१०) **नागार्जुनगुडिका**—पारद, गन्धक, स्वर्णमाक्षिक, हरिताल, कान्त-लौह, कृष्णाभ्र, हिंगुल, मुलेठी, कुड़ा समभाग में एकत्र कर अम्लवेतस रस के साथ ३ दिन मर्दन कर उसे सुखा कर फिर घी और मधु के साथ ३ दिन मर्दन करे। वाद में समपरिमित पुराने गुड़ के साथ मर्दन कर वेर की गुठली की तरह गोली वनावे और छाया में सुखा दे। दद्रु, विचर्चिका और अन्यान्य सव प्रकार के कुष्ठ इसके द्वारा दूर होते हैं।

(११) **माणिक्यतिलक रस**—पारद, गन्धक, स्वर्णमाक्षिक, हरिताल, कान्तलोह, तीक्ष्णलोह, अभ्रक, हिंगुल, मुलेठी और कुड़ा समभाग एकत्र कर शतमूली (शतावर) के रस और मंजिष्ठादि गण के क्वाथ में ३ दिन मर्दन कर सुखा ले। उसके वाद उसे मूषा में रख कर २ दिन वालुका यन्त्र में पाक करे। यह कुष्ठ रोग की उत्कृष्ट औषध है।

(१२) **परहित रस**—श्वेत आकनादि (पाठा), श्वेत अपराजिता और श्वेत पुनर्नवा इनके मूल एक साथ पीस कर उसके द्वारा मूषा प्रस्तुत करे। एक हांडी के भीतर यह मूषा स्थापित कर उसमें शोधित पारद रख दे। फिर उसके ऊपर दो अंजलि परिमाण नमक चूर्ण वैठा कर हाण्डी को अच्छी तरह से वन्द कर ढकना लगा दे। ढक्कन के ऊपर पानी रख कर ३ प्रहर तक उसे गरम करे। मूषा के वीच में रखा हुआ पारद भस्म न होने पर फिर उपर्युक्त विधान से पुटपाक करे। इसके वाद पारदभस्म के साथ अतीस, मीठाविष, सोंठ, पीपल, विडङ्ग, गोलमिर्च, मैनसिल और गन्धक १२ तोला, पुराना गुड़ ३२ तोला मिला कर १२ रत्ती (वर्तमान समय में विहित मात्रा ६ रत्ती) मात्रा में प्रयोग करे।

(१३) **तालकेश्वर रस**—पारद, सीसक १-१ भाग, हरिताल २ भाग, पहले सीसक और पारद एक साथ मर्दन कर उनके साथ हरिताल मर्दन करे। १६ भाग गोमूत्र के साथ हरिताल भाण्ड में रुद्ध कर दीपाग्नि की ज्वाला में रखे। इस प्रकार के शोधित हरिताल को ग्रहण करें। उसके वाद इन ३ द्रव्यों को क्रमानुसार ३ दिन नीवू के रस, दो वार घृतकुमारी के रस, भृङ्गराज के रस और जिमीकन्द के रस के साथ मर्दन कर सुखा लें।

साधारणतः ९ रत्ती (आजकल ४ रत्ती व्यवहार की जाती है) मात्रा में अदरक रस के साथ इसे सेवन करे। त्वक् का स्पर्शज्ञानाभाव, मण्डलाकृति चिह्न आदि इसके द्वारा दूर होते हैं। अधिक शुद्धता के लिये गाय के दूध और चीनी के साथ प्रयोग करे। इसके सिवाय निम्नलिखित अनुपानो के साथ इस तालकेश्वर रस का सब प्रकार के कुष्ठरोगों में प्रयोग किया जा सकता है।

उदुम्बर कुष्ठ में—चीनी और मधु के साथ। पथ्य-मूंग का यूष और घी के साथ अन्न।

काले रंग के कुष्ठ में—त्रिफला क्वाथ के साथ औषध सेवन के बाद नीम अथवा अड़हुर के पंचाग का क्वाथ सेवन करना चाहिए। पथ्य-घी के साथ अन्न।

गजचर्मकुष्ठ में—सिध्म और विचर्चिका, विसर्प, दद्रु और स्फोटक मे गुड़ और अदरक रस के साथ।

साधारणतः इस औषध के सेवन के बाद ३ भाग चीनी और १ भाग आंवले चूर्ण का सेवन एवं मूंग का यूष और घृत मिश्रित अन्न भोजन प्रशस्त है। इसके सेवन के समय दही और मांस नही खाना चाहिए।

(१४) **खगेश्वर रस**—पारद, गन्धक, अभ्रक प्रत्येक एक पल एकत्र अर्जुनछाल के रस के साथ मर्दन कर गोला बनाकर सूख जाने पर मूषारुद्ध करे। उसके वाद उसे एक दृढ़ भाण्ड मे रुद्ध कर डेढ़ दिन तक पकावे। इस औषध की मात्रा-२ रत्ती। इसे कुटजरस के साथ सेवन करने पर सफेद कुष्ठ, घी के साथ सेवन करने पर पित्तज कुष्ठ विनष्ट होते हैं। दोष का विचार कर पथ्य ठीक करे।

(१५) **कुष्टनाशकरस**—पारदभस्म ८ माशा, गन्धक ४ पल, चीतामूल ४½ पल, सोमराजी (वाकुची) वीज चूर्ण २४ पल, गोलमिर्च चूर्ण १२ पल एक साथ मिलाकर ८ माशा की मात्रा मे मधु के साथ प्रातःकाल सेवन करे।

(१६) **आरोग्यवर्द्धनी वटिका**—पारद, गन्धक, लौह, अभ्रक और तावा प्रत्येक समभाग, हर्रा, आँवला और वहेड़ा प्रत्येक २ भाग, शिलाजीत ३ भाग, शोधित गुग्गुल ४ भाग, चीतामूल ४ भाग एवं इन सबो के बराबर कुटकी, इन सव द्रव्यों को चूर्ण कर एक साथ नीम पत्ते के रस में दो दिन तक मर्दन कर वडे वेर की तरह गोली तैयार करे। मण्डल कुष्ठ मे यह सवसे अधिक उपयोगी है।

(१७) **नारायण रस**—पारदभस्म, गन्धक, गुग्गुलु, आंवला, हर्रा और बहेड़ा प्रत्येक सम भाग एकत्र कर एरण्डतेल के साथ मिलाकर एक तोले की मात्रा में सेवन करे। श्लेष्मज कुष्ठ नाश करने में यह अधिक उपयोगी है।

(१८) **मेदिनीसार रस**—लोह और ताम्र प्रत्येक तीन पल, एकत्र कर भृङ्गराज के रस, गोमूत्र और त्रिफला के क्वाथ के साथ पृथक् भाव से मर्दन कर तीन वार पुटपाक करे। उसके वाद कांजी के साथ ४ प्रहर (१२ घण्टा) तक पाक कर समपरिमित गन्धक के साथ मर्दन कर बीस वार पुटपाक के नियम से पाक करे। पाक समाप्त होने पर उसके साथ पारदभस्म १ पल, मीठाविष ११ पल (१ पल उचित है) और इनके वरावर त्रिकटु चूर्ण मिश्रित करे। घृत और त्रिकटु चूर्ण के अनुपान के साथ इसका सव प्रकार के कुष्ठ रोग मे प्रयोग किया जा सकता है।

(१९) **धन्वन्तरि रस**—पारद, गन्धक, ताम्र, सोहागा, कंकुष्ठमृत्तिका, रक्तचन्दन और पीपल समभाग, एकत्र कर नीवू के रस के साथ एक दिन मर्दन कर सुखावे। यथायोग्य अनुपान के साथ प्रयोग करे। मात्रा-४ रत्ती।

(२०) **वज्रधार रस**—पारदभस्म, हीरकभस्म, अभ्रकभस्म और स्वर्ण भस्म प्रत्येक समभाग, हरिताल सर्व समान। इन सव द्रव्यो को सहिजन और धतूरे के रस एवं सिज (सेहुड़) के दूध या आकन्द (आक) के दूध के साथ एक दिन भावित करके सोमराजी (वाकुची) बीज के तेल द्वारा एक सप्ताह तक भावित करे। १ माशे की मात्रा मे (व्यवहार्य ४ रत्ती) तालमूली, वाकुची वीज और निसिन्दा (निर्गुण्डी) मूल के चूर्ण, घी और मधु के अनुपान के साथ सेवन करे।

(२१) **माणिक्य रस**—निर्माण विधि-अपची अध्याय में द्रष्टव्य है।

(२२) **महातालेश्वर रस**—दूसरी विधि-हरिताल, स्वर्णमाक्षिक, मैनशिल, पारद, सेंधानमक, सोहागा समभाग, गन्धक, ताम्र प्रत्येक दो भाग, एकत्र कर नीवू रस में ५ दिन मर्दन कर ६ वार भूधरयन्त्र में पुटपाक करे। प्रत्येक पुट में ही ५ दिन तक नीवू रस के साथ मर्दन करना चाहिए। पाक समाप्त होने पर यह पुटपक्क औषध ६ पल, ताम्र २ पल, लोह ४ पल, एकत्र कर नीवू के रस में एक दिन मर्दन कर लघुपुट में पाक करे। वाकुची वीज चूर्ण, मधु और घी के साथ इसे एक माशे की मात्रा में सेवन करे।

(२३) **कुष्ठान्तपर्पटी**—पारद १ पल, गन्धक २ तोला, ताम्बा २ तोला, मीठाविष २ तोला एवं सर्वसमान गन्धक एकत्र खरल कर थोड़ा सुखाकर घृताभ्यक्त लोहपात्र में उसे द्रवीभूत करे। फिर उसे केले के पत्ते पर ढाल कर केले के पत्ते में सानी हुई मिट्टी के दबाव से पर्पटी प्रस्तुत करे। गजचर्म कुष्ठ में इसे ४ रत्ती मात्रा में सोमराजी (वाकुची) चूर्ण के साथ सेवन करना चाहिए।

(२४) **कासीसवद्धरस**—पारद ५ पल, हीराकस ५ पल, एकत्र कर अर्जुन छाल के रस मे एक प्रहर मर्दन कर सकोरे के पुट में पाक करे। दद्रु और किलास रोग मे ३ रत्ती मात्रा में सोमराजी (वाकुची) चूर्ण और मधु के साथ मर्दन कर सेवन करे।

(२५) **सर्वेश्वररस**—पारद १ भाग, गन्धक ४ भाग, एक प्रहर तक खरल में मर्दन कर उसके साथ अभ्रक, लोहा, ताम्र, हिंगुल प्रत्येक १ पल, सोना और चांदी प्रत्येक ४ माशा, हीरक १ माशा, हरिताल सत्त्व २ पल एकत्र कर मिश्रित करे। वाद में नीबू का रस, अड्सा का रस, सीज (सेहुड़) का दूध, आकन्द (आक) का दूध, विषमुष्टि (कुचला) का रस, करवी का रस, इनके साथ पृथक्-पृथक् १-१ दिन मर्दन करे। बाद मे गोलक तैयार कर कपड़े द्वारा लपेट कर वालुकायन्त्र मे धीमी अग्नि से ३ दिन तक पकावे। औषध बाहर निकाल कर और वारीक चूर्ण कर उसके साथ मीठाविष १ पल और पीपल चूर्ण २ पल मिश्रित करे। २ रत्ती मात्रा मे सोमराजी (वाकुची) बीज चूर्ण, देवदारु और एरण्ड तेल के साथ व्यवहार्य है। इससे स्पर्शज्ञानराहित्य और मण्डल कुष्ठ निवृत्त होते है।

(२६) **शिवत्रारि**—हीराकस, पारद और गन्धक समभाग लेकर एक साथ तुलसी के पत्तों के रस के साथ मर्दन करे। नीचे और ऊपर आमरुल (चाङ्गेरी) शाक देकर सकोरे मे वन्द कर पुटपाक कर चूर्ण करे। श्वित्रकुष्ठ रोग मे यह औषध ८ चावल के परिमाण से सेवन करना आरम्भ कर क्रमशः १-१ चावल कर मात्रा-वढ़ा कर अवस्था भेद से ६५ चावल तक वढ़ाना चाहिए। अनुपान—घी और मधु।

(२७) **चन्द्रप्रभावटी**—पारद १ भाग, गन्धक २ भाग, ताम्र ३ भाग, एकत्र मर्दन कर सोमराजी (वाकुची) और नीम छाल के क्वाथ मे भावना दे।

वाद उसे पुटपक्क कर २ रत्ती मात्रा में सोमराजी (वाकुची) के अनुपान के साथ सेवन करने से किलास, अरुण और श्वित्र रोग नष्ट होते हैं।

(२८) **उदयादित्य रस**—पारद १ भाग, गन्धक २ भाग, एकत्र कर घृतकुमारी के रस से मर्दन कर पिण्ड बनावे। इसके बाद उसे हाण्डी के भीतर रख कर पारद के दुगुने लम्बाई वाले ताम्रपत्र द्वारा ढक दे। आच्छादन पत्र के मिलने वाले जगह को बन्द कर उसके चारो ओर भस्म लगा दे। इसके वाद उसके ऊपर गोबर का जल थोड़ा-थोड़ा कर डालकर तीव्र अग्नि में दो प्रहर तक पाक करे। शीतल होने पर समस्त औषध को अच्छी तरह से चूर्ण कर उसके साथ काकडुमर, चीतामूल, आंवला, हर्रा, बहेड़ा, सोदाल, विडङ्ग और सोमराजी (वाकुची) बीज के क्काथ द्वारा एक-एक दिन भावना दे। इसकी मात्रा-२ रत्ती। इसके सेवन के बाद निम्नलिखित अनुपान करे। यथा-खदिर का क्काथ और सोमराजी बीज चूर्ण सम भाग एकत्र कर मृदु अग्नि से पाक कर पिण्ड बनावे। यह पिण्ड १२ माशा मात्रा में त्रिफला के क्काथ के साथ मिश्रित कर अनुपान करे। इस विधि के अनुसार उदयादित्यरस सेवन करने से तीन दिन या एक सप्ताह बाद ही बदन में स्फोटक उत्पन्न होगा। स्फोटक की शान्ति के लिये नील वृक्ष, गुञ्जा, हीराकस, धतूरा, गोयले लता, हुड़हुड़ और मंजिष्ठाको समभाग में पीस कर प्रलेप दे। उपर्युक्त प्रलेप को ७ या इससे कुछ अधिक दिन व्यवहार करने पर स्फोटक नष्ट हो जायेंगे। साध्य-असाध्य सव प्रकार के श्वित्र इसके द्वारा विनष्ट होते हैं।

(२९) **श्वेतारिरस**—पारद एक पल और गन्धक एक पल एकत्र कज्जली करके भूधरयन्त्र में पाक करे। गन्धक जीर्ण होने पर वह पारद १ पल एवं गन्धक २ पल एक साथ मिश्रित कर नीबू के रस, सोमराजी के क्वाथ, चीता मूल के क्वाथ, भृंगराज के रस, बेर की छाल का क्वाथ और इमली के जल प्रत्येक इन सब द्रवों के साथ एक-एक दिन मर्दन करे। इसके वाद उसे कांच की चिमनी के भीतर रख कर रेती भरे हुए भाण्ड में स्थापन करे एवं दो प्रहर तक पाक करे।

इसकी मात्रा—२ रत्ती, काले पान के साथ प्रयोग करे। अनुपानार्थ दही के साथ पलाशमूल की व्यवस्था करे। औषध सेवन के फल से रोगी गरम

अनुभव करने पर शरीर में तेल मालिश करे। इससे स्फोटक उत्पन्न होने पर त्रिफला, गन्धक, भृङ्गराज, कृष्णतिल तैल, कडवी कद्दू, भल्लातक तेल और नीम बीज, समभाग में लेकर २१ बार भृङ्गराज के रस मे भावना देकर ४ तोले की मात्रा में घी और चीनी के साथ प्रातः सेवन करे।

इस औषध के सेवनकाल में जमीकन्द, उड़द, मांस, बैगन, मूंग और कषाय द्रव्य का परित्याग करे।

कुष्ठरोग में प्रयोज्य अनुपान—गिलोय का स्वरस, कच्ची हलदी का रस, निसोथ चूर्ण संयुक्त त्रिफला का क्वाथ। अरूसा मूल, वच, परवल मूल, नीम छाल और प्रियङ्गु की छाल का क्वाथ। मञ्जिष्ठादि गण का क्वाथ। कालकासुन्दर का रस, नीमछाल का क्वाथ या पञ्चनिम्ब का क्वाथ। गोमूत्र और हल्दीचूर्ण, विडङ्ग चूर्ण, सोमराजीबीजचूर्ण, नीम पत्ते का चूर्ण, खदिरसार, दारुहरिद्रा, गुरुच, कुटकी, सोंदाल, आकनादि (पाठा), सोमराजी (वाकुची) बीज इनके क्वाथ। चीतामूल, कृष्णवेत, शोधित भल्लातक, सप्तपर्ण (छतिवन) छाल का क्वाथ। चिरायता और अनन्तमूल का क्वाथ आदि।

कुष्ठ रोग की चिकित्सा के लिये विभिन्न योगावली—

वातजकुष्ठ में—काले अभ्रक अथवा तांबे का पिण्ड गन्धक के साथ पाक कर रोग के प्रकोप और रोगी के बल के अनुसार यथाविधि प्रयोग करने पर वातज कुष्ठ का उपशम होता है। साधारणतः अभ्रक की मात्रा—१ रत्ती और तांबे की मात्रा—२ रत्ती।

पित्तजकुष्ठ में—काले अभ्रक का गोलक घी और गन्धक के साथ पाक कर उसके साथ सोंठ, पीपल, गोलमिर्च, भेलवा, विडङ्ग, दारुचीनी, मोथा, सोन्दाल और मीठाविप प्रत्येक एक भाग, जीरा का चूर्ण २ भाग, जारित स्वर्ण ५ भाग मिश्रित कर वकरी के मूत्र से मर्दन करे। फिर वेर की गुठली की तरह गोली बनाकर एकादिक्रम से २१ दिन तक सेवन करने पर पित्तज कुष्ठ मे विशेष उपकार होता है।

श्लेष्मजकुष्ठ में—स्वर्ण और अभ्रक का पिण्ड तेल और गन्धक के साथ पाक कर उसके साथ मीठा विप, सोठ, पीपल, गोलमिर्च, मोथा, विडङ्ग और दारचीनी प्रत्येक १ भाग और चीतामूल २ भाग मिश्रित कर वकरी के मूत्र के साथ घोटकर १ रत्ती मात्रा में सेवन करे।

त्रिदोषज कुष्ठ में—तीक्ष्ण लोह, अभ्रक और स्वर्ण का पिण्ड तेल और गन्धक के साथ मर्दन कर उसके साथ हरिताल, सोनामाखी, राखालशशा (इन्द्रायण) का मूल, भेलवा, गन्धवोल, आकनादि (पाठा) मूल, मीठा विष, शृङ्गी विप, सोहागा, मुलहठी और निसिन्दा (निर्गुण्डी) प्रत्येक १ भाग मिश्रित कर अदरक के रस में मर्दन करे। फिर वेर के समान गोली वनाकर छाया में सुखाकर प्रयोग करे।

विभिन्न प्रकार के क्षुद्र कुष्ठ में—

(१) नीवू के रस के साथ कौड़ी पीसकर धूप में पका ले। बाद में उसके साथ अपामार्ग का क्षार, घण्टापारुल का क्षार, मेषशृङ्गी का रस, पारद एवं जवाखार, सज्जीखार, सोहागा, हलदी, दारुहलदी, सोंठ, पीपल, गोलमिर्च और ताम्वा मिश्रित करे। यह अनेक प्रकार के क्षुद्र कुष्ठों का नाशक है।

(२) सत्तू के साथ चतुर्थांश परिमित ताम्रभस्म मिश्रित कर एवं उसमें पर्पटीरस मिला कर लेपन करने से चर्मकुष्ठ का उपशम होता है।

(३) काटानट, गिलोय, नीलवृक्ष, कुडा, कृष्णतिल, मधु, करवी, मीठा विप, गन्धक और कज्जली सम परिमाण में एक साथ मर्दन कर लेपन करने से गजचर्म नामक कुष्ठ विनष्ट होता है।

(४) पारद, गन्धक, सोनामाखी, ताम्र, शिलाजीत और अम्लवेतस तुल्य परिमाण में लेकर उसे अष्टमांश गुड़, घृत एवं मधु के साथ प्रयोग करने पर शतारु नामक कुष्ठ का प्रशमन होता है।

(५) सोनामाखी, गन्धक, कान्तलोह, तीक्ष्णलोह, अभ्रक समभाग, पारद दो भाग, सत्तू दशमाश एकत्र कर मञ्जिष्ठादि क्वाथ के साथ मर्दन कर वालुकायन्त्र मे पाक करने से कृष्णमाणिक्य सदृश जो भस्म प्रस्तुत होता है, उसे उपयुक्त मात्रा में प्रयोग करने से सव प्रकार के कुष्ठ विनष्ट होते हैं।

(६) मञ्जिष्ठा, मोथा, देवदारु, कुड़ा, खदिर, हर्रा, आंवला, वहेड़ा, सोमराजी (वाकुची), आकनादि (पाठा), वच, सोंदाल, खेतपापड़ा, कुटकी, मुलहठी, मूर्वा, हल्दी, वेलाडुमर, धतूरा, वासक (अरूसा), नीम, विडङ्ग, गुरुच, कुड़ची, ककोली और दुरालभा (जवासा) ये सव द्रव्य कुष्ठनाशक हैं।

(७) सीज की लेई आधा सेर, दूध ४ सेर, नारियल दूध ४ सेर, गन्धक, हल्दी, पारद प्रत्येक २ तोला एकत्र मिश्रित कर तेज धूप की गर्मी में पाक करे।

स्नुह्यादि नामक इस तेल को लगाने से किटिम और अन्यान्य अनेक प्रकार के कुष्ठ प्रशमित होते हैं।

(८) मूली का क्षार जल और अदरक रस के साथ समुद्रफेन या सेंधानमक और गन्धक पीसकर लेपन करने से सिध्म कुष्ठ आरोग्य होता है।

व्रणशोथ-चिकित्सा

व्रणगजांकुश—हिंगुल, गेरूमिट्टी, रसाञ्जन, मनःशिला, गुग्गुलु, पारद, ताम्र, गन्धक, लोहा, सेंधानमक, आतइच (अतीस), चव्य, शरपुंखा (सरफोका), जवाइन, गजपिप्पली, विडङ्ग, वरुण, आकन्द (आक), गोलमिर्च, हर्रा और धूप एकत्र मधु के साथ मर्दन कर ६ रत्ती की गोली बनावे। अनुपान-घी-मधु।

कर्कोटाद्यतेल—कडुआ तेल ४ सेर, जल १६ सेर, कल्कार्थ-वनकुकरोधा, आकनादि (पाटा), कण्टकारी, कुडा, झिड़े, मोरटालता, हरिताल, गन्धक, सेंधा नमक, मञ्जिष्ठा, करवीमूल, हल्दी, हिंगु, तुलसी, वच और सिन्दूर समभाग मिला कर १ सेर पानी के साथ पीसकर तेल में डाल कर यथाविधि तेल पकाले। इसका प्रलेप देने से दुष्ट व्रण आरोग्य होता है।

व्रणराक्षसतेल—कडुआ तेल आधा सेर, कल्कार्थ-कज्जली, हरिताल, सिन्दूर, मैनशिल, लहसुन, विष और ताम्र प्रत्येक २ तोला सूर्य के ताप से पाक कर ले। नाना प्रकार के व्रण रोगो में इसके प्रयोग से चमत्कारजनक फल मिलता है।

रक्तदुष्टि प्रभृति कारणों से उत्पन्न व्रण मे या रक्तज व्रण में अवस्थानुसार विचार कर माणिक्य रस, शोधित गन्धक आदि वातरक्त, कुष्ठ एवं विसर्प आदि रोग की विधि के अनुसार औषध प्रयोग करे।

(१) खट्टे नीबू का मूल, केलेकड़ा, सोठ, देवदारु, रास्ना और गनियारी इन सब द्रव्यों का प्रलेप देने से शोथ विनष्ट होता है।

(२) **वातजशोथ में**—लालचन्दन और मुलेठी कांजी के साथ पीस कर किंचित् घी मिला कर प्रलेप दे।

(३) **पित्तजशोथ में**—दूर्वा, नलमूल, पद्मकाष्ठ, नागेश्वर, खसखस, सुगन्धवाला और पद्म इनका प्रलेप दे।

(४) **आगन्तुज और रक्तज व्रणशोथ में**—बरगद, यज्ञडुमर, अश्वत्थ, पाकर, अम्लवेतस, इनका छाल पीस कर उसे घृताभ्यक्त कर प्रलेप दे।

श्लेष्मजशोथ में—वनजवाइन, मजिष्ठा, सरलकाष्ठ, अश्वगन्धा, आकनादि (पाठा), गाड़लश्‍ृङ्गी इनका प्रलेप व्यवहार्य है।

सभी प्रकार के व्रणशोथ में—पुनर्नवा, देवदारु, सोंठ, सहिजन वीज और सफेद सरसो एक साथ कांजी में पीसकर थोड़ा गर्म कर प्रलेप दे। कठिन शोथ को पकाने के लिये निम्नोक्त प्रक्रिया द्वारा पुलटिश वांधे। यथाः-शणवीज, मूली का वीज, सहिजन वीज, तिल, सरसो, मसिना, उत्तम रूप से चूर्ण कर एक साथ मिलाकर जल में पीसकर और आग पर गरम कर शोथ के ऊपर प्रलेप दे।

पके हुए शोथ को फोड़ने के लिये—निम्नलिखित योगो मे से किसी एक का प्रयोग करे। यथाः—करोदी, भेलवा, दन्ती, चिरायता, करवी, कपोत, काक या शकुनी का वीट।

व्रणपीडित स्थान को सवर्णता लाने के लिये—शोधित हरिताल, मनःशिला, मञ्जिष्ठा, लाख, हल्दी, दारुहल्दी एकत्र पीसकर घी के साथ प्रलेप लगावे।

व्रण और नाडीव्रण में अनुपान का प्रयोग विसर्प और विस्फोट रोग के समान है।

नाडीव्रण चिकित्सा

इसकी चिकित्सा विधि पूर्वोक्त व्रणशोथ के समान है।

व्रणगजांकुश, माणिक्य रस अथवा शोधित गन्धक २ रत्ती की मात्रा में घी और मधु के साथ सेवन करने से उत्तम फल प्राप्त होता है।

वृहत् व्रणराक्षसतेल—कडुआ तेल ४ पल, गाय का घी २ पल, कल्कार्थ-चीता का पत्र १ पल एवं आकन्द (आक) के पत्ते का रस २ सेर एकत्र पाक कर तेल को छान कर गरम अवस्था में ही उसमें आधा तोला पारद और १ तोला गन्धक की कज्जली एवं सिन्दूर, हरिताल, मैनशिल, हल्दी, गेरू मिट्टी और सफेद सरसों प्रत्येक १ तोला इनका प्रक्षेप देकर पाक सम्पन्न कर ले। प्रयोग करने के पहले गरम कर लेना चाहिये।

गावभेरेण्डा की लेई और खदिर एक साथ मिलाकर लगाने से नाडीव्रण आरोग्य होता है। हापरमाली की लेई प्रयोग करने पर भी नाडीव्रण सूख

जाता है। गुग्गुल त्रिफला और त्रिकटु समभाग एक साथ घी के साथ मर्दन कर प्रलेप लगाने से नाडीव्रण नष्ट होता है।

विसर्प चिकित्सा

वातज विसर्प में—

कालाग्निरुद्ररस—पारद, अभ्रक, कान्तलोह भस्म, गन्धक और सोना माखी ये सब द्रव्य एक साथ वनकाकरोल (बांझककोड़ा) के रस में १ दिन मर्दन कर वनकांकरोल के कन्द के भीतर रख दे। बाद में मृत्तिकालिप्त कर भूधरयंत्र मे पुटपाक करे। शीतल होने पर उक्त औषध के साथ दशमांश विष मिश्रित कर ले। मात्रा-४ रत्ती। अनुपान—पीपल का चूर्ण और मधु।

कफज विसर्प में—

सर्वेश्वररस—जारित ताम्र, अभ्रक और गन्धक प्रत्येक एक पल, लोह भस्म और पारद प्रत्येक २ तोला। इन सब द्रव्यो को सीज की लेई, आकन्द (आक) की लेई, एरण्डमूल, नीबू और खसखस के रस या क्काथ के साथ मर्दन कर ३ दिन वालुकायंत्र में पाक करे। बाद में पीपरामूल २ तोला और मीठा विष ४ माशा मिश्रित करे। मात्रा—१ रत्ती। अनुपान-नीम छाल और खदिरकाष्ट का क्काथ।

पित्तज विसर्प में—

खगेश्वर—पारद, गन्धक और अभ्रक प्रत्येक १ पल एकत्र अर्जुन छाल के रस के साथ मर्दन कर गोली तैयार करे एवं सूख जाने पर मूषारुद्ध कर उक्त मूषे को दूसरे एक मजबूत भाण्ड मे रुद्ध कर डेढ़ दिन तक पाक करे। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—गुरुच और नीम की छाल का क्काथ और मधु।

त्रिदोषज विसर्प में—

माणिक्यतिलक रस—पारद, गन्धक, सोनामाखी, हरिताल, कान्तलोह, तीक्ष्ण लोह, हिङ्गुल, मुलहठी और कुड़ा समभाग एक साथ सतावर के रस और मञ्जिष्ठादि गण के क्काथ के साथ ३ दिन मर्दन कर सुखाकर मूषारुद्ध करे। दो दिन वालुकायंत्र में पाक कर औषध को निकाल ले। इसकी मात्रा-२ रत्ती। अनुपान-अमृतादि कषाय।

विसर्पनाशक योगावली—कान्तलोह, तीक्ष्णलोह, गन्धक, अभ्रक, मीठाविष और सोनामाखी प्रत्येक १ भाग, इन सब द्रव्यो के साथ पारद १ भाग एकत्र मर्दन करके कड़ुवा कुकरोंधा की जड़ के भीतर रख कर पुटपाक कर ले। मात्रा–२ रत्ती।

मोथा, नीमछाल और परवल के पत्तों का क्वाथ घी के साथ सेवन करने से अथवा चिरायता, अरूसा की छाल, कुटकी, परवल का पत्ता, त्रिफला, लालचन्दन और नीमछाल का क्वाथ सेवन करने से विसर्प प्रशमित होता है।

शिरीषछाल, मुलेठी, तगरपादुका, लालचन्दन, इलायची, जटामांसी, हल्दी, दारुहल्दी, कुड़ा और सुगन्धवाला ये सब द्रव्य पीस कर घृताभ्यक्त कर प्रलेप देने से विसर्प निवृत्त होता है।

विस्फोट-चिकित्सा

माणिक्य रस—निर्माण विधि अपची अध्याय में देखिये।

व्रणारिगुग्गुलु—रससिन्दूर १ पल, पीपल १ पल, गुग्गुल ५ पल, त्रिफला ३ पल एकत्र मिश्रित कर आधा तोला से १ तोला की मात्रा में प्रयोग करे।

परवल का पत्ता, त्रिफला, नीम छाल, गुरुच, मोथा, लालचन्दन, मूर्वा, कुटकी, आकनादि (पाठा), हल्दी और दुरालभा (जवासा) इनका क्वाथ सब प्रकार का विस्फोट नाशक है।

गुरुच और नीम छाल का क्वाथ अथवा इन्द्रयव और खदिर लकड़ी का क्वाथ सेवन करने पर भी विस्फोट आरोग्य होता है।

नीलोत्पल, चन्दन, लोध, खसखस और श्यामालता इन सब द्रव्यों को जल में पीस कर उसके द्वारा प्रलेप देने से दाह और स्फोटक नष्ट होता है।

व्रण, नाड़ीव्रण, विसर्प और विस्फोट रोग में प्रयोज्य अनुपान

कफज विसर्प में—नीमछाल का क्वाथ। खदिरकाष्ठ, मोथा, अरूसा की छाल, देवदारु और सोंदाल का क्वाथ। गुरुच, अरूसा, परवल का पत्ता, नीमछाल, त्रिफला, खदिरसार और सोंदाल का क्वाथ।

पित्तजविसर्प में—परवल का पत्ता, कुटकी और त्रिफला का क्वाथ। चिरायता और धनिया या धनिया और परवल के पत्ते का क्वाथ। परवल का पत्ता, त्रिफला, नीमछाल, गुरुच, मोथा, लालचन्दन, मुर्वा, कुटकी, आकनादि (पाठा),

हल्दी और दुरालभा (जवासा) का क्वाथ। नीम की पत्ती, हल्दी, दारुहल्दी, अरूसा, मोथा और परवल के पत्ते का क्वाथ।

वातजविसर्प और विस्फोट में—स्वल्प पंचमूल का क्वाथ। दशमूल का क्वाथ। द्राक्षा, गाम्भारीफल, त्रिफला, सोदालमज्जा, एरण्डबीज और निसोथ मूल इनका क्वाथ। गुरुच, सुगन्धवाला, रास्ना, दारुहल्दी, खसखस, इन्द्रयव और खदिर लकड़ी इनका क्वाथ।

त्रिदोषजविसर्प में—चिरायता, नीमछाल, मुलेठी, मोथा, अरूसे की छाल, परवल का पत्ता, क्षेत्रपापड़ा, खसखस, त्रिफला और इन्द्रयव का क्वाथ। गुरुच, मोथा, लालचन्दन, सुर्वा, कुटकी, आकनादि (पाठा), हरिद्रा और दुरालभा (जवासा), इनका क्वाथ। त्रिफला, गुरुच और नीमछाल का क्वाथ। गुरुच, अरूसा परवल का पत्ता, मोथा, छतिवन की छाल, खदिर लकड़ी, काले वेंत का मूल, नीमपत्ता, हल्दी और दारुहल्दी इनका क्वाथ।

क्रिमिरोग-चिकित्सा

कफजक्रिमि—

क्रिमिकालानल रस—विडङ्ग २ पल, मीठा विष १ पल, लोह आधा पल, लोहे का आधा पारद एवं पारद का समपरिमाण गन्धक एकत्र बकरी के दूध में पीसकर ६ रत्ती की गोली बनावे। अनुपान-धनिया और जीरे का चूर्ण।

क्रिमिमुद्गर रस—पारद १ तोला, गन्धक २ तोला, वन जवाइन ३ तोला, विडङ्ग ४ तोला, कुचिला ५ तोला, पलाश बीज ६ तोला, एकत्र मर्दन कर ६ रत्ती की गोली तैयार करे। अनुपान-पालिधा मदार का रस, आनारस के नरम पत्तों का रस और मधु। औषध सेवन के बाद मोथा का क्वाथ सेवन करे।

क्रिमिरोगारिरस—रस, गन्धक, लोह, गोलमिर्च, विष, धाईफूल, हर्रा, बहेड़ा, आवला, सोंठ, मोथा, रसाञ्जन, पीपल, गोलमिर्च, मोथा, आकनादि (पाठा), सुगन्धवाला और बेलसोंठ (सूखा बेल मज्जा) समभाग मे लेकर भृङ्गराज के रस में मर्दन कर ७ बार भावना देकर ६ रत्ती की गोली बनावे। अनुपान-मोथा का क्वाथ।

कीटमर्दन रस—पारद १, गन्धक २, जवाइन ४, विडङ्ग ८, कुचिला १६ और वामन हाटी (भार्गी) का वीज ३२ भाग चूर्ण कर एकत्र कर ले।

मात्रा-२ आना से ४ आना भर तक। अनुपान-मधु। बाद मे मोथा का क्वाथ सेवन करे।

क्रिमिहररस—पारद, गन्धक, मैनशिल, जवाइन, इन्द्रयव और पलाश बीज समभाग में एकत्र कर घोषालता के रस के साथ मर्दन कर १ रत्ती की गोली बनावे। अनुपान-शालपर्णी का रस या क्वाथ और चीनी।

क्रिमिज्वर में-विडङ्ग लोह—पारद, गन्धक, गोलमिर्च, जायफल, लौंग, पोपल, हरिताल, सोंठ और वङ्ग प्रत्येक समभाग, इन सवों के बराबर लोह एकत्र मर्दन कर फिर सवों के वरावर विडङ्ग चूर्ण मिश्रित कर पालिधा के रस में मर्दन कर ४ रत्ती की गोली बनावे। अनुपान-चूने का पानी और भिगोये हुये सौंफ का जल।

वहिर्मलोत्पन्न क्रिमि—

लाक्षादि वटी—लाक्षा, भेंलवा, नवनीत खोटि, श्वेत अपराजितामूल, अर्जुनफल, अर्जुनफूल, विडङ्ग, सोनामाखी और गुग्गुल समभाग मे मधु के साथ मर्दन कर गुड़िका तैयार करे। मात्रा-एक आना-दो आना भर।

क्रिमिविनाशरस—पारद, गन्धक, अभ्रक, लोह, मनःशिला, धाईफूल, त्रिफला, लोध, विडङ्ग, हल्दी और दारुहलदी समभाग में एक साथ लेकर अदरक रस मे ७ वार भावना देकर चने के वरावर गोली बनावे। अनुपान—वाकुची बीज चूर्ण।

रक्तज क्रिमि—

क्रिमिकोष्ठानलरस—पारद, गन्धक, वङ्ग, हरिताल, कौड़ीभस्म, मनःशिला, काले रंग का कांच (शीशा), सोमराजी (वाकुची), विडङ्ग, दन्तीवीज, जयपालबीज, सोहागा, चीतामूल प्रत्येक २ तोला, सिज (सेंहुड़) के क्षार के साथ मर्दन कर उड़द के आकार की गोली वनावे। अनुपान—वाकुची चूर्ण और मधु।

पारिभद्ररस—मूर्च्छित पारद, आवला और नीबू समभाग में लेकर खदिर के क्वाथ में १ दिन मर्दन कर ४ रत्ती परिमाण मे सेवन करे।

कनकसुन्दररस—स्वर्णभस्म १ भाग, अभ्रक १ भाग और गन्धक २ भाग एकत्र मर्दन कर पिण्ड वनावे और गजपुट मे पाक करे। वाद में औषध निकाल कर उसके साथ सोंठ, पीपल, गोलमिर्च, भेलवा, विडङ्ग, पारद, कांकड़ाशृङ्गी

और देवदारु प्रत्येक एक भाग एवं मीठाविष ½ भाग मिलाकर बकरी के मूत्र के साथ मर्दन कर १ रत्ती की गोली बनावे।

अग्नितुण्डीरस—पारद १ भाग, गन्धक २ भाग, वनजवाइन ३ भाग, विडङ्ग ४ भाग, ब्रह्मवीज (पलाशवीज) ५ भाग, कुचिला १ भाग एकत्र मधु के साथ मर्दन कर एक आने की मात्रा से मोथा के क्वाथ के साथ सेवन करे।

कीटमर्द रस—पारद ४ माशा, गन्धक ४ माशा, ताम्र २ माशा एकत्र सागोन के मूल, वल्कल, पत्ता, फूल और फल के रस के साथ निरन्तर एक दिन मर्दन कर स्वर्णक्षीरी के क्वाथ के साथ फिर एक दिन मर्दन करे। उसके बाद लघुपुट मे पाककर ५ जयपाल बीज का चूर्ण उसके साथ मिला ले। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—गाय का घीं।

क्रिमिनाशक योगावली—विडङ्ग चूर्ण मधु के साथ लेहन करने से आमाशय और पाकाशयस्थित क्रिमि विनष्ट होता है।

पालिधामदार का रस अथवा आनारस के नरम पत्ते का रस अथवा घेंटूपत्ते का रस मधु के साथ सेवन करने पर क्रिमि नष्ट हो जाता है।

पलाश बीज, इन्द्रयव, विडङ्ग, नीम छाल और चिरायता का चूर्ण समभाग मे गुड़ के साथ सेवन करने पर क्रिमि विनष्ट होता है।

शोधित पारद, इन्द्रयव, वनजवाइन, मनःशिला और पलाशवीज समभाग एक साथ घोषालता के रस मे मर्दन कर सेवन करे, फिर मूषाकर्णी (इन्दुरकानी) का रस चीनी के साथ अनुपान करे। इससे रक्तजक्रिमि विनष्ट होता है।

बहिर्मलजात क्रिमि या जुआं—धतूरे का पत्ता या पान का रस कपूर के साथ मर्दन कर प्रलेप देने से सिर का जुआं विनष्ट होता है।

क्रिमिरोग में प्रयोज्य अनुपान—पुरीषज और कफज क्रिमि रोग मे विडङ्ग चूर्ण, आनारस के नरम पत्ते का रस, बाकुचीबीज चूर्ण, पालिधामदार का रस, आंसशेउड़ा पत्ते का रस, जवाइन चूर्ण, शालिञ्च रस, पलाशवीज, कमलागुंडि, मूषाकर्णी, घेंटूपत्ते का रस, खजूर पत्ते का क्वाथ, चिरायता और नीमछाल का क्वाथ।

बहिर्मलोत्पन्न क्रिमि में—कच्ची हल्दी का रस, नीमछाल का क्वाथ, नालिता भिगोया हुआ जल, नीबू का बीज, बेल के पत्ते का रस, गोमूत्र एवं रक्तज क्रिमि में कुष्ठरोगोक्त अनुपान प्रयोग करे।

शिरोरोग-चिकित्सा

वातज सिर के रोग में—

बृहत्वातचिन्तामणि—स्वर्ण ३ भाग, रौप्य २ भाग, अभ्र २ भाग, लौह ५ भाग, प्रवाल ३ भाग, मुक्ता ३ भाग, रससिन्दूर ७ भाग एकत्र घृतकुमारी के रस में मर्दन कर २ रत्ती गोली वनावे। अनुपान—सतावर का रस।

चतुर्मुख रस—पारद, गन्धक, लोह और अभ्रक प्रत्येक १ तोला, सोना २ माशा एकत्र घृतकुमारी के रस में मर्दन कर एरण्ड के पत्ते मे लपेट कर ३ दिन तक धान के ढेर के भीतर रख दे। वाद मे वाहर निकाल कर २ रत्ती की गोली वनावे। अनुपान—त्रिफला भिगोया हुआ पानी, सतावर का रस या ब्राह्मी का रस।

सूर्योदयरस—रससिन्दूर, अभ्रक, लोह, ताम्र और गन्धक समभाग एकत्र सीज की लेई मे मर्दन कर ६ रत्ती की गोली वनावे। अनुपान-सतावर का क्वाथ।

पित्तज सिर के रोग में—योगेन्द्ररस, बृहत्वातचिन्तामणि और चिन्तामणिचतुर्मुख का प्रयोग करना चाहिये।

योगेन्द्ररस—रससिन्दूर १ तोला, स्वर्ण, लोह, अभ्रक, मुक्ता और वङ्ग प्रत्येक ½ तोला, इन सवको घृतकुमारी के रस मे भावना देकर ३ दिन धान के ढेर के भीतर रख कर २ रत्ती की गोली तैयार करे। अनुपान—त्रिफला का जल और मधु अथवा सतावर का रस।

चिन्तामणि चतुर्मुख—रससिन्दूर २ तोला, लोह १ तोला, अभ्रक १ तोला, सोना आधा तोला एकत्र घृतकुमारी के रस में मर्दन कर एरण्ड के पत्ते मे लपेट कर धान के ढेर के भीतर रख दे। ३ दिन वाद उसे वाहर निकाल कर २ रत्ती की गोली वनावे। अनुपान—त्रिफला का जल।

त्रिदोषज सिर के रोग में—

त्रैलोक्यचिन्तामणि—हीरक, स्वर्ण, मुक्ता, लोह समभाग, अभ्र भस्म सर्व समान और अभ्र भस्म के वरावर रससिन्दूर एकत्र घृतकुमारी के रस में मर्दन कर १ रत्ती की गोली वनावे। अनुपान-ब्राह्मी या सतावर का रस और मधु।

शिरःशूलाद्रिबज्ररस—पारद, गन्धक, लौह, तेउड़ी (निशोथ) मूल प्रत्येक १ पल, गुग्गुल ४ पल, त्रिफला चूर्ण २ पल, कुड़ा, मुलहठी, पीपल, सोंठ, गोक्षुर, विडङ्ग और दशमूल प्रत्येक १ तोला। दशमूल के क्वाथ में भावना देकर घी से मर्दन कर ६ रत्ती की गोली तैयार करे। अनुपान-बकरी का दूध।

रक्तज सिर के रोग में—वृहत् वातचिन्तामणि, योगेन्द्ररस और त्रैलोक्य-चिन्तामणि प्रयोग करना चाहिये।

क्षयज सिर के रोग में—चिन्तामणि चतुर्मुख, योगेन्द्ररस, वृहत् चन्द्रोदय मकरध्वज, त्रैलोक्यचिन्तामणि और श्रीमहालक्ष्मीविलास रस आदि औषध प्रयोग करना उचित है।

वृहत् चन्द्रोदयमकरध्वज—शोधित पतला स्वर्णपत्र १ पल, पारद ८ पल अच्छी तरह से मर्दन कर उसके साथ गन्धक १६ पल मिलाकर कज्जली बनावे एवं लाल कपास के फूल और घृतकुमारी के रस मे मर्दन कर सुखा ले। बाद में समतल वोतल मे रखकर वोतल के मुख को ढक्कन से बन्दकर बालुकायन्त्र मे पाक करे। वाद में क्रमशः बढ़ती हुई अग्नि से लगातार ३ दिन ज्वाला देकर गलदेश मे संलग्न मकरध्वज को निकाल ले। यह औषध १ पल लेकर, कपूर जायफल, पीपल, लौंग प्रत्येक ४ पल और मृगनाभि आधा तोला एक साथ मर्दन कर ले। मात्रा-२ रत्ती। अनुपान—सतावर का रस।

श्रीमहालक्ष्मीविलास रस—अभ्रक ८ तोला, पारद, गन्धक प्रत्येक १ तोला, वङ्ग, २ तोला, रौप्य, स्वर्ण प्रत्येक १ तोला, ताम्र आधा तोला, कपूर, जावित्री, जायफल प्रत्येक ४ तोला, विद्धड़क बीज, धतूरे का बीज प्रत्येक २ तोला, स्वर्ण १ तोला एकत्र पान के रस में मर्दन कर २ रत्ती की गोली बनावे।

क्रिमिज सिर के रोग में—शिरोरोगान्तक रस और शिरःशूलाद्रिबज्र रस प्रयोग करना चाहिये।

शिरोरोगान्तकरस—जारित पारद, अभ्रक, तीक्ष्णलोह और कान्तलोह, ताम्र प्रत्येक समभाग एकत्र सोज की लेई में एक दिन मर्दन कर ४ रत्ती मात्रा में गोली बनावे।

सूर्यावर्त्त में—सूर्योदय रस और शिरोरोगान्तक रस प्रयोग करे।

अनन्तवात में—वृहत् वातचिन्तामणि, रसचन्द्रिका, महालक्ष्मीविलास रस, षड्बिन्दु तेल, महानारायण तेल का प्रयोग करे।

अर्द्धावभेदक में—रसचन्द्रिका और महालक्ष्मीविलास रस प्रयोग करे। विडङ्ग और काली तिल्ली को पीस कर कपाल में प्रलेप दे। षड्बिन्दुतैल का नस्य ले। मध्यम नारायण मालिश के लिए दे।

शंखक में—त्रैलोक्यचिन्तामणि, वृहत् वातचिन्तामणि और महालक्ष्मी-विलास रस एवं महानारायण, हिमसागर, महादशमूल आदि तेल का प्रयोग करे।

शिरोरोग नाशक योगावली चिकित्सा

वातप्रधान सिर के रोग में—कुडा और एरण्डमूल को कांजी से पीस कर प्रलेप दे।

पित्त प्रधान सिर के रोग में—पद्ममूल, मृणाल, शालूक, लालचन्दन और पद्मकेशर एक साथ घी के साथ पीस कर प्रलेप दे।

कफ प्रधान सिर के रोग में—पीपल, मोथा, सोंठ, मुलेठी, शुलफा, नीलोत्पल और कुडा जल में पीस कर प्रलेप दे।

त्रिकटु, कुडा, हल्दी, जीरक और अश्वगन्धा इनके क्वाथ द्वारा नस्य लेने से सब प्रकार के शिरोरोग विनष्ट होते हैं।

हुडहुड़ का वीज हुड़हुड़ के रस में पीस कर प्रलेप करने से सूर्यावर्त्त और अर्द्धावभेदक शान्त होता है।

छिल्का रहित काली तिल्ली और खसखस पीस कर मधु और सेंधानमक के साथ प्रलेप करने पर भी अर्द्धावभेदक शान्त होता है।

शंखक रोग में—दारुहल्दी, हल्दी, मंजिष्ठा, नीबू का पत्ता, खसखस और पद्मकाष्ठ एकत्र जल में पीस कर शंख देश में प्रलेप करे। शतावर, बिना छिल्का के काला तिल, मुलेठी, नीलोत्पल, दूर्वा और पुनर्नवा ये सब द्रव्य बकरी के दूध या जल के साथ पीस कर प्रलेप करे।

बरगद और अश्वत्थ आदि क्षीरी वृक्षों की छाल को पीस कर मस्तक में प्रलेप लगाने से शंखक रोग नष्ट होता है।

क्रिमिज सिर के रोग में—त्रिकटु, करोंदा वीज और सहजन का वीज बकरी के मूत्र में पीस कर उसका नस्य ले। अपामार्ग वीज, त्रिकटु, हल्दी और

विडङ्ग चूर्ण एकत्र मिलाकर बकरी के मूत्र मे पीस कर उसका नस्य लेने से ही क्रिमिज सिर के रोग का उपशम हो जाता है।

सिर के रोग में प्रयोज्य अनुपान—

वातज सिर के रोग में—शतमूल (शतावर) का रस, ब्राह्मी का स्वरस, त्रिफला भिगोया हुआ जल, थोड़ी मात्रा में पंचमूल का क्वाथ।

पित्त प्रधान सिर के रोग में—त्रिफला भिगोया हुआ जल, आंवला भिगोया हुआ जल, मुलेठी और लालचन्दन का क्वाथ, लालचन्दन, खसखस, पद्मकेशर, मुलेठी, वला और द्राक्षा इनका क्वाथ।

कफ प्रधान सिर के रोग में—त्रिकटुचूर्ण, गरम जल, अदरक का रस, पीपलचूर्ण, भङ्ग के वीज का चूर्ण आदि।

रक्तज सिर के रोग में—पित्तज सिर के रोग का अनुपान प्रयोग करे।

क्षयज सिर के रोग में—शतमूल (शतावर) का रस, बला का रस, भीमराज का रस, आंवले का स्वरस, मुलेठीचूर्ण, अश्वगन्धा चूर्ण, गोरक्षचाकुले के मूल का चूर्ण, दशमूल का क्वाथ और गव्य घृत।

आँख के रोग की चिकित्सा

सर्वचूर्णसमलोह—हर्रा, आंवला, बहेड़ा, दालचीनी, मुलेठी प्रत्येक १ भाग, इन सवके वरावर लोहे का चूर्ण एकत्र अच्छी तरह से मिला ले। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान-घी और मधु, सायंकाल में सेवन करे। इसके सेवन से तिमिर, काच, अर्बुद, पटल और शुक्ल आदि चक्षुरोग विनष्ट होते है।

षडङ्ग रस—पारद, गन्धक, हल्दी, सौराष्ट्रमृत्तिका, हर्रा, आवला, बहेड़ा, कुटकी, प्रियङ्गु, गुग्गुल, दन्ती, घोषा, गुरुच, सुगन्धबाला, समभाग अच्छी तरह से चूर्ण कर एरण्डतेल के साथ मर्दन कर ४ रत्ती की मात्रा में सेवन करे। इससे वाताधिक चक्षुरोग शान्त होता है।

नयनामृतलोह—त्रिकटु, त्रिफला, कुकरोंधा, शटी (कचूर), रास्ना, सोंठ, किसमिस, नीलोत्पल, काकोली, मुलेठी, वला, केशुते, कण्टकारी, वृहती (बड़ी कटेरी) लोह और अभ्रक प्रत्येक एक पल, एकत्र त्रिफला के क्वाथ और भृङ्गराज के रस में क्रमानुसार से ७ वार भावना देकर ४ रत्ती की गोली वनावे। अनुपान-घी और मधु या गरम जल।

तिमिरहरलोह—त्रिफला, पद्मकाष्ठ, मुलेठी चूर्ण समभाग, लोहचूर्ण पांच भाग मिश्रित कर ६ रत्ती की गोली बनाकर सेवन करे। तिमिर, रात्र्यन्धता और पटल रोग में सुफलप्रद है।

व्रतशुक्लहरगुग्गुलु—लोह, मुलेठी, त्रिफला और पीपलचूर्ण प्रत्येक १ भाग, गुग्गुल ६ भाग एकत्र खरल कर ६ रत्ती की मात्रा में घी और मधु के साथ सेवन करे। इससे शुक्ल और काचरोग विनष्ट होते हैं।

नेत्राशनिरस—अभ्र, ताम्र, लोह, सोनामाखी, रसाञ्जन, गन्धक, प्रत्येक १ पल एकत्र लेकर त्रिफला के क्वाथ और भृंगराज के रस द्वारा ७ बार भावना दे। वाद में उसके साथ पीपरामूल, मुलेठी, इलायची, पुनर्नवा, देवदारु, आकनादि (पाठा), भृङ्गराज, शटी (कचूर), पीपरामूल, वच, नीलोत्पल और लालचन्दन चूर्ण प्रत्येक १ माशा मिश्रित कर लोहे के खरल में लोहदण्ड द्वारा घी और मधु के साथ मर्दन कर २ रत्ती की गोली वनावे। अनुपान—गरम जल।

अञ्जन प्रयोगः—

गरुडाञ्जन—निर्मलीफल, सेंधानमक, तूतिया, रसाञ्जन, त्रिकटु, स्फटिक, मोथा, कौड़ीभस्म, त्रिफला, ताम्रभस्म, लोहभस्म, कपूर, कुटकी, समुद्र का फेन, वच, मनुष्य के मस्तक की हड्डी, सीसक, पारद, सोहागा और रसाञ्जन, एकत्र करोंदा की छाल के रस के साथ मर्दन कर वर्त्ति तैयार करे। मधु और त्रिफला चूर्ण के साथ मर्दन कर अंजन प्रयोग करने पर गरुड की तरह दृष्टि शक्ति होती है।

चन्द्रोदयावर्त्ति—हर्रा, वच, कुड़ा, पीपल, गोलमिर्च, वहेड़े की मज्जा, शङ्खनाभि और मैनशिल एकत्र वकरी के दूध में पीस कर वर्त्ति तैयार कर ले। मधु के साथ मर्दन कर इसका अंजन लगाने से नाना प्रकार के आंख के रोग दूर हो जाते हैं।

चन्द्रप्रभावर्त्ति—रसाञ्जन, सहिजन का बीज, पीपल, मुलेठी, वहेड़े की मज्जा, शङ्खनाभि और मैनशिल समभाग में एकत्र कर वकरी के दूध में पीस कर वर्त्ति बनाकर छाया मे सुखा ले। मधु के साथ मर्दन कर इसका अंजन प्रयोग करने पर अर्म, काच, तिमिर और पटल आदि रोग नष्ट होते हैं।

तारकाद्यावर्त्ति—रौप्य, ताम्र, पारद, सीसा, खर्पर, कपूर, रसाञ्जन, कासा और शङ्ख एक साथ गोयालिया लता के रस में मर्दन कर वर्त्ति वनावे। इस अंजन द्वारा सब प्रकार के नेत्ररोग दूर होते हैं।

नागार्जुन वर्त्ति—त्रिफला, त्रिकटु, सेंधानमक, मुलेठी, तूतिया, रसाञ्जन, पुण्डरिया, विडङ्ग, लोह, ताम्रभस्म समभाग, तगरपादुका के क्वाथ या शीतल जल में पीस कर वर्त्ति बनावे।

ताम्रद्रुति—ताम्र, अभ्रक और तूतिया प्रत्येक ४० माशा एकत्र कड़ाही में रख कर ढक कर मृदु अग्नि में पाक करे। पकाते समय गन्धक चूर्ण ६० तोला थोड़ा थोड़ा कर प्रक्षेप दे। कड़ाही मे धुआँ न जमने पावे इस ओर ख्याल रखे। बाद में उसके साथ ४ सेर पानी मिला कर अच्छी तरह से घोंट कर साफ हुए भाग को ग्रहण कर ले एवं उसमें तूतिया का जल और शिलाजीत प्रत्येक २ तोला मिला कर सुखा ले। घी, मधु और स्तन दुग्ध के साथ पेषण कर इसको अञ्जनरूप में व्यवहार करने से काच, अर्म, व्रणशुक्ल, अभिष्यन्द और पिल्ल आदि आंख के रोग निश्चित रूप से नष्ट होते हैं।

(१) पर्दा और तिमिर रोग में स्त्री के दूध के साथ, तिमिर रोग में लोहे के क्वाथ एवं छानि रोग में बकरी के मूत्र के साथ घोंट कर अंजन लगावे।

(२) ताम्र, सीसक, रौप्य, पारद, पीला चन्दन, कुटकी, कपूर, पीपल, रसाञ्जन, स्रोतोञ्जन और जारित कांसा प्रत्येक १ भाग इन सबके बराबर खुलकुड़ि (मण्डूकपर्णी) का मूल। ये सब द्रव्य एक साथ जल में मर्दन कर वर्त्ति बनावे। इसका अञ्जन लगाने पर नाना प्रकार के आंख के रोग दूर हो जाते हैं।

(३) पारद, सीसक, रसाञ्जन, समुद्र का फेन, नवनीत (मक्खन) समभाग इमली की पत्ती के रस के साथ ताम्रपात्र मे ७ दिन मर्दन कर वर्त्ति बनाकर छाया में सुखा ले। इस अंजन के प्रयोग से अर्म, तिमिर और शुक्ल रोग नष्ट होते है।

(४) पारद और सीसक समभाग, इन दोनों का दुगुना रसाञ्जन और इनके साथ थोड़ा सा कपूर मिलाकर वर्त्ति बनावे। इसके द्वारा तिमिर रोग नष्ट होता है।

(५) घोंघी या मेढक को दग्ध करके बारीक चूर्ण करे। मक्खन के साथ मिश्रित कर उस भस्म का अंजन प्रयोग करने पर पुष्परोग दूर होता है।

(६) सहिजन का मूल और वच मधु के साथ घिसकर अथवा कच्ची हल्दी के रस द्वारा नेत्र पूरण करने पर आंख का शूल निवृत्त होता है।

(७) श्वेत पुनर्नवा का मूल जल के साथ पीसकर अंजन लगाने से अथवा श्वेत पुनर्नवा का मूल घी के साथ घोंटकर अंजन लगाने से नेत्र का जलस्राव निवृत्त होता है।

(८) लालचन्दन चूर्ण एक पल, भृङ्गराज के रस के साथ तांबे के वर्त्तन में घिस कर भृङ्गराज रस में एक सौ वार भावना दे एवं वार वार मर्दन करे। मधु के साथ मिलाकर अंजन प्रयोग करने पर इसके द्वारा सव प्रकार के तिमिर रोग नष्ट होते हैं।

(९) मीठा विष और शिलाजीत प्रत्येक समभाग एक साथ नीबू के रस के साथ घर्षण कर रात में अंजन प्रयोग करने पर काच और रात मे न देखना दूर होता है।

(१०) घोंघी का भस्म, पारद, सीसक भस्म, कांसे का भस्म और रसाञ्जन समभाग एक साथ इमली पत्ते के रस के साथ तांबे के वर्त्तन में मर्दन कर वर्त्ति बनावे और छाया में सुखा दे। मधु के साथ घर्षण कर इस वर्त्ति द्वारा अंजन लगाने पर शुक्ल, अर्म, तिमिर और पिल्ल रोग नष्ट होते है।

(११) खटमल के रक्त के साथ गोलमिर्च पीसकर उसका अंजन लगाने से रात्र्यान्ध्य रोग नष्ट होता है।

(१२) पीपल और गोलमिर्च, घी, मधु और स्तन के दूध के साथ पीसकर उसके द्वारा अंजन प्रयोग करने पर रात्र्यान्ध्य दूर होता है।

(१३) पीपल आधा तोला, सेंधानमक १ तोला, वच २ तोला, कुडा ४ तोला, मुलहठी ८ तोला, ताम्रभस्म १६ तोला, ये सव द्रव्य वकरी के दूध के साथ पीस कर वर्त्ति वनावे। इस वर्त्ति के द्वारा अञ्जन प्रयोग करने पर सव प्रकार के नेत्ररोग दूर होते हैं।

(१४) नेत्ररोग से रात के समय घी और मधु के साथ त्रिफला चूर्ण सेवन करे एवं त्रिफला के क्वाथ से आंख को धोवे।

कर्णरोग-चिकित्सा

कफकेतुरस—सोंठ, पीपल, गोलमिर्च, हिङ्गलवीज, विष और शंखभस्म इन सव वस्तुओं को समपरिमाण में जल के साथ मर्दन कर गोलमिर्च के समान गोली वनावे। अनुपान-गरम जल।

भैरवरस—रस, गन्धक, विष, सोहागा, कौड़ीभस्म, गोलमिर्च, समभाग एकत्र अदरक रस में ७ वार भावना देकर २ रत्ती मात्रा की गोली वनावे। अनुपान-गरम जल।

इन्दुवटी—शिलाजीत, अभ्रक और लोहा प्रत्येक एक भाग, स्वर्ण चौथाई भाग एक साथ लेकर क्रमानुसार काकमाची, शतमूल (शतावर), आवला और पद्म के रस में भावना देकर २ रत्ती की गोली बनावे। अनुपान-आंवले का स्वरस या क्वाथ।

सारिवादि वटी—अनन्तमूल, मुलेठी, कुडा, गुडत्वक् (दालचीनी), तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, प्रियङ्गु, नीलोत्पलमूल, गुरुच, लौंग, हर्रा, आंवला, वहेड़ा प्रत्येक समभाग, इन सबके बराबर अभ्रक एवं अभ्रक के समान लोहा एकत्र कसेरू रस, अर्जुन छाल के क्वाथ, जौ के क्वाथ, काकमाची के रस और कूचमूल के क्वाथ में भावना देकर २ रत्ती की गोली बनावे। अनुपान—शतावर का रस।

वहरेपन में—

लशुनाद्यतेल—तिल्ली तेल १ सेर, बकरी का दूध ४ सेर, कल्क के लिए लहसुन, आंवला और हरिताल मिलित २ पल।

कर्णनाडी में

निशातेल—कड़ुवा तेल १ सेर, धतूरे पत्ते का रस ४ सेर, कल्क के लिए हल्दी ४ तोला और गन्धक ४ तोला।

जाती पत्ते के रस के साथ कड़वा तेल को पकाकर कान के भीतर डालने से पूतिकर्ण और कर्णस्राव आरोग्य होता है।

क्रिमिकर्ण में—ईशलांगला के मूल और हुड़हुड़ के रस में त्रिकटु मिलाकर उससे कान को भर दे।

नासिका रोग चिकित्सा

पञ्चामृत रस—पारद १ भाग, गन्धक २ भाग, सोहागा ३ भाग, विष ४ भाग, गोलमिर्च ५ भाग एक साथ अदरक के रस में मर्दन कर ३ रत्ती की गोली तैयार करे। अनुपान—पान का रस और मधु।

नारदीय महालक्ष्मीविलास—अभ्रक १ पल, गन्धक, पारद, कपूर, जायफल, जावित्री, विद्धडक वीज, धुस्तूर वीज, भांग का बीज, भूमिकुष्माण्ड (विदारीकन्द), शतावर, वला मूल, गोरक्षचाकुले, गोक्षुर बीज, हिज्जलबीज प्रत्येक २ तोला एक साथ पान के रस में मर्दन कर ३ रत्ती गोली बनावे। अनुपान-पान का रस औ मधु। प्रतिश्यायज नाक के रोग में यह सुफलप्रद है।

मणिपर्पटी—हीरक, मरकत, पुष्पराग और इन्द्रनील चूर्ण एक भाग, पारद १ भाग और गन्धक २ भाग एकत्र मर्दन कर लोहे के वर्त्तन में गला कर पर्पटी तैयार करे। वाद में उसके साथ निसिन्दा (निर्गुण्डी), तुलसी, सहिजन, धतूरा, आक, चीतामूल, त्रिकटु, त्रिफला, केले का मूल और आदी इनके स्वरस या क्वाथ द्वारा सौ वार भावना दे। मात्रा-१ रत्ती। अनुपान—त्रिकटु चूर्ण और मधु।

नासिका रोग नाशक विभिन्न योगावली—

(१) विडङ्ग, सेंधानमक, हींग, गुग्गुल, मनःशिला और वच इनको चूर्णकर एकत्र लेकर उसका धुआं लेने पर प्रतिश्याय नष्ट होता है।

(२) हर्रा, आंवला, वहेड़ा, पीपल, सेंधानमक का चूर्ण वरावर मात्रा में लेकर मधु के साथ चाटने से पीनस और कफ नष्ट होता है।

पीनसरोग में—गोलमिर्च चूर्ण, गुड़ और दही के साथ सेवन करने से विशेष उपकार होता है। कैथ, पुष्करमूल (न मिलने पर कुड़ा), कुकरोंधा, सोंठ, पीपल, गोलमिर्च, दुरालभा (जवासा), काला जीरा इनका चूर्ण या क्वाथ अदरक रस के साथ सेवन करने से पीनसादि पीड़ाओं की शान्ति होती है।

पूतिनस्य—इन्द्रयव, हिंगुल, गोलमिर्च, लाख, तुलसी, कैथ, कुड़ा, वच, सहिजन का वीज और विडङ्ग इनका कल्क (जल में पिसा हुआ) गोमूत्र में पेषण कर उसका नस्य लेने से पूतिनस्य आरोग्य होता है।

नाक से रक्त स्राव होने पर घी में तला हुआ आंवला कांजी के साथ अथवा बकरी के दूध के साथ पीस कर मस्तक में प्रलेप लगावे।

मुख, गले और दांत के रोग में—

कालक चूर्ण—झूल, यवक्षार, पाठा, सोंठ, पीपल, गोलमिर्च, रसाञ्जन, चई, हर्रा, आंवला, वहेड़ा और चीतामूल एवं लोह इन सबका चूर्ण समभाग, मधु के साथ मिलाकर मुख में धारण करने से दन्तरोग और गले के रोग निवृत्त होते हैं।

पीतकचूर्ण—मनःशिला, यवक्षार, हरिताल, सेंधानमक, दारुहल्दी की छाल ये सब द्रव्य समभाग में लेकर मधु के साथ मिलाकर घृत द्वारा मूर्च्छित करके मुख में धारण करने से कण्ठरोग और मुखरोग निवृत्त होते हैं।

पारद, अभ्रक, लोह, शिलाजीत, गुग्गुल, मनःशिला और सोनामाखी समभाग में ग्रहण कर २ रत्ती मात्रा में मधु के साथ चाटने से सब प्रकार के गले के रोग और मुखरोग निवृत्त होते हैं।

चलदन्त—पारा ३ भाग, रौप्य १ भाग एक साथ मर्दन कर नीबू के रस में मिलाकर नीबू फल के भीतर भर कर कपड़े से बांध दे। फिर ३ दिन तक पाक करे। बाद मे सूक्ष्म चूर्णीकृत हरिताल को आक की लेई द्वारा भावना देकर यवक्षार मिलाकर उक्त पारद के साथ अच्छी तरह से घोटकर गोला बनावे। बाद में उसे नीबू फल के भीतर सुरक्षित रूप से भर कर कपड़े से लपेट कर मधु पूर्ण भाण्ड मे ३ दिन तक पकावे। इस औषध को मुख मे धारण करने से दन्त अवश्य ही स्थिर होगा।

गलग्रन्थि और कण्ठशालूक रोग में—पारद, विमल, सोनामाखी, सोंठ, पीपल, गोलमिर्च, ताम्रभस्म और सेंधानमक समभाग, गोमूत्र के साथ एकत्र पेषण कर थोड़ा गर्म कर के प्रलेप लगावे।

चतुर्मुखरस—रससिन्दूर और स्वर्ण समभाग, मनःशिला दो भाग, एकत्र तीसी के तेल में मर्दन कर पिण्डाकार बनावे। बाद मे उक्त पिण्ड को कपड़े से लपेट कर तिल कल्क द्वारा प्रलिप्त कर ३ दिन दोलायन्त्र में पाक कर ले। यह चतुर्मुख रस मुख मे धारण करने से जिह्वा, कण्ठ और मुखगत सब रोग नष्ट होते हैं।

पार्वतीरस—गन्धक, पारद, हिङ्गुल, महुआ का फूल, गुडूची, सेमर की छाल, किसमिस, धनिया, चिरायता, भृङ्गराज, तिल, मूंग, परवल, कुष्माण्ड, सौवर्चल लवण, सेंधानमक, मुलहठी समभाग एक भाण्ड में भर कर अन्तर्धूम से भस्म करे। मुखरोग में यह सुफलप्रद औषध है। अनुपान–पीपल चूर्ण और मधु।

मुखरोगहरी वटी—पारद १ भाग, गन्धक १ भाग, शिलाजीत ४ भाग एकत्र गोमूत्र में मर्दन कर क्रमानुसार सौ बार अदरक रस, मालती पत्ते के रस, नीमछाल के रस एवं जलपीपल के रस में भावना देकर ४ रत्ती की गोली बनावे। अनुपान–पीपल चूर्ण और मधु। इसके सेवन से तालु, गला, ओठ और दांत के विविध रोग नष्ट होते हैं।

विभिन्न योगावली—बबूल की छाल के क्वाथ द्वारा गण्डूष धारण करने पर हिलते हुए दांत मजबूत होते हैं और दांत की पीड़ा प्रशमित होती है।

बृहती (बड़ी कटेरी), कुकसिमा, एरण्डमूल और कण्टकारी इनके क्वाथ में कडुआ तेल मिलाकर गण्डूष धारण करने से क्रिमिशूल नष्ट होता है।

सीज (सेंहुड़) वृक्ष की जड़ चबाकर दांत मे दबा कर रखने से दांत के कीड़े गिर जाते हैं।

कुड़ा, दारुहल्दी, लोह, मोथा, वराक्रान्ता, आकनादि (पाठा), चव्य और हल्दी इन सब द्रव्यों के चूर्ण को समभाग में एकत्र कर उससे दांत को घिसने से रक्तस्राव, कण्डु और वेदना निवृत्त होती है।

लोह, खदिर, मंजिष्ठा और सुलेठी इनके साथ तेल को पकाकर उस तेल को लगाने से दन्तनाडी दूर होती है।

मस्तिष्क और स्नायुरोग चिकित्सा

इसमें चतुर्मुखरस, बृहत् वातचिन्तामणि, योगेन्द्ररस, महालक्ष्मीविलास रस, चतुर्भुजरस, चिन्तामणिरस, पंचामृतलोह, रसराज रस, मकरध्वज रसायन आदि औषध प्रयोग करे।

वाताधिक्य में—

चतुर्मुखरस—पारद, गन्धक, लौह, अभ्रक प्रत्येक १ तोला, स्वर्ण २ माशा इन सबको घृतकुमारी के रस में घोटकर एरण्ड के पत्ते से लपेट कर ३ दिन तक धान के ढेर में गाड़ कर रख दे। बाद में २ रत्ती की गोली बनावे। अनुपान—त्रिफला भिगोया हुआ जल, सतावर या ब्राह्मी का रस।

बृहत् वातचिन्तामणि—स्वर्ण ३ भाग, चांदी २ भाग, अभ्रक २ भाग, लोह ५ भाग, प्रवाल ३ भाग, रससिन्दूर ७ भाग एकत्र घृतकुमारी के रस में मर्दन कर २ रत्ती की गोली बनावे। अनुपान—शतावर का रस, ब्राह्मी का रस या अश्वगन्धा चूर्ण और मधु।

पित्ताधिक्य में—

योगेन्द्ररस—रससिन्दूर १ तोला, स्वर्ण, लोह, अभ्रक, मुक्ता और वङ्ग प्रत्येक आधा तोला, एकत्र घृतकुमारी के रस में भावना देकर तीन दिन धान के भीतर रख दे। बाद में निकालकर २ रत्ती की गोली बनावे। अनुपान—त्रिफला का जल, सतावर का रस या श्वेत बला के मूल का रस।

कफाधिक्य में—

महालक्ष्मीविलास रस—अभ्रक ८ तोला, गन्धक ४ तोला, पारा ४ तोला, वङ्ग २ तोला, चांदी १ तोला, सोनामाखी १ तोला, ताम्र ½ तोला, कपूर, जावित्री और जायफल प्रत्येक ४ तोला, विद्धकबीज, धतूरे का बीज प्रत्येक २ तोला और स्वर्ण १ तोला, पान के रस में मर्दन कर २ रत्ती की गोली बनावे। अनुपान-दूध और चीनी।

त्रिदोषोत्पन्न रोग में--

चतुर्भुज रस—रससिन्दूर २ भाग, स्वर्ण १ भाग, मनःशिला, कस्तूरी, हरिताल प्रत्येक १ भाग ये सब द्रव्य घृतकुमारी के रस में एक दिन मर्दन कर एक पिण्ड तैयार करे। फिर उसे एरण्ड के पत्ते से लपेट कर धान की राशि में गाड़ कर ३ दिन तक रख दे। मात्रा-१ रत्ती। अनुपान—त्रिफला चूर्ण और मधु।

पित्ताधिक्य में या पित्तश्लेष्माधिक्य में--

चिन्तामणि रस—रससिन्दूर और अभ्रक प्रत्येक २ तोला, लोहा, स्वर्ण प्रत्येक आधा तोला एकत्र घृतकुमारी के रस मे मर्दन कर १ रत्ती की गोली बनावे। अनुपान—अवस्था भेद से सतावर का रस, ब्राह्मी का रस या त्रिफला चूर्ण और मधु।

त्रिदोषजरोग एवं स्नायु-दुर्बलता में--

पञ्चामृत लोह—पारद, गन्धक, चादी, अभ्रक, सोनामाखी प्रत्येक १ पल, लोह २ पल, गुग्गुल १ पल एकत्र लोहे के खरल में लोहदण्ड द्वारा कड़वा तेल के साथ उत्तमरूप से दो प्रहर तक मर्दन कर ६ रत्ती की गोली तैयार करे। अनुपान—त्रिफला का जल। वृहत वात चिन्तामणि रस, योगेन्द्ररस, पूर्णचन्द्ररस, शिलाजीत के साथ प्रयोग करे।

रसराज रस—रससिन्दूर ८ तोला, अभ्रक २ तोला, स्वर्ण १ तोला, एकत्र घृतकुमारी के रस में मर्दन कर उसके साथ लोह, चांदी, वङ्ग, अश्वगन्धा, लौंग, जावित्री, क्षीरकाकोली प्रत्येक आधा तोला मिलाकर काकमाची के रस में मर्दन कर ३ रत्ती की गोली बनावे। अनुपान-दूध और चीनी।

मकरध्वज रसायन—सोनामाखी २ भाग, वङ्ग, मुक्ता, कान्तलोह, जायफल, जावित्री, चादी, कांसा, रससिंन्दूर, प्रवाल, कस्तूरी, कपूर और अभ्रक

प्रत्येक १ भाग, स्वर्णसिन्दूर ४ भाग एकत्र अच्छी तरह से मर्दन करे। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—सतावर का रस।

मस्तिष्क और स्नायु रोग में प्रयोज्य अनुपान—सतावर का रस, ब्राह्मी का रस, भीमराज का रस, त्रिफला चूर्ण, शंखपुष्पी, पुनर्नवा कल्क, अश्वगन्धा चूर्ण, भांग का बीज, गोरक्षचाकुले चूर्ण, गाय का दूध, गाय का घी और चीनी, मिश्री का रस आदि सेवन करे।

प्रदर रोग-चिकित्सा

कफज प्रदर में-प्रदरान्तक लौह—लोह, ताम्र, हरिताल, वङ्ग, अभ्रक, त्रिकटु, त्रिफला, चीतामूल, विडङ्ग, चव्य, पीपल, शंखभस्म, वच, हवुषा (हाऊवेर), कुड़ा, शटी (कचूर), आकनादि (पाठा), इलायची, कौड़ी, देवदारु और विड्डक बीज, इन सबका चूर्ण समभाग मधु के साथ मर्दन कर ६ रत्ती की गोली बनावे।

पित्तज प्रदर में-शिलाजत्वादिवटी—पारद, गन्धक १-१ तोला, रक्तोत्पलपत्र और कुटज छाल के रस में दो दिन मर्दन कर उसके साथ शिलाजीत, चीनी ८-८ पल, वंशलोचन, पीपल, आंवला, कुकरोंधा, कण्टकारी की जड़ और फल, गुडत्वक् (दालचीनी), तेजपत्ता, इलायची और मधु प्रत्येक १ पल एकत्र मर्दन कर ले। मात्रा—१ तोला। अनुपान-अनार का रस।

लक्ष्मणालौह—लक्ष्मणामूल साढ़े बारह सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। क्वाथ को छानकर फिर पाक करे। जब यह गाढ़ा हो जाय तब इसमें अशोक मूल की छाल, कुशमूल, महुआ का फूल, मुलहठी, आकनादि (पाठा) और बेलसोठ (शुष्क कच्चे बेल की गज्जा) प्रत्येक १ पल, लोह ७ पल, ये सब द्रव्य छोड़ दे। इसके बाद पकाना बन्द कर दे। मात्रा-चौथाई तोला से आधा तोला। अनुपान—गरम दूध।

वातिक प्रदर में-चन्द्रांशुरस—पारद, गन्धक, अभ्रक, लोह और वङ्ग समभाग-घृतकुमारी के रस में मर्दन कर २ रत्ती की गोली बनावे।

प्रदरान्तकरस—पारद, गन्धक, वङ्ग, चांदी, खर्पर, कौड़ीभस्म, प्रत्येक आधा तोला, लोहा ३ तोला एकत्र १ दिन घृतकुमारी के रस में मर्दन कर २ रत्ती की गोली बनावे। चावल धोये हुए जल के साथ सेवन करे।

त्रिदोषज प्रदर में—पूर्वोक्त शिलाजत्वादि वटी और रत्नप्रभा वटी प्रयोग करे।

रत्नप्रभा—सोना, मुक्ता, अभ्रक, सीसा, बङ्ग, पीतल, सोनामाखी, हीरा, लोहा, हरिताल और खर्पर प्रत्येक समभाग, एकत्र लेकर केले की जड़, काकमाची, अरूसे की छाल, सूदिमूल और जयन्ती के रस मे एवं कपूर जल में भावना देकर लगातार एक दिनरात मर्दन करके १ रत्ती की गोली बनावे। अनुपान—कसेरू का रस।

प्रदर रोग में व्यवहार्य विभिन्न योगावली—

वातज प्रदर में—चीनी, मुलहठी, सोंठ, तिल्ली तेल और दही एकत्र अच्छी तरह से मर्दन कर सेवन करने से वातज प्रदर रोग का उपशम होता है।

सौवर्चल, जीरा, मुलहठी, नीलोत्पल प्रत्येक दो माशा, दही ८ तोला एकत्र अच्छी तरह से मर्दन कर फिर उसके साथ ८ माशा मधु मिश्रित कर चावल के पानी के साथ सेवन करने से वातज प्रदर निवृत्त होता है।

पित्तज प्रदर में—अरूसा के क्वाथ के साथ रससिन्दूर सेवन करने से पित्तज प्रदर रोग का उपशम होता है।

कुशमूल चावल के जल के साथ पीसकर सेवन करने से पित्तज प्रदरस्राव निवृत्त होता है।

आंवले का वीज पानी में पीसकर मधु और चीनी के साथ सेवन करने से प्रदर रोग नष्ट होता है।

कफज प्रदर में—१ तोला परिमित धाईफूल और १ तोला आंवला, जल मे पीसकर मधु के साथ सेवन करे।

भूमि आंवले का चूर्ण चावल के जल में पीसकर सेवन करने से भी प्रदर की शान्ति होती है।

श्वेतप्रदर में—दारुहल्दी, रसांजन, अरूसा, मोथा, चिरायता, बेलसोंठ (शुष्क कच्चे वेल की मज्जा) और रक्तोत्पल इनके क्वाथ मे मधु मिलाकर सेवन करने से सव प्रकार के प्रदर रोग आरोग्य होते हैं।

रक्तप्रदर में—गोरक्षचाकुले के मूल का चूर्ण, मधु और चीनी के साथ सेवन करे।

शरपुंखा (शरफोका) के मूल को चावल के जल के साथ पीसकर २ तोले की मात्रा में सेवन करने से अधिक रक्तस्राव निवृत्त होता है।

लाल नटे शाक का मूल और रसांजन चावल के जल के साथ पीस कर मधु के साथ सेवन करने से रक्तप्रदर दूर होता है।

प्रदरादिरोग में प्रयोज्य अनुपान—

वातज प्रदर में—मुलहठी का चूर्ण, नीलोत्पल चूर्ण, सेमर की छाल का रस, सेमर के फूल का चूर्ण, चावल का जल, कुशमूल, बला का मूल।

पित्तज प्रदर में—गुरुच का स्वरस, अरूसा का रस, कच्ची हल्दी का रस, दूब का रस, आंवले का रस, मुलहठी और लालचन्दन का क्वाथ, लाल नटे मूल का रस, खसखस का स्वरस या क्वाथ।

कफज प्रदर में—अरूसा रस, मोथा चूर्ण, वेलसोंठ (शुष्क कच्चे वेल की मज्जा) का क्वाथ, दारुहल्दी का क्वाथ, मुलेठी चूर्ण, मोचरस, धाईफूल, जामुन की गुठली, अतीस और कसेरू का रस आदि।

त्रिदोषज प्रदर में—अशोक छाल का स्वरस या क्वाथ, कुटज छाल का रस, रक्तोत्पल मूल, अनन्तमूल का क्वाथ, अर्जुन छाल का क्वाथ, लक्ष्मणामूल, वलामूल, मुलेठी, लालचन्दन, अनन्तमूल, खसखस, लोध, द्राक्षा और त्रिफला का क्वाथ एवं लाल जवा फूल की कली आदि।

बन्ध्या रोग-चिकित्सा

जयसुन्दर—सोना, चांदी, ताम्र, सोनामाखी, पुखराज भस्म प्रत्येक ४ माशा, पारद १६ माशा, गन्धक ३२ माशा, ये सब द्रव्य एकत्र लेकर लक्ष्मणा मूल के क्वाथ और बन्धुजीव के रस के साथ मर्दन कर सुखा ले। फिर काच की चिमनी के भीतर भर कर ताम्र पत्र द्वारा चिमनी के मुख को वन्द कर दे। बाद मे एक अङ्गुल मोटी मिट्टी लेप कर सुखा ले। सूख जाने पर खूब हल्के वनकण्डों की अग्नि से भूगर्भ में रख गजपुट में पकावे। पाक समाप्त होने पर ठण्डा हो जाने के बाद औषध चूर्णकर फिर लक्ष्मणामूल के क्वाथ द्वारा भावना दे। इसकी मात्रा-१ रत्ती। ताम्रपात्र में सिद्ध गव्य दुग्ध, अश्वगन्धा चूर्ण और चीनी के साथ सेवन करे। लगातार ३ महीने तक यह औषध सेवन करने से वन्ध्या नारी को गर्भ स्थिति होती है।

लक्ष्मणालौह—लक्ष्मणामूल, हस्तिकर्णपलाशमूल, त्रिकटु, त्रिफला, त्रिमद और अश्वगन्धा मूल, प्रत्येक १ तोला, लोहा १२ तोला एकत्र अच्छी तरह से मर्दन कर १ तोला मात्रा मे घी और मधु के साथ सेवन करे। औषध सेवन के बाद शक्कर के साथ दूध का अनुपान करे। यह पुत्रजनक है।

द्रुतिसार—अभ्रक, स्वर्ण, पारद, प्रत्येक समभाग एकत्र मर्दन कर पिण्ड बनाकर ४ माशे की मात्रा में गन्धक के साथ मूषारुद्ध करे एवं इस तरह गन्धक मिलाकर सौ बार पुटपाक करे। इसकी मात्रा–१ रत्ती। बन्ध्या रोग में लक्ष्मणा मूल चूर्ण के साथ प्रयोग करे। उपयुक्त अनुपान के साथ प्रयोग करने पर इससे सूतिका एवं गर्भिणी और प्रसूति के अन्यान्य रोग नष्ट होते हैं।

कुमारकल्पद्रुमघृत—गव्य घृत ८ सेर, क्वाथ के लिये बकरे का मांस सवा छः सेर और दशमूल सवा छः सेर, पकाने के लिये पानी १०० सेर, शेष २५ सेर। दूध ८ सेर, शतावर का रस ८ सेर। कल्कार्थ–कुडा, शटी (कचूर), मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, प्रियङ्गु, त्रिफला, देवदारु, तेजपत्ता, इलायची, शतावर, गाम्भारी फल, क्षीरकाकोली, मोथा, नीलसुंदि, जीवन्ती, लालचन्दन, काकोली, श्यामालता, अनन्तमूल, श्वेत बलामूल, शरपुंखामूल, भूमिकुष्माण्ड (विदारीकन्द), मंजिष्ठा, चाकुले, शालपर्णी, नागेश्वर, दारुहल्दी, रेणुका, लताफटकीमूल, शरपुंखा, नीलवृक्ष, वच, अगुरु, गुडत्वक् (दालचीनी), लौंग और कुंकुम प्रत्येक २ तोला। तांबे अथवा मिट्टी के पात्र मे पका कर ठण्डा होने पर उसके साथ पारद, अभ्रक और गन्धक प्रत्येक २ तोला एवं मधु २ सेर मिला दे। मात्रा–२ तोला। अनुपान–गो दुग्ध। यह घृत बन्ध्या, रजोदोष और जरायु की सब पीडाओं को नाश करता है।

वन्ध्यात्वनाशक योगावली—रविवार के दिन एक गन्धनाकुली वृक्ष को जड़ और पत्तों के साथ उखाड़ कर एक रंग वाली गाय के दूध में किसी कुमारी लड़की द्वारा पेषण करा ले। ऋतु के ३ दिन तक यह कल्क ४ तोले की मात्रा में सेवन कर दूध और मूंग के यूप के साथ शालिधान का अन्न अल्प परिमाण में भोजन करे। शोक, उद्वेग, दिन में सोना, परिश्रम एवं सर्दी और आतप (धूप) बचाकर ७ दिन इस प्रकार का पथ्य पालन करे। इसके द्वारा बन्ध्या रोग दूर होता है।

पीपल, सोंठ, गोलमिर्च और नागेश्वर एकत्र पेषण कर घी के साथ ऋतुकाल में सेवन करने से वन्ध्या पुत्रवती होती है।

पीतझिन्टी का मूल, धाईफूल, वटाङ्कुर और नीलोत्पल एकत्र दूध के साथ पीसकर दूध के साथ सेवन करने से वन्ध्यात्व दोष दूर होता है।

स्वर्ण, रौप्य और ताम्रभस्म समभाग मिलकर ६ रत्ती, गाय के घी के साथ सेवन करने से गर्भाशय का दोष नष्ट होकर गर्भ स्थिति होती है।

श्वेत अपराजिता का मूल भैंस के दूध मे पीसकर भैंस के मक्खन के साथ ऋतुकाल में सेवन करे एवं पूर्वोक्त पथ्यादि का पालन करे। इससे काकवन्ध्या दोष निवृत्त होता है।

वन्ध्या चिकित्सा में व्यवहार्य अनुपान—नीलोत्पल, केशर, नागेश्वर-रेणू, वटांकुर, शतावर का रस, भूम्यामलकी का मूल चूर्ण, गाम्भारी फल, भूमिकुष्माण्ड (विदारीकन्द), शंखपुष्पी, श्वेतवला का मूल, मुलहठी, अशोक मूल की छाल का क्वाथ, लक्ष्मणामूल, गाय का घी आदि।

गर्भिणी रोग-चिकित्सा

गर्भिणी को अजीर्ण या शूल होने पर—

गर्भविलास रस—पारद, गन्धक और तूतिया भस्म समभाग, एकत्र खट्टे नीबू के रस में ३ दिन मर्दन कर त्रिकटु के क्वाथ में ३ भार भावना दे।

मात्रा—४ रत्ती।

अतिसार और प्रदरादिस्राव में—

गर्भचिन्तामणि रस—रससिन्दूर, रौप्य, लौह प्रत्येक २ तोला, कपूर, वङ्ग, ताम्र, जायफल, जावित्री, गोक्षुरबीज, शतावर, बला और श्वेत बला के मूल का चूर्ण प्रत्येक १ तोला, जल मे मर्दन कर २ रत्ती की गोली बनावे। अनुपान—अतिसार में आम और जामुन के छाल का क्वाथ या गन्धप्रसारणी का रस। स्राव मे चावल धोया हुआ जल।

ज्वर में—

गर्भपीयूषबल्लीरस—पारा, गन्धक, स्वर्ण, लोहा, रौप्य, सोनामाखी, हरिताल, वङ्ग और अभ्रक समभाग एकत्र कर ब्राह्मी, अरूसा, भृंगराज, श्वेत

पापड़ा और दशमूल इनके रस में ७ बार पृथक् २ भावना देकर १ रत्ती की गोली बनावे। अनुपान—भूमिकुष्माण्ड (विदारीकन्द), अनन्तमूल, मुलेठी, वला और लोध का क्वाथ।

ज्वर, श्वास, खांसी, शिरःपीडा, हृत्पिण्ड की दुर्बलता और साधारण दुर्बलता में—

इन्दुशेखर रस—शिलाजीत, अभ्रक, रससिन्दूर, प्रवाल, लोह, सोनामाखी और हरिताल प्रत्येक समभाग एकत्र मर्दन कर भृङ्गराज, अर्जुन छाल, निसिन्दा (निर्गुण्डी), अरूसा, स्थलपद्म और कुटज की छाल के रस में भावना देकर २ रत्ती की गोली बनावे। यथायोग्य अनुपान के साथ प्रयोग करे।

ज्वर, शूल, दाह और शोथ आदि पीडाओं में—

वृहत् गर्भचिन्तामणि रस—पारद, गन्धक, स्वर्ण, लोह, रौप्य, सोना-माखी, हरिताल, बङ्ग और अभ्रक समभाग एकत्र लेकर ब्राह्मीशाक, अरूसा, भृङ्गराज, खेतपापड़ा और दशमूल के रस या क्वाथ द्वारा पृथक् पृथक् ७ बार भावना देकर १ रत्ती की गोली बनावे।

गर्भिणी रोग में प्रयोज्य विभिन्न योगावली—

जरायु के शूल में—आकनादि (पाठा), मोथा, हर्रा, सुगन्धबाला, अनन्तमूल और पद्मकाष्ठ इनका शृतकषाय, नीलोत्पल, मृणाल और गाय के दूध के साथ सेवन करे।

ज्वर में—गुरुच और गाम्भारी का क्वाथ चीनी और मधु के साथ अथवा भूमिकुष्माण्ड (विदारीकन्द), अनन्तमूल, मुलेठी, बला, लोध और महुआ, इनका क्वाथ दूध के साथ पीने को दें।

अतिसार में—कुटजछाल, मोथा, देवदारु और दारुहल्दी का क्वाथ पीने को दे अथवा गम्भारी छाल, मुलेठी, अनन्तमूल, मोथा और दारुहल्दी का क्वाथ प्रयोग करे।

गुल्म, उदावर्त्त और शोथ आदि उपसर्गों में—पुनर्नवा और अदरक का क्वाथ रात में पीने को दे।

श्वास-कास में—कुटकी, हर्रा, वामनहाटी (भार्गी), वच और सोंठ का कषाय गुड़ मिश्रित करके पान करने को दे।

वमन में—बड़ी इलायची और बेर की गुठली की मांस (गूदा) को जल में घिस कर उस जल को पीने के लिये दे। हिंचे शाक का रस पान करने पर गर्भिणी का वमन निवृत्त होता है।

अग्निमान्द्य में—वनजवाइन, अश्वगन्धा, पीपल, गजपीपल, जीरा इनका चूर्ण समभाग एक साथ मिलाकर ≈) से ।) भर की मात्रा में गुड़ और मधु के साथ चाटने को दे।

मूत्र की कृच्छ्रता में—गोक्षुर और बला का क्वाथ प्रयोग करे।

वायुवृद्धि में—खसखस और मुलेठी अथवा द्राक्षा और मुलेठी से साधित दूध पीने के लिये दे।

पित्तप्रकोप में—बला, अरूसा की छाल और चाकुले का क्वाथ पीने के लिये दे।

गर्भस्राव निवारणार्थ—पहले महीने में-देवदारु, क्षीरकाकोली, शाकबीज और मुलेठी। दूसरे महीने में-बला, काली तिल्ली, मंजिष्ठा और आमरुल (चांगेरी)। तीसरे महीने मे-नीलोत्पल, क्षीरकाकोली, गुरुच और अनन्तमूल। चौथे महीने में-मुलेठी, वामनहाटी (भार्गी), रास्ना और अनन्तमूल। पांचवे महीने में-गाम्भारी फल, बृहती (बड़ी कटेरी), क्षीरीवृक्ष का शुङ्ग, बल्कल और घृत। छठे महीने में-गाम्भारी, बला, सहिजन, गोक्षुर और चाकुले। सातवे महीने मे-चीनी, मुलेठी; पानीफल, द्राक्षा, मृणाल और केशर इन सब द्रव्यो का कल्क गाय के दूध में पीस कर सेवन करने के लिये दे।

मूढगर्भ में—गर्भिणी के मस्तक में सीज की लेई लगाने से अथवा योनि द्वार मे सांप की केचुल का धुआं देने से अथवा मुलेठी और नीबू की जड़ पीस कर पान करने से मूढगर्भ का सत्वर प्रसव होता है।

अपरा (फूल) निकलने में देरी होने पर—नीबू की जढ या केले की जड़ कमर में वांधने से अथवा अङ्गुलीके अगले भाग मे केश लपेट कर गले के भीतर घर्षण करने से शीघ्र ही अपरा निकल जाती है।

सूतिका रोग चिकित्सा

सूतिकारि रस—पारद, गन्धक, स्वर्ण, चांदी, जायफल, जावित्री, लौंग, इलायची, धाईफूल, कुटज की छाल, इन्द्रयव, आकनादि (पाठा); कुकरोंधा, सोंठ,

वनजवाइन और सोहागा के खील का चूर्ण समभाग एकत्र कर गन्धप्रसारणी के रस में मर्दन कर ४ रत्ती की गोली वनावे। अनुपान—गन्धप्रसारणी का रस।

बृहत् सूतिकावल्लभ रस—पारद, गन्धक, सोनामाखी, अभ्रक, कपूर, स्वर्ण, हरिताल, चांदी, अफीम, जावित्री और जायफल समभाग, एकत्र कर वला और सेमरमूल के रस में भावना देकर २ रत्ती की गोली वनावे। अनुपान—मोथा का रस या गन्धप्रसारणी का रस।

सूतिकान्तक रस—पारद, गन्धक, अभ्रक, लोह, ताम्र, सीसक, लौंग और यवक्षार, प्रत्येक ८ तोला, जायफल, केशुते, त्रिफला, भीमराज, इलायची, मोथा, धाईफूल, इन्द्रयव, आकनादि (पाठा), कुकरोंधा, वेल, सुगन्धवाला, प्रत्येक २ तोला एकत्र चूर्ण कर ४ रत्ती की गोली वनावे। अनुपान—गन्ध प्रसारणी का रस।

महारसशार्दूल—अभ्रक, ताम्र, स्वर्ण, गन्धक, पारद, मनःशिला, सोहागा, यवक्षार, त्रिफला प्रत्येक १ पल, विष ½ तोला, दारचीनी, इलायची, तेजपत्ता, जावित्री, लौंग, जटामांसी, तालिशपत्र, सोनामाखी और रसांजन प्रत्येक ४ तोला, एकत्र गिमे शाक और पान के रस मे भावना दे। कुछ द्रव रहते ८ तोला काली मिर्च का चूर्ण मिश्रित कर २ रत्ती की गोली वनावे। अनुपान—मोथा और गन्धप्रसारणी का रस।

बृहत् गर्भचिन्तामणि रस—पारद, गन्धक, स्वर्ण, लोहा, चांदी, सोना-माखी, हरिताल, वंग, अभ्रक, समभाग एकत्र कर ब्राह्मी शाक, भृंगराज, खेतपापड़ा और दशमूल के रस या क्वाथ में ७ वार भावना देकर १ रत्ती की गोली तैयार करे। इससे सूतिका और गर्भिणी के सव प्रकार के रोग नष्ट होते हैं। इसका उपयुक्त अनुपान के साथ प्रयोग करे।

महाभ्र वटी—अभ्रक, ताम्र, लोह, गन्धक, पारद, मनःशिला, सोहागा, यवक्षार, त्रिफला, प्रत्येक १ पल, विष ४ माशा एकत्र कर गिमे शाक, अरूसा का पत्ता और पान के रस मे क्रमानुसार ७ वार भावना देकर कुछ गीली रहते उसमें १ पल परिमित काली मिर्च का चूर्ण डाल कर अच्छी तरह से घोट ले। तव ४ रत्ती मात्रा की गोली तैयार करे। अनुपान—मोथा, गन्धप्रसारणी या वेल पत्त का रस।

बृहत् रसशार्दूल—पारद १ भाग, गन्धक २ भाग, एकत्र कज्जली बना कर उसके साथ सोना, चांदी, ताम्बा, कांसा, पीतल, सीसा, बंग और लोह इन आठों धातुओं का एक-एक भाग अच्छी तरह से मिश्रित कर ब्राह्मी शाक, जयन्ती पत्ता, निसिन्दा (निर्गुण्डी) पत्ता, मुलेठी, पुनर्नवा, नालुका, अपराजितामूल, आकन्द (आक) मूल, कृष्णचूड़ा का पत्ता, दुरालभा (जवासा), अरूसा और काकमाची इनके रस या क्वाथ द्वारा भावना देकर २ रत्ती मात्रा की गोली तैयार करे। अनुपान-मधु। इन औषधों के सेवन के समय गरम जल पीवे।

सूतिका रोग की प्रवृद्ध अवस्था मे शोथ दिखाई देने पर रसपर्पटी या स्वर्ण-पर्पटी का नियमानुसार प्रयोग करने से उत्कृष्ट फल मिलता है।

सूतिका दशमूल कषाय इस रोग में अतिशय हितकर है। यथा—शालपर्णी, चाकुले, बृहती कण्टकारी, गोक्षुर, नीलझिण्टी, गन्धप्रसारणी, सोंठ, गुरुच और मोथा।

सूतिका रोग का अनुपान—जीराचूर्ण, गन्धप्रसारणी का रस, श्वेतपुनर्नवा का रस, झिण्टी का रस, मोथा का रस या चूर्ण, वेल पत्ते का रस, गुरूच का रस, निसिन्दा (निर्गुण्डी) पत्ते का रस, कालाजीरा, धनिया, गुरुच, मोथा और आतइच (अतीस) का क्वाथ, सूतिकादशमूल कषाय, ह्रीवेरादि कषाय आदि।

शिशुरोग-चिकित्सा

बालकल्याण रस—पारद, गन्धक, स्वर्ण, चांदी, लोहा, अभ्रक, सोहागा, कैथ फल और रससिन्दूर, प्रत्येक समभाग, अदरक के रस में भावना देकर २ रत्ती की गोली बनावे। इसके द्वारा शिशु का ज्वर और कास नष्ट होता है। इसे यथायोग्य अनुपान के साथ प्रयोग करे।

बालरस—पारद, गन्धक १-१ भाग और सोनामाखी आधा भाग एकत्र कज्जली बना कर लोहे के खरल में लोहदण्ड द्वारा क्रमानुसार केशराज, भृङ्गराज और निसिन्दा (निर्गुण्डी) के रस में भावना देकर सरसों के समान गोली तैयार करे। इससे ज्वर और कास आदि उपद्रव दूर होते हैं।

कुमारकल्याण रस—रससिन्दूर, मुक्ता, स्वर्ण, अभ्रक, लौह और सोनामाखी एकत्र कर घृतकुमारी के रस मे मर्दन कर मूंग की दाल बराबर गोली बनावे। ज्वर, अतिसार, कार्श्य, नजर लगना, स्तन का दूध न पीना आदि पीडाओं में इसका प्रयोग करे। अनुपान-दूध और चीनी।

दन्तोद्भेदगदान्तक—पीपल, पीपल वृक्ष की जड़, चव्य, चीतामूल, सोंठ, वन जवाइन, जवाइन, हल्दी, मुलेठी, देवदारु, विडङ्ग, इलायची, नागेश्वर, मोथा, शटी (कचूर), कुकरोधा, विडलवण, अभ्रक, लोह और सोनामाखी, इन सव द्रव्यो को एकत्र कर २ रत्ती की गोली वनावे। इसके सेवन से वच्चों के दांत निकलने के समय होनेवाले ज्वर और अतिसार आदि उपद्रव प्रशमित होते हैं।

विभिन्न उपद्रवों में व्यवहार्य योगावली—

ज्वर में—नागरमोथा, हर्रा, नीमछाल, परवल के पत्ते और मुलेठी का क्वाथ प्रयोग करे।

अतिसार में—मोथा, पीपल, आतइच (अतीस) और कुकरोधा का चूर्ण समभाग मधु के साथ चाटे।

प्रवाहिका में—लाई और मुलेठी का चूर्ण एवं चीनी और मधु धोये हुए चावल जल के साथ सेवन करे।

श्वास और कास में—कुडा, आतइच (अतीस), कुकरोधा, पीपल और दुरालभा (जवासा) चूर्ण समभाग एकत्र कर मधु के साथ वालक को चटावे अथवा द्राक्षा, अड्सा, पीपल, कुकरोधा और अतीस इनका क्वाथ सेवन करावे।

हिचकी और वमन में—कुटकी का चूर्ण मधु के साथ चटावे।

दूध के वमन में—आम की गुठली का गूदा, लाई और सेंधानमक मधु के साथ सेवन करने को दे।

मूत्राघात में—पीपल, कालीमिर्च, चीनी, छोटी इलायची और सेंधानमक का चूर्ण मधु के साथ चटावे।

नाभिपाक में—छागविष्ठा भस्म (वकरे की लेड़ी की भस्म), नाभि मे लगाने से आरोग्य होता है।

नाभिशोथ में—मृत्पिण्ड आग में गरम कर और दूध मे उबाल कर गरम रहते ही उससे नाभि में स्वेद (सेक) दे।

क्लैव्य (नपुंसक रोग)-चिकित्सा

वृहत् चन्द्रोदयरस—स्वर्णपत्र १ पल, पारद ८ पल, एकत्र अच्छी तरह से मर्दन कर उसके साथ १६ पल गन्धक मिलाकर कज्जली बनावे एवं लाल कपास के फूल और घृतकुमारी के रस में भावना देकर मर्दन कर सुखा ले।

वाद में उक्त कज्जली को समतल बोतल के भीतर रख कर बोतल के मुख को काग से वन्द कर रेती से भरे हुए हाण्डी के अन्दर बैठाकर बोतल के गले तक रेती भर दे। वाद में क्रमवर्द्धमान अग्नि में लगातार ३ दिन तक गरम कर बोतल के गले में संलग्न मकरध्वज को निकाल ले। इस तरह से प्रस्तुत मकरध्वज १ पल, कपूर १ पल, जायफल, पीपल, लौंग प्रत्येक ४ पल, कस्तूरी आधा तोला, एकत्र मर्दन कर ले। मात्रा–१ रत्ती से २ रत्ती। अनुपान—पान का रस।

कामिनीदर्पघ्न—पारद १ तोला, गन्धक १ तोला एकत्र कज्जली कर धतूरे के वीज का चूर्ण २ तोला मिलाकर धतूरे के तेल के साथ मर्दन कर २ रत्ती मात्रा की गोली वनावे। अनुपान—दूध।

अनन्तकुसुमाकर—स्वर्ण, मोती, कस्तूरी और हरिताल प्रत्येक १ तोला, घृतकुमारी के रस के साथ मर्दन कर २ रत्ती की गोली वनावे। अनुपान—घी और मधु।

सिद्धसूत—मोती, पारा, सोना, चांदी, यवक्षार, प्रत्येक १ तोला एकत्र कर लालउत्पल (कमल) के पत्ते के रस में मर्दन कर उसके साथ १ तोला गन्धक मिला कर मर्दन करे। वाद में वालुकायंत्र में पाक करे। मात्रा–२ रत्ती। अनुपान—सतावर का रस और चीनी।

कामाग्निसन्दीपन—पारद, गन्धक, हिंगुल, मनःशिला प्रत्येक १ पल एकत्र मर्दन कर क्रमानुसार अदरक, धतूरे के वीज, सफेद जयन्ती और भृंगराज के रस में क्रमशः ७–७ बार भावना देकर बोतल मे भर कर वालुकायंत्र में पकावे। वाद मे उसके साथ समभाग मिलित इलायची, जायफल, कपूर, कस्तूरी, पीपल और अश्वगन्धा मिश्रित कर मर्दन करे। मात्रा–२ रत्ती।

श्रीमदनानन्द मोदक—पारद, गन्धक, लोह, प्रत्येक १ तोला, अभ्रक ३ तोला, कपूर, सेंधानमक, जटामांसी, आंवला, इलायची, सोंठ, पीपल, काली मिर्च, जावित्री, जायफल, तेजपत्ता, लौंग, जीरा, मुलेठी, वच, कुड़ा, हलदी, देवदारु, हिज्जलवीज, सोहागा, वामनहाटी (भारंगी), सोंठ, नागेश्वर, कुकरौंधा, तालीशपत्र, द्राक्षा, चीतामूल, दन्ती वीज, बला, नागवला, गुडत्वक् (दालचीनी), धनिया, गजपिप्पली, शटी (कचूर), सुगन्धवाला, मोथा, गन्धप्रसारणी, भूमिकुष्माण्ड (विदारीकन्द), शतमूल (शतावर) मूल, आलकुशी (कौंच) वीज, गोक्षुर वीज,

विड्‌ड़ङ्क वोज, भांग का बीज, प्रत्येक का चूर्ण १ तोला। इन सबों को एकत्र कर शतावर के रस मे मर्दन कर सुखा ले, फिर चूर्ण करे। बाद में उसके साथ सर्व चूर्ण का ¼ भाग सेमर के मूल का चूर्ण एवं उसके साथ सारे चूर्ण का ½ भाग भाग का चूर्ण एकत्र मिला कर बकरी के दूध में पेषण करे। बाद मे चूर्ण का दुगुना शक्कर और ८ गुना दूध मिलाकर मृदु अग्नि में पकावे। कुछ देर बाद गुडत्वक् (दालचीनी), तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, कपूर, सेंधानमक, त्रिकटु, इनका कुछ चूर्ण एवं घी और मधु मिलाकर रखे। मात्रा—आधा तोला। अनुपान—गरम दूध। यह औषध सेवन के बाद बलकर और पुष्टिकर भोजन खाने से उत्तम फल मिलता है। धतूरा बीज, तिल्ली, घी, गाय का घी और शक्कर के साथ खीर बना कर अनुपान करने से बलवीर्य और रतिशक्ति अत्यन्त बढ़ती है।

क्लैब्यनाशक योगावली—भूसी रहित काली तिल्ली और गोक्षुरबीज का चूर्ण समपरिमाण में लेकर बकरी के दूध में उबाल कर ठण्ढा होने पर अर्द्ध तोला की मात्रा में मधु के साथ सेवन करे। इसके सेवन से खराब खराब औषध प्रयोग के फल से उत्पन्न क्लैब्य (नपुंसकता) नष्ट होता है।

शूकर की चर्वी को मधु के साथ मिलाकर लिंग में मलने से ध्वजभङ्ग निवृत्त होता है।

वाजीकरणाधिकार

वाजीकरण चिकित्सा का पूर्वक्रम—देह को वमन और विरेचनादि द्वारा शुद्ध कर वाजीकरण औषध सेवन करना चाहिये। सोलह से सत्तर वर्ष की उम्र तक अवस्थानुसार वाजीकरण औषध सेवन करना आवश्यक है। वाजीकरण ओषधियां ठीक नियम से सेवन न कर अत्यधिक स्त्रीसहवास करने से नपुंसकता, क्षय आदि विविध रोग उत्पन्न होते हैं।

खाद्य द्रव्यों मे दूध, मांसरस और मधुर रसयुक्त भोजन अतिशय पुष्टिकर है, इसलिए वाजीकरणार्थी व्यक्तियों को उपयुक्त मात्रा मे इन्हें ग्रहण करना चाहिए।

वाजीकरणार्थी व्यक्ति उपवास, चिन्ता, शोक, अति अम्ल, लवण, क्षार द्रव्य, शाक, तिक्त और कटु द्रव्य परित्याग करे।

बाजीकरणार्थ रसप्रयोग चिकित्सा

मन्मथाभ्र रस—पारद, गन्धक, अभ्रक प्रत्येक ४ तोला, कपूर आधा तोला, वंग १ तोला, तांवा आधा तोला, लोहा २ तोला, विड्ङ्क बीज, जीरा, भूमिकुष्माण्ड (विदारीकन्द), शतावर, कुलेखाडा (तालमखाना) का बीज, बला, आलकुशी (कौंच) बीज, नागबला, जावित्री, जायफल, लौंग, भांग का बीज, सफेद धूप और जवाइन प्रत्येक आधा तोला। इन्हें जल में मर्दन कर २ रत्ती की गोली बनावे। अनुपान–गुनगुना दूध।

महेश्वररस—रससिन्दूर १ तोला, गन्धक १ तोला, लोह ४ तोला, तांवा आधा तोला, सोना २ माशा, कपूर २ माशा, अभ्रक ४ तोला, विड्ङ्क बीज, शतावर, बला, नागबला, इलायची और शंखपुष्पी प्रत्येक ४ माशा, जल से मर्दन कर १ रत्ती की गोली बनावे। अनुपान–गाय का दूध।

कामदेवरस—पारद १ भाग, सोना $\frac{1}{8}$ भाग एकत्र सेमर के मूल के रस, केले की जड़ का रस, दूध, गन्ने का रस, गव्य घृत, मधु, केले के फूल का रस और गोक्षुर के क्वाथ के साथ बार-बार मर्दन कर धूप मे सुखा दे। बाद में उसके साथ चीनी, आंवला, द्राक्षा, तालमूली, उड़द, मधु और पका केला मिलाकर आधा तोला की मात्रा में गोली बनावे। अनुपान–गाय का दूध।

पुष्पधन्वारस—सोना, चादी और तावा प्रत्येक १ भाग, केले की जड़ के साथ पीस कर गोला बनाकर भूधरयन्त्र मे पाक करे। पाक समाप्त होने पर इसमें तिगुना गंधक और तिगुना कान्तलोह मिलाकर सेमर के मूल के रस और मुलेठी के क्वाथ के साथ एक पक्ष (१५ दिन) तक मर्दन करे। बाद में पान के रस के साथ १ प्रहर तक मर्दन करे। मात्रा–तीन रत्ती। अनुपान–भूमिकुष्माण्ड (विदारी-कन्द) चूर्ण और मधु।

अनंगसुन्दररस—समपरिमित पारद और गन्धक की कज्जली कर शुंदि फूल के रस मे तीन दिन पीसकर गोला तैयार करे। फिर गोले को मूषारुद्ध कर वालुकायन्त्र मे एक प्रहर तक पकावे। बाद में औषध को बाहर निकाल कर लालवकफूल के रस और सफेद कमलफूल के रस में एक-एक दिन मर्दन कर २ रत्ती मात्रा में सेवन करे।

मदनसुन्दर—समपरिमित पारद और गन्धक हेला फूल के रस में मर्दन कर वालुकायन्त्र में पाक कर ले। मात्रा–१ रत्ती। अनुपान–सेमर के मूल का चूर्ण और मधु।

पूर्णचन्द्ररस—पारद और गन्धक समभाग, एकत्र अश्वगन्धा, गुरुच और मुलेठी के क्वाथ के साथ एक दिन मर्दन कर उसके साथ, शंख, मोती और मंडूरभस्म प्रत्येक पारद के बराबर मिलाकर पुनः भूमिकुष्माण्ड (विदारीकन्द) के रस में एक दिन मर्दन कर गोला तैयार कर ले। उसके बाद भूधरयन्त्र में पुटपाक कर पान के रस से एक दिन मर्दन कर चूर्ण बना ले। मात्रा–१–२ रत्ती। अनुपान–घी और मधु।

कामदीपक रस—श्वेत पुनर्नवा मूल चूर्ण कर सेमर के रस मे भावना देकर उसके साथ सेमल की लेई और गन्धक समभाग मिलाकर ६ रत्ती की गोली बनावे। अनुपान—गाय का दूध।

कामदूत रस—पारद, गन्धक, कान्तलोह भस्म समभाग मे एकत्र कर सेमर के रस मे एक प्रहर तक घोट कर गोला बनावे। वाद मे उसे घी के साथ काच की चिमनी के भीतर रख कर पकावे। शीतल हो जाने पर भूमिकुष्माण्ड (विदारी कन्द) और पान के स्वरस के साथ मर्दन करे। मात्रा–४ रत्ती। घी और मधु के साथ सेवन कर दूध और शक्कर का अनुपान करे।

कामेश्वरमोदक—अभ्रक, कैथ, कुड़ा, अश्वगन्धा, वच, मेथी, मोचरस, भूमिकुष्माण्ड (विदारीकन्द), तालमूली, गोक्षुर, कोकिलाक्ष बीज, केले की जड़, शतावर, वनजवाइन, उड़द, तिल्ली, धनिया, मुलेठी, नागबला, कसेरू, मदन फल, जायफल, सेंधानमक, भृङ्गराज, कुकरोधा, त्रिकटु, जीरा, काला जीरा, चीतामूल, दारचीनी, इलायची, तेजपत्ता, नागकेशर, पुनर्नवा, गजपिप्पली, द्राक्षा, जटा (कचूर), सुगन्धवाला, सेमरमूल, त्रिफला और आलकुशी (कौंच) बीज प्रत्येक समभाग, उन सबके वरावर भांग समष्टि की दुगुनी चीनी एकत्र घी और मधु के साथ मिलाकर रखले। मात्रा–½ तोला। गरम दूध के साथ सेवन करे।

मकरध्वजरस—स्वर्णपत्र १ पल, पारद ८ पल, गन्धक २४ पल, एकत्र लाल कपास का फूल और घृतकुमारी के रस में घोंट कर कज्जली वनावे। वाद में काँच बोतल में भर कर बोतल के मुख को ढक्कन से वन्द कर रेती से भरे

हुए हाण्डी में बोतल के गले तक रखकर क्रमवर्द्धमान अग्नि में ३ दिन गरम करे। गलदेश में संलग्न लाल मकरध्वज ग्रहण कर उसे १ पल और कपूर, लौंग, कालीमिर्च, जायफल प्रत्येक ४ तोला और मृगनाभि (कस्तूरी) ६ माशा एकत्र कर मर्दन करे। मात्रा–२ रत्ती। अनुपान—पान का रस।

रसेन्द्रचूडामणि—पारद १ भाग, स्वर्ण २ भाग, सीसक ३ भाग, अभ्रक ४ भाग, कान्तलोह ६ भाग, सोनामाखी ७ भाग, विमलभस्म ८ भाग और रौप्यमाक्षिक ९ भाग। ये सब द्रव्य एकत्र मिश्रित कर क्रमानुसार ७ वार धतूरा पत्ता, भांग, पीपल, गुरुच, वामनहाटी (भार्गी), लताफठकी, लज्जालु लता, मोथा, मुलेठी, सतावर, आलकुशी (कौंच) और सर्पाक्षी के रस या क्वाथ में भावना दे। वाद में उसके साथ आधा भाग अफीम मिलाकर फिर तुलसीमञ्जरी, चन्दन, आकमूल, अकरकरा, पीपल और मुण्डिरी के रस या क्वाथ एवं कुंकुम (केशर) और मृगनाभि (कस्तूरी) के जल में भावना दे। इसकी मात्रा–१ माशा। दूध और चीनी के साथ सेवन करे। औषध सेवन के वाद दूध का पान करे। यह अतिशय कामोद्दीपक और वीर्यस्तम्भक है।

बाजीकरणार्थ विभिन्न योगावली—

(१) वकरे का अण्डकोष कुछ पीपल और सेंधानमक के साथ गाय के घी में तल कर सेवन करने से रतिशक्ति अत्यन्त बढ़ती है।

(२) बकरे के अण्डकोष के साथ दूध पाककर उस दूध में तिल तण्डुल (छिलका निकाला हुआ तिल) का ७ बार भावना दे। मात्रा–आधा तोला से १ तोला। घी और मधु के साथ सेवन करे। यह अत्यन्त रतिशक्तिवर्धक है।

(३) नरम सेमल मूल और तालमूली चूर्ण समपरिमाण में घी और मधु के साथ चाट कर ऊपर से दूध पीने से वीर्य वढता है।

(४) भूमिकुष्माण्ड (विदारीकन्द) का चूर्ण, भूमिकुष्माण्ड के रस में ७ वार भावना देकर छाया में सुखा ले। मात्रा–१ तोला। अनुपान—घी और मधु।

(५) आलकुशी (कौंच) वीज और कोकिलाक्ष वीज के चूर्ण को सम परिमाण में मधु और चीनी के साथ मिलाकर गुनगुने दूध के साथ सेवन करने से अटूट रति शक्ति उत्पन्न होती है।

(६) २ तोला मुलेठी का चूर्ण घी और मधु के साथ सेवन कर दूध पीने से कामवेग वढता है।

(७) हर्रा, शिलाजीत और विडङ्ग चूर्ण समभाग मिलाकर १ तोला, इसे लेकर घी के साथ लेहन करने से बूढ़ा भी जवान हो जाता है अर्थात् उसकी मैथुन करने की शक्ति उत्पन्न होती है।

(८) आवले का चूर्ण आंवले के स्वरस मे ७ दिन तक भावना देकर एक तोले की मात्रा में घी और मधु के साथ लेहन कर दूध का अनुपान करे। यह अतिशय वलकारक है।

(९) हस्तिकर्णपलाश मूल के चूर्ण को सबेरे मधु के साथ उपयुक्त समय तक सेवन करने से रतिशक्ति अत्यन्त वढती है।

(१०) रससिन्दूर और मधु एकत्र मिलाकर लिंग मे लेप करने से मैथुन शक्ति वढती है।

(११) कपूर, पारद, सोहागा, पीपल, घृत और कोचई ये सब द्रव्य एकत्र मधु, धतूरे के पत्ते के रस और वक पत्ते के रस के साथ मिश्रित कर लिग में लेप करने से कामिनीगण द्रवित हो जाती है।

कामधेनु—स्वर्ण, अभ्रसत्त्व, ताम्र प्रत्येक १ पल, सीसक सत्त्व २ तोला एकत्र ये सव द्रवीभूत कर उसके साथ २० पल पारद मिश्रित कर पिष्टि प्रस्तुत करे। उसे पातनयंत्र में पातित कर पुनः पुनः इन सब द्रव्यो के साथ मिलाकर क्रमानुसार सौ वार पातित करे। इस तरह से २ पल पारद अवशिष्ट रहने पर उसे यथाविधि भस्म कर १ पल परिमित भस्म के साथ हीरक भस्म ४ माशा, अभ्रकभस्म ६ पल और गन्धक २ पल एकत्र मिश्रित कर दो दिन मर्दन करे। वाद में लोहे के पात्र में रखकर सेमल का क्वाथ चालीस पल थोड़ा २ करके प्रक्षेप देकर मृदु अग्नि मे जारित कर ले। इसकी मात्रा—१ रत्ती। वाजीकरण औषध समूह में यह श्रेष्ठ है। एवं इसके सेवन से अनेक उत्कट और दुःसाध्य रोग निवृत्त होते हैं।

कामाङ्गनानायकरस—पारद और गन्धक समभाग एकत्र रक्तोत्पल रस के साथ १ प्रहर तक मर्दन कर आधा भाग गन्वक मिलाकर ३ रत्ती की गोली बनावे। चीनी के साथ सेवन कर भांग की जड़, तालमूली और चीनी-दूध के साथ अनुपान करे। एवं चितर पक्षी का मांस भोजन करे।

कामकलाख्यरस—पारद, अभ्रक और सोना समभाग एकत्र लेकर अश्वगन्धा, गुरुच, तालमूली और केले की जड़ के रस में एक दिन मर्दन कर मृदु अग्नि मे पुटपाक करे। इस तरह से ८ वार पुटपाक कर १ माशे की मात्रा में सेमर के रस के साथ सेवन कर आलकुशी (कौंच) बीज चूर्ण और दूध के साथ अनुपान करे।

कुसुमायुध—पारद २ पल, गन्धक ४ पल, सोना ६ तोला, रौप्यमाक्षिक, स्वर्णमाक्षिक और लोहा प्रत्येक २ पल, मण्डूर और अभ्रक प्रत्येक २ तोला एकत्र हिंगुल के साथ मर्दन कर अनावृत मूषा मे रख दे और बालुकायंत्र में ब्राह्मीरस के साथ एक दिन पाक कर ले। बाद मे अरूसा, गजपिप्पली, त्रिकटु, लोह, अदरक, निसिन्दा (निर्गुण्डी), तालमूली, हाथीशुंडा और चीतामूल प्रत्येक के रस या क्वाथ में क्रमानुसार ३ दिन पाक करे। बाद में पुनः इन सब रसों के साथ मर्दन कर १-१ वार पुटपाक कर ले। मात्रा-६ रत्ती। अनुपान—सेमर मूल का रस। यह परम वाजीकरण औषध है।

बाजीकरण औषध के साथ प्रयोज्य अनुपान—अश्वगन्धामूल चूर्ण, भूमिकुष्माण्ड (विदारीकन्द), शतावर चूर्ण, सेमर मूल चूर्ण, सेमर फूल चूर्ण, आंवले का चूर्ण, मुलेठी चूर्ण, कुलेखाड़ा (तालमखाना) के बीज का चूर्ण, भांग बीज का चूर्ण, आलकुशी (कौंच) बीज का चूर्ण, उड़द का चूर्ण, श्वेत पुनर्नवा के मूल का चूर्ण, तालमूली, जायफल, मृगनाभि (कस्तूरी), पान का रस, गोक्षुर रस, गोक्षुर बीज, कपूर, घी और मधु एवं दूध, मक्खन आदि।

रसायन

जो औषध जरानिवारक और वयःस्तम्भक है एवं जिसके सेवन से आयु, स्मृति, मेधा, बल और वर्ण की वृद्धि होती है और इन्द्रियशक्ति की दुर्बलता नष्ट होती है उसे रसायन कहते हैं।

रसायन औषध सेवन करने के प्रथम वमन-विरेचनादि द्वारा शरीर शोधन कर लेना अत्यावश्यक है।

त्रैलोक्यचिन्तामणि—पारद, हीरक, सोना, चांदी, तांबा, लोहा, मोती, गन्धक, शंख, प्रवाल, हरिताल और मैनशिल समभाग एकत्र चीतामूल के रस में ७ दिन एवं आक की लेई, निसिन्दा (निर्गुण्डी) के रस, कोचई के रस और

सिज की लेई में ३ दिन भावना देकर पीले रंग की कौडियों के भीतर रख दे। आक की लेई मे सोहागा मर्दन कर उसके द्वारा कौडियों का मुख बन्द कर दे। बाद मे कौडियो को भाण्ड के भीतर रखकर मुख को ढक कर बालुकायन्त्र में पाक करे। ठण्ढा होने पर चूर्ण कर उसके साथ समपरिमाण रससिन्दूर और सिन्दूर की चौथाई भाग पुखराज मिलाकर सहिजन के रस में ७ बार और चीतामूल के रस मे २१ बार भावना देवे। मात्रा-२ रत्ती। उपयुक्त अनुपान के साथ सेवन करने से साध्य-असाध्य और विविध प्रकार के रोग नष्ट होते है।

उदयादित्यरस—पारद १ पल, गन्धक २ पल, २० प्रसृति परिमित अदरक के रस के साथ मर्दन कर तांबे की मूषा में रुद्ध करे फिर मिट्टी से लिप्त कर पुटपाक कर १ रत्ती की मात्रा में घी और सोठ चूर्ण के साथ सेवन करे। एवं १ प्रसृति गरम पानी पीवे। यह जराप्रतिरोधक है।

लक्ष्मीविलास—सीसक ४ भाग, पारद १ भाग, गन्धक २ भाग, त्रिकटु चूर्ण ८ भाग, तिन्दुक (गाव) ६ भाग, सोहागा ८ भाग ये सब द्रव्य भृंगराज, अदरक, गुंजा और जवाइन के रस या क्वाथ के साथ ३ बार भावना देकर आक के पत्ते से लपेट कर, उसे सुखाकर ६ रत्ती मात्रा मे भृंगराज के रस के साथ सेवन करे।

कान्ताभ्ररसायन—जारित अभ्रक और कान्तलोह भस्म समभाग एकत्र अदरक के रस के साथ मर्दन कर सोलहवां भाग स्वर्ण भस्म मिलाकर नीबू के रस मे ७ दिन मर्दन करे। बाद में अरूसा के रस, मुण्डिरी के रस, तालमूली के रस और दशमूल के क्वाथ द्वारा सौ बार भावना देवे। मात्रा-२ रत्ती। अनुपान-त्रिकटु और त्रिफला चूर्ण एवं घी और मधु। इसके सेवन से पाण्डु, शोथ, उदररोग, ग्रहणी, क्षय, कास, जीर्ण ज्वर और विषम ज्वर एवं प्रमेह आदि अनेक रोग नष्ट होते हैं।

कमलाविलास रस—लोहा, अभ्रक, गन्धक, पारद, सोना और हीरा, इन सब द्रव्यों को घृतकुमारी के रस में मर्दन कर पके एरण्ड के पत्ते से अच्छी तरह बांध कर ३ दिन धान के ढेर के भीतर गाड़ कर रख दे। इसकी मात्रा-२ रत्ती। अनुपान-त्रिफला चूर्ण और मधु। यह जरा, कास, पाण्डु और प्रमेह [illegible] है।

कार्श्यहर लोह—श्वेत पुनर्नवा, दन्तीमूल, अश्वगन्धा, हर्रा, वहेड़ा, आंवला, सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, शतावर, वला इनका चूर्ण समभाग एवं समुदित चूर्ण का समपरिमाण लोहा मिलाकर ६ रत्ती की गोली बनावे। अनुपान—भीमराज का रस। यह वल, वर्ण, अग्नि और वीर्यवर्द्धक है।

वृहत् पूर्णचन्द्ररस—पारद, गन्धक प्रत्येक ४ भाग, लोहा, अभ्रक प्रत्येक ८ भाग, चांदी २ भाग, वंग ४ भाग, सोना, तांवा और कांसा प्रत्येक १ भाग, जातीफल, लौंग, इलायची, दालचीनी, जीरा, कपूर, प्रियङ्गु, मोथा प्रत्येक २ भाग एकत्र घृतकुमारी के रस में मर्दन कर त्रिफला के क्वाथ और एरण्डमूल के रस में भावना देकर एरण्ड के पत्ते से लपेट कर ३ दिन धान की राशि के भीतर गाड़ कर रख दे। चने के समान गोली बनाकर पान के रस के साथ सेवन करे। यह उत्कृष्ट वाजीकरण और रसायन है।

श्रीमहालक्ष्मीविलास रस—अभ्रक ८ तोला, गन्धक, पारद ४-४ तोला, वंग २ तोला, चांदी, सोनामाखी १-१ तोला और तांवा आधा तोला, कपूर, जावित्री और जायफल प्रत्येक ४ तोला, विद्धडक वीज, धतूरे का वीज प्रत्येक २ तोला, सोना १ तोला एकत्र पान के रस में मर्दन कर २ रत्ती की गोली वनावे। अनुपान—दूध। यह पुष्टिवर्द्धक है।

रसायनार्थ लोहसेवन की विधि—

मृत्युहारी रस—तिल के समान मोटे लोहे के पत्र का टुकड़ा-टुकड़ा कर उसे २१ वार तिल की लकड़ी की अग्नि में गरम करे एवं आवले के रस में निर्वापित करे। वाद में इस लोहे के पत्र को एक सौ पल परिमित आंवले के रस में डुवा कर एक हाण्डी में रख दे एवं हाण्डी को ढक कर भस्म राशि के भीतर रख दे। प्रत्येक महीने में लोहदण्ड द्वारा इस लोहे के पत्र को एक वार हिलावे एवं आवले का रस सूख जाने पर फिर उसमें रस निक्षेप करे। एक साल के भीतर उक्त लोह द्रवीभूत हो जायगा। वाद में उसे वाहर निकाल कर चौथाई तोले की मात्रा में लोहे के वर्त्तन में घी और मधु के साथ मिलाकर सेवन करे। औषध जीर्ण होने पर घी, दूध, मांसरस, मूंग का यूष आदि पथ्य करे। इस प्रकार से १ वर्ष औषध सेवन कर, फिर एक वर्ष हितकर पथ्य भोजन कर संयमी

होकर कुटीगृह में रहने से मनुष्य जरा के हाथ से छुटकारा पाता है और सुदीर्घ जीवन का अधिकारी होता है।

लौहगुग्गुलु—लोहा ८ तोला, गुग्गुलु २४ तोला, त्रिकटु ४० तोला एवं त्रिफला १ सेर, इन सब द्रव्यों का चूर्ण बनाकर मिलित २ तोले की मात्रा में घी और मधु के साथ सेवन करने से दीर्घ जीवन लाभ होता है।

पारद भस्म १ भाग, स्वर्ण भस्म १/४ भाग, इन सब द्रव्यों को क्रमानुसार ब्राह्मी, भीमराज, शंखपुष्पी, मुलेठी, हस्तिकर्णपलाश और आवले के स्वरस या क्वाथ में भावना देकर १ रत्ती की मात्रा मे घी और मधु के साथ प्रतिदिन सेवन करने से जरा नष्ट होती है।

वज्रपंजर रस—समपरिमित पारद और हीरक भस्म एकत्र खुलकुड़ि (मंडूकपर्णी) के रस मे मर्दन कर पुटपाक करे। उसके बाद समपरिमित पारद के साथ मर्दन कर फिर पुटपाक करे। फिर चतुर्थांश परिमित यह भस्म कांजी के साथ मर्दन कर उससे स्वर्णपत्र को लेप कर उसका भस्म बना ले। आधा सरसों की मात्रा में चीतामूल, अदरक, सेंधानमक, वच और सौवर्चल लवण के साथ इसे सेवन करे एवं क्रमशः मात्रा बढ़ाकर १ तोले तक सेवन करे। इसे यथाविधि सेवन करने पर मानव जरा और वार्द्धक्य द्वारा पीडित नही होता है।

वसन्तकुसुमाकररस—प्रवाल, रससिन्दूर, मोती, अभ्रक प्रत्येक ४ भाग, चांदी, सोना प्रत्येक २ भाग, लोहा, सीसा, वंग प्रत्येक ३ भाग, इन सब को एकत्र कर अरूसा, हल्दी, गन्ना, पद्म, मालतीफूल और केले मूल के रस, दूध और चन्दन के क्वाथ में एवं मृगनाभि (कस्तूरी) के साथ ७ वार भावना देकर २ रत्ती की गोली बनावे। यथायोग्य अनुपान के साथ प्रयोग करे।

अष्टावक्ररस—पारद १ भाग, गन्धक २ भाग, सोना, चांदी १–१ भाग, सीसा, तावा, खर्पर और वङ्ग प्रत्येक १/२ भाग, इन सवको एकत्र मिलाकर वटाङ्कुर के रस और घृतकुमारी के रस में तीन २ घण्टे तक मर्दन कर मकरध्वज विधि के अनुसार पाक कर ले। मात्रा–२ रत्ती। पान के रस के साथ सेवन करे।

अमृतार्णवरस—रससिन्दूर ४ भाग, लौह ८ भाग, अभ्रक ६ भाग, गन्धक ५ भाग, इन सब द्रव्यों को एकत्र कर त्रिफला, भीमराज, सहिजन, चीता और कुटकी के क्वाथ में पृथक्–पृथक् ७ वार भावना देकर इन सवों के वरावर

पीपल चूर्ण और पुराना गुड़ मिला ले। मात्रा—१ तोला, फिन्टी के रस और गुड़ के साथ सेवन करने से जरा निवृत्त होती है।

मकरध्वज रसायन—स्वर्ण २ भाग, वङ्ग, मोती, कान्तलोह, जायफल, जावित्री, चांदी, कांसा, रससिन्दूर, प्रवाल, कस्तूरी, कपूर और अभ्रक प्रत्येक १ भाग, रससिन्दूर ४ भाग एकत्र अच्छी तरह से मर्दन करे। मात्रा-२ रत्ती। अनुपान—पान का रस। यह श्रेष्ठ रसायन है।

चन्द्रोदयरस—मृदु स्वर्णपत्र १ पल, पारद ८ पल, गन्धक १६ पल, इन ३ वस्तुओं को एकत्र मर्दन कर लाल कपास के फूल एवं घृतकुमारी के रस के साथ अच्छी तरह से पेपण कर सुखा ले। वाद मे मिट्टी लेप किये हुए कपड़े के टुकडे से लपेट कर सूर्यकिरण से उतप्त वोतल के भीतर उक्त कज्जली को रख कर लकड़ी के ढक्कन से मुख वन्द कर दे। एवं वालुकायन्त्र मे तीन दिन पाक कर ठण्ढा होने पर निकाल ले। इस प्रकार तैयार किया हुआ रस सिन्दूर, कपूर, जातीफल, पीपल, लौंग प्रत्येक ८ तोला, कस्तूरी आधा तोला एकत्र मर्दन कर दो रत्ती की गोली वनावे। अनुपान-पान का रस और मधु।

महाकनकसुन्दर—कान्तलोह, स्वर्ण और गन्धक के सहयोग से जारित पारद १६ माशा, स्वर्ण ४ माशा, एकत्र कान्तलोह के पात्र में रख कर उसमें ५० निष्क (२०० माशा) गन्धक चूर्ण निक्षेप कर वेर की लकड़ी की अग्नि मे जारित कर ले। वाद में उक्त पारदचूर्ण ४ माशा लेकर घृत भावित और मधु से भरे हुए भाण्ड में रख दे। वाद में ३६० हर्रे को नियमानुसार पकाकर उल्लिखित भाण्ड में रख दे। पहले इन हर्रों में हर एक हर्रे को तीन भागों मे विभक्त कर १ भाग २ दिन में, दूसरा १ भाग तीन दिन में और शेष १ भाग को ४ दिन में खावे फिर प्रतिदिन एक हर्रे खावे। यह अति उत्कृष्ट रसायन और जरानाशक है।

रसायनार्थ विभिन्न योगावली—

ऋतु हरीतकी—ग्रीष्म में गुड़, वर्षा में सेंधानमक, शरद् में चीनी, हेमन्त में सोंठ, शीत में पिप्पली और वसन्त काल में मधु के साथ हर्रा सेवन करने से जरा दूर होकर वल-वीर्यादि वढ़ता है।

भृंगराज चूर्ण १ भाग, तिल आधा भाग, आंवला आधा भाग एक साथ मिश्रित कर शक्कर के साथ सेवन करने से रसायन क्रिया होती है।

सफेद पुनर्नवा आधा पल, गाय के दूध में पीस कर तीन महीने तक नियम-पूर्वक सेवन करने से यौवन स्थिर रहता है।

दुग्धाशी होकर एक महीने तक भृंगराज का रस आधा पल की मात्रा में पान करने से उत्तम रसायन क्रिया होती है।

शतावर, मुण्डिरी, गुरुच, हस्तिकर्ण पलाश और तालमूली इन सब द्रव्यों को समभाग में एकत्र मिलाकर घी और मधु के साथ सेवन करने से जरा, व्याधि और अकाल मृत्यु के पंजे से छुटकारा मिल सकता है।

गुरुच का स्वरस, ब्राह्मी का स्वरस, मुलेठी का चूर्ण, मूल-पुष्प समन्वित शङ्खपुष्पी का कल्क, ये सब द्रव्य रसायन हैं।

विष चिकित्सा

श्रीमरुद्ध रस—पारद १ तोला, गन्धक १ तोला, अभ्रक २ तोला, कान्त-लोह १ तोला एकत्र कर राखालशशा (इन्द्रायण) के मूल, वृहती (बड़ी कटेरी), ब्राह्मी शाक, नीलोत्पल, अनार, शूकशिम्बी एवं शतावर के रस से पृथक्-पृथक् भावना देकर १ रत्ती की गोली बनावे। अनुपान—शीतल जल। इसके सेवन से कुत्ते और सियार द्वारा काटे हुए विष एवं अन्यान्य विषक्रिया भी विनष्ट होती है।

विषवज्रपात रस—हलदी, सोहागा, जावित्री, तूतिया समभाग में लेकर घोपाफल के रस द्वारा मर्दन कर चौथाई तोला से ½ तोला की मात्रा में नरमूत्र या गोमूत्र के साथ सेवन करने से सर्पदंश जनित विष एवं स्थावर विष नष्ट होते हैं।

मृतसंजीवन रस—पिडिशाक, कैवर्त्तमुस्ता (केवटी मोथा), गेटेला, सौराष्ट्रमृत्तिका, शैलज, गोरोचना, तगरपादुका, गन्धतृण, कुंकुम, जटामांसी, निसिन्दा (निर्गुण्डी) मंजरी, इलायची, हरिताल, चावुले बीज, वृहती (बड़ी कटेरी), शिरीषपुष्प, धुना (राल), कुसड़िया लता, राखालशसा (इन्द्रायण), देवदारु, पद्मकेशर, लोध, मनःशिला, रेणुक, जातीपुष्प, आकपुष्प, सरसों, हलदी, दारुहलदी, हींग, पिप्पली, लाख, सुगन्धवाला, मुगानी, मुलेठी, मैनफल, निसिन्दा (निर्गुण्डी), सोन्दाल, लोध, अपामार्ग, प्रियङ्गु, रास्ना और विडङ्ग इन सब द्रव्यों को पुष्यनक्षत्र में ग्रहण कर समभाग में एक साथ मिलाकर गोली बनावे। विषार्त्त व्यक्ति पर आघ्राण, नस्य, लेपन, धारण और धूमग्रहण, ऐसे विभिन्न उपाय प्रयोग करे।

तार्क्ष्यसूत—पारद, गन्धक, सोहागा और सोना समभाग एकत्र कांटानटे के रस में ३ घण्टे तक मर्दन कर गोली बनावे। बाद में उसे चुम्बक लोहे से बनी हुई मूषा में रुद्ध कर भूधरयंत्र में पुटपाक करे। औषध निकाल कर फिर कांटानटे के रस के साथ मर्दन कर ले। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—राखालससा (इन्द्रायण) के मूल का रस।

विषक्रियानाशक योगावली—

(१) कपूर और राई सरसों के साथ समपरिमित पारद मिश्रित कर गोबर जल में भावना दे। १ रत्ती मात्रा में यह औषध सेवन करने पर स्थावर और जङ्गम दोनों प्रकार के विष नष्ट हो जाते हैं।

(२) समपरिमित पारद और कांटानटे की जड़ चावल धोये हुए जल के साथ सेवन करने से विषक्रिया नष्ट होती है।

(३) नागदमन के मूल को जल मे पीस कर उसका नस्य लेने से सर्पविष नष्ट होता है।

(४) शिरीष का मूल, पत्ता, फल, फूल और छाल समभाग जल मे पीस कर सेवन करने से सर्पविष नष्ट होता है।

(५) जयपाल बीज के पत्ते रहित मज्जा को नीबू के रस में २१ वार भावना देकर वर्त्ति तैयार करे। मुख के लार के साथ घिस कर इस वर्त्ति द्वारा अञ्जन लगाने से सर्पदष्ट व्यक्ति का विष नष्ट होता है।

(६) डहरकरंज पत्र, त्रिकटु, विल्वमूल, हल्दी और तुलसीमञ्जरी इन सब द्रव्यो को वकरी के मूत्र में पीसकर उससे साप के काटे हुए व्यक्ति को अञ्जन लगाने से संज्ञा पुनः लौट आती है।

(७) धतूरे का रस, सोंठ, दूध, घी और गुड़ समपरिमाण एकत्र कर सेवन करने से कुत्ते का विष नष्ट होता है।

(८) कालकासुन्दर के मूल को चबाकर रोगी के कान में फुत्कार देने से वृश्चिक दंशविष नष्ट होता है।

(९) फूल, मंजिष्ठा, हल्दी और सेंधानमक इनका प्रलेप देने से चूहे का विष नष्ट होता है।

(१०) वड़, वहेड़ा, रीठाफल, लहसुन, त्रिकटु, वच, राई सरसों, आकनादि (पाठा) मूल और वकुल का बीज, इन सब द्रव्यों को मन्दार के रस मे पीस

कर छाया में सुखा दे। बाद मे नरमूत्र के साथ घिसकर उसके साथ पारदभस्म मिला दे। इसके द्वारा आंख में अञ्जन लगाने से सांप का विष नष्ट होता है।

(११) गोवर के जल में कपूर भावित कर उसके साथ पारदभस्म मिश्रित कर १ रत्ती मात्रा में दही के साथ सेवन करने से स्थावर, जङ्गम और कृत्रिम विप दूर होते हैं।

(१२) कालीमिर्च, सोठ, सुगन्धबाला और नागकेशर इनका प्रलेप देने से मक्षिकाविष नष्ट होता है।

(१३) हल्दी, दारुहल्दी, बकमलकड़ी, मंजिष्ठा और नागेश्वर एकत्र शीतल जल में पीस कर प्रलेप देने से मकड़ी का विष नष्ट होता है।

(१४) पुष्यनक्षत्र में सफेद पुनर्नवा का मूल उखाड़ कर चावल धोये हुए जल के साथ पीसकर खाने से एक वर्ष तक सांप के विष का कोई भय नहीं रहता है।

भग्न चिकित्सा।

(१) **वराटिकायोग**—वराटिकाभस्म, शङ्खभस्म, प्रबालभस्म, समुद्र के सीप की भस्म, मोती भस्म प्रत्येक १ भाग एकत्र कर ५ दिन तक खट्टी दही में भावना देकर ५ रत्ती की गोली वनावे। इसे मधु और बल का दूध के साथ सेवन करने से सब प्रकार के अस्थिभंग, अस्थि की यक्ष्मा, जीर्णज्वर और दूषित रक्त जनित अनेक प्रकार के रोग आरोग्य होते हैं।

(२) **रससिन्दूर**—२ रत्ती मात्रा में बबुल छाल का चूर्ण एक आना मात्रा में दूध और मधु के साथ सेवन करने से सब प्रकार के अस्थि भग्न संयोजित होते हैं।

(३) **सप्तामृतरस**—पारद, गन्धक, लाक्षाचूर्ण, अर्जुनछाल का चूर्ण, [illegible] छाल चूर्ण, हाड़जोड़ा, मुलेठी चूर्ण प्रत्येक १ भाग; इन सबको एकत्र घी और मधु के साथ मर्दन कर १ माशा की मात्रा मे एक वारकी प्रसूता गाय के दूध के अनुपान से प्रयोग करने पर सब प्रकार के भग्न संयोजित होते हैं।

(४) **बब्बूलादि लेप**—बबुल छाल का चूर्ण, आंवला, हर्रा, बहेड़ा, सोंठ, [illegible], कालीमिर्च प्रत्येक १ भाग एवं गुग्गुल ७ भाग एकत्र जल में मर्दन कर भग्न स्थान में प्रलेप देने से भग्नसन्धि संयोजित होती है।

(५) **वज्रलेप**—हाड़जोड़, अर्जुनछाल, लाख, अश्वगन्धा, गोरक्षचाकुले प्रत्येक १ भाग, गुग्गुल ५ भाग एकत्र जल में मर्दन कर प्रलेप लगाने से भग्न और स्थानच्युत अस्थि फिर संयोजित हो जाती है।

मसूरिका (चेचक) चिकित्सा

वातज मसूरिका में—

कज्जलीयोग—आमलासार गन्धक और हिङ्गुलोत्थ पारद की कज्जली २ रत्ती मात्रा में रास्ना, दशमूल, दारुहल्दी, खसखस, दुरालभा (जवासा), गुरुच, धनिया और मोथा के क्वाथ के साथ सेवन करे।

वातज मसूरिका में प्रलेप—मंजिष्ठा, वरगद की छाल, पाकर, शिरीष और गूलर की छाल का प्रलेप लगाने से वातज मसूरिका आरोग्य होती है।

वातज मसूरिका न पकने पर निम्नलिखित पाचन प्रयोग करे—

(१) गुरुच, मुलेठी, रास्ना, शालपर्णी, चाकुले, बृहती (बड़ी कटेरी), कण्टकारी, गोक्षुर, लालचन्दन, गाम्भारी फल, वलामूल, बैंचिमूल।

(२) गुरुच, मुलेठी, मुनक्का, गन्ने का मूल और अनार। प्रक्षेप-पुराना गुड़।

पित्तज मसूरिका में—

शोधित हिंगुल—एक अति उत्कृष्ट औषध है। उसे परवल पत्ते के रस, मधु अथवा करेला पत्ते के रस और मधु अथवा हिंचे शाक के रस और मधु के साथ प्रयोग करे।

शोधित हिङ्गुल के अनुपान स्वरूप निम्नलिखित पाचन प्रयोग करने पर अतिशय सुफल मिलता है—

(१) नीमछाल, आकनादि (पाठा), क्षेत्र पापड़ा, परवल का पत्ता, लाल चन्दन, सफेद चन्दन, खसखस, कुटकी, आंवला, अरूसा और दुरालभा (जवासा)।

(२) मुनक्का, गाम्भीरी, पिण्ड खजूर, परवल पत्ता, नीमछाल, अरूसा, लाई, आंवला और दुरालभा (जवासा)।

पित्तज मसूरिका में प्रलेप—शिरीष, गूलर, अश्वत्थ और वरगद, इनका छाल जल से पीसकर गाय के घी के साथ प्रलेप लगाने से पित्तज मसूरिका रोग आरोग्य होता है।

कफज मसूरिका में प्रलेप—

रससिन्दूर—२ रत्ती मात्रा मे निम्नलिखित पाचन के साथ प्रयोग करे।

(१) अरूसा, मोथा, चिरायता, आंवला, हर्रा, वहेड़ा, इन्द्रयव, दुरालभा (जवासा), परवल का पत्ता और नीमछाल मिलाकर २ तोला, जल ½ सेर शेष ½ पाव सेवन करे।

(२) जवासा, क्षेत्रपापड़ा, कुटकी और चिरायता मिलित २ तोला, जल आधा सेर, शेष आधा पाव सेवन करे।

कफज मसूरिका में प्रलेप—शिरीष छाल, गूलर की छाल, खदिर की लकड़ी और नीम पत्ती पीस कर प्रलेप देने से कफज मसूरिका निवृत्त होती है।

मसूरिका बाहर न निकलने पर एवं कुछ निकल कर और कुछ भीतर में रहने से निम्नलिखित योगावली प्रयोग करे—

(१) **निम्बादि कषाय**—नीम की छाल, क्षेत्रपापड़ा, आकनादि (पाठा), परवल पत्ता, कुटकी, अरूसा, दुरालभा (जवासा), आंवला, खसखस, सफेद चन्दन और लालचन्दन, इनके क्काथ में चीनी मिलाकर पान करे।

शोधित हिङ्गुल २ रत्ती मात्रा मे निम्बादि कषाय के अनुपान स्वरूप व्यवहार किया जा सकता है।

(२) स्वर्णमाक्षिक भस्म २ रत्ती मात्रा में रक्तकांचन (लाल कचनार) छाल के क्काथ के साथ प्रयोग करे।

मसूरिका रोग की उपसर्ग चिकित्सा

ज्वर में—

(१) **पटोलादिकषाय**—परवल पत्ता, गुरुच, मोथा, अरूसा छाल, जवाखार, चिरायता, नीमछाल, कुटकी, क्षेत्रपापड़ा मिलित दो तोला, जल आधा सेर, शेष आधा पाव।

दाह में—(१) चन्दनादि क्काथ सेवन करे यथाः—चन्दन, क्षेत्रपापड़ा, खसखस, अरूसा, मोथा, पद्ममूल, मृणाल, मौरी (सौंफ), धनिया, पद्मकाष्ठ और आंवला मिलित २ तोला, जल आधा सेर, शेप आधा पाव।

(२) **पर्पटादि क्काथ**—क्षेत्रपापड़ा, मोथा और खसखस मिलित २ तोला, जल आधा सेर, शेप आधा पाव।

मसूरिका न पकने पर—सूखे बेर का चूर्ण गन्ने के गुड़ के साथ सेवन करे।

वमन में—गुरुच का रस या क्वाथ अथवा शीतकषाय सेवन करे।

शूल कम्पन और पेट फूलने पर—जांगल पक्षी के मांस के रस में सेंधा नमक मिलाकर सेवन करे।

अरुचि में—खट्टे अनार का रस मांस के रस में मिलाकर सेवन करे।

(१) **कण्ठरोध में**—हर्रे और पिप्पली का चूर्ण मधु के साथ मिलाकर अवलेहन करने को दे।

(२) जातीपत्र, मंजिष्ठा, दारुहल्दी, सुपारी, शमीछाल, आंवला और मुलेठी सिद्ध किये हुए जल में इन्हें मिलाकर गण्डूष धारण करे।

चक्षुःस्थ मसूरिका में—आंवला, हर्रा, वहेडा, मोथा, दारुहल्दी, चीनी, नीलोत्पल, खसखस, लोध, मंजिष्ठा इन सबको जल में पीसकर कपाल पर प्रलेप देने से एवं उन्हें उवाल कर उस जल द्वारा आंख को धोने से चक्षुःस्थ मसूरिका दूर होती है।

(१) **मसूरिका के पीब निवारण में**—गोबर कण्डे के भस्म को वस्त्र से छानकर मसूरिका के ऊपर फैला दे। अथवा एक कपड़े की पोटली में गोवरकण्डे की भस्म को वांध कर मसूरिका के ऊपर चाल दे। इससे मसूरिका सत्वर सूख जाती है एवं इसके वीजाणु और बढ़ नहीं सकते हैं।

(२) वरगद, गूलर, अश्वत्थ (पीपर), पाकर और बेंत; इनकी छाल का चूर्ण कर मसूरिका के ऊपर अवचूर्णन करने से भी मसूरिका निवृत्त होती है।

क्रिमि निवारण में—

(१) सरल लकड़ी, धूप, देवदारु, चन्दन, अगुरु, गुग्गुलु का धुंआ प्रदान करे।

वेदना में—खदिर लकड़ी के क्वाथ में गुग्गुल मिलाकर पीने के लिये दे।

(१) खदिर लकड़ी, आंवला, हर्रा, वहेड़ा, नीमछाल, परवल पत्ता, गुरुच और अरूसा मिलित २ तोला, जल आधा सेर, शेष आधा पाव सेवन करे।

(२) पंचतिक्तघृत गुग्गुल पीने के लिये दे।

मसूरिका पक जाने के बाद ज्वर की तीव्रता और दाह में पंचतिक्तघृत सारे शरीर मे मल दे।

अन्तर्दाह में—लालचन्दन और मुलेठी का क्वाथ, पंचतिक्त घृत, चन्दनादि कषाय प्रयोग करे। मकरध्वज १ रत्ती, घिसे हुए सफेद चन्दन और मधु के साथ प्रयोग करे।

प्यास लगने पर—षडङ्गपानीय की व्यवस्था करे।

विकार में—बृहत् कस्तूरी भैरव प्रयोग करे।

रसप्रयोग

सर्वतोभद्ररस—रससिन्दूर, अभ्रक, चांदी, सोना, मैनसिल प्रत्येक सम भाग, वंशलोचन २ भाग एकत्र सब के बराबर गुग्गुल; इन सबको जल के साथ पीस कर १ माशे की गोली बनावे। अनुपान—परवल पत्ते का रस और मधु या ब्राह्मी का रस और मधु या करेला के पत्ते का रस और मधु या घी और मधु। यह औषध सब प्रकार की मसूरिका की महौषध है। इसका सब क्षेत्रों में प्रयोग किया जा सकता है। इस औषध का फल उत्तम देखा गया है।

शिलाजतुवटी—शिलाजीत, लोहा और सोना प्रत्येक समभाग लेकर तुलसी पत्ते के रस में मर्दन कर ३ रत्ती की गोली बनावे। अनुपान—ब्राह्मी शाक का रस, करेला पत्ते का रस, घिसा हुआ रुद्राक्ष, परवल पत्ते का रस और मधु।

मसूरिका में ज्वर बढ़ जाने पर बृहत् कस्तूरी भैरव का प्रयोग करे।

ज्वर मे प्रलाप, संज्ञाहीनता आदि विकार का लक्षण दिखाई देने पर चतुर्भुजरस, बृहत् वातचिन्तामणि का व्यवहार करे।

चर्मदल नामक मसूरिका की चिकित्सा मे हरितालभस्म, ताम्रभस्म, रसभस्म, महातालेश्वर रस का प्रयोग करे।

मसूरिका की चिकित्सा में अनुपान—ब्राह्मीशाक का रस, हिंचे का रस, करेला पत्ते का रस, मेथी भिगोया हुआ जल, हलदी का रस, अदरक का रस, तुलसी का रस, अडूसा के पत्ते का रस, परवल पत्ते का रस, घिसा हुआ रुद्राक्ष, गुरुच का रस, नीमछाल का रस, परवल का रस, क्षेत्रपापड़ा का रस, त्रिफला चूर्ण, अनन्तमूल का क्वाथ आदि।

रसादि शोधन-मारण की सहज प्रक्रिया

रस, उपरस, धातु, उपधातु, रत्न, उपरत्न, विष और उपविष के शोधन और मारण की सहज प्रक्रिया

पारद—

शोधनप्रक्रिया—रसौत के रस को पान के रस और त्रिफला के क्वाथ द्वारा यथाक्रम से मर्दनकर अच्छी तरह से धो लेने से ही पारद शोधित होता है। उसके वाद नीबू के रस में मर्दन कर एवं सब के अन्त में मधु में मर्दन कर लेने से पारद का वीर्य वढ़ता है। प्रत्येक द्रव्य के द्वारा २ घण्टे तक मर्दन कर प्रत्येक बार ही धो लेना चाहिये।

मारणप्रक्रिया—क्रमानुसार शोधन, स्वेदन, मर्दन आदि १४ संस्कार कर पलाशवीज, चन्दन और नींबू के रस में मर्दन कर भूधरयंत्र या वालुकायंत्र में पाक करने से पारद मारित होता है। (पारद संस्कार की विधि का वर्णन पूर्व में किया गया है)

भस्मीकरण—अपामार्ग बीज और पद्म के कल्क के साथ पारद को मूषारुद्ध कर पुटपाक करने से भस्मीभूत होता है।

हिंगुल—

शोधनविधि—नीबू के रस में ८ प्रहर मर्दन कर लेने से ही हिङ्गुल शोधित होता है।

हिंगुल से रस निकालने की विधि—शोधित हिंगुल चूर्ण कर उसके साथ सम परिमित पत्थर वाला चूना अच्छी तरह से मिला दें। वाद में ऊर्ध्व-पातनयन्त्र में निहित कर तेज आंच वाले चूल्हे पर रख दें। इस प्रकार ऊर्ध्व भाण्ड के तलदेश में पारद संचित होगा। ठण्ढा होने पर उसे निकाल कर धो डाले।

गन्धक—

शोधनविधि—गन्धक चूर्ण कर गाय के घी के साथ लोहे के वर्त्तन में गलाकर घृताक्त कपड़े से छान कर दूध के भाण्ड में रख दें एवं एक दण्ड (२४ मिनिट) के वाद उसे जल से धोकर सुखा ले।

अभ्रक—

शोधनविधि—क्रमशः ७ वार अभ्रक को उत्तप्त कर निसिन्दा (निर्गुण्डी) पत्ते के रस में सिद्ध करने से शोधित होता है।

अथवा अभ्रक को उत्तप्त कर क्रमशः ७ बार काञ्जी, गोमूत्र और त्रिफला के क्वाथ में निक्षेप करने से अभ्रक शोधित होता है।

भस्मीकरण विधि—शोधित अभ्रक को धान्याभ्र में परिणत कर लेने के बाद भस्म करना चाहिए।

धान्याभ्रविधि—चतुर्थांश परिमित शालिधान के साथ अभ्रक को कम्बल से रुद्ध कर तीन दिन तक जल में भिगो कर रखे। बाद में हाथ द्वारा मर्दन कर लेने से कम्बल में से अभ्रक के बारीक कण निकलने लगते हैं। उसे ही धान्याभ्र कहते हैं। इस प्रकार से तैयार किये हुए धान्याभ्र को आक की लेई, बरगद की लेई अरूसा के स्वरस, पान के रस या कांचनछाल के स्वरस या क्वाथ इनमें से किसी एक के साथ मर्दन कर जब तक चमकाहट चली न जाय तब तक बार-बार पुटपाक करे।

अथवा अभ्रक को उत्तप्त कर बेर के क्वाथ में उबाल कर हाथ से घोट कर चूर्ण बना ले एवं उल्लिखित मारक द्रव्यों में से किसी एक के साथ मर्दन कर पुटपाक करे।

दो भाग सोहागा के साथ मर्दनकर अन्धमूषा में रख गजपुट में पाक कर लेने से ही अभ्रक भस्मीभूत हो जाता है।

माक्षिक—

शोधनविधि—अग्निताप मे उत्तप्त कर त्रिफला के क्वाथ में उबाल लेने से माक्षिक शोधित होता है।

मारणविधि—सम परिमित शोधित माक्षिक और गन्धक एकत्र नीबू के रस में मर्दन कर क्रमानुसार ५ वार पुटदग्ध कर लेने से माक्षिक मारित होता है।

विमलः—

शोधनविधि—जम्वीर नीबू के रस अथवा अरूसा के क्वाथ मे उबाल लेने से विमल शोधित होता है।

भस्मीकरणविधि—गन्धक और मन्दार के रस के साथ मर्दन कर मूषा-रुद्ध कर मिट्टी लिप्त कर सूख जाने पर क्रमानुसार १० बार पुटपाक करे। इस प्रक्रिया द्वारा विमल भस्मीभूत होता है।

शिलाजीत—

शोधनविधि—त्रिफला के क्वाथ, भृङ्गराज के स्वरस या गाय दूध के साथ ८ प्रहर मर्दन कर धूप में सुखा लेने से ही शिलाजीत शोधित होता है। दो प्रहर प्रत्येक द्रव्यों के या सबके क्वाथ के साथ ७ दिन भावना देने से शिलाजीत का वीर्य वर्द्धित होता है।

भस्मीकरणविधि—समपरिमित मनःशिला, गन्धक और हरिताल के साथ शिलाजीत को मिलाकर एकत्र नीबू के रस में मर्दन कर ८ गोबरकण्डो की अग्नि में पुटपाक कर लेने से शिलाजीत की भस्म होती है।

तूतिया—

शोधन-मारणविधि—गोमूत्र के साथ एक दिन दोलायन्त्र में पाक कर लेने से तूतिया शोधित होता है। बाद में आधा भाग के बराबर गन्धक के साथ मर्दन कर गजपुट में पाक कर ले।

सस्यक—

शोधनविधि—गाय, भैंस और बकरे के मूत्र में ६ प्रहर तक दोलायंत्र में पाक करने से सस्यक शोधित होता है।

भस्मविधि—मन्दार के रस, गन्धक और सोहागा के साथ मर्दन कर मूषारुद्ध कर कुक्कुटपुट में दग्ध करने से सस्यक मारित होता है।

चपल—

शोधनविधि—जाम्बीर नीबू, कुकरोधा और अदरक के रस में भावित कर लेने से चपल शोधित होता है।

खर्पर—

शोधनविधि—आग में गरम कर क्रमानुसार ७ बार नीबू के रस में बुझा देने से खर्पर शोधित होता है।

भस्मविधि—लोहे के बर्त्तन में अग्निताप से खर्पर को गला कर एवं गल जाने पर थोड़ा-थोड़ा कर सेंधानमक उसमें डालें एवं पलाश लकड़ी के टुकड़े से हिलावे। इस तरह से खर्पर मारित होता है।

गेरु—

शोधनविधि—गाय के दूध में भावित करने से गेरु शोधित होता है।

हीराकसीस—भृङ्गराज रस में भावित करने से हीराकसीस शोधित होता है।

सौराष्ट्रमृत्तिका—३ दिन कांजी में भिगो कर रखने से शोधित होती है।

कुंकुम—शुण्ठी क्वाथ द्वारा ३ दिन भावना देने से शोधित होता है।

स्फटिका (फिटकिरी)—आग में गला लेने से स्फटिक शोधित होती है।

कौडी—

शोधनविधि—कांजी मे उबाल लेने से कौड़ी शोधित होती है।

भस्मविधि—अंगारे के आग में जला कर लाई के समान हो जाने पर कौड़ी भस्म होती है अथवा अन्धमूषा में रख गजपुट में दग्ध करे।

अंजन—भृङ्गराज के स्वरस में भावना देने से अंजन शोधित होता है।

हरिताल—

शोधनविधि—कुष्माण्ड का जल, चूने का पानी अथवा तिल्ली का क्षार पानी के साथ मिलाकर दोलायंत्र मे ८ प्रहर पाक करने से हरिताल शोधित होता है।

भस्मविधि—शोधित हरिताल को घृतकुमारी के रस में १ दिन मर्दन कर पिण्ड वनावे। बाद मे अन्धमूषा में रुद्ध कर १२ प्रहर तक तेज आग मे गजपुट में पाक करे। इस तरह से ६ बार पुटपाक करने से हरिताल भस्मीभूत होता है।

मनःशिला—चूने के पानी में ७ दिन भावना देने से मनःशिला शोधित होतीं है।

सोना—

शोधनविधि—समपरिमित सोने का पत्र और नमक एक साथ सकोरे में वन्द कर आधा प्रहर अंगारे की अग्नि मे आध्मापित करने से स्वर्ण शोधित होता है।

भस्मविधि—पारद १ भाग, गन्धक दो भाग एकत्र कज्जली कर उसे ३ भाग शोधित सूक्ष्म सोने का पत्र के साथ मर्दन कर घृतकुमारी के रस में ६ घण्टे तक मर्दन करे। वाद में इसका पिण्ड वनाकर एरण्ड पत्ते के साथ लपेट कर तांबे के वर्तन में रखकर एक घण्टा धूप में सूखने के लिये रख दे। धूप में पिण्ड

गरम होने पर उसे सकोरे में बन्द कर ३ दिन धान के ढेर में रख दे। चौथे दिन उसे निकाल कर चूर्ण बनाकर महीन कपड़े से छान डाले। इस तरह से स्वर्ण की निरुत्थ भस्म होती है।

चांदी—

शोधनविधि—पूर्वोक्त सोने की शोधनविधि के अनुरूप है।

भस्मविधि—स्वर्ण भस्म की उल्लिखित प्रक्रिया के अनुसार चांदी भस्म करे। और भी चांदी भस्म की एक सहज विधि लिखी जा रही है।

हिङ्गुल से पारद निकालते समय शोधित चांदी के पत्र में नीबू के रस से मर्दित किया हुआ हिंगुल प्रलिप्त कर ऊर्ध्वपातन करे। इससे हिङ्गुल से पारद भी निकलेगा एवं हाण्डी में रखा हुआ चांदी पत्र भी भस्मीभूत होगा।

शोधनविधि—सूक्ष्म तांबे के पत्र में नीबू का रस और सेंधानमक लेप कर उत्तप्त कर निसिन्दा (निर्गुण्डी) के रस में निमग्न करने से ताम्र शोधित होता है। इस तरह से ८ बार उत्तप्त कर निर्वापित करना चाहिए।

तांबा—

भस्मविधि—पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर जम्बीरी नीबू के रस के साथ मर्दनकर उससे तांबे का पत्र प्रलिप्त करे एवं सकोरे में बन्द कर क्रमानुसार ३ बार पुटपाक करे।

अमृतीकरण—मारित तांबे को नीबू के रस में मर्दन कर गोली बनावे एवं एक कोचई के भीतर बन्द कर ऊपर मिट्टी लेप कर सुखा दे। बाद मे उसे गजपुट में दग्ध कर कोचई के भीतर से तांबा निकाल कर चूर्ण बना डाले। शोधित गन्धक को नीबू के रस में मर्दन कर शोधित तांबे के पत्र मे प्रलिप्त कर गजपुट मे पाक करने से एक दिन में तांबे की उत्कृष्ट भस्म होती है।

लोहा—

शोधनविधि—लोहा गरम कर गोमूत्र और त्रिफला के क्वाथ में क्रमानुसार ७ बार निक्षेप करने से शोधित होता है।

भस्मविधि—लोहे के चूर्ण को त्रिफला के क्वाथ के साथ पीसकर उसके साथ चौथाई परिमाण पिष्ट तण्डुल मिलाकर टिकिया प्रस्तुत करे। सूख जाने पर पुटपाक कर ले।

अथवा लोहे का चूर्ण और समपरिमाण गन्धक एकत्र घृतकुमारी के रस में मर्दन कर पुटपाक करे। इस तरह से कई बार पुटपाक करने से भी लोहा भस्म रूप मे परिणत होता है।

मण्डूर—

शोधनविधि—गरम कर क्रमानुसार गोमूत्र और त्रिफला के क्वाथ में ७ वार निक्षेप करने से मण्डूर शोधित होता है।

भस्मविधि—त्रिफला के क्वाथ के साथ मण्डूर चूर्ण मर्दन कर पुटपाक करने से वह भस्मीभूत होता है।

यशद (दस्ता)—

शोधनविधि—अग्नि में गला कर चूने के पानी में निक्षेप करने से यशद शोधित होता है।

भस्मविधि—सोने की प्रक्रियानुसार यशद मारित होता है।

बंग (टीन)—

शोधनविधि—द्रवीभूत कर क्रमानुसार ३ बार हल्दीचूर्ण मिश्रित निसिन्दा (निर्गुण्डी) के रस में निक्षेप करने से बंग शोधित होता है।

भस्मविधि—बंग को लोहे की कड़ाही मे रखकर आग की गरमी से गला कर उसमें बंग के बराबर हल्दीचूर्ण, जवाइनचूर्ण, जीराचूर्ण, इमली की छाल की भस्म और अश्वत्थछाल की भस्म क्रमशः मिला ले एवं करछुल द्वारा धीरे-धीरे हिलाते जावे। इस तरह से बंग भस्म हो जाने के बाद धोकर साफ कर ले।

सीसक—

शोधनविधि—सीसक को अग्निताप से द्रवीभूत कर क्रमानुसार तीन बार केला फूल के रस मे भिगोने से शोधित होता है।

भस्मविधि—पतले सीसक पत्र पर मनःशिला और आक की लेई लेप कर पुटपाक करने से सीसक की निरुत्थ भस्म होती है।

पीतल—गरम कर हल्दीचूर्ण मिश्रित निसिन्दा (निर्गुण्डी) के रस में पांच वार निक्षेप करने से पीतल शोधित होती है। इसकी भस्मविधि तांबे की तरह है।

कांसा—गरम कर गोमूत्र में निर्वापित करने से कांसा शोधित होता है। गन्धक और हरिताल के साथ मर्दन कर ५ बार पुटपाक करने से कांसा भस्मरूप में परिणत होता है।

मोती—मोती, प्रवाल, मणि आदि रत्न जयन्ती पत्ते के रस में एक प्रहर तक दोलायन्त्र में पाक करने से शोधित होती है।

लगातार आग में भून कर गरम अवस्था में घृतकुमारी रस, नटेशक का रस और स्तन के दूध में ७ बार निक्षिप्त करने से रत्नादि जारित होते हैं।

हीरक—कुलत्थ के क्काथ में एक प्रहर उबाल लेने से हीरक शोधित होता है।

अग्नि में दग्ध कर क्रमशः २१ बार हिंगुल और सेंधानमक मिश्रित कुलथी के क्काथ मे निक्षेप करने से हीरक जारित होता है।

शंख—अम्लवर्ग के रस या क्काथ के साथ दोलायन्त्र में उबालने से शंख शोधित होता है।

शोधित शंख पुटपाक में दग्ध करने से वह भस्मरूप में परिणत होता है।

सोहागा—अग्नि में सोहागा को गरम करने के वाद वह फूट कर लाई की तरह होने से शोधित होता है।

विष शोधनविधि—सव प्रकार के कन्दविष को ३ दिन गोमूत्र में भिगो कर रखने से शोधित होता है।

उपविष—

जयपाल—भूसीरहित जयपाल वीज को दो भागों मे विभक्त कर उसके भीतर से पत्ता वाहर निकाल ले एवं वीज को दोलायन्त्र में गाय के दूध में पाक कर ले।

लांगली—एक दिन तक गोमूत्र में भिगो कर रखने से लांगली शोधित होती है।

कुचिला—गाय के घी में तल लेने से शोधित होती है। अथवा गोवर के जल में दो प्रहर तक पाक करके घी में तल लेने से शोधित होती है।

धतूरे का वीज—धतूरे के वीज को तुषरहित और द्विखण्डित कर ४ प्रहर तक गोमूत्र में भिगो कर रखने से शुद्ध हो जायगा।

अफीम—अदरक के रस में ७ दिन भावना देकर धूप में शुष्क करने से अफीम शोधित होती है।

मातुलानी(भांग)—गाय के घी में तल लेने से अथवा गाय के दूध में भावना देकर सुखा लेने से मातुलानी शोधित होती है।

भल्लातक—भल्लातक को कुचल कर ईंट चूर्ण के साथ घिस लेने से शोधित होता है।

गुग्गुल—गुग्गुल के केश और मलादि को साफ कर गरम दशमूल के क्वाथ में निक्षेप कर घोट कर कपड़े से छान ले एवं बाद मे सूर्य के ताप से सुखाकर घृताभ्यक्त कर पिण्डाकार बना ले।

गुंजा—२ घण्टा कांजी में उबाल लेने से गुंजा शोधित होती है।

मनसा (सेंहुड) क्षीर और आकक्षीर—१ तोला परिमित इमली पत्ते के रस में ८ तोला परिमित आक या मनसा का क्षीर मर्दन कर सुखा लेने से वह शोधित होता है।

हिंगुल—लोहे की करछुल में घी के साथ हिंगुल को तल लेने से शोधित होता है।

कन्दविष—सब प्रकार के कन्दविष की छाल को छुड़ा कर टुकड़े-टुकड़े कर २४ घण्टे तक गोमूत्र मे भिगोकर धूप मे सुखा लेने से शोधित होता है।

जंगम विष—सब प्रकार के जंगम विष को ३ दिन गोमूत्र मे भिगो कर धूप में सुखा लेने से ही शोधित होता है।

उपविष—सब प्रकार के उपविष पञ्च गव्य द्वारा भावना देने से शोधित होते हैं।

पारदप्रयोग की विशेष अनुपान विधि—

भस्मीकृत पारद ठीक तरह से अनुपान विशेष के साथ प्रयुक्त होने पर सब प्रकार की व्याधि विनष्ट होती है।

अनुपान विधि—

ज्वर रोग में—मोथा और क्षेत्रपापड़ा का क्वाथ।

त्रिदोषज ज्वर में—पिप्पली चूर्ण और दशमूल का क्वाथ।

कफ और कास में—कण्टकारी का क्वाथ और पिप्पली चूर्ण।

रक्तपित्त रोग में—अरूसा का रस, दूब का रस।

यक्ष्मा रोग में—त्रिफला, गन्धक, त्रिकटु और पुराना गुड़, अरूसा का रस और अर्जुन छाल का रस।

हिचकी रोग में—खट्टे नीबू का रस, सोंचर लवण और मधु।

सर्दी रोग में—मूंग और चीनी का शर्बत।

दाह रोग में—चीनी, लाई का लड्डू और मधु, पित्तपापड़ा और खसखस का क्वाथ।

अर्शरोग में—पुटपाक में दग्ध कोचई के साथ तेल और सेंधानमक मिश्रित कर उसके साथ।

विसूचिका रोग में—हिंगुल और पिप्पली चूर्ण।

अजीर्ण रोग में—एरण्डमूल का क्वाथ और हर्रे का चूर्ण।

मूत्रकृच्छ्र रोग में—गोक्षुर का क्वाथ, दशमूल का क्वाथ और वरुणछाल का क्वाथ।

बीस प्रकार के प्रमेह रोग में—शिलाजीत, पिप्पली, मण्डूर, त्रिफला, आलकुशी (कौच) बीज, सोनामाखी, हलदी चूर्ण, गन्धक, कान्तलोह, त्रिकटु चूर्ण, गुरुच का रस, केशुरिया (कशेरू) का रस, शतावर का रस, कच्ची हल्दी का रस, ववूल पत्ते का रस आदि।

सोमरोग में—गूलर, आंवला, केले का फूल, तेलाकूचा, नोनाछाल, केशुरिया (कशेरू) आदि का रस, जामुन के बीज और गूलर के बीज का चूर्ण, बांस का पत्ता और आकनादि (पाठा) का क्वाथ, पञ्चवल्कल का क्वाथ।

अश्मरीरोग में—हलदी चूर्ण, कांकुड़बीज चूर्ण, पाथर कुचि (पत्थर चूर) और वरुणछाल का रस, कुड़ा चूर्ण, सहिजनमूल का क्वाथ, गोक्षुर और वरुणछाल का क्वाथ, तृणपञ्चमूल या बृहत् वरुणादि कषाय, यवक्षार और हींग आदि।

मूत्राघात रोग में—वरुणादिगण या तृणपंचमूल का क्वाथ, कंटकारी का रस या क्वाथ, शतावर का रस, घिसा हुआ सफेदचन्दन और चीनी, बकरी का मूत्र, भैंस का मूत्र, यवक्षार और चीनी मिश्रित कूष्माण्ड का रस आदि।

हृद्रोग में—अर्जुनछाल, बलामूल, अश्वगन्धामूल, शतावर, बेदाना आदि का रस, हरिणश्रृङ्ग का भस्म, कुड़ाचूर्ण, गोरक्षचाकुले मूल का चूर्ण या क्वाथ, मुलेठी का चूर्ण आदि।

पाण्डुरोग में—गुरुच का रस, आंवले का चूर्ण, त्रिफला क्वाथ, विडङ्ग चूर्ण आदि।

आमवात में—लहशुन, निसिन्दा (निर्गुण्डी) मूल, रास्ना, गन्धप्रसारणी आदि का रस, जवाइन और गुग्गुल चूर्ण, दशमूल का क्वाथ, रास्नादि पाचन।

शोथरोग में—

वातजशोथ में—पुनर्नवा, एरण्डमूल, बेलपत्ता आदि का रस, कालीमिर्च चूर्ण, मानक चूर्ण, दशमूल का क्वाथ आदि।

किलासरोग में—केवल दही और भात के भोजन पर रह कर चीतामूल, आलकुशी (कौंच) बीज, केउया ठुडी (कौआठोठी) और सोमराजी (वाकुची) बीज का चूर्ण समभाग एकत्र कर मिश्रित चूर्ण २ भाग और पारदभस्म १ भाग, गोमूत्र के साथ सेवन करे।

कुष्ठरोग में—लहसुन, राई सरसों, चीतामूल, नीलमूल और भृङ्गराज का रस, सेलवा और दूध समभाग, इन सब द्रव्यों के साथ तिल्ली को पका कर वह तिल्ली एवं भूशिरीष और नागकेशर का त्वक् , मूल, पत्ता, फूल और फल के साथ घृत पाक कर मधु मिलाकर पूर्वोक्त तेल और घी मिलाकर उसके साथ पारद भस्म सेवन एवं शरीर में त्रिकटु का कल्क लेपन करने से कुष्ठ रोग की शान्ति होती है।

विषरोग में—गोवर जल के साथ कपूर भावित कर उसके साथ पारद भस्म एक रत्ती मात्रा में सेवन करने से स्थावर, जंगम और कृत्रिम विष नष्ट होते हैं।

सांप काटे हुए रोगी पर निम्नलिखित प्रक्रिया से पारद भस्म प्रयोग करने से विष क्रिया नष्ट होती है।

वरगद का फल, वहेड़ा और रीठा फल, लहसुन, त्रिकटु, वच, राई सरसो, आकनादि (पाठा) मूल और ववूल बीज एकत्र मन्दार के रस के साथ पेषण कर छाया मे सुखा दे। वाद में नरमूत्र के साथ घिस कर उसके साथ पारद भस्म मिश्रित करे एवं उससे आंख में अञ्जन लगावे। यह अंजन केवल २ वार प्रयोग करने से सर्पविष नष्ट होता है।

कैथ वृक्ष की जड़, छाल, पत्ता, फूल और फल के क्वाथ के साथ पारदभस्म सेवन करने से चूहे का विष नष्ट होता है।

बकरी दूध के साथ पिप्पली चूर्ण मिश्रित कर उसके साथ पारदभस्म सेवन करने से वृश्चिक विष नष्ट होता है।

रसायनार्थ पारदभस्म सेवन की विशेष विधि

जरानाशक योगावली—

(१) सीसक भस्म, स्वर्णभस्म और सतावर के रस के साथ १ रत्ती मात्रा में पारदभस्म ६ महीने तक सेवन करे।

(२) पारदभस्म, गन्धक के संयोग से मारित पारद, आंवले के रस के साथ मारित कान्तलोह एकत्र त्रिफला चूर्ण के साथ सेवन करे।

(३) पारदभस्म १ भाग, सोनाभस्म चौथाई भाग एकत्र भृंगराज के स्वरस, आंवले के स्वरस, शतावर के रस, शंखपुष्पी के रस के साथ क्रमानुसार ७ दिन भावना देकर दूध, चीनी अथवा घी और मधु के साथ १ रत्ती मात्रा मे सेवन करने से एवं कान्तलोह की कड़ाही में पकाया हुआ दूध अनुपान करने से जरा नष्ट होती है।

बज्रपंजर रस—समपरिमित पारदभस्म और हीरकभस्म एकत्र मिला कर खुलकुड़ि (मण्डूकपर्णी) रस के साथ मर्दनकर पुटपाक करे। बाद में फिर समपरिमित पारद के साथ मर्दन कर पुटपाक करे। इसके बाद चतुर्थांश परिमित यह भस्म कांजी के साथ मर्दन कर उससे सोने का पत्र लेपन कर उसे मारित करे। इस तरह से प्रस्तुत स्वर्णभस्म आधे सरसो की मात्रा से आरम्भ कर क्रमशः मात्रा बढ़ा कर एक माशा तक सेवन करे। अनुपान-चीतामूल, अदरक, सेंधानमक, वच और सोचर लवण।

पंचामृतरस—सोनामाखी भस्म, कान्तलोह भस्म, अभ्रकभस्म, मोतीभस्म, हीरकभस्म, पारदभस्म और सोना ये सब द्रव्य एक साथ लेकर एक सप्ताह भर मूली के रस मे मर्दन कर गोलाकार बनावे एवं मूषारुद्ध कर पुटपाक कर ले। इसकी मात्रा-२ रत्ती तक। अनुपान—घी और मधु। यह उत्तम रसायन है।

बाजीकरणार्थ पारदप्रयोग—समपरिमित सोनामाखी भस्म के साथ पारद भस्म सेवन करने से मैथुन शक्ति अत्यन्त बढ़ जाती है।

इस तरह से घी, मधु, शतावर के रस और दूध के साथ पारदभस्म सेवन करने से कामवेग अत्यन्त बढ़ता है।

बकफूल के रस और कृष्णरम्भाफल के रस के साथ पारदभस्म और अभ्रक-भस्म समपरिमाण में सेवन करने से रतिशक्ति अत्यन्त बढ़ती है।

पारदसेवी ककारादि वर्णयुक्त सब प्रकार के द्रव्य एवं कुष्माण्ड, कांकुड़, कदली, कांकरोल, करेला, काकमाची, कांजी, तेल, सुरा, दही, तरमूज, फूट, लहसुन, सरसो, मूली, बैंगन, बेल, दाल, अधिक खट्टा द्रव्य, तिक्त द्रव्य, तेल, नमक, मधु और गरम द्रव्य आदि भोजन और सरसो तेल की मालिश बन्द कर दे। इसके अतिरिक्त रात्रि जागरण, दिन में सोना, शरीर की मालिश, प्रबलवायु और आतप सेवन, उपवास, क्रोध, चिन्ता, शोक आदि का त्याग करे।

पारदसेवी के लिये कपूर, गुडत्वक् (दालचीनी), बड़ी इलायची, तेजपत्ता, नागेश्वर, त्रिकटु, जातीफल, ताम्बूल आदि द्रव्य भी वर्जनीय है। शालिधान, गेंहू, जौ, जांगल मास, मूग का यूष, गाय का दूध, निर्मल जल से स्नान आदि पारद-सेवी के लिये हितकर है।

कज्जली विधि—समभाग में पारद और गन्धक लेकर खरल में रगड़-रगड़ कर जब देखे कि वह घोर काले रंग का हो गया है, तभी समझ लें कि कज्जली तैयार हो गई है।

कज्जली परीक्षा विधि—कज्जली का कुछ अंश उठा कर जल के साथ मर्दन करे। कुछ देर मर्दन करने के वाद यदि उसमें पारद के सूक्ष्म विन्दु न दिखाई दे तो समझ ले कि असली कज्जली तैयार हो गई है।

मकरध्वज सेवन की विधि और अनुपान—मकरध्वज सेवन करने के प्रथम उसे शुष्क खरल में करीब १० मिनिट तक अच्छी तरह से खरल कर फिर मधु मिलाकर ५ मिनिट मर्दन कर ले। उसके बाद उसे चाट ले। तत्पश्चात् अनुपान द्रव्य तथा मधु मिश्रित कर सेवन करे।

अनुपान—

वातज्वर में—बेल पत्ता का रस। गुरुच, सोंठ और गोक्षुर का क्वाथ। स्वल्प पञ्चमूल का क्वाथ। सोंठ, गुरुच, गोक्षुर और एरण्डमूल का क्वाथ।

पित्तज्वर में—शिउली पत्ते का रस, क्षेत्रपापड़ा का रस, गुरुच का स्वरस, परवल पत्ते का रस अथवा धनिया और परवल पत्ते का क्वाथ।

कफज्वर में—अरूसा स्वरस, अदरक का रस। अरूसा, कण्टकारी और गुरुच का क्वाथ। कालीमिर्च का चूर्ण या पिप्पली चूर्ण।

वातपित्तज्वर में—चिरायता का क्वाथ। गुरुच और नीमछाल का रस या क्वाथ। खेत्रपापड़ा और परवल पत्ते का रस। गुरुच, खेत्रपापड़ा, मोथा, चिरायता और सोंठ इनका क्वाथ।

पित्तश्लेष्मजज्वर में—अरूसा और खेत्रपापड़ा का रस। परवल पत्ता और नीमछाल का रस। धनिया, परवल पत्ता, सोंठ और गुरुच का क्वाथ।

वातश्लेष्मजज्वर में—गुरुच और मोथा का रस। सोंठ, गुरुच, परवल पत्ता, जौ और पिप्पली का क्वाथ। पिप्पली चूर्ण और दशमूल कषाय।

सान्निपातिक ज्वर में—

वातोल्वण सान्निपातिक में—दशमूल का क्वाथ।

पित्तोल्वण सन्निपात में—चिरायता, मोथा, गुरुच, सोंठ और दशमूल का क्वाथ।

कफोल्वण सन्निपात में—बृहती (बड़ी कटेरी), कण्टकारी, कुड़ा, वामुनहाटी (भारंगी), शटी (कचूर), कांकड़ाशृङ्गी, जवाखार, इन्द्रयव, परवल पत्ता और कुटकी का क्वाथ।

वातपित्तोल्वण सन्निपात में—दशमूल का क्वाथ। गुरुच, खेत्रपापड़ा, मोथा, चिरायता और सोंठ का क्वाथ। चिरायता, आंवला, कचूर, द्राक्षा, पिप्पली, सोंठ और गुरुच का क्वाथ।

पित्तश्लेष्मोल्वण सन्निपात में—चिरायता, मोथा, सोंठ, गुरुच, आकनादि (पाठा), सुगन्धवाला और खसखस इन सब द्रव्यों का क्वाथ। कण्टकारी, गुरुच, वामुनहाटी (भारंगी), सोंठ, इन्द्रयव; चिरायता, जवासा, मोथा, लाल चन्दन, परवल पत्ता और कुटकी का क्वाथ।

वातश्लेष्मोल्वण सन्निपात में—चिरायता, मोथा, गुरुच और सोंठ का क्वाथ। पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चीतामूल, सोंठ, गुरुच, कण्टकारी और कुड़ा का क्वाथ। खेत्रपापड़ा, वामुनहाटी (भार्गी), मोथा, वच, धनिया, कैंथ, हर्रा, सोंठ और गुरुच का क्वाथ। दशमूल का क्वाथ, कुड़ा और पिप्पली चूर्ण के साथ।

विषमज्वर में—दोष के प्रकोप की विवेचना कर पूर्वलिखित अनुपान युक्तिपूर्वक प्रयोग करे। साधारणतः गुरुच, परवल पत्ता, खसखस, आंवला, लालचन्दन, मोथा और मुलेठी का क्वाथ अथवा भार्ग्यादि क्वाथ।

जीर्णज्वर में—शेफालिका-पत्ते का रस, सोंठ, गुरुच और कण्टकारी का क्वाथ अथवा गुरुच का स्वरस।

मलेरिया नामक विषमज्वर में—गुरुच, क्षेत्रपापड़ा और शिउली पत्ते का रस अथवा नाटाकरंज पत्ते का रस।

ज्वरातिसार रोग में—धनिया और सोंठ का क्वाथ। गुरुच और कुटजछाल का रस। सोंठ, अतीस, मोथा, चिरायता, गुरुच और इन्द्रयव का क्वाथ। लघुपंचमूल, गुरुच, मोथा, सोंठ, अतीस और आकनादि (पाठा) का क्वाथ आदि।

अतिसार रोग में—मोथा का रस। धनिया, मोथा, सोंठ, सुगन्धवाला और अतीस का क्वाथ। अनार फल का त्वक् चूर्ण, वेलशुंठ (कच्चे वेल की शुष्क मज्जा), कुटजछाल का रस। इन्द्रयव, अतीस, सोंठ, बेलशुंठ, मोथा और आकनादि (पाठा), इनका क्वाथ।

शोषातिसार में—सफेद पुनर्नवा या मोथा का रस। पुनर्नवा, इन्द्रयव, आकनादि (पाठा), बेलशुंठ (शुष्क कच्चे बेल की मज्जा), अतीस और मोथा का क्वाथ और कालीमिर्च का चूर्ण।

रक्तातिसार में—बेलशुंठ (कच्चे वेल की शुष्कमज्जा) का क्वाथ। अनार-त्वक् और कुटजछाल का क्वाथ। कुटजछाल का रस या क्वाथ।

प्रवाहिकारोग में—बेलशुण्ठ का क्वाथ, कुटजछाल का रस या क्वाथ। मोथा, थानकुनी (मण्डूकपर्णी) का रस, बेलशुण्ठ का चूर्ण और बकरी का दूध।

ग्रहणीरोग में—

वातजग्रहणी में—सोंठ चूर्ण, धनिया और सोंठ का क्वाथ।

पित्तजग्रहणी में—मोथा और गुरुच का रस। मोथा, इन्द्रयव, अतीस, सोंठ इनका क्वाथ।

कफजग्रहणी में—मोथा का रस। गुरुच, अतीस, सोंठ और मोथा, इनका क्वाथ।

त्रिदोषजग्रहणी में—सोंठ, मोथा और अतीसचूर्ण अथवा सोंठ, मोथा, अतीस, इन्द्रयव, आकनादि (पाठा), अनार की छाल, केलाफूल का रस और गुरुच का क्वाथ।

संग्रहग्रहणी में—गन्धप्रसारणी और मोथा का रस। सोंठ चूर्ण मिला हुआ दही अथवा केलाफूल का रस। बेलसोंठ (कच्चे बेलकी शुष्कमज्जा), पाठा, अतीस, अनार की छाल, इन्द्रयव, सोंठ और मोथा का क्वाथ।

अर्शरोग में—जला हुआ कोचई, त्रिफलाचूर्ण, हर्रे का चूर्ण और गन्ने का गुड़, काली तिल्ली और भेलवा की मीगीचूर्ण।

रक्तार्श में—कुटजछाल का चूर्ण, बेलसोंठ का चूर्ण, काली तिल्ली और पद्म-केशर, अनार का रस आदि।

अग्निमान्द्य में—हर्रा और सेंधानमक का चूर्ण, सोंठ चूर्ण, जवाइन चूर्ण, अदरक का रस, हर्रा, सोंठ, पिप्पली और कालीमिर्च का चूर्ण एवं मधु।

अजीर्ण में—सोंठ और सेंधानमक का चूर्ण, हर्रा और पिप्पली चूर्ण, हर्रे का चूर्ण और हिंगुल, जवाइन चूर्ण और मधु।

विसूचिका में—अपामार्ग मूल का रस और मधु, कपूर का जल और मधु, मोथा का रस और कपूर का जल एवं मधु।

पाण्डु, कामला और हलीमक रोग में—कोष्ठबद्धता रहने पर-तेउड़ी (निसोथ) चूर्ण, कुटकी चूर्ण या करेला पत्ते का रस, कच्ची हल्दी का रस।

दस्त साफ न होने पर—त्रिफलाचूर्ण, हल्दीचूर्ण, गुरुच का रस, कुलेखाड़ा (तालमखाना) का रस या चिरायता भिगोया हुआ जल और मधु।

रक्तपित्त में—

ऊर्ध्वगरक्तपित्त में—बासक (अरूसा) पत्ते का रस, गेंदापत्ते का रस, परवल पत्ते का रस, विशल्यकरणी का (आयापान) रस, दूब का रस, कुकसिमा का रस या आलता भिगोया हुआ जल और मधु।

अधोगरक्तपित्त में—दूब का रस, गुरुच का रस, कुटजछाल का रस, गूलर का रस, कुष्माण्ड का रस, आंवले का रस या केलाफूल का रस, अशोक छाल का क्वाथ।

रक्तार्श में या अधोग रक्तपित्त में—काली तिल्ली का चूर्ण और गन्ने का शक्कर या कुटजछाल का रस या बबुल की लेई विशेष उपयोगी है।

यक्ष्मारोग में—बासक पत्ते का रस, बासकछाल का रस, लाख का रस, लाख का चूर्ण, अर्जुन छाल का रस। लोध, अर्जुन छाल, गोरक्षचाकुले, मुलेठी और किसमिस का क्वाथ। दशमूल का क्वाथ आदि।

रक्त निकलते रहने पर रक्तपित्ताधिकार में लिखित अनुपान प्रयोग करे।

खांसी में—पिप्पलीचूर्ण, मुलेठी चूर्ण। बासकछाल, मुलेठी, पिप्पली और किसमिस, इनका क्वाथ।

शुक्रक्षय में—अश्वगन्धाचूर्ण और दूध।

छाती और बगल की वेदना में—दशमूल का क्वाथ और कुड़ा का चूर्ण।

श्वास में—वामुनहाटी (भारंगी) के मूल का क्वाथ या कुड़ा चूर्ण और मधु।

स्वरभङ्ग में—ब्राह्मीशाक का रस या कण्टकारी का रस और मधु। पिप्पली चूर्ण और मधु या वच चूर्ण और मधु।

अरुचिरोग में—अदरक का रस और मधु। नीबू का रस अम्लवेतस चूर्ण, पुरानी इमली, अदरक का रस और सेंधानमक, आमरुल (चांगेरी) का रस, दही का शर्बत, अनार का रस, त्रिकटुचूर्ण, जवाइन चूर्ण, काला जीरा का चूर्ण।

क्रिमिरोग में—विडङ्ग चूर्ण, पलाशबीज चूर्ण, अनारस के कच्चे पत्तों का रस, आंशशेउड़ा पत्ते का रस, खजूर पत्ते का रस, अनार पत्ते का रस, घेढ्ढ पत्ते का रस, पालिधा का रस।

कासरोग में—

वातजकास में—सोंठ और पिप्पलीचूर्ण, वामुनहाटी (भारंगी), कुकरोंधा का क्वाथ। रास्ना का रस, पुराना गुड़ और सोंठ, बृहत् पञ्चमूल या दशमूल का क्वाथ।

पित्तजकास में—बासक (अरूसा) का रस, मुलेठी चूर्ण, त्रिफला चूर्ण, द्राक्षा और कण्टकारी का क्वाथ। पिण्डखजूर और लाई का चूर्ण, मांसरक्त आदि।

कफजकास में—वासक का रस। वंशलोचन चूर्ण, बच चूर्ण, बासक, कण्टकारी और पिप्पली का क्वाथ। कुड़ा, कुकरोंधा और वामुनहाटी (भार्गी), पञ्चकोल (पिप्पली, पिप्पलीमूल चव्य, चीतामूल और सोंठ) का क्वाथ। कुड़ा चूर्ण और मधु।

श्वासरोग में—घी और कालीमिर्च का चूर्ण, कुड़ा चूर्ण, वहेडा की गूदी, वामुनहाटी (भारंगी) और कण्टकारी का क्वाथ। कण्टकारी और तुलसी का क्वाथ। तुलसीमंजरी, मयूरपुच्छ भस्म, त्रिकटु चूर्ण, कुकरोंधा चूर्ण।

हिचकीरोग में—इलायची चूर्ण और चीनी, मयूरपुच्छ भस्म और पीपल चूर्ण। घी और कालीमिर्च। कुड़ाचूर्ण, यवक्षारचूर्ण, नीबू का रस और नमक, बेहेडा चूर्ण और मधु।

स्वरभेदरोग में—ब्राह्मी का रस, सोंठ चूर्ण, वंशलोचन चूर्ण, कुड़ा चूर्ण, दशमूल का क्वाथ। वच चूर्ण, कण्टकारी का क्वाथ। लौंग चूर्ण, छोटी इलायची का चूर्ण, तालिश पत्र का चूर्ण और मधु। सोंठ चूर्ण और चीनी।

वमनरोग में—

वातज वमन में—छेने का जल। दूध मिश्रित जल, आंवले का रस। वेलछाल का क्वाथ और काला जीरा का चूर्ण।

पित्तजवमन में—परवल पत्ते का रस, नीमछाल और परवल पत्ते का क्वाथ। सफेद चन्दन का क्वाथ। धनिया का क्वाथ या धनिया और परवल पत्ते का भीगा हुआ जल। क्षेत्रपापडा का क्वाथ। लालचन्दन और मुलेठी का क्वाथ।

कफजवमन में—विडङ्ग, त्रिफला और अतीस चूर्ण, मोथाचूर्ण, सोठचूर्ण, अश्वत्थछाल भस्म, गुरुच का रस, त्रिकटुचूर्ण।

तृष्णारोग में—

वातजतृष्णा में—गुरुच का रस, मौरी (सौंफ) भीगा हुआ जल, बेदाना का रस।

पित्तज तृष्णा में—धनिया भीगा हुआ जल। आंवले का रस, तृणपंचमूल का क्वाथ। सारिवादिगण का शीत कषाय। धनिया और परवल पत्ते का क्वाथ। खसखस और लालचन्दन का क्वाथ।

कफज तृष्णा में—नीम छाल का क्वाथ या रस, पंचमूल का क्वाथ, खस-खस का क्वाथ।

क्षतज तृष्णा में—बकरे या हरिन का रक्त अथवा उनका मांसरस।

क्षयज तृष्णा में—मधु मिला हुआ जल, दूध मिला हुआ जल, मांसरस।

आमज तृष्णा में—पंचकोल (पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चीतामूल, सोठ) का क्वाथ, बेलसोठ (कच्चे बेलकी सूखी मज्जा) का चूर्ण, मोथा चूर्ण, वचचूर्ण।

दाहरोग में—

मद्यजदाह में—चन्दनादि (चन्दन, क्षेत्रपापड़ा, खसखस, सुगन्धबाला, मोथा, पद्ममूल, मृणाल, मौरी (सौफ), धनिया, आवला पद्मकाष्ठ) क्वाथ।

रक्तजदाह में—तृणपंचमूल और शालपर्णी का क्वाथ, लालचन्दन का क्वाथ।

पित्तजदाह में—क्षेतपापड़ा का रस परवल पत्ते का रस, चन्दन, धनिया और परवल वत्ते का क्वाथ, सुगन्धबाला, पद्ममूल, खसखस, धनिया और लाल-चन्दन का क्वाथ।

धातुक्षयजदाह में—शतावर का रस, गुरुच का रस और गूलर का रस।

क्षतजदाह में—अर्जुन छाल का चूर्ण, लाख का चूर्ण, शतावर का रस, चन्दन, मुलेठी, शतावर और खसखस का क्वाथ।

अभिघातजदाह में—लाख का चूर्ण और अर्जुन छाल का चूर्ण।

तृष्णानिरोधज दाह में—आंवले का रस। धनिया और मौरी (सौंफ) भीगा जल, केले की जड़ का रस।

हृद्रोग में—अर्जुनछाल का रस या क्वाथ, कुड़ा चूर्ण, गेहूँ का क्वाथ, हरिन सींग का भस्म, अश्वगन्धामूल, बला, गोरक्षचाकुले और अर्जुनछाल का क्वाथ। रास्ना, शटी और कुड़ा चूर्ण, अनार का रस।

क्रिमिज हृद्रोग में—विडङ्ग चूर्ण।

मूर्च्छा रोग में—खसखस का क्वाथ, नागेश्वररेणु, कुडा चूर्ण और वचचूर्ण।

भ्रमरोग में—शतावर का रस, बलामूल का क्वाथ और दुरालभा (जवासा) का क्वाथ।

मदात्ययरोग में—दुरालभा और मोथा का क्वाथ; मोथा या क्षेत्रपापड़ा सिद्ध (उबाला हुआ) जल।

उन्मादरोग में—ब्राह्मी शाक का रस, वचचूर्ण, कुष्माण्ड चूर्ण, शंखपुप्पी का रस, कुडाचूर्ण, शतावर का रस, धतूराबीज का चूर्ण, त्रिफला भीगा जल, पुराना रखिये का रस, तालशाखा का रस, पुराना घी और वचचूर्ण।

अपस्माररोग में—शतावर का रस, पुराना रखिये का रस, चावल भिगोया जल, अनार का रस, ब्राह्मी का रस, धारोष्ण दूध, गन्ने का शक्कर।

वातव्याधि में—एरण्डमूल का रस या क्वाथ, लहसुन का रस, रास्ना का रस, गनियारी का रस, उड़ददाल का क्वाथ, अश्वगन्धाचूर्ण, दशमूल क्वाथ, आलकुसी (कौंच) बीजचूर्ण, हिङ्गुल।

स्नायुगत वात में—अश्वगन्धा चूर्ण।

ग्रन्थिगतवात में—सहिजनछाल का रस, अदरक का रस और सेंधानमक।

ऊरुस्तम्भ में—अदरक का रस और पीपलचूर्ण, सहिजनछाल का रस और पीपल चूर्ण, चीतामूल चूर्ण, हर्रें का चूर्ण, पीपल चूर्ण, कुटकी चूर्ण, त्रिफला चूर्ण, रास्ना का रस, एरण्डमूल का रस, गुरुच का रस, पुनर्नवा का रस, दशमूल का क्वाथ।

आमवातरोग में—एरण्डमूल का रस, अदरक का रस और सेंधानमक, लहसुन का रस, पञ्चकोल का क्वाथ, सोंठचूर्ण, पीपल चूर्ण के साथ दशमूल का क्वाथ। निसिन्दा (निर्गुण्डी) का रस या निसिन्दामूल का क्वाथ। सोंठ और एरण्डमूल का क्वाथ, एरण्ड तेल।

शूलरोग में—कोष्ठकाठिन्य में तेउडी (निसोथ) का चूर्ण, धनिया, मौरी (सौंफ) भीगा जल, बडा हर्रा भीगा जल। हींग मिला हुआ एरण्डमूल का क्वाथ, दूसरी विधि—त्रिफला भीगा जल। डाब का जल, आंवले का रस। धनिया और परवल पत्ता भीगा हुआ जल या क्वाथ।

उदावर्त्त और आनाह में—तेउडी (निसोथ), चूर्ण, हिङ्गुल, धनिया और मौरी भीगा जल, कुड़ाचूर्ण।

गुल्मरोग में—

वातजगुल्म में—नीबू का रस, हींग, अनार का रस, सेंधानमक, कांजी, पुराना शराब, लहसुन का रस, दशमूल क्वाथ, एरण्डतेल।

पित्तजगुल्म में—घी और मधु, आंवले का चूर्ण, धनिया और परवल पत्ते का क्वाथ, कुटकी चूर्ण, दन्तीचूर्ण, नीमछाल का क्वाथ, त्रिफला का भीगा हुआ जल, द्राक्षा और हर्रें क्वाथ और मुलेठी का क्वाथ।

कफज गुल्म में—सोंठ और एरण्डमूल का क्वाथ। अजवाइन चूर्ण, गोमूत्र, हर्रें का चूर्ण, त्रिकटु चूर्ण, चीतामूल का क्वाथ या चूर्ण और यवक्षार।

रक्तजगुल्म में—आंवले का रस, कालीमिर्च का चूर्ण, ऊट का दूध, घण्टापारुल क्षार, यवक्षार, हींग, त्रिकटु और मनसा (सेंहुड़) क्षीर।

मूत्रकृच्छ्र में--

वातज मूत्रकृच्छ्र में—पुनर्नवा का रस, कुलथी का क्वाथ, पाषाणभेदी का रस, शतावरि का रस, गोक्षुर का भीगा हुआ जल या गोक्षुर का क्वाथ, सोंठ, गुरुच, आवला, अश्वगन्धा और गोक्षुर का क्वाथ, वच और लालचन्दन का क्वाथ।

पित्तजमूत्रकृच्छ्र में—गन्ने का रस, भूमिकुष्माण्ड (विदारीकन्द) का रस, आंवले का रस और दारुहल्दी का चूर्ण, पाथरकुचि (पत्थरचूर) का रस, पिसा हुआ कांकुर (ककड़ी) बीज, गोक्षुर और वरुण छाल का क्वाथ, तृणपञ्चमूल का क्वाथ, हर्रा, गोक्षुर, दुरालभा और पाषाणभेदी का क्वाथ।

कफज मूत्रकृच्छ्र में—इलायची चूर्ण और गोमूत्र। इलायचीचूर्ण और केले की जड़ का रस। गोक्षुर का क्वाथ, कुड़ा, गोक्षुर, वरुणछाल और पत्थरकुचि (पत्थर चूर) का क्वाथ।

त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्र में—गुड़ और गुनगुने दूधके साथ इन्द्रयव का क्वाथ।

पुरीषज मूत्रकृच्छ्र में—गोक्षुर का क्वाथ और यवक्षार चूर्ण।

शुक्रज मूत्रकृच्छ्र में—घी और दूध, इलायची चूर्ण और हीग।

सब प्रकार के मूत्रकृच्छ्र में—श्वेत बलामूल का क्वाथ, यवक्षार और चीनी, गोरक्षचाकुले का क्वाथ।

मूत्राघात रोग में—धनिया और गोक्षुर का क्वाथ, घिसा हुआ सफेद चन्दन और चीनी, शतावरि का रस, त्रिफला का भीगा हुआ जल और सेंधानमक, यवक्षार और चीनी मिश्रित कुम्हडे का रस, कन्टकारी का रस, कुमकुम भीगा हुआ जल। तृणपञ्चमूल का क्वाथ, गोयालियालता के मूल का क्वाथ।

अश्मरीरोग में—हल्दी चूर्ण, गुड़, कांजी, तित्कांकुड़ का मूल, गोक्षुर और वरुणछाल का क्वाथ, यवक्षार, हींग, कुलथी का क्वाथ, पाथरकुचि (पत्थर चूर) का रस, कांकुड़ वीज का चूर्ण, ककड़ी बीज का चूर्ण, कुड़ा चूर्ण, वृहत् वरुणादि क्वाथ, सहिजनमूल का क्वाथ।

प्रमेहरोग में—

मधुमेह में—सुपारी और गुयेबावला का क्वाथ।

इक्षुमेह में—जयन्ती का क्वाथ।

सुरामेह में—नीम का क्वाथ।

सिकतामेह में—चीता का क्वाथ।

शनैर्मेह में—खदिर का क्वाथ।

पिष्टमेह में—हल्दी और दारुहल्दी का क्वाथ।

सान्द्रमेह में—छातिम (छतिवन) छाल का क्वाथ।

लालामेह में—त्रिफला और सोंदाल का कषाय।

शुक्रमेह में—दूब, शैवाल, कैवर्त्तमुता (केवटी मोथा), करोंदा और केशुरे (कसेरू) का कपाय, अर्जुन और चन्दन का कषाय।

नीलमेह में—अश्वत्थ का कषाय।

हरिद्रामेह में—सोदाल का क्वाथ।

शुक्रमेह में—न्यग्रोधादिगण का क्वाथ।

क्षारमेह में—त्रिफला का क्वाथ।

मंजिष्ठामेह में—लालचन्दन का क्वाथ।

सब प्रकार के मेहरोग में—गुरुच का रस, कच्ची हल्दी का रस, गेंदा पत्ते का रस, हिंचे शाक का रस, पलाश फूल और शिमूल (सेमर) का रस।

अश्मरीरोग में—हल्दी चूर्ण, तित्काकुड़ का मूल, मधु और चीनी। सोंठ, गोक्षुर और वरुणछाल का क्वाथ, यवक्षार और हींग, कुलथी का क्वाथ, पाथरकुचि (पत्थर चूर) का रस, तृणपंचमूल का कषाय, कांकुड़बीज चूर्ण, ककड़ी बीज का चूर्ण, कुड़ा चूर्ण।

सोमरोग में—आंवले का रस, गूलर का रस, जामुन बीज का चूर्ण, केले के फूल का रस, भूमिकुष्माण्ड का रस, मोथा का रस, नोनाछाल का रस, केशुरिया का रस, खजूर के मूल का चूर्ण, आकनादि (पाठा) का क्वाथ, बांस पत्ते का क्वाथ, तेलाकूचा मूल का रस, पञ्चवल्कल का क्वाथ।

उदररोग में—तेउड़ी (निशोथ) चूर्ण।

अम्लपित्तरोग में—कोष्ठकाठिन्य रहने पर तेउड़ी (निशोथ) चूर्ण, धनिया, मौरी (सौंफ) और हर्रे का क्वाथ, त्रिफला का भीगा हुआ जल अथवा परवल पत्ते का रस, हिंचे शाक का रस, परवल का रस, गुरुच का रस, आंवले का रस या आंवला भीगे हुए का जल, शतावरि का रस, धनिया और परवल पत्ता भीगा हुआ जल, चिरायता भीगा हुआ जल।

तरल या अधिक दस्त होने पर—चूने का पानी और मोथा का रस।

वातप्रधान अम्लपित्त में—पीपल चूर्ण और मधु, जीरा चूर्ण, त्रिफला चूर्ण और सेंधानमक।

पित्तप्रधान अम्लपित्त में—परवल पत्ते का रस, अरूसा का रस, पित्त-पापडा का रस, गुरुच का रस।

श्लेष्मप्रधान अम्लपित्त में—नीमछाल का क्वाथ, मुलेठी चूर्ण, सोंठ और परवल पत्ते का क्वाथ।

शीतपित्त, उदर्द और कोठरोग में—कच्ची हल्दी का रस, परवल पत्ते का रस, हल्दी का चूर्ण, गुरुच का रस, नीमछाल क्वाथ, करेला पत्ते का रस।

विसूचिका में—अपामार्ग के मूल का रस और मधु।

शोथरोग में—

वातजशोथ में—सोंठ चूर्ण, पुनर्नवा का रस, एरण्ड मूल का रस, दशमूल का क्वाथ, बेलपत्ते का रस और गोमूत्र।

पित्तजशोथ में—कुलेखाडा (तालमखाना) का रस, परवल पत्ते का रस, कुटकी चूर्ण, तेउडी (निशोथ) चूर्ण, त्रिफला का क्वाथ, चाकुले, मोथा, सुगन्धवाला और सोठ का क्वाथ।

कामलारोग में—मुलेठी का क्वाथ, हल्दीचूर्ण अथवा त्रिफला चूर्ण।

पाण्डु और शोथ में—त्रिफला चूर्ण, गिलोय का स्वरस अथवा पुनर्नवा का रस।

शोथरोग में—चिरायता और सोठ का क्वाथ, गोमूत्र अथवा पुनर्नवा का रस।

क्रिमिरोग में—नीम पत्ते का रस अथवा विडङ्ग चूर्ण।

उन्माद और अपस्माररोग में—हींग, सोचर लवण, त्रिकटु और गोमूत्र के साथ घृत पाक कर उसके साथ पारद भस्म प्रयोग करे।

वातरक्त में—त्रिकटु, त्रिफला और विडङ्ग चूर्ण प्रत्येक १ भाग एवं सबके बराबर गुग्गुल एकत्र एरण्ड तेल के साथ मर्दन कर उसके साथ पारदभस्म प्रयोग करने से वातरक्त विनष्ट होता है।

कार्श्य में—पारदभस्म, अश्वगन्धा मूलचूर्ण और चीनी के साथ सेवन करे।

स्थौल्यह्रासकरणार्थ—एरण्डमूल चूर्ण या एरण्डमूल का क्वाथ अथवा विडङ्ग चूर्ण के साथ प्रयोग करे।

श्लेष्मजशोथ में—पुनर्नवा का रस, पीपल चूर्ण, हर्राचूर्ण, सोंदाल की लेई, गोमूत्र, देवदारु और सोंठ का क्वाथ।

वृद्धिरोग में—

वातज वृद्धि में—एरण्ड तेल, अदरक का रस, गोमूत्र, रास्नादि पाचन।

पित्तज वृद्धि में—परवल पत्ते का रस, गुरुच का रस, नीम छाल का क्वाथ, पुनर्नवा का रस, लालचन्दन और मुलेठी का क्वाथ, बरगद की छाल, अश्वत्थ, गूलर, पाकर, बबूल इनका क्वाथ।

कफज वृद्धि में—त्रिकटु चूर्ण, यवक्षार चूर्ण, त्रिफला का क्वाथ, गोमूत्र में उबाला हुआ हर्रे का चूर्ण, निसिन्दा (निर्गुण्डी) का रस, तुलसी पत्ते का रस।

व्रणशोथ और व्रणरोग में—करेला पत्ते का रस, कुटकी चूर्ण।

भगन्दर रोग में—खदिर लकड़ी का क्वाथ।

उपदंश और फिरंग रोग में—अनन्तमूल का क्वाथ, चोपचीनी का क्वाथ।

कुष्ठरोग में—पिसा हुआ चालमुगरा का बीज, नीम और छातिम (छतिवन) छाल का क्वाथ, नीम की पत्ती, फूल, फल, छाल और मूल चूर्ण।

स्त्रीरोग में—

वाधकरोग में—उलटकमल का मूल और पिसा हुआ कालीमिर्च का चूर्ण।

सफेदप्रदर में—पिसा हुआ कांटानटे का मूल, चावल धोया जल, गेंदा पत्ते का रस, धाई फूल, आंवले का गूदा, सफेद चन्दन घिसा और मधु, कुशमूल और तण्डुलोदक।

रक्तप्रदर में—अशोक का क्वाथ, घिसा हुआ रक्तोत्पल का मूल, नरम गूलर का रस, लाक्षाचूर्ण और मधु, कुटजछाल का रस, अरूसा का क्वाथ।

वसन्तरोग में—करेला पत्ते का रस, अमृतादि कषाय।

नाक के रोग में—तुलसीपत्ते का रस और मधु।

आंख के रोग में—त्रिफला का क्वाथ या भीमराज का रस।

रसायन में—अश्वगन्धा चूर्ण और दूध, दूध की मलाई और मिश्री, शतावर का रस और मधु, भूमिकुष्माण्ड (विदारीकन्द) का रस और मधु, बेला मूल चूर्ण और मधु।

वाजीकरण में—शोधित आलकुशी (कौंच) बीज चूर्ण और मधु, सेमर मूल का चूर्ण, भूमिकुष्माण्ड (विदारीकन्द) चूर्ण, शतावर चूर्ण, कुलेखाड़ा (ताल मखाना) बीज चूर्ण।

बालरोग में—

नवज्वर में—तुलसीपत्ते का रस और मधु।

पुरानाज्वर में—शेफालिका पत्ते का रस और मधु, कालमेघ का रस और मधु, गुरुच का रस और मधु।

प्लीहाज्वर में—पीपल चूर्ण और मधु।

अतिसार और ज्वरातिसार में—मोथा का रस, बेलसोंठ (कच्चे बेल की शुष्कमज्जा) का क्वाथ, अतीस चूर्ण और मधु।

रक्तातिसार और रक्तामाशय में—कुड़ची (कुटज) छाल का रस, आयापान का रस। पिसा हुआ लालनटे का मूल और मधु।

आमाशय (पेचिश) में—मोथा का रस, थानकुनि (मण्डूकपर्णी) का रस, गन्धप्रसारणी का रस।

कास में—पीपल चूर्ण, तुलसी पत्ते का रस, वासक (अरूसा) का रस, कुकरौंधा का चूर्ण।

ग्रहणीरोग में—तला हुआ जीरा चूर्ण, मोथा का रस और मधु।

पुष्टि बढाने के लिये—अश्वगन्धा मूल चूर्ण और दूध।

कुछ आधुनिक रोगों की रसचिकित्सा

मेरी लिखी हुई 'आधुनिक रोग की आयुर्वेदीय चिकित्सा' नामक ग्रन्थ में इन सब रोगों की चिकित्साप्रणाली विस्तृत भाव से लिपिबद्ध कर दी गई है।

बेरीबेरी चिकित्सा—आयुर्वेद के मत से यह एक प्रकार का अजीर्ण जनित शोथ है। इसमें ज्वर, खांसी, श्वास कष्ट, आंख से धुंधला देखना, रात में प्रकाश के चारों ओर गोलाकार मण्डल देखना, हृत्पिण्ड में व्यथा, सारे शरीर में शोथ आदि उपसर्ग दिखाई देते हैं। बहुत दिनों तक मिलावटी और सारहीन खाद्य द्रव्यों को खाने से इस रोग की उत्पत्ति होती है। अच्छी चिकित्सा न होने पर यह हमेशा के लिये आंख और हृत्पिण्ड को नष्ट कर देता है। रोगाक्रमण की

सूचना होते ही सुचिकित्सा का आश्रय लेने पर इसमें कोई भय का कारण नहीं रहता है ।

पूर्व वर्णित रस और गन्धक के योग से मारित अमृतीकृत ताम्र, रसतालक, नवायसलोह, मकरध्वजरस, महाशंखवटी, वृहत् कस्तूरीभैरव, श्वासकुठार आदि औषध प्रथम अवस्था में सोच विचार कर प्रयोग करना चाहिये । रोग की बढ़ने की अवस्था में सारे शरीर में शोथ दिखाई देने पर रसपर्पटी, लोहपर्पटी, पंचामृतपर्पटी या अवस्था अधिक खराव होने पर स्वर्णपर्पटी या विजयपर्पटी आदि औषध प्रयोग करना चाहिये ।

हृत्पिण्ड की दुर्वलता में नागार्जुनरस, प्रभाकरवटी, आदित्य रस, शिलाजीत वटी, हरितालभस्म आदि औषध की व्यवस्था करनी चाहिये ।

आंख आक्रान्त होने पर नयनामृतलोह, क्षतशुक्लहर गुग्गुलु, रसतालक, ताम्रभस्म आदि औषध प्रयोग करना चाहिये ।

बेरीबेरी चिकित्सा का अनुपान—बेदाना का रस, बला का रस, अदरक का रस, पुनर्नवाष्टक कषाय, दशमूल का क्वाथ, श्वेतपुनर्नवा का रस, अर्जुनछाल का रस, आंवले का रस आदि ।

मेनिनजाइटिस चिकित्सा—आयुर्वेद के मत से यह सान्निपातिक ज्वर है । रोगी के लक्षणसमूह के साथ सन्निपात ज्वर का कारण-लक्षणादि का विचार कर चिकित्सा करने से अच्छा फल मिलता है ।

चिकित्सा विधि—अनुक्षण रोगी के मस्तक में बरफ जल डालना या आधुनिक आइसवैग रखना चाहिये । बरफ या आइसवैग न मिलने पर शीतल जल की धारा गिराना चाहिये । रोगी की संज्ञाहीनता दूर करने के लिये वृहत् वातचिन्तामणि या चतुर्भुज रस का प्रयोग करे । तालभैरवी, वृहत् कस्तूरीभैरव रस, सन्निपातसूर्यरस आदि सान्निपातिक ज्वर की औषधियों को सोच विचार कर प्रयोग करने से आरोग्य होना निश्चित है ।

अनुपान—तालशाखा का रस, ब्राह्मी शाक का रस, डाव (कच्चे नारियल) का जल, दशमूल क्वाथ, कट्फलादि क्वाथ आदि ।

गैष्ट्रिक अलसर चिकित्सा—आयुर्वेद के मत से यह वायु और पित्त-

जनित परिणाम शूल के अन्दर आता है। शूलरोग की औषधियों का विवेचना-पूर्वक प्रयोग करने से ही यह यन्त्रणाप्रद व्याधि आरोग्य होती है।

चिकित्सा विधि—रस और गन्धक के सहयोग से मारित अमृतीकृत ताम्रभस्म, अदरक रस और मधु अथवा सहिजन छाल का रस और मधु के साथ प्रयोग करे।

दर्द को कम करने के लिये शंखभस्म और कुछ हीग अथवा शंखादिचूर्ण, नीवू का रस और गरम जल के साथ प्रयोग करने से अच्छा फल मिलता है।

रसतालक पान का रस अथवा घी और मधु के साथ प्रयोग करने से भी अच्छा फल मिलता है। इससे घाव जल्दी सूख जाता है।

शूलवज्र और शूलराजलोह सहिजन छाल के रस के साथ प्रयोग करने से वेदना की शान्ति होती है और क्रमशः रोग आरोग्य हो जाता है।

घी और मधु के सहयोग से 'धात्रीलोह' गैष्ट्रिक अलसर की एक उत्कृष्ट औषध है।

सबेरे दूध के साथ शूलहरणयोग प्रयोग करने पर भी अच्छा फल मिलता है।

रोग के अतिशय जटिल अवस्था में पहुचने पर—स्वर्णपर्पटी, विजयपर्पटी या क्षेत्र विशेष मे ताम्रपर्पटी या लोहपर्पटी का प्रयोग करने से अच्छा फल मिलता है।

उत्कृष्ट मण्डूरभस्म इस रोग की उत्कृष्ट औषध है। इससे ज्वाला और शूल की यन्त्रणा का सत्वर उपशम होता है।

तारामण्डूर, गुडमण्डूर, मण्डूरयोग आदि औषध घी और मधु, गरमपानी, लस्सी, अदरक रस, सहिजन छाल का रस, त्रिफला का क्वाथ, सोठ और वरुण-छाल का क्वाथ आदि अनुपान के साथ प्रयोज्य हैं।

ताम्रद्रुति, त्रियोनि, त्रिनेत्ररस आदि औषध भी सुफलप्रद हैं। अनुपान—अदरक का रस और मधु, सोंठचूर्ण और गरमपानी, त्रिफलादि क्वाथ, यथा—त्रिफला, तेउड़ी (निशोथ), दन्ती, कुटकी, सोठ, सोदाल, एरण्डमूल, सोनपत्ती, किसमिस।

शूलरोग या गैष्ट्रिक अलसर रोग में कोष्ठबद्धता रहने पर इस अनुपान द्वारा अच्छा फल मिलता है। (मेरी लिखी हुई 'दृष्टफल चिकित्सा' नामक ग्रन्थ मे यह विषय विशेषरूप से वर्णित है)।

अनुपान—सहिजनछाल का रस, अदरक का रस, घी और मधु, त्रिफलादि क्वाथ, नीबू का रस, गरमपानी, गरमदूध आदि।

गलष्टोन चिकित्सा—आयुर्वेद के मत से यह व्याधि पित्ताश्मरी और पित्तजशूल के अन्तर्गत है। विवेचनापूर्वक शूलरोग की और अश्मरीरोग की औषधियों का प्रयोग करने पर यह अति कष्टप्रद व्याधि दूर होती है।

वरुणछाल का क्वाथ, अदरक का रस और मधु अथवा सहिजन छाल के रस के साथ त्रिविक्रमरस का प्रयोग करने से अच्छा फल मिलता है।

आदित्यरस, ताम्रभस्म, सोमनाथ ताम्र, वारितरलोह, धात्रीलोह, त्रिनेत्ररस, आदि उल्लिखित अनुपान अथवा घी और मधु के साथ प्रयोग करने पर भी गलष्टोन आरोग्य होता है।

वरुणाद्यलोह, पाषाणभिन्नरस, पाषाणभेदीरस या पाषाणजीर्णरस, कुड़ा, गोक्षुर और वरुणछाल का क्वाथ एवं पाथरकुचि (पत्थर चूर) पत्ते के रस के साथ प्रयोग करने से अवश्य ही उपकार होता है।

यन्त्रणा की निवृत्ति के लिये—शंखभस्म, हींग और सोंठचूर्ण अथवा केवल शंखभस्म नीबू के रस के साथ व्यवहार करे।

शंखभस्म, वज्रक्षार और भास्कर लवण एकत्र मिलाकर प्रयोग करने से भी वेदना की शान्ति होती है।

रोग अधिक दिनों का पुराना होने पर ताम्रपर्पटी प्रयोग करना उचित है।

वरुणादि कषाय के साथ शिलाजीतभस्म प्रयोग करने पर गलष्टोन रोग सत्वर आरोग्य होता है।

सप्तामृतरस—पारद, गन्धक, लोह, ताम्र, शंख, शिलाजीत, यवक्षार, प्रत्येक १ भाग, एकत्र मर्दन कर वरुणछाल, उड़द, गोक्षुर, कुड़ा, पाथरकुचि (पत्थर चूर), सहिजन छाल और अदरक के रस या क्वाथ में भावना देकर १ माशा की गोली बनावे। शतावर का रस, त्रिफला भिगोया हुआ जल, घी और मधु, गरम जल, हरीतक्यादि या वरुणादि कषाय आदि अनुपान के साथ गलष्टोन रोग में प्रयोग करना चाहिये।

डिउडिनल अलसर—यह आयुर्वेद के पित्तशूल और ग्रहणी के समान रोगविशेष है। ग्रहणीरोगाधिकार के औषधियों को विवेचनापूर्वक प्रयोग करने

पर यह व्याधि आरोग्य होती है। कुछ दिनों तक विजयपर्पटी का व्यवहार करने के बाद रसतालक का व्यवहार करने से यह व्याधि निश्चितरूप से आरोग्य होती है।

ताम्रपर्पटी, अत्यधिक रक्तहीनता में लोहपर्पटी, सोमनाथताम्र, चक्रदत्त संहिता में वर्णित ताम्रयोग इस रोग की उत्कृष्ट औषध है।

नमक और जल त्याग कर दूध और अन्न पथ्य करते हुये उल्लिखित औषधियों का व्यवहार करना आवश्यक है।

अम्लपित्त रोगाधिकार का 'पीयूषवल्लीरस' और 'लीलाविलास' इस रोग की उत्कृष्ट औषध है।

टिटेनास चिकित्सा—यह आयुर्वेद के वातव्याधि रोग के अन्तर्गत धनुष्टङ्कार रोग का नामान्तर है। आक्षेपनिबर्त्तक इस रोग की एक उत्कृष्ट औषध है।

आक्षेपनिवर्त्तक—आंवला, हर्रा, बहेड़ा प्रत्येक आधा तोला, निशादल (हल्दी का पत्ता) चौथाई तोला, कपूर १ आना, हिङ्गुल २ आना, विडङ्ग ४ आना, जटामांसी ४ आना भर, एकत्र जल मे मर्दन कर २ रत्ती की गोली बनावे। वातारिरस, वृहत् वातचिन्तामणि, ताम्रभस्म और हरितालभस्म इस रोग की उत्कृष्ट औषध है।

डिपथिरिया चिकित्सा—आयुर्वेद के मत से यह एक प्रकार का दुःसाध्य कण्ठरोग है, इसके प्रारम्भ में हरितालभस्म १⁄१६ रत्ती की मात्रा में अदरक का रस और गरम गाय के घी के साथ व्यवहार करने से अतिशय फल होता है।

ताम्रभस्म, बसन्ततिलकरस, वृहत् श्रृङ्गाराभ्ररस एवं पंचतिक्तघृतगुग्गुलु इस रोग की उत्कृष्ट औषध है।

डायेबेटिस चिकित्सा—आयुर्वेद के मत से यह प्रमेह और सोमरोग के अन्तर्गत है। रसचिकित्सा विधि के अनुसार करने से इसकी अति उत्कृष्ट चिकित्सा है। प्रथमतः उग्र और मूल्यवान औषधिको का प्रयोग न कर साधारण ओषधियो से ही इसकी चिकित्सा अच्छी होती है। इस रोग में रोगी के पथ्य की ओर तीक्ष्ण दृष्टि रखनी चाहिये। इस विषय मे मेरी लिखी हुई 'सरल आयुर्वेद शिक्षा' नामक पुस्तक के पथ्यापथ्य विचार को देखना चाहिए। इन्द्रवटी, तारकेश्वररस, हरिशङ्कररस, मेहान्तकरस, बङ्गजतु, नागजतु, स्वर्णजतु, लोहाभ्रजतु, आदि

औषध, हल्दी का रस, तेलाकुचा पत्ते का रस, नोनाछाल का रस, शतावरि का रस, काकमाची का रस, केशुरिया पत्ते का रस, वेदाना का रस, घृतकुमारी का रस और सेंधानमक, घिसा हुआ सफेद चन्दन और मधु के साथ प्रयोग करने से अति उत्तम फल मिलता है।

उल्लिखित ओषधियाँ शर्करा विहीन डायेवेटिसरोग में उपकारी हैं। शर्करायुक्त डायेवेटिस में रसराज रस, चन्द्रकान्ति रस, बसन्तकुसुमाकर रस, बृहत् सोमनाथ रस, हेमनाथ रस आदि औषध विशेष उपकारी हैं। अनुपान–घी और मधु, केला फूल का रस, वांस पत्ते का क्वाथ, नोनाछाल का रस, कच्चे आंवले का रस, त्रिफलाचूर्ण, गूलर का रस आदि। उत्कृष्ट शिलाजीतभस्म, शतावरि का रस, त्रिफलाचूर्ण, कच्चे आंवले का रस, केला फूल का रस या क्वाथ, पाठादि क्वाथ आदि अनुपान के साथ प्रयोग करने पर अनेक क्षेत्रों में अच्छा फल होते देखा गया है। इस रोग की विशेष चिकित्सा विधि मेरी लिखी हुई 'दृष्टफल चिकित्सा' नामक पुस्तक में देखने योग्य है।

डायेवेटिककोमा—डायेवेटिस की अति प्रवृद्ध अवस्था में जब रोगी के पेशाब और रक्त में शक्कर की मात्रा अधिक हो जाती है तब अनेक समय रोगी बेहोश हो जाता है। यह अवस्था भयावह होती है। इसमें हरितालभस्म १६ रत्ती मात्रा में प्रयोग करने पर रक्त और पेशाब का बढ़ा हुआ शक्कर कम होकर रोगी की अवस्था सुधर जाती है। चतुर्भुजरस और बृहत् वातचिन्तामणि प्रयोग करने पर इस अवस्था में अच्छा फल मिलता है।

कार्बान्कल चिकित्सा—आयुर्वेद के मत से यह प्रमेहपिडिका विशेष है। इस अधिकार की ओषधियो को प्रयोग करने पर इस व्याधि से सहज ही में छुटकारा पा सकते हैं। कार्बान्कल में अचानक अस्त्रोपचार करना ठीक नहीं है। आभ्यन्तरिक दोष का निराकरण होने पर ही रोग धीरे–धीरे आरोग्य हो जाता है।

मूत्रदोष दूर करने के लिये बृहत् लोकनाथरस, चन्द्रकान्तिरस वसन्तकुसुमाकररस, स्वर्णवङ्ग, प्रमेहसेतु, बृहत् वंगेश्वररस आदि औषध व्यवहार करना चाहिए। अनुपान–सारिवादिगण का क्वाथ, पाठादि क्वाथ, वेणुपत्ते का क्वाथ, नोनाछाल का रस, तेलाकुचा पत्ते का रस, शतावरि का रस आदि।

अनन्तादि लेप—इस रोग की उत्कृष्ट औषध है। यथा—अनन्तमूल १ भाग, नालुका २ भाग और मुलेठी १ भाग चूर्णकर छान कर एकत्र शीतल जल में पेषण कर गाय के घी में मिलाकर घाव वाले स्थान के ऊपर प्रलेप दे। इसके साथ-साथ बसन्तकुसुमाकर रस या हरितालभस्म सेवनार्थ प्रयोग करने पर दुःसाध्य और परित्यक्त कार्बान्कल रोग भी आरोग्य होता है।

माणिक्यरस, रसतालक, रसमाणिक्य, पञ्चतिक्तघृतगुग्गुलु, उदयादित्यरस आदि कुष्ठरोगाधिकार के औषधियों की भी इस रोग में सफलता के साथ व्यवस्था की जाती है।

गैंग्रीन चिकित्सा—आयुर्वेद के मत से यह व्याधि प्रमेहपिडिका और कुष्ठ रोगाधिकार के अन्तर्गत है। गैंग्रीन का क्षत दो प्रकार का होता है, शुष्क और क्लेदयुक्त। शुष्क गैंग्रीन आयुर्वेद के विसर्प रोगाधिकार के अन्तर्गत है। इसमें माणिक्यरस, रसतालक, कालाग्निरुद्ररस, खगेश्वररस आदि औषध प्रयोग करने से अच्छा फल मिलता है।

क्लेदयुक्त गैंग्रीन मे तालेश्बर, महातालेश्वर, मेदिनीसार रस आदि औषध प्रयोग करे। रोगी के मूत्र के दोष को दूर करने के लिये वृहत् वंगेश्वररस, प्रमेहसेतु, स्वर्णबङ्ग, शिलाजीत एवं क्षेत्र विशेष में बसन्तकुसुमाकररस प्रयोग करे। पंचतिक्तघृतगुग्गुलु, अमृतभल्लातकघृत प्रयोग करने से भी अच्छा फल मिलता है। बाह्य प्रयोग के लिये ब्रणराक्षस तेल विशेष उपकारी है।

ब्लडप्रेसर—आयुर्वेद के विचार से यह वायु और पित्त का विकारमात्र है। प्रकुपित-वायु कुपित पित्त का आश्रय कर शोणितोच्छ्वास उत्पन्न करती है। पित्त-प्रकोप-प्रशमक और वातानुलोमक ओषधियाँ प्रयोग करने से इस व्याधि की शान्ति होती है। रसचिकित्सा की दृष्टि से गव्य घृत के अनुपान के साथ हरिताल भस्म इस रोग की एक उत्कृष्ट औषध है। इसके अतिरिक्त वृहत् वातचिन्तामणि, रसराजरस, योगेन्द्ररस आदि औषध भी इस रोग की उत्कृष्ट औषध हैं।

अमृतीकृत ताम्रभस्म घी और मधु के अनुपान के साथ २ रत्ती मात्रा में प्रयोग करने से शोणितोच्छ्वास आरोग्य होता है। त्रिफला भीगा हुआ जल या त्रिफला के क्वाथ के साथ कृष्णचतुर्मुख इस रोग की एक विशिष्ट औषध है। चिन्तामणि चतुर्मुख और त्रैलोक्यचिन्तामणिरस काकमाची के रस के साथ प्रयोग करने पर भी अच्छा फल मिलता है।

वेसिलरी डिसेन्ट्री—आयुर्वेद के रक्तातिसार और ग्रहणी रोग के अन्तर्गत है। पंचामृतपर्पटी, स्वर्णपर्पटी, रसपर्पटी एवं अति प्रवृद्ध अवस्था में विजयपर्पटी इस रोग की श्रेष्ठ औषध है। सोच विचार कर इसमें से किसी एक का प्रयोग करने पर प्रायः सभी रोगी अच्छे हो जाते हैं। जातीफलरस, कपूररस, महाराजनृपतिवल्लभ, महागन्धक आदि को सहायकरूप में व्यवहार किया जा सकता है। इस रोग की आयुर्वेदीय चिकित्सा सर्वत्र फलदायक हुई है।

डिसपेप्सिया—अग्निमान्द्य, अम्लपित्त और संग्रहग्रहणीरोग के अन्तर्गत है। डिसपेप्सिया रोग में किसी किसी क्षेत्र में कोष्ठवद्धता और किसी क्षेत्र में मलभेद होता है। पहले प्रकार के डिसपेप्सिया में ताम्रपर्पटी एवं द्वितीय प्रकार के डिसपेप्सिया मे पञ्चामृतपर्पटी या विजयपर्पटी महौषध है। आदित्यरस, सर्वरोगान्तक वटी और रसतालक इस रोग की उत्कृष्ट औषध है। महाशंखवटी, महाराजनृपतिवल्लभ, पीयूषवल्लीरस आदि भी अच्छा फल दायक है।

लिउकोरिया—आयुर्वेद के प्रदर और योनिव्यापद रोगाधिकार के अन्तर्गत है। चिकित्सा के प्रारम्भ मे 'हरीतक्यादि कषाय' के साथ योगेन्द्रसार नामक औषध मिश्रित कर योनिद्वार को धोने एवं सेवनार्थ रत्नप्रभावटी दे।

हरीतक्यादि कषाय—हर्रा, आंवला, बहेड़ा तथा आम, जामुन बबूल, कदम्ब, गूलर, कुटज, नीम, वरगद और अश्वत्थ की छाल को आधा तोला की मात्रा में लेकर ४ सेर जल में उबाल कर १ सेर रहते छान ले।

योगेन्द्रसार—तूतिये का भस्म, ताम्रभस्म, शोधित हीराकस, स्वर्णगैरिक प्रत्येक १ भाग, एकत्र अच्छी तरह से मिलाकर जननेन्द्रिय को धोने के लिये एक आने की मात्रा से उल्लिखित कषाय के साथ व्यवहार करे।

स्वर्णवङ्ग, प्रमेहसेतु, रसतालक, वृहत् वंगेश्वररस, वसन्तकुसुमाकररस इस रोग में उत्कृष्ट फल देते है। शिलाजीत प्रयोग इसका अत्युत्कृष्ट औषध है।

अहिफेन योग—शोधित अहिफेन, रससिन्दूर, कपूर, कबाबचीनी, वारितर लोह प्रत्येक १ भाग, एकत्र शीतल जल मे मर्दन कर २ रत्ती की गोली बनावे। अनुपान-केशुरिया (कसेरू) या कच्ची हल्दी का रस। सफेद चन्दन घिसा और मधु। आरवीगंद भीगा हुआ जल, दारुहल्दी घिसा और मधु। सोंठ और गोक्षुर का क्वाथ। त्रिफला, दारुहल्दी, चीतामूल और राखालससा (इन्द्रायण) का क्वाथ आदि। इस प्रयोग से अवश्य ही रोग अच्छा होता है।

सिफिलिस—यह भावमिश्र कथित फिरङ्गरोग के अन्तर्गत है। पारदभस्म, शोधित पारद, हरितालभस्म, माणिक्यरस, रसमाणिक्य, तालकेश्वररस आदि औषध खटाइ और नमक त्याग कर व्यवहार करने से यह रोग दूर होता है। सिफिलिस चिकित्सा में पारद और हरिताल घटित औषध ही सबसे अधिक फलदायक है। निम्नलिखित मिश्रयोग इस रोग की एक दृष्टफल औषध है। पारद, गन्धक, खदिर प्रत्येक २ तोला, हल्दी, नागेश्वर, बड़ी इलायची, छोटी इलायची, जीरा, काला जीरा, जवाइन, सफेद चन्दन, पीपल, वंशलोचन, जटामांसी और तेजपत्ता प्रत्येक का चूर्ण १ तोला एकत्र मिलाकर १६ तोला मधु और १६ तोला गाय के घी के साथ मर्दन कर १ तोले की गोली बनावे। नमक परित्याग कर २१ दिन तक यह औषध सेवन करने से सिफिलिस का क्षत अवश्य ही आरोग्य होता है। अनुपान-अनन्तमूल और चोपचीनी का क्वाथ।

गनोरिया—यह एक प्रकार का दूषित प्रमेह है। दुष्ट स्त्रियों के संसर्ग से ही इस रोग की उत्पत्ति होती है। बंगयोग इस रोग की उत्कृष्ट औषध है।

वंगयोग—बंगभस्म, शिलाजीतभस्म, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, स्वर्णभस्म, ताम्रभस्म, रससिन्दूर प्रत्येक १ भाग एकत्र कच्ची हल्दी के रस मे मर्दन कर २ रत्ती की गोली तैयार करे। अनुपान-सफेद चन्दन घिसा और मधु। इस औषध सेवन के साथ-साथ हरीतक्यादि कषाय सहित योगेन्द्रसार मिश्रित कर पिचकारी द्वारा मूत्र के द्वार को धोने से सत्वर उपकार होता है।

गाउट रिउमेटिज्म और आरथाइटिज—ये व्याधि आयुर्वेद के आमवात रोगाधिकार के अन्तर्गत हैं। इस रोग में रोगी के मूत्र मे दोष है कि नही यह देखना विशेष आवश्यक है। रोगी को पहले सिफिलिस या गनोरिया रोग हुआ था कि नहीं वह भी जानना आवश्यक है।

मूत्र का दोष रहने पर प्रतीकार के लिये प्रमेहरोगाधिकार के औषधियो की युक्तिपूर्वक व्यवस्था करे। फिरंगरोग जनित या दूसरे तरह की रक्तदुष्टि का प्रतीकार करे एवं आमवात रोगाधिकारोक्त सिंहनादगुग्गुलु, आमवातारिवटी, वातगजेन्द्रसिंह, योगराजगुग्गुलु, वातारिरस और रसोनपिण्ड आदि औषध महारास्नादि क्वाथ, रास्नादि क्वाथ या रास्नादि कषाय के साथ प्रयोग करे।

नेफ्राइटिज, ब्राइट्स डिजिज और एलबुमेनिउरिया—ये व्याधि आयुर्वेदोक्त प्रमेह, सोमरोग, आमवात और शोथ रोगाधिकार के अन्तर्गत हैं।